

HINDI
JAIN BHAKTI KAVYA
AUR KAVI

(Thrice)
Dr. PREMSAGAR JAIN

Shrestha Jyoti
Publications

First Edition 1964

Price Rs 12 00



प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय

१ जवाहर लाल नेहरू पथ, नया दिल्ली-११

प्रकाशन कार्यालय

दुर्गापुर रोड, बाराकली-२

विषय क्षेत्र

१९९१-१९९२ केन्द्रीय प्रकाशन मार्ग दिवसी-२

प्रथम संस्करण १९६४

मूल्य पाठ्य रूपे



प्राक्कथन

हमारे देशमें वैष्णव रीत साफ़ बौद्ध जैन सिन्ध्यायत सिख आदि धर्मके अनेक पन्थ प्रसिद्ध हैं। मेरे मन में केवल वन पन्थ नहीं हैं। ये तो व्याख्यात्मक संस्कृतिकी अलग-अलग शाखाएँ भी हैं। इनके साधनिक विचार और विचारमेवका अध्ययन करके हमें सम्योय नहीं मानना चाहिए। मानवी जीवनको विमृष्ट समृद्ध और कृताय करनेके इन विभिन्न और जीवनव्यापी प्रयत्नोंका अध्ययन हमें संस्कृतिकी दृष्टिसे भी करना चाहिए। तब जाकर इन महान् पन्थोंकी मानव-सेवाका हमें यथार्थ अंशक ज्ञान होगा।

ऐसे अध्ययनके लिए केवल साधनिक धर्मोंका परिचय और इन पन्थोंके संस्थापकोंकी और उनके प्रचारकोंकी जीवनीयों तो महत्त्वकी हैं ही। इन पन्थोंका और इनकी शाखा प्रशाखाओंका इतिहास भी हमें देखना होगा। और इससे भी अधिक महत्त्वकी बात इन पन्थोंके कविगणोंने अपनी कविताके द्वारा जीवनको जो उपासना की है और हृदयकी जो समृद्धि हासिल की है और करवायी है उसका भी महत्त्व और हादिक अध्ययन होगा चाहिए।

इन पन्थोंके बारेमें और एक महत्त्वकी बात है। इनके साधुगणोंने प्रचारकोंने और कविगणोंने अपने-अपने पन्थका जीवन भीते जो नये नये धर्म हैं और उनके द्वारा जीवनका जो विपुल साक्षात्कार जिना उसका महत्त्व मूल प्रेरणासे कम नहीं है। जिस तरह माय्यकार और टीकाकार मूल ग्रन्थक रहस्यका उद्घाटन करते अपने नये-नये मौलिक विचार और अनुभव भी इसमें छिड़ देते हैं उसी तरह हरेक पन्थका विचारक प्रचारक और कवि अपने-अपने पन्थकी जीवन दृष्टिमें अपनी ओरसे मौलिक बुद्धि भी करता है।

यह हुआ हरेक व्यक्ति की जीवन-साधना-द्वारा होनवाली सांस्कृतिक सेवा और समृद्धि।

इसके अलावा जब ऐसे पन्थोंका प्रचार मिश्र-मिश्र कौटिक और मिश्र-मिश्र बोध्यताके नये-नये समाजमें होता है, तब मूल धार्मिक प्रेरणाकी मूल नये-नये अवधारणा करने पड़ते हैं। वैष्णवोंने अपना ध्यानतोले जब आदिवासियोंमें कमप्रचार जाता तब उन लोगोंके जीवन-स्तरका विचार करके और उनकी जीवन-दृष्टिको साव्य समझोता करके इन पन्थोंकी समन्वय-दृष्टिको उन्हें स्वीकार करना पड़ा। हीनमान बौद्ध सम्प्रदायके भगवान्नी लोच भले ही कहें कि हमारा

मुद्रबर्ष ही धुल है और दिस-दिरेधर्म पूना फना महाबान पन्थ तरह-तरहकी मिश्रबटके कारण असुख है, ये तो बहूना कि महाबान सम्प्रदाय असली बौद्धधर्मका ही मान्यतासे अनुभूत विषाद समूह स्वप्न है। यंथा नदीके तटपथका माहात्म्य स्वीकारते हुए हम कभी नहीं कहने कि यंथोपीके बारकी हुरदारीके बारकी या प्रयागके बारकी यंथा यंथा ही नहीं। यंथाका उच्चा माहात्म्य यही है कि यंथोपीके कैदर यंथाहावर तक उसके सुशीर्ष प्रवाहमें जितन भी जीवनप्रवाह का बिके तन उसके समने अपनाया और उन्हें अपने नामका एक सब प्रदान दिया। हम सोच ही कहते हैं कि हमारा व्यवसाय जीवन ही हमारा मुक्त जीवन का और बारका जीवन असुख जीवन है। वैदिक धर्म कहते-कहने उसका उन्नातन धर्म हुआ। अपने नाकर नहीं हिन्दू धर्म हुआ। अब यह बीरे-बीरे भारतीय धर्म होने का रहा है और बहुतक यह विश्वधर्म नहीं हुआ है, परमें अकम् मुक्ति जानेवाली नहीं है। इस भारतीय धर्ममें-से अनेक पन्थ निकले। यानाकि रूपमें उनका जीवन-प्रवाह अलग बहने लगा और उनमें-से अनेक क्रिस्ते मूल सोतमें का बिके।

यही बात सब धर्मोंकी है। और अब तो जमते जम भारतीय धर्म एकन जाने हैं और आद्यन-प्रधान-हाय इनका सम्मलय होनेवाला ही है।

भारतमें बसे हुए सब धर्मोंके बीर पन्थोंके बीच आद्यन-प्रधान एकता ही कामा है। इसीलिए तो हवाय सांस्कृतिक जीवन इतना सहिष्णु और समूह हुआ है।

मेरे मन इन सब धर्मोंमें सबसे अधिक भक्ति है भक्तिकी। भक्तिकी बीजा सब धर्मोंकी केनी पड़ी है। ऐसा एक भी धर्म या पन्थ नहीं है जो भक्तिसे मुक्त रहा है। 'आनन्देन तु वैवस्वतम्' कहनेवाके अर्द्धवासी आनन्दार्थी सीमासी संकरा धामकी भी कहना पड़ा 'मोक्षकारणसागर'की भक्तिरत्न मरीचकी। फिर तो उन्हें भक्तिकी अपनी आकाश भी करनी पड़ी 'स्वस्वस्वयानुसंधानं भक्तिविवर्जितं पथे'।

आनन्दार्थी धर्मियोंकी भी भक्तिकी विद्यामें अपना जीवन पन्थ बहना ही पड़ा। सचमुच भक्ति ही जीवन है। नदीका तारके तरह बहना जीवनका धिक्की ओर अलग बहनेवाला आनन्द 'सीमा'का परिपुष्ट होकर 'नूपा'में समा जाना यही तो भक्ति है। जो बहता नहीं और बहता नहीं वह भी नहीं सकता। और भक्ति तो अलग बहनेवाकी रसमय प्रवृत्ति है। बहनेवाकी नदियाँ जिन्हें समुद्रमें जाकर मिलती हैं, वह समुद्रकी न जगता है, न जगता है, तो भी सबसे आनन्दार्थी

सोचा चकती है। और किसी भी नदीके प्रवाहकी अपेक्षा स्वयं समुद्रके अन्तः-प्रवाह अधिक बेगवान् और समर्थ होते हैं।

साहित्यकी ओर देखते कहना पड़ता है कि जीवनका सैन्य साहित्यमें भी सबसे अधिक सामर्थ्यसे व्यक्त होता है उसकी कवितामें। क्योंकि सब देखा जाये तो हृदयकी मित्र ही काव्य है।

इतना स्पष्ट होनेके बाद अजय कहनेकी जरूरत ही नहीं है कि भक्ति-काव्यमें ही उस-उस पन्थकी जीवनसिद्धि का उत्तम परिचय पाया जाता है। उसमें भी हृदयवर्मकी निष्ठ बिने पूर्णरूपसे मिली है, उस गारी जातिके भक्ति-काव्यका तो पूजना ही क्या। जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली जन्म बातोंसे स्निग्धका परिचय भके ही कम हो साहित्यकी बातुरी भी भके उनमें कम हो। ज्ञानवर्षामें उनकी तनिक भी विरलवरी न हो। किन्तु हृदयके मादोंके साथ एकनिष्ठ रहना उन मादोंके चरणोंमें अपने जीवनका पूर्णतया अर्पण करना उनके लिए स्वाभाविक है। आराध्य देवकी उपासना करते अपनेको भूक्त जाना और सर्वार्थमें ही सम्नोप मानना वह है स्वोपकृति।

जैन जीवनदृष्टिने जितेन्द्र जाति जाहे सो नाम पसन्द किया हो अपनी जीवन-निष्ठा आत्मतत्त्वकी ही अर्पण की है। और सब साक्ष्य बताते हैं कि उपासनाका रूप कुछ भी हो आत्मार्पण तो आत्मदेवकी ही हो सकता है। भगवान् के नाम जन्य है लेकिन सच्चा नाम तो अन्तरात्म यानी आत्मात्म ही है। इस आत्मदेव की भक्ति सम्मानेन करते जिसको सो रास्ता मिला उसने अपनाया है।

श्री प्रेमदासरजीने जैन भक्ति-काव्यके सागरमें अनेक बाढ़ते बुझियाँ अयाबी हैं और जो मोक्षो उन्हें मिले हमारे सामने रखे हैं। अपनी पढ़नी किताब जैन भक्ति-काव्यकी पुस्तकामें पाठनके लिए और रसिकोंके लिए उन्होंने पूर्ण ठेकाफा की है। अब इस ग्रन्थमें उन्होंने मावकी बुद्धिसे और कलाकी बुद्धिसे अनेकानेक जैन कवियोंका और कवयित्रियोंका परिचय करवाया है।

मैं तो मानता हूँ कि काव्य और भक्ति में बड़ी ओष ही ऐसे सार्वभौम हैं जबका साम्योपम है कि इनमें पन्थभेदका कोप ही हो जाता है। भोमियोंकी मधुर भक्ति राम उपासनामें भी पूर्ण नयी और भोतरागीकी भक्तिमें भी उसने अपनी प्रकृतता साबित की है। धर्मके पन्थोंमें और जीवनकी संस्कृतियोंमें जाहे विपत्ते भेद हो जीवन तो एक अखण्ड सम्पूर्ण और मुमा होता है। सब वर्गोंकी गल्ल होकर जीवनसे ही बोझा सेनी पड़ती है और जीवनकी उपासना करनी पड़ती है। जिस तरह सागरमें सब तोंरें समायें जाते हैं वही तरह सब देवता जीवन देवताकी

ही मिष्ट-मिष्ट विमूर्तियाँ साबित होती हैं। कविताने और मणितने अपनी निष्ठा जीवनरेखताको ही बपन की है। हमीमें उनकी कृतापता है।

श्री प्रेममादरबीमे पहले संघोवनके बाद पूरी विद्वत्ताके साथ यह धन्य किम्बा है। उसके लिए वे सबके बन्धुवारके अधिकारी हैं। हम आशा करते हैं कि अब वे इस नारे महाप्रयागके कमस्वरूप और मणि-काव्यका स्वरहित और पीढ़िक मफ्तन निजामकर आजकी मायामें अपने स्वरूप में।

—कमल कानुनकर

मणिमि राजबाद

१६ जनवरी १९६४

भूमिका

यह मेरे दोष प्रबन्धका दूसरा खण्ड है। पहला खण्ड 'जीन भक्ति-काव्य' की पुष्टभूमि के नामसे प्रकाशित हुआ है। उसमें पाँच अध्याय हैं। जीन भक्तिका स्वरूप जीन भक्तिके जन्म जीन भक्तिके भेद आराध्य देवियाँ और उपास्यदेव। इनके आचार पर जीन भक्तिको प्राचीनतम मान्यता स्थापित की गयी है। वही परम्पराके रूपमें सम्प्रकाशीन हिन्दूके जीन भक्त कवियाँ प्राप्त हुईं। जीन ही नहीं अन्य भक्ति काव्य भी उसके प्रभावसे बहुत न बच सका। सन्त-काव्यपर उनकी स्पष्ट छाप है।

सबसे दो कबीरदासकी भूमि सबसबसे मानी जाती है किन्तु नागसम्प्रदायसे उनकी विशेष सम्बन्ध था। डॉ. इचार्गीप्रसाद द्विवेदीके अनुसार उस समय प्रचलित चारों सम्प्रदाय नागसम्प्रदायसे सम्बन्धित हुए थे। उसमें 'पारस' और 'नर्मि' सम्प्रदाय भी थे। नर्मि सम्प्रदाय जीनके बाईमर्मे त धरकर नेमिनाथके नामपर प्रचलित था। वह समूचे दक्षिण भारतमें फैला था। उसके संसाधसेप अथक मिलते हैं। 'पारस' सम्प्रदाय तर्हिमें तीक्ष्णकर पादनाथसे सम्बन्ध था। उसका समूह उत्तरी भारतमें प्रसार था। इस प्रकार कबीर जहाँ मा जनमाने एक ऐसी छद्मका स्वरूप पा सके थे जो अनेकान्तात्मक थी। उनकी 'निर्गुण' में 'गुण' और 'गुण' में 'निर्गुण' वाली बात ऐसी ही थी। निर्गुणका अर्थ है गुणातीत और गुण का अर्थ है प्रकृतिका विकार—मत्त्व रज और तम। संसार इस विकारसे संयुक्त है और ब्रह्म उससे रहित। किन्तु कबीरदासने विकार-संयुक्त संसारके बट-बटमें निर्गुण ब्रह्मका नाम त्रिधाकर मिला दिया है कि 'गुण' 'निर्गुण' का और 'निर्गुण' 'गुण' का विरोधी नहीं है। उग्रहाने 'निरगुणमें गुण और गुणमें निरगुण' को ही सत्य माना अतिसिद्ध सबको चीन्हा कहा।

कबीरसे बहुत पहले विष्णुकी सातवीं धनीय इसी निर्गुणको 'निष्कल' संज्ञासे अभिहित किया गया था। फिर सभी अपभ्रंश काव्यके रचयिता कवि उसे 'निष्कल' ही कहते रहे। मुनि रामनिहल उसे एक स्वामपर 'निर्गुण' भी कहा है। उसका अर्थ किया है निरव्यय और निरव्यय। वह निष्कलसिद्ध मिथ्या-मुक्तता है। जिस प्रकार कबीरका निर्गुण ब्रह्म भीतरसे बाहर और बाहरसे भीतर तक फैला है। वह अबाधतप भी है और भावपूर्ण भी निराकार भी है और साकार भी। ईश भी है और अईश भी। ठीक इसी प्रकारको बात अपभ्रंशके जीन कवि

मध्यकाशीन जैन कवियोंने ब्रह्मके 'एकानेक'वाके रूपके गीत माये । सबसे अधिक बनारसीवासीने सिखा है कि नदीका प्रवाह तो एक ही है, किन्तु नीरकी हरमि अनेक भौतिकी होती है । वैसे ही आत्माका स्वरूप एक ही है, किन्तु पुरुषवर्गके सम्मोहसे वह विभिन्न रूप धारण करता है । एक ही अग्नि तुम काठ बाँस आरने और अन्य इन्तन धातुनेसे माता आकृति धारण करती है । वैसे ही यह जीव नव तरबमें बहुमेयी बिनाई देता है । अग्निने किता

“देखु सखी यह ब्रह्म विराजित थाका वसा सब पाही का सोई ।

बूढ़ में जनक अनेकमें एक हुँहु किय बुझिया यह सोई ।

आपु संसार कसै भरनी पर, आपु बिभारि कै आपुहि मोई ।

ध्यानक कन पई घर अन्तर ध्याव में कोन अज्ञान में कोई ।

महात्मा आनन्दचरणने कृष्णक और कलकका प्रसिद्ध वृत्तान्त देते हुए किता कि कृष्णक आदि पर्यायोंमें अनेकस्मृता होते हुए भी स्वयकी वृत्तिसे एकता है । इसी प्रकार ब्रह्म और तरब माटी और उसके बरतन रक्किरण और उससे भासित अनेक वस्तु ब्रह्मके 'एकानेक' स्वभावकी प्रकट करती हैं ।

सम्प्रकाश्यकी अनेक प्रवृत्तिमाँ जो अप्रच्छन्न और इससे भी पूर्ववर्ती प्राकृत सन्धोंमें बिनाई देती हैं उन सबके साँचीपान विवेचनका यहाँ अवसर नहीं है । इतना स्पष्ट हो चुका कि 'निगुण-काम्य'के मूळ स्रोतोंमें एक जैनधारा भी थी ।— मध्यकाशीन हिन्दी जैन-काव्यकी यह विरासतके रूपमें मिलता था । इस युगके अनेक जैन कवि ऐसे हुए जो क्यतिप्राप्त ने और सामर्थ्यवान् भी । मीने उनका बचावमान सस्तेबा किया है । उनकी निगुण सन्धोंसे तुलना अन्तिम अध्यायमें की गयी है । बर्हातक हिन्दीकी समुच्च काव्यधाराका सम्बन्ध है यह मध्यकाशीन जैन हिन्दी कवियोंके तीर्थंकरभक्तिके रूपमें प्राप्त हुई । इस यत्तिकी विचार विवेचन 'जैन भक्ति-काव्यकी पृष्ठभूमि'के दूसरे अध्यायमें हो चुका है । तीर्थंकरका जन्म होता है, पालन-पोषण घिसा-बीसा राज्य-व्यवाहन आदि कार्य परम्परानुमोदितरूपमें ही चलते हैं । यह स्वयं तप और ध्यानके द्वारा ब्रह्मका प्रवर्तन करता है । उसकी आत्मा विद्युत्तम हो जाती है । आमुकमें शीघ्र होनेपर उनका सम्बन्ध अन्तिम घटीरसे भी छूट जाता है । यह सिद्ध हो जाता है, जिसके न बच होता है, न बन्ध न रज न सधर, न स्पर्श न जन्म और न मरण । यही है निर्वाण और निःसंय । तीर्थंकरकी समुच्च और सिद्धका निगुण ब्रह्म कहा जा सकता है । एक ही जीव तीर्थंकर और सिद्ध दोनों ही हो सकता है । जत उनका निवृत्त विमानन सम्भव नहीं है ।

प्राकृत संस्कृत और अपभ्रंशमें समस्त जैन स्तुति-स्तोत्रोंकी रचना हुई। विजयकी प्रथम अष्टांशिकसे यह प्रवाह सतत चलता रहा। इन स्तोत्रोंकी कोई कृपा नहीं। उनमें यदि एक ओर भक्ति-रस का मिश्रण है तो दूसरी ओर काव्य-शील्यकी सम्पत्ति है। मूल्य हूबहूकी वे पुकारें जैसे आज भी कीचि हैं। मुक्तक काव्योका यह रूप मध्यकालीन हिन्दोके जैन कवियोंके पक्षों का प्रतीक है। हिन्दीका जैन पर-काव्य एक पुष्प लोखना दिया है। अनेक कविमाल पक्षोंकी रचना की। लक्ष्मीनदी राम राधिकादि के परिवेष्टमें जैसे जैसे उन पक्षोंकी अनुपम कला है। उनमें भी मुक्तक-रस-रसना प्रभाव पुष्प नहीं उपलब्ध नहीं होता। सुरदासके साथ उनके पर-काव्यकी तुलना जैन की है। अच्छा तो यदि कोई अनुपमिष्ठानु इसे अपनी शोषका विषय बनाये।

हिन्दीके जैन प्रथम काव्योका 'विजयपरव' एकका जैन विवेचन दिया है। उनमें राम और हनुमान् की मित्रता है। इनमें रामकाव्यक पीछे उसकी आत्मीय एक मान्यता परलया की। विजयपुरि (विजयकी पक्षी घनी)का 'पञ्चमपरिच' (प्राकृत) एक संस्कृत रचना मानी जाती है। विजयपुरिकी मूलमें बड़ी देन है रामायणके पात्रोंका मान्य करण। काव्योचित तो यह हिन्दुत्व केकर इस मुहिमें हुए, बहुत हुए कर दिया था। रासत और बाहर सब और आरम्भके प्रत्येक बना विषे पक्षे है। विजयपुरि के अन्त में दूररा रूप दिया विजय पर इस मुनिवाके कीव विद्वान् कर सके। दूररी दुष्ट है रविदेव (१७८ ई.) का पद्यकवि। यह अत्यन्त लीलात्मक बना। आज भी कीचि का-कर्म पड़ा जाता है। रवि देवने लख ही विजयपुरिका काव्य स्वीकार दिया है। तीसरी रचना 'पञ्चमपरिच' है। इनके रचयिता के अज्ञात स्वयम्। वे ईसाकी आठवीं सताब्दीमें हुए हैं। यह कवि मान्योमेप और काव्य-शील्यकी दृष्टिसे उत्तम है। स्वयं स्वयंपर प्राकृत पुष्प विचारे हुए हैं। तीसरा धीम-सना लोखर्ब अत्यन्त है। ईसा का दिया तुलनीयलने अत्यन्त उपलब्ध नहीं होता। चौथी कवि लंकासामन्तीका 'अनुपमिष्ठानु' (१९ ई.) है। इनमें तीसरी काव्योदरीकी पुत्री माला माला है। अन्त में लखर पुष्पमाला अपने उत्तरपुराण (१९वीं सदी ईसा)में इस मान्यताको पुष्ट किया। पुष्पमाला एक सामान्यकाल कवि है। अन्त में रचना है पुष्पमाला महापुराण। अन्त में पुष्पमाला अनुपम कवि दिया किन्तु उक्त काव्य-शील्य पुष्पमाला का है। वे एक मान्य हुए कवि है।

मध्यकालीन हिन्दीमें रविदेवने पञ्चपुराणके अनुवाद बहुत ऐसे किये। वे केवल अनुवाद है। अन्त में लीलात्मक है और ल काव्य लीलात्मक। केवल राम-

चन्द्रका 'सीताचरित' एक ऐसी कृति है, जो माव और भापा दोनों ही दृष्टिमाने उत्कृष्ट कही जा सकती है। उसपर स्वयम्भूका प्रभाव है। इसकी रचना १७वीं शतीमें हुई थी। पं भगवतीदास 'बृहत्सीतास्तु' (वि सं १९८७) की रचना की। पं भगवतीदास जन्मजात कवि थे। उनके काव्यमय स्वभाव विकृता है। सीताके हृदयके स्वप्नोंका सही चित्र बृहत्सीतास्तुमें उकेरा गया है। ब्रह्म जयमागरका 'सीताहरण' (वि सं १७३२) एक महत्त्वपूर्ण रचना है। यह एक ब्रह्म-काव्य है। उसके पढ़नेसे मन विमुक्त हो उठता है। ये तीनों काव्य सीताको केन्द्र मानकर लखे। इनमें नारी हृदयकी विविध प्रवृत्तियोंका वर्णन है। इनके अतिरिक्त जगत्क सहीचन्द्रका 'मह-कुच छप्पय' (१७वीं शताब्दी) भी राम-काव्यसे सम्बन्धित है। इसमें बेबक छप्पन छप्पन है। यह एक ब्रह्म-काव्य है। ब्रह्म रायमल्लका 'हनुमन्चरित' एक सुन्दर कृति है। इसकी रचना वि सं १९१९में हुई थी। जैन काव्योय बालर एक वाति मानी गयी है। वे मनुष्य थे बल्कर नहीं। उनके पूर्वज नहीं थी। हनुमान्को रामके सहायक और भक्तके काममें अर्पित किया गया है।

जैन-परम्परामें २२वें तीर्थंकर अरिहनेमिके साथ बामुदेव ब्रह्मका चरित बुझा हुआ है। हृष्य नेमीदबरसे जन्ममें लड़े थे। उनके लपेटे भाई थे। वे ही राज्यके स्वामी थे। नेमीदबरने विवाह-कारपर वीरता छे ली थी। शाही नहीं की। तिलाकसुन्दरो राजीमतीमें भी फिर विवाह नहीं किया। नेमिनाथ और राजीमती को लेकर जनेक रचनाएँ मध्ययुगमें हुईं। नीतिकाम्य अधिक रचे गये। विनोदीछास (१७५) की रचनाएँ बिलिप्त हैं। इनकी कृतियोंमें प्रसार गुप्त तो है ही चित्रावन भी है। एक-एक चित्र हृदयको छूता है। भवानीदास (१७९१) के पीछेमें माधुरता है। जन्म ऐसी सुमन्त्र है, जो कभी मिटती नहीं। नेमि राजुसको लेकर अनेक 'कागु' और 'बेलि' काव्य भी बहुत रचे गये। प्रबन्ध काव्य भी रचे गये किन्तु उनकी संख्या जल्प ही है। कवि माऊका 'नेमीदबरदास अभी उपलब्ध हुआ है। इसमें १५५ पद्य हैं। जगम विवाहके लिए सभी राजुस और फिर बिरह-विदग्धा राजुसके सभीच चित्र हैं। जगम बाब्यासर विवेचन हम ग्रन्थके पहले अध्यायमें हुआ है।

१ मद्रासमार्गका लिख्य हुआ हनुमन्चरितदास (१९११) भी एक प्रसिद्ध कृति है। इसकी हस्तलिखित प्रति कलकत्ताके श्री सम्मन्नाथके मन्दिरमें मौजूद है।

२ 'सीतासीताकाव्य गुणवेलि' बाबाबां कच्छीमिह्री रचना है। इसकी हस्तलिखित प्रतिव इसका रचनाकाल वि सं १९७४ दिया हुआ है।

अपभ्रंश स्वयम्भूत 'रिचुर्मेविवरित' की विधेय बगति है। उनके अन्त और बाह्य दोनों पद्य मयाग रूपसे सुन्दर हैं जैसे पुमावारी गुण्य और गुपमा ही हो। स्वयम्भूती काव्यप्रमाणों में मयागविद्या पद्यम माहृग्यायामे वग्या और माया अ। पुष्पवृक्षके महापुराणम भी हृष्य और मेमीस्वरकी बगति निबद्ध है। आनेके बनेक कवि इनमें प्रभावित-ले माहृम पद्ये है। आगप्रसक्त महानिब बगत्या हरिबंघपुराण (११वीं घताली) में भी इन विषयका मद्रुत्पन्न पद्य है। इनमें १२२ सन्धियाँ व १८ मद्रुत्पन्न पद्य हैं। हृष्यवृक्षके विरचित घताली पुष्प वरित में हृष्यवरितका बगति है। हृष्यवृक्षवार्तिके इस पद्यकी विधेय प्रविष्ट हृष्य। किन्तु यह स्वीकार करता होना कि इनके सभी काव्य-वर्णन हृष्यरी पद्यमें विरचितके सामने दिखती पड़ी है। वे एक प्रकार केवाचन और वाचनिक वे। इनकी यह प्रवृत्ति काव्य-वर्णनमें भी पुष्प-विधेय विद्या यह म सरी। अन्त राम और हृष्यवृक्षके वे स्वयं को माहृम वे वहाँ उपलब्ध नहीं होत।

सम्पन्न पद्योम आचार्य विनयेनका 'हरिबंघपुराण' और पुष्पवृक्षका 'उत्तर पुराण' प्रथम कृतिमाहृ विमये हृष्य-वृक्ष काव्यीयान् उपलब्ध होती है। महाकवि बनेजयका सम्पन्न 'विद्यमान महाकाव्य' साहित्यकी एक मद्रुत्पन्न उपलब्धि है। इसे 'रायन पाण्डीय मद्रुत्पन्न' भी कहत हैं। इसके प्रत्येक पद्यके दो अन्त निकलते हैं एक अन्त रायनका पद्यमें और दूसरा कृष्ण वृक्षके। पद्यमाहृ के कर्ता आनन्दवर्धन बनेजयकी मृति-मृति प्रवेष्टा की है

विद्यमान विद्यमाना ११ ही बने जयजय ।

वर्णनकाव्यके पद्य सदा बने जयजय ॥

एक पुष्पकी इति है 'वर्णनमद्रुत्पन्नवृक्षवृक्ष'। यह मद्रुत्पन्न भाषामें निम्ना मद्रुत्पन्न पद्य है। इसके रचयिता श्रीकाव्य बनेक बने विद्या और कवि वे। इनका नाम हृष्यकी सन् ८८ माता आता है। इसमें हृष्यवरित निबद्ध है। मद्रुत्पन्नमें रने बने आगम पद्य और अगोमें भी हृष्य-वृक्ष निबद्धी है। 'उत्तरा ध्यवन' 'वर्णमृष' 'पद्यवृक्ष' और 'प्रत्यगाकरण' में हृष्य और मेमीस्वर सम्पन्नी कर्मा विरचि पड़ी है।

प्रद्युम्नवरिणीमें भी हृष्यका उल्लेख है। प्रद्युम्न हृष्यके पुत्र वे। और कागरीय माने जाते वे। उन्हें केकर हिन्दीमें बनेक काव्योकी रचना हुई। इनमें सवाका 'प्रद्युम्नवरि' (१४११) प्रविष्ट है। यह एक उत्तर इति है, प्रद्युम्न काव्यके सभी गुण मीशु है। इनके अतिरिक्त बनेककेतरकी 'प्रद्युम्नवीर्य' (१५१२९) बनेककेतरकी 'प्रद्युम्नपद्यो' (१५२८) बनेककेतरकी

‘प्रद्युम्नरास’ (१७वीं शताब्दी) तथा बेबेलकीतिका प्रद्युम्नप्रबन्ध भी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं ।

आचार्य बिनसेन और गुप्तभद्रक संस्कृत पुराणानुसंधान महासभा निबन्ध हैं । किन्तु उसका प्रथम एक काव्यके रूपमें निर्माण ११वीं शताब्दीके महासेनाचार्यन ‘प्रद्युम्नचरित’के नामसे किया था । सिंह अथवा सिंहकी ‘पञ्चमुराजकथा’ अपभ्रंशकी एक प्रसिद्ध कृति है । इनका कथानुसार रोचक है और अन्तर्गत कथाओंसे उसका सम्बन्ध निर्वाह विविध है । सब कविकी मान्यता परिमलित होती है । महासेनके ‘प्रद्युम्नचरित’से यह उत्तम है । इन दोनों रचनाओंका हिन्दीके प्रद्युम्नचरितापर प्रभाव है ।

हिन्दी पद्य और गद्यमें किये गये हरिबन्धपुराण भी उपलब्ध होते हैं । उनमें न मौलिकता है और न काव्यमोह्य । वे संस्कृत और अपभ्रंश कृतियोंके अनुवाद भर हैं । ब्रह्मजिनबासका ‘हरिबन्धपुराण’ १६वीं शताब्दी साहित्यिकानुसार ‘हरिबन्धपुराण’ १७वीं शताब्दी कृष्णलक्ष्मण नामका ‘हरिबन्धपुराण’ १८वीं शताब्दी और पं बीसतरासका ‘हरिबन्धपुराण’ १८वीं शताब्दी रचनाएँ हैं । इनमें पं बीसतरासका ‘हरिबन्धपुराण’ हिन्दी गद्यमें होनेके कारण अधिक प्रचलित है ।

मध्यकालीन हिन्दी काव्यका जैन भक्तिपरक पङ्क्ति विविध प्रवृत्तियोंको छेकर गया । इनका निबन्धन इस ग्रन्थके पहले अध्यायमें किया गया है । जैन कविताकी एक ऐसी प्रवृत्ति भी थी जो अधिकतर उन्नीमें पायी जाती है वह है ‘बेलि-काव्य’का निर्माण । ‘बेलि’ ‘बस्ती’को कहते हैं । बस्ती कृष्णलक्ष्मी है । पङ्क्ति यह प्रचलन था कि ब्राह्मणको उद्यान और उसके अन्तर्गत वृक्षोंको वृक्ष या उसके बरगके नामसे पुकारा जाता था । ‘तैत्तिरीय उपनिषद्’के सप्तम प्रपाठकको ‘विलासिका’ कहा गया है । विकासोन्मुख क्रम ‘बस्ती’ नामसे प्रारम्भ रचनाएँ रची जाने लगी । ये रामस्थानी और हिन्दीमें ‘बेलि’ नामसे प्रसिद्ध हुईं । जनी तक एक प्रसिद्ध ‘बेलि’ ‘कृष्ण-लक्ष्मी’ की बेलि के नामसे प्रकाशित हो चुकी है । इनके आधारपर विद्वानोंने यह आशय बताया कि बलि-काव्य शृंगार-परक होता है । किन्तु अधिकतर कविताके पङ्क्तिसे ऐसा विदित होता है कि इनमें शृंगारकरी अधिक भक्ति और वीर रसोंका परिपाक हुआ है । आरम्भके द्वारा गाने की बेलिपोम वीरगाथा पद्यमान ही रहता है । आज भी वे रचनाएँ अन्तर्गत पायी जाती हैं । जैन कवितामें निवेदन है कि वे काव्य-रस कथानकोंको छेकर चली है । उनमें कथा है और भक्ति भी । उनमें काव्य-काव्यका आनन्द है तो भक्तिकी भाव-विमोहता भी । इसी बेलिकी माध्यमसे जैन कविताने अपने

सुरदास की रचना-बृत्त उपस्थित किया है। एतो ही एक कवि 'अपति पदमपि भारि
 धानुकीतिनीत' एतिहासिक और काव्य-संग्रहमें छप चुकी है। प्रसिद्ध हीरविजय
 मूरिनो केकर कवि सफरखानने 'हीरविजयमूरि' रचनावलि का निर्माण राज-
 स्थानीमें किया था। कथानकोटो केकर बज्जोवाली बेसिमामे 'बगदगबासा-बेसि'
 'रसुमन-नोदारम बलि' और 'भेमीमूरको बेसि' कविक प्रसिद्ध है। हिन्दीके कवि
 ठगुर्छा (१५७८) बेसिमोरी रचनामें मिथुन थे। उनकी 'पंचेन्द्रि बलि' समूचे
 बलि-मार्गिस्म उत्तम मानी जाती है। उसका प्रहस्य उपदेशात्मक है, किन्तु ऐसे
 सरस हंसे मिली मयी है कि इसमें सबाह-जम्ब नाटकीय रस उत्पन्न हो उठा है।
 वह रसकी पिचकारी-सी प्रनीत होती है। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'नमीमूरकी
 बलि' और 'मुबरेलि नी रबी' इत्यादि (१५८१) ने भी 'पंचबलि' 'पंचपति
 बलि' और 'अनुरागबलि' की रचना की। वे हिन्दीके एक सामान्यमान् कवि थे।
 कवि डोहड़ (१६वीं शती) राजस्थानी कवि थे। उन्होंने राजस्थानी और
 हिन्दी दोनोंमें लिखा। वे जम्बबाह कवि थे। उन्हें ईश्वरप्रसन्न प्रतिभा मिली थी।
 उनकी कवि नी एक प्रसिद्ध कृति है। और कवियाका बेसिमोमें 'नव-सम्भावन
 का बा ही मलिका स्वर भी प्रबल का बलि प्रनीत थे चुकी थी। विविध
 शास्त्रमें ग्रीष्म ज्ञानके कारण उनकी बाह्य कलेवर भी मज्ज है। उपदेशको भावना
 के साथ ही वे कवितामें इसका जम्ब नहीं छोड़ते।

इस प्रकार हमारा जम्बाम मध्यकालीन और अन्त-कविता और उनके जीवन
 बृत्त और सार्वजनिक सम्बन्ध है। पश्चित राजम-र मुबरे हिन्दीका मन्त्रि-काव्य
 वि स १४ से १७ तक माना है। किन्तु यह वाक्यता कठोर नहीं थी।
 उनके अनुसार एक ही मुबरे विशेष प्रवृत्तिक शास्त्र-शास्त्र जम्ब कविता भी बहती
 ही रहती है। इसके अतिरिक्त यह भी सच है कि वे जम्ब और रचनाकोसे
 विष्णुस परिचय नहीं हो पाते थे। अभी विविध भण्डारीमें हिन्दीकी और
 कृतिबोरी कोत्र करते समय विदित हुआ कि हिन्दीकी और मन्त्रिपरक प्रवृत्तिमा
 वि स १९ से १९ तक बहती रही। ज्ञानार्थ वेववेकक भावनाधार'में
 रचमापाव समत होने है। 'औ विमलासज भासिबक' से उरि पावह पाव।
 इस कवनको उठ करता है। यह भावनाधार का बोहा है। इसमें प्रयुक्त शब्द
 रप विमलि और मनुष्य प्राय सभी रचमापाव है। डॉ कपटीप्रसार
 मोमगाव निम्न है कि यह 'भावनाधार'के नी पक्षेसे ही प्रकल्पित हो चुकी थी।
 समसाम्यो मारने संरहती। ग्राह्यैर्वालीके विष्णुमनुकपठ। रचमापाधुपार्थक्य
 बोधवन् म गुहः रसुना।" पक्षे डार रचमापाव पक्षे ही उन्नेय किया

या। आचार्य हेमचन्द्रने अपभ्रंश और देशभाषामें स्पष्ट अन्तर स्वीकार किया है। देशभाषाको ही प्राचीन हिन्दी कहते हैं। यही भाषा बल्लभर विकसित हिन्दीक रूपमें परिणत हुई। अपभ्रंश और प्राचीन हिन्दीको साध-साध रचनाएँ होती रही। दोनोंमें भेद कर पाना मुश्किल है। स्वयम्भूषा 'पठमचरित और पुण्यवन्तका 'महापुराण' हिन्दीकी कृतियाँ नहीं हैं। इनमें बिछरे हुए कुछ स्वक देशभाषाके हैं, किन्तु वे अल्प ही हैं। पुण्यवन्त ४ वय उपरान्त हुए श्रीचन्द्र का 'कम्पाकोप' देशभाषाका काव्य-ग्रन्थ है। जिनरत्नसूरि (वि० सं १२७४) का उपदेष्टारसायनरास' ब्रह्म अपभ्रंशका निदर्शन है, जब कि इनके आस-पास वन जिनपद्यसूरिके 'वृत्तिमङ्गल'में देशभाषाके वर्णन होते हैं। अतः सिद्ध है कि वि० सं की वक्ती घातकशेके प्रारम्भसे ही हिन्दी जनपद लगी थी। उनकी अनेक भक्तिपरक रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। ये उस युगमें लिखी गयी जिसे पं भुक्तने बीरबाबाकाल नाम दिया है (वि० सं १५ - १३७५)। इस युगमें बौद्ध सिद्धान्त भी पर्याप्त लिखा। इसी आचारपर महापण्डित रघुनाथ साहस्यनाथन इन कालको 'सिद्धकाल' कहा और डॉ हजारीप्रसाद द्विवेदी उन्हें 'आदिकाल' कहते हैं, क्योंकि इस नाममें 'बीर' 'भक्ति' और 'सिद्ध' सभी कुछ लप जाता है। किन्तु एक प्रश्न फिर भी बना रहा कि इस कालकी मुख्य प्रवृत्ति क्या थी ? यह कुछ भी हो 'इतना सिद्ध है कि हिन्दीमें जैनमत्तिका रचनाओंका प्रारम्भ हो गया था किन्तु वह प्रारम्भ ही। उसका विकास १४वीं शताब्दीमें देखा जाने लगा। १५वीं शती तो जैनमत्तिका पूरा जीवनका काल था। मंत्री वृद्धि यह १९वीं शती तक निरन्तर अबाधित बचिसे चलता रहा। प्रस्तुत ग्रन्थमें इन्हीं ४ वदोंके जैन भक्त कवियों और उनके काव्यका विवरण है।

हिन्दीके जैन भक्ति-काव्यम बट्टारका सूरिया और सन्तोका विरोप मोगरान है। पधिरा और साधारण पृष्ठमोने भी लिखा। उनका काव्य भक्ति-रसका ही प्रतीक है। कुछने अपना परिचय दिया और कुछने नहीं। साध की ईडा कुछ मित्र और कुछ नहीं। जो कुछ प्राप्त हुआ उस आचारपर जितना प्रामाणिक अंश दे सका दिया। यदि उसम कुछ कमी रह गयो है या वह गितान्त प्रामाणिक नहीं बन सका है, तो जाने अनुसन्धिसु उस पूरा करेंगे इसी आस्थाउनके साथ यह ग्रन्थ पाठकोंके समक्ष उपस्थित कर रहा हूँ। इतना अवश्य कहना होगा कि जैन-नाम्यमें एक ही नामके अनेक कवि होते रहे, आज उनपर लिखते समय एक नामम समझ जाना होता है। आनभूपन नामके बाद बट्टारक हुए। उनम 'बाधिरवरकायु'के रचयिताकी ओर एक मुश्किल काम था। इन्हीं आदि बाद कपचन्द्र और बाद

मयझीरासार सही-गही केया-बीना मिना पाना बासाज नही है । अमरनरना की बी बनी मही बी । उमम बैकमरगी आनमधम पड़ुषामम आ गमे है । ऐसा किस्मत-ना हीठा है । अयायय अयमावरपर किमत समय पहुँचे पैराबाजमें तोल बयमावरारा छसेछ किया किन्तु लिखा बेवक अयाय्यावरपर ही अब सिट हाका बचाकर निकल गया या प्राग बना । आनमा पडा बनाकि उठ कमर हुनरे-दीसरे अयमावरक साय मेरा प्रामाणिक मम्मन स्वार्थि नही हो उवा बा । हुनरे अयसागर बाछामधके नर्मितमच्छम हुए वे । उनही बुद्ध परम्परा हम पदार्थ बी — खोपरीनि बिजयसत बस कीति उदयमेन विमुक्त कीनि और रत्नमुपय । रत्नमुपय ही अयसागरक बुद्ध वे । उनका समय बि सं १६७४ माना जाता है । उन्होने मन्त्रम 'पार्ष्वरक्षरकावर और हिन्दीम 'अष्टमित्रवरपुत्रा' 'विमलपुत्रा' 'रत्नमुपय शृणि' तथा जीवनममाठा'की रचना की । इसी 'विमलपुत्रा'से मित्र है कि काकाय सोमकातिने गुजउत्तम सुलाल पीरोरकाके समय आवासममनका बय्यरार दिखाना था । दीसरे अयमावरकी गृह्य कयसागर करते हैं । वे अद्वयबी अनाद्रीक प्रथम पादमें हुए हैं । उनका सम्मान मूकमे सरस्वतीवन्द्य बदाय्याय्यकी मूरमासासे था । उनके बुद्ध मेदधनका समय बि सं १७२२-१७३२ मित्र है । उद्य अयमावर हिन्दीने मामधकाव बनि वे । उद्यान 'सीताहरक' 'अनिच्छहरम और 'अवर अरि'की रचना की । तीना ही प्रथमकाव्य हैं । उनका बचानक आकपक है सम्माननिरहि पूव हुआ है । इसी प्रकार एक ही नामके दो-तीन ही कई कवि हुए । यद्यस्त्यान उनका निस्केपक है ।

इस कव्यमें एक रचनात्रीको छोड़केका प्रयास किया गया है, किन्तु सट्टि विचारके अर्थसे कि किसी छंद परिकामपर नहीं पहुँच पाया है । ऐसा ही एक काव्य अम्मात्म सवेका है । यह कि बैग गन्धिर ठाकियान अरपुरके गुटका म १५ में संकल्पित है । इसमें ११ पद्य हैं । डॉ कस्तूरचन्द नासमीबास इस इतिहो पाण्ड न्यचन्दकी रचना मानते हैं । उनका आचार है अन्तमें मिया हुआ 'हनि सी अम्मात्म एवचन्दन कविता समाप्त । किन्तु न्यचन्द नामके चार कीर हुए, विमल बोका मम्मन 'अम्मात्म'से बा हो । वे शानो समनामीन थे । एक से पाण्ड अयचन्द । उनही मित्र-दीसा बनाय्याम हुई की । उच्च कोटिके मित्र वे । कवि बनारसीशामके अम्मात्म-मयरी भ्रमका निवारण उन्हीम किया था । वे हिन्दीने अतिप्रसन्न कवि थे । किन्तु बनरी रचनात्री और 'अम्मात्म सवेका की बीबीमें मित्रम पावर है । इनके अतिरिक्त पाण्डे

रूपचन्द्रन कहीं भी अपना नाम केवल 'चन्द्र' के रूपमें नहीं दिया है। प्रत्येक स्थानपर 'रूपचन्द्र' ही लिखा है। अष्टाशम सबैया में कविका नाम 'चन्द्र' दिया है। यद्यपि पाठ्य रूपचन्द्रकी कृति तो नहीं हो सकती। अन्तम मिले 'रूपचन्द्र' मिलित कवित्त मयाप्त विगी विपिकर्ताका नाम भी हो सकता है। उसने चन्द्र के आधारपर रूपचन्द्रका अनुमान लगा लिया होगा। दूसरे से पं रूपचन्द्र। वे बनारसोदासके त्रिभिन्न मित्र थे। उनसे साथ अष्टाशम कवचमि लक्ष्मीन रखते थे। उनकी रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं। इनसे भी कहीं 'चन्द्र' का प्रयोग नहीं दिया है। अष्टाशम सबैया के एक पद्यमें आभासित हुआ है कि उसने रचयिता सातचन्द्र थे। उस पद्य की अन्तिम पंक्ति है 'आश्रम्यो धनीत महाकामचन्द्र केसरी'। सातचन्द्रके कुछ पद्य विगम्बर जैन मन्दिर बङ्गौतक पदमग्रहमें संकल्पित हैं। वे विष्णुकी अष्टाशमी साठार्थाके कवि थे। किन्तु साथ ही तेरहवें और चौदहवें सबैयाकी अन्तिम पंक्तिधामे 'तेज कहे' लिखा हुआ है। इनसे सिद्ध है कि किसी तेज नामक कविन इसका निर्माण किया था। मध्यकासीन हिन्दी काव्यमें 'तेज' नामके कोई कवि नहीं हुए। हो सकता है कि यह कविका उपनाम हो। किन्तु यह शेष अनुमान ही है। यदि 'तेज' उपनाम था तो वो के अतिरिक्त अन्य पद्यमें उसका प्रयोग क्या नहीं हुआ। त्रिभुवनचन्द्र नामके कवि हुए हैं जिन्होंने प्रायः अपने नामके अन्तमें 'चन्द्र' का प्रयोग दिया है। किन्तु इसी आधारपर इसे त्रिभुवनचन्द्रकी कृति मान लेना युक्ति-मग्न नहीं है। यह भी स्पष्ट है कि त्रिभुवनचन्द्र अष्टाशमवासी नहीं थे। इस भाँति अष्टाशम सबैया के रचयिताको लेकर एक समस्या है। मेरा मत है कि जबतक इस कृति की सीमा बार प्रतियाँ विभिन्न भण्डारधामे उपलब्ध नहीं हो जाती विचारक किसी सही निष्कर्षपर नहीं पहुँच सकते।

मध्यकासीन जैनमठ कवि 'निघुनिए संतो' की मूर्ति बारे नहीं थे। उन्होंने विद्वत्सु शिक्षा-वीक्षा ग्रहण की था। इसी कारण प्रारम्भम अन्त तक उनमें एक ऐसी छायाकात्माके दृश्य होत हैं जिसके परिप्रत्यये उनकी मस्ती भी सुशोभन प्रतीत हुनी है। उनमें बहु अक्षय्यता और बहुराह्य नहीं है, जो बचौर में थी। पोरी पङ्कनवासा पवित्र मल ही न हो पाता था किन्तु उसमें प्राम्यनोव का निगल परिवर्तन ही जाता है यह मल है।

जैन कवियोंकी विद्याके विभिन्न-विभिन्न साधन थे। रचनाम्बर आचार्य होम्हार बाध्यन्ती कवचनमें ही बीरता देकर अपने साधुमूर्धन्य धामिन् बर सेते थे। बङ्गौर ही उनकी प्रारम्भमे केनर उच्चकोटि तककी विद्या होनी थी।

येदमन्दन रुपाप्याम मोघमुखरगूरि तथा दद्याविन्दम आदि शिरीरे नामध्वजान्
 कविपोकरो आठ वर्षही उममें ही वीसित कर किया गया था। वे एक ओर प्रकाश
 पण्डित बने और दूसरी ओर कवि। इन मधोमें उनका कानन-मानन प्रिया-दीक्षा
 हुई उनका वातावरण ऐसा ही था। वहाँ शार्ङ्गविभवा और अनुभूति गुणवता और
 उदारता प्रवरता और वादमत्ता साथ साथ पछा करती थी। मटारक-सम्प्रदाय भी
 प्रियाई जीवन्त भेम्ब थे। उनके प्रिय बचन निरागत और नास्तिकके अनिरिकन
 मन्त्र बँदर और करोतिथिमें भी पारंगत बिड़लू हुलै थे। उनमें अनेक न्यातिप्रान्त
 बने। उनका कविता-श्रम भी प्रसिद्ध है। मटारक मन्त्रकीतिर्न मन्त्रुत-ग्राहककी
 अमान बिड़ला प्रान्त को थी। उन्होंने केवल सस्कृतमें सबहु छन्द लिखे। वे हिन्दी
 के भी नामध्वजान् कवि थे। इनकी अनेक मुक्तक कृतिपोंका सम्मेलन इन ग्रन्थमें
 हुआ है। मटारक छानवीनि आमनुरूप और गुणवन्त भी ऐसे ही बिड़लू कवि
 थे। उन्हें वाचस्पत्यना आश्रममें करणा जाना था। उनकी बिड़लाकी भँवा
 मावकी लहराके मध्यसे लँच बहती रही। वहाँ शिष्टमन्त्र अनेक प्रकाश नामध्व-
 का निर्माण किया। म मटारक लखनवीनिके छोटे भाई थे। उन्होंने अपनी रच
 नाओंमें लखनवीनिको पुत्र संज्ञासे भी अभिहित किया है। मुमुरबन्धकी उत्तम
 कविपोंमें पचना थी। उन्होंने महाकाव्य लिखे और मुक्तक छन्द भी। वे मटारक
 छानवीनिके प्रिय थे। मटारक और उनके शिष्योंकी मध्यकालीन हिन्दी काव्यकी
 मस्तकृति है। उसे विस्मृत नहीं किया या लखन। मटारक वैश्व-मन्त्र
 होते थे।। लग वे अपने शिष्योंके विचारोंके लिए बड़े-बड़े प्रमाणोंकी
 स्थापना करते थे। उनके बड़ी हस्तलिखित ग्रन्थोंकी प्रतिमिपिर्वा होने ही
 रहती थी। केवल लखनमें ही नहीं सभी जगहों और निपत्रोंके ग्रन्थ
 उनके मन्त्रार्थ मन्त्रित होते थे। वीरपुत्र पित्राके लिए बुद्ध पुत्रबान्धनीका
 होगा अनिवार्य है। इन छन्दों आनेके प्रियाविचार भी स्वीकार करते हैं।
 वे कवि को म छात्र थे और म मटारक 'सास्त्रप्रवचन' या सैली के छात्र
 अनुभव बने थे। सास्त्र-प्रवचनकी परम्परा आज भी है। प्रत्येक धर्मिकके साथ
 एक सरस्वतीप्रकन गलम होता है और मध्यम का धर्ममें सास्त्र-प्रवचन हुआ
 करता है। अनेक पोता जिन्हें बलरक्षण भी नहीं है, पुत्र-पुत्रकर ही बँद बर्तनके
 मुरम बाठा नन बाते है। प्रवचनमें किसी-न-किसी पुराणका पठन भी आवश्यक
 होता है। इन पुराणों कथानकों अनेक कवि-हृदय आन्धोचित हुए और वे
 प्रकाश तथा मुक्तक नामध्वके निषीधमें सम्यक् हो लगे। सभाक (वि सं १४११)
 ऐसे ही एक कवि थे। उन्होंने 'प्रद्युम्नचरित' में लिखा है कि एक एक मन्त्रमें

शास्त्र-प्रवचनके समय मैने बहु चरित सुना और प्रद्युम्नचरित की रचना कर सका ।

‘सैली’ गोष्ठिको कहते थे । आगरेमें ऐसी ही एक गोष्ठी थी जिसमें निरन्तर साम्प्रदायिक चर्चा हुआ करती थी । बनारसीबास उसके सदस्य थे । वहाँ बैठनके कारण ही वे पण्डित बने और कवि भी । बनारसीबास तुमसीबासके समकालीन थे । दोनोंके विचलनकी बात इत प्रथममें कही गयी है । आगे चलकर यह सीमा ‘बापारसिया सम्प्रदाय’ के नामसे प्रसिद्ध हुई । उससे प्रेरणा पाकर ही कुर्बेरासा जमबीबन हेमराज मुबारराम आदि उत्तम कवि बन सके । इसी समय डिस्लीमें पण्डित मुहम्मदकी सैली मान्य थी । हिन्दीके प्रमुख कवि शायरराम उसीसे प्रभावित होकर इतने महत्त्वपूर्ण भक्ति-काव्यकी रचना कर सके । उनकी पूजार्थ और चारुसौ आश्रम भी जैन मन्दिरोंमें पढ़ी जाती हैं । हिन्दीके जैन कवियोंको उर्दू शायरीका भी अच्छा ज्ञान था । कवि बनारसीबासने बीनपुरके गद्यवाक बैठे किसिम को संस्कृत उर्दू-शायरीके माध्यमसे फटावी थी । मगधसीबास मैयाकी अनेक रचनाओंमें उर्दू-शायरीके प्रभाव हैं । कवि विनोदीशानकी ‘मैमाजीकी रचता भी उर्दूकी ही कृति है । उस समय स्वातन्त्र्यपर यवतब विद्ये हुए थे । जैन कवियोंकी प्रारम्भिक मिला उन्हीमें हुई । हिन्दी भाषाका जो रूप गान्धीजी चाहते थे इन जैन कवियोंकी रचनाओंमें उल्लेख होता है । सानु-सम्प्रदायोंमें पके कवियोंकी भाषा संस्कृत-निष्ठ थी ।

जैन कवि दरबारी नहीं थे किन्तु उन्होंने भुवनेश्वरसाहोकी मूरि-भूरि प्रशंसा की है, यहाँ तक कि औरंगजेबका भी पौरवके साथ उल्लेख किया है । रामचन्द्र और बगटराम हिन्दीके प्रसिद्ध कवि थे । उसी मुक्तक कृतियों उत्तम काव्यकी निदर्शन हैं । उन्होंने औरंगजेबकी व्यापप्रियता ईमानदारी चरित्र निष्ठता आदिकी बात लिखी है । सामर्थ्य इतिहासकारोंकी औरंगजेबके सही जाल-जम में इन उल्लेखोंसे कुछ सहामता मिल सके । कवि मुबारराम साहूबहादुर दरबारमें नहीं रहते थे किन्तु अपने सन्तानुषोकी प्रसिद्धिके कारण उनके हुपानाम थे । कवि रंगविजयकी तो साहूबहादुर निमग्न देख कर मुकाश था । उन्होंने साहूबहादुरकी सशरताजी प्रशंसा की है । आगरेके हीरानन्द मुकाम सलीमके सहरे मित्र थे । प्रायः सलीम उनके घर आता था । बाघसाहू हीनेके बाद भी उसने हीरानन्दको सम्मानकी बुद्धि देखा । हीरानन्द एक जम्हालवासी कवि थे । कवि नन्दकावने भी बहीरीरके उच्च व्यक्तिस्वभावावधन किया है । ब्रह्मगुप्त एक मीत्र हुए कवि थे । वे आगरेके समीप ही रहते थे । उनकी बहीरीरसे सम्बन्ध नहीं था फिर भी उन्होंने प्रशंसा की है ।

बनारसीवासने अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ का सामनबाक देता था। उनका 'नाटक समग्रसार' शाहजहाँ के राज्यमें निर्दिष्ट समाप्त हुआ था। उस समय बाबिन उत्पीड़न गरी था। मुसलमान बाधवाह और गबाबों की सहायता से अकबर के साथ मित्रता के और केन मूर्तिमा तथा चम्बिरोनी प्रतिष्ठा हो गयी। सन बघाराय और हीरानन्द की देख-रेखमें संकरी केनमन्त्रि बन गया। चिन्तामणि स्वयं है। अकबर की बाबिन उदारता को अग्रप्रसिद्ध की। उन्होंने केन मानुषों का सम्मान ही नहीं किया अपितु उनके उपदेशानर अमल भी किया। केन पत्नी और अहमी-बतुखी को पशु-वच सहा-सहाक सिध्द बन्ध कर दिया गया। कई विदेशी विद्यालयों अकबर को केन कहा है। उनकी मृत्यु का समाचार जब कवि बनारसीवासन हुआ तो उसका का गया अकबर को संवाक व एक और नीच गिर पड़े। उन्होंने 'अकबरनाम' में लिखा है,

“अकस्मात् बनारसी सुनि अकबर की काह।
 सीढ़ी पर कैसी हुई मयी मरम चित्त काह ॥
 आह ववाका गिरि परवी सच्यो व भावा हाहि ॥
 कुनि अक कोहु जमी कहरा 'देव सुर मन्त्रि' ॥
 कमी चोट पाकान की अर्था युहनाम काह ॥
 'दाह' 'दाह' सब करि उद, मात उल्ल बहस ॥”

हिन्दी के अन्त केन महाकवि ब्रह्मचर्यमन्त्र पाण्डे विमलास परिमल और वधि मन्त्रान्त्र बाबिन की अकबर का वीरवर्णन स्मरण दिया है। व वे अकबर के बरबारम रहते थे और न उनका कोई निजी स्वाध ही सिध्द होला था। व अपने कवि थे। उनके कविहृदयने सम्राट् अकबर के विद्यान्त्र हृदय को पहचाना था। दिल्ली की यह बापसी पक्षपात ही उनके शायरीमें अकबर-अकबर उठी है।

वि सं १८००-१९ में श्री अन्तक मन्त्रिपरक रचनामन्त्र निर्माण हुआ। उनके रचयिता अन्त्रिवादी कवि थे। हिन्दू ऐतिहासक उनपर प्रभाव था। उनकी भाषाम की अकबर की धरमार थी। अन्त्रा हरियसका अन्त्र वि सं १८९ में सादरी के सवीध बुधुबपुर (बधु) में हुआ था। उनकी बाबि अन्त्रबाध और वीध बाबनी था। अन्त्रा निपतिमों में बीता। फिर श्री अन्त्रा होले के कारण अन्त्रा और आहृते अन्त्रे बाता बन सके। उनकी भाषानर संस्कृत आहृतका प्रभाव है। उन्होंने 'बानुगुणमाका' 'देवागिदेव रचना और 'देवरचना' का निर्माण किया था। दोनों बहुत पहले प्रकाशित हुई थीं। 'बानुगुणमाका' का एक पद्य देखिए, जो अकबर के वीरक है

जिन केन्द्र के दृष्ट के महि के अस्ति के चित्त के महि नहि के ।
 मय के दृष्ट के वन के सरक पिक केम तुके दिनक कवके ।
 धन के दृष्ट के स्वर के सुनक किम केकि तुके नृतके छटके ।
 रंग के रम के किम के तुति के कवि केम तुके दृष्ट के कवके ॥

इसी युगमें एक नवि पारसदास हुए । जयपुरके रहनेवाले थे । वहहि बड़े मन्दिरकी सेरापकी सीसीत उम्हें प्रेरणा मिली और वे एक अच्छे नवि बन सके । उनका पारस बिनास' एक प्रसिद्ध कृति है । उसमें 'अष्टोत्तरसूक्त' 'बृहस्पतीसी' 'सरस्वती अष्टक' 'उपदेश पञ्चीसी' 'वारुण्य' 'अठनीय आदि भक्तिपरक कृतिपाँ है । कविकी हृदयमत्त तल्लीनता वनसे स्पष्ट हो जाती है । पाठक भाव विनीत हुए बिना नहीं रहता । पारस बिक्रम'की हस्तलिखित प्रति दि जैन मन्दिर बड़ीठम मौजूद है । नवि देवीदास भी हिन्दीके भक्त कवि थे । उनका जन्म औरछा स्टेटके दुगौड़ा ग्राममें हुआ था । इनकी भाति गाभासारे और बीस खरोमा था । इनकी प्रसिद्ध कृति है 'परमानन्द विद्यास' । उसमें भक्ति और अध्यात्मका सम्मिश्रण है । यह नाम्म प परमानन्द छात्रीको उपक्रम्य हुआ था । रचना सरस है । इसी सताब्दीमें कवि टेकचन्द हुए । उनका जन्म मेराड़के साहपुराम हुआ था । उनके पिता रामकृष्ण जयपुर छोड़कर साहपुराम रहने लगे थे । टेकचन्द कुछ समय तक इन्दौरमें रहे और वहाँकी आत्मिक मन्दकीमें उन्हें श्रवणनिर्माणकी प्रेरणा मिली । उन्होंने 'पुष्पाक्षरकषाकोष' 'बुद्धिप्रकाश' 'योगिकचरित्र' 'पंचपरमेशि' आदि पुस्तिकाएँ और पद-संग्रहोपा निर्माण किया । वे सब कवि भक्त होते हुए भी तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्तिसे प्रभावित थे । मछे ही इन्होंने नाविकाजीवा नखसे शिक्षा तक वचन न दिया हो बिन्दु उनकी भाषा भीचेसे ऊपर तक अच्छाकारसे सुशीलित हो । वे भाषाकी स्वाभाविकतासे दृष्टे जा रहे थे ।

इन ग्रन्थके तीसरे अध्यायमें जैन भक्त कवियोंके भावपद्यपर सिद्धा गया है । पाँच भाषाओं का आचार बनाया है । वे इस प्रकार हैं सक्य बारसम्प प्रेम विनय और धान्त । इनमें उत्तरीतर क्रमसे विद्युद्धता आती गयी है । सर्वोत्कृष्ट है धान्त भाव । उसे अन्तम रखा है । इन सबके परिप्रदयमें जितने अन्य गूरय भाव हो सजने हैं उनका विस्तारणका प्रयास किया है ।

चौथा अध्याय कला-पद्धति सम्बन्धित है । इसे माया छन्द अलंकार और प्रतीतिवचन-जैसे आठ उपलब्धीयोंमें बाँट दिया है । जैन कवियोंकी भाषा सरल और प्रवाहपूर्ण थी । उन्होंने अनेक नये छन्द नवी राग-रागिनियोंमें प्रयुक्त किए ।

इस विषयमें उनकी मौलिकता अनुकरणीय थी। अर्जुनहाराके प्रयोगमें ये मर्यादाधीन बने रहे। कवि-काव्यका कोई जड़ अर्जुनहाराके कारण अपनी स्वाभाविकता न खो सका। अनेक जैन कवि प्रकृतिके प्राणमें पते और बहूँ उसका साधन-क्षेत्र बना। अठ' व प्रकृति-चित्रण भी स्वाभाविक होकर कर सके।

पौषर्षी अर्थात् तुलनात्मक है। उनमें त्रिगुणिए सत्ता और ईश्वर कविद्वारा जैन कविपंक्ति तुलना की गयी है। मीन निरन्तर निपटा रहनेका प्रयत्न किया है।

इस 'प्रवचन' का निरूपण मास्य ॥ छंदविशारदीकास पुस्तक पृष्ठ ८५८ एम ए की किट हो किट में किया था। ये उनका हृदयस आभासी हैं। यथार्थपुस्तक पृष्ठ ८५८ एम एम और डॉ. बामुदेवधरन अध्यात्म इन छंदों के वरीष्ठक व। उन्होंने एक अठमे हमे पी-एच हो के बोध्य स्वीकार किया। मेरे किट उनका आधीर्षा ही था। छापर उनके प्रति भय नहीं आता प्रवचन होया कि मैं संच-माधपर निरन्तर बहता रहूँ।

मास्त्री-आनपीठक अविचारियंका भी आभासी हैं कि उन्होंने इस काव्यको सृष्ट प्रकाशित कर दिया।

दि. जैन काव्य }
बही (मेरठ) }
२२ जनवरी १९९९ }

-(डॉ०) प्रेमसागर जैन

विभाग : एक

१ जैन भक्ति प्रवृत्तियाँ

१ ११

‘निष्कल’ और ‘सकल’—१ दिव्य अनुराग—२ रहस्यवाद—४ धतपुरु—६
छाको प्रेरणा—७ पंचकस्यायक स्तुतियाँ—९, वास्यभाव—१ बापप्य—
की महिमा—११ कीर्तन—१४ स्मरण—१६ बसन्ती महिमा—१७
भक्तियुक्त जनोंकी सार्वभूता—२ भक्तिके लिए मनकी बेठावनी—२२
बावनी और धतक बाविये जैन भक्ति—२४ काकोमें भक्ति—२६ जैन
भक्तिके विद्यात सत्तम प्रबन्ध काव्य—२८, जैन भक्तिकी साम्प्र
परकता—२९।

२ जैन भक्त कवि जीवन और साहित्य

३२ ३६४

१ राजसेखरसूरि—३२, २ सबाह—३४ ३ विनयप्रभ उपाध्याय—३७
४ मेस्मन्तन उपाध्याय—४२ ५ विष्णु—४७ ६ सोमसुन्दर सूरि—५
७ उपाध्याय जयसामर—५२ ८ हीरानन्द सूरि—५४ ९ मटारक
सकलकीर्ति—५६ १० श्री पद्यतिलक—५८ ११ ब्रह्म जिनदास—५९,
१२ मुनि हरिभक्त—६४ १३ ज्ञानसमय—६५ १४ संवेनसुन्दर
उपाध्याय—६८ १५ ईश्वरसूरि—६९, १६ चतुष्पद—७१ १७ मटारक
ज्ञानसुषम—७३ १८ मटारक सुमचन्द्र—७७ १९ विनयचन्द्र मुनि—८
२ कवि ठाकुरजी—८३ २१ विनयसमूह—८८ २२ कवि हरिचन्द्र—
९ २३ देवकमल—९२ २४ मुनि जयकांत—९३ २५ मटारक
जयकीर्ति—९४ २६ श्री धामिरंगयति—९५ २७ श्री सुमसागर—
९६ २८ बुधराज—९७ २९ श्रीहृदय—१ १ ३ मटारक रत्नकीर्ति—
१०७ ३१ ब्रह्म रामलाल—११ ३२ बुधकांत—११५ ३३
साधुकीर्ति—१२१ ३४ हीरककण्ठ—१२२ ३५ पाण्डे जिनदास—१२५,
३६ विभुवनपद—१२८ ३७ सुमुखलाल—१३० ३८ कवि परिभक्त—
१३५, ३९ वादिलाल—१३७ ४ गणेशमहामय—१४ ४१ मेघराज—
१४२ ४२ सहजकीर्ति—१४४ ४३ ब्रह्मगुप्त—१४६ ४४ उदयराम
भट्टी—१५ ४५ हीरानन्द मुनीश—१५४, ४६ हंसविजय—१५६

४७ नन्दकाण्ड-१५८ ४८. कवि सुन्दरदास-१६१ ४९ वं मयवती
 दास-१६४ ५ पाण्डे कृष्णदास-१६८ ५१ हर्षकीर्ति-१७४ ५२
 कल्याणकीर्ति-१७६ ५३ कवि बनारसीदास-१७८ ५४ मगराज-१९३
 ५५. भुवनेश्वरदास-१९७ ५६ कविविजयजी काव्याभ्यास-१९९, ५७
 महात्मा ज्ञानप्रकाश-२ ४ ५८ जयजीवन-२११ ५९ पाण्डे श्रीरामदास-
 २१४ ६ वं मनोहरदास-२१९, ६१ लक्ष्मणदास लक्ष्मणदास-२१९
 ६२ वं हीरानन्द-२२८, ६३ रावणदास-२३ ६४ विनयदास-२३३
 ६५. लक्ष्मणकीर्ति-२३९ ६६ रामदास-२४२ ६७ गोवर्धन गोवर्धन-
 २४७ ६८ लक्ष्मणदास-२५१ ६९ विष्णुमूलदास-२५८ ७ विनयदास-
 सुनि-२६४ ७१ वीर मयवतीदास-२६८, ७२ विद्येमणिरास-२७६
 ७३ बाणदास-२७८, ७४ विद्यादास-२८७ ७५ बुद्धाजीदास-
 २९ ७६ विनय विनय-२९३ ७७ वेदाङ्गदास-२९५, ७८. सुरेन्द्रकीर्ति
 सुनी-२९८ ७९ केतव-३ ८ नाट-३ ९ ८१ कल्याणदास-
 ३ ८२ विनोदीकाण्ड-३११ ८३ विद्यादास-३२२, ८४ विष्णु
 विष्णु-३२७ ८५. बुद्धाङ्गदास काव्या-३३३ ८६ सुन्दरदास-३३५,
 ८७ विष्णुदास-३४९ ८८ वं श्रीरामदास-३५२ ८९. मयवती
 दास-३५६ ९ जयवर्धन वाङ्मयी-३५७ ।

विभाग : दो

१ जैन भक्ति-काव्यका मातृ-पुत्र ३६७-४१३
 सत्यनाथ-३६७ वासुदेवदास-३७१ प्रेमदास-३८१ आध्यात्मिक
 विद्या-३८५, श्रीराम नैमीश्वर श्रीरामपुत्रका प्रेम-३८७ बाणदास-
 ३८९, आध्यात्मिक होबिदा-३९१ विनयदास-३९७ वीरदा-४ १
 अनुदा-४ २ वासुदेवदास-४ ९ ।

४ जैन भक्ति-काव्यका कला-पुत्र ४२०-४३७
 नाथ-४२ वि वं १९ ०-१८ के जैन शिष्टी कविमयी नाथ-
 ४२९, कल्पविद्या-४३५, लक्ष्मणदास-४३५ प्रवृत्ति-विनय-४५१ ।

५ तुलनात्मक विवेचन ४३५-४६७
 मिर्गुनोपासना श्रीर जैन-भक्ति-४५८ जैन नारायण श्रीर अनु
 भक्ति-४८ ।

परिशिष्ट :

१ हिन्दूके धार्मिकालमें जैन भक्तिपरक कृतियाँ ४६२ ५०३

विभाग : एक

१

जैन भक्ति प्रवृत्तियाँ

'निष्कल' और 'सकल'

आचार्य बोधीभुन परमारप्रकाश में भगवान् सिद्ध जो 'निष्कल' कहा है। ध्यानात्मि ब्रह्मदेवने विज्ञा है। पञ्चविधगरीररहितः निष्कलः। 'सिद्ध मरीररहित होकर 'सिद्धि' में विद्यमान है। ज्ञानही बुद्धिसे सिद्ध और गुण आत्मा में बन्दर नहीं है किन्तु 'सिद्ध' मोक्षमें और गुण आत्मा देखमें रहती है। आचार्य पुष्पकृष्णने दोनोंही ही पूज्य कहा है। मरीररहित होनेसे वे निष्कार होते हैं। गुण आत्मा देखमें रहती अवस्थ है, किन्तु स्वयं देहधारी नहीं है।

बहुल 'सकल' कहा बहकाते हैं। अर्थ यह है किहोंने बार चानिमा बसोना नाथ करके परमात्मपद पा लिया है, किन्तु अवाप्तिपा बसोके दम होने तक उन्हें इस संसारमें रहना है। संसारमें रहनेका अर्थ है मरीरका बना रहना। बहुलका परम औदारिक मरीर होना है। वे सचपीपी बहकाते हैं। 'निष्कल' और 'सकल' में सचपीपी और सचपीपी के अतिरिक्त और कोई भेद नहीं है। दोनोंही ही आत्मा परमात्मनरवही बुद्धिसे समान है। ब्रह्मस्वपी बुद्धिसे निर्गुण और सगुण में भी समानता है, किन्तु निष्कल और सकल श्रद्धा गुण-गुणोंके निष्कल है 'निर्गुण' और 'सगुण' नहीं। निष्कल और सकल दोनों ही स्वप्रमाणसे कर्मोंका अन्त कर निष्कल और सकल बन पाते हैं। प्रत्येक 'निष्कल' पहले सकल बनता है। बिना मरीर धारण किये और बिना वैयक्तज्ञान उपपन्न निस कोई भी जीव 'निष्कल' नहीं बन सकता। वैयक्तज्ञान निष्कल और सकलको एक-दूसरेके लक्ष्यपदम पहुँचा दिया है।

निर्गुण और 'सगुण' में बहुलतर होनेके कारण ही हिन्दीके भक्ति-काव्यमें दो पृथक् प्रवृत्तियाँ देखी जाती हैं। श्री श्रीगणेशदेवता बह्मनाथने उन्हें निर्गुण

१. जैन गुरु नाम सत्यकाश महादेवजी के का मतलब १९०२ पृ. ३२।

'नाम औदारिक सती' का अर्थ है अत्यन्त गुणवान्। और करम रत्न रूप अर्थसे अत्यन्त निष्कल और सकल बनने लगी बनना।

भक्तिचारा' और समुक्त भक्तिचारा' के रूपमें विभाजित कर दिया है। कबीर
 चारि पद्योंके और गुरु चारि दूधरी पाराके कवि नही जाती है। हिन्दीका केन
 भक्ति-काव्य 'मिथल' और 'सचक' के रूपमें नहीं बाँटा जा सकता। इसमें
 दोनोंका समन्वय हुआ है। हिन्दीके केन भजन कविमाने यदि एक ओर सिद्ध
 कव्या मिथलके बीच पाये तो दूसरी ओर अर्हत्त कव्या सचकके चरनोंमें भी
 मन्त्रा-मुक्त नपाये। उद्गारने किसी एकरा समझन करके किए दूसरेका समझन
 नहीं किया। मन्दारन गुणधनने 'सत्यसारबुद्ध'में 'देह विभिन्नो व्यासस्य र
 भूति रहित समुत्त'। प्याज कव्या व्यासका व्यासक पवित्र ॥ ब्रह्म तो 'देव
 एक त्रिदेव र व्यास त्रि सिद्धान्त'। सरा जीवाधिक सद्गुरु होइ सम्मत्
 ब्रह्मन्त ॥" भी कहा। पुनि करिबनेन कफनी सम्पावि' नामकी कृतिमें
 "भक्ति-सवि साहसक नमो करिहन्ता' त्रि मंगे पात्रहु निष्कार' ॥ के हाथ
 कर्तव्यके ध्यानकी बात कही तो "बहु कव्या अपवि गुण करना र संसार
 महाबुद्ध भवा ॥" र आत्मके पुर्णमें उत्कीर्ण होना भी स्वीकार किया।
 भक्तचरितकने 'महाभक्तिदेव' नामकी रचनामें 'कव्या संज्ञा संज्ञा गुण कव्या
 ईश्वर मानु। बह उक्त संज्ञा देव गुण आर्यदा र पात्रहि मिश्रान्त ॥ किया
 तो दूसरी ओर उद्गुरु भी स्वीकारा है। की भी महिमा का 'गुरु त्रिभुवन
 गुण सिद्ध सिद्ध गुण रत्नचक्रसाध'। तो हरिदासक कव्य बह आर्यदा भवत्रक
 पात्रहु पात्र ॥" के हाथ बसान किया। हिन्दीके भक्ति-काव्यका पैदा कोई केन
 कवि नहीं जिसमें वे दोनों प्रवृत्तियाँ एक साथ न पानी जाती हों।

दिव्य अनुराग

केन आचारोंने 'राग' को कव्याकारण कहा है। किन्तु बीतपदीमें किया
 गया 'राग' परम्पराका योजनो ही पैदा है। यही 'राग' कव्याकारण है तो नर
 में किया गया हो। बीतरागी परमात्मा 'राग' नहीं 'स्व' आरामा ही है। आरम-
 प्रेमका कर्ष है आरम-सिद्धि बिसे मोक्ष नप्ती है। आचार्य पूष्पदासने 'राग
 को भक्ति कहा किन्तु उक्त रागको जो अर्हत्त आचार्य बहुपुत्र और प्रवचनमें
 बह्र बान्ते किया था।^१ बीतरागीके प्रति रागका यह भाव केन भक्तिके रूपमें
 निरन्तर प्रतिष्ठित बना रहा। भक्त कविोंने तो सहीकी अपना आचार माना।

१. पल्लवार बुद्धा भक्ति ओलिवान, कस्तुर सम्पावि और मन्त्रान्तिदेव मन्दिर
 वरीकन्दका कस्तुराजी इतिहासिक प्रामाणिक आचारपर र बरकरार रिये गये है।

२. आचार्य पूष्पदास सतीतिथि, १५७८ का मन्त्र।

हिन्दीके शैव भक्ति-काव्यमें यह रागात्मक भाव जिन अनेक मामलोंमें प्रस्तुत हुआ उनमें 'वाम्पत्यरति' प्रमुख है। 'वाम्पत्यरति' का अर्थ है पति-पत्नीका प्रेम भाव। पति-पत्नीमें वैसा यहूरा प्रेम सम्भव है, अव्यय नहीं। इसी कारण 'वाम्पत्यरति' को रागात्मक भक्तिमें शीर्ष स्थान दिया गया है। हिन्दीके शैव कवियोंमें चेतनको पति और सुमतिको पत्नी बनाया। पतिके विरहमें पत्नी बेचैन रहती है, वह सबैव पति-मिलनकी आकांक्षा करती है। पति-पत्नीके प्रेममें जो मर्यादा और पाकीजता होती है शैव कवियोंमें उसका पूरा निर्वह 'वाम्पत्यरति' वाले रूपकोमें किया है। कवि बनारसीदासकी 'अध्यात्मपद भक्ति' ममवतीदास 'मैदा' की सतबहोत्तरी मुनि विनयचन्द्रकी 'बुनड़ी सानतराय भूवरदास बनराम और बेशाबहाके पर्वमें 'वाम्पत्यरतिके अनेक दृष्टान्त हैं और उनमें मर्यादाका पूर्ण धारण किया गया है। हिन्दीके कतिपय भक्ति-काव्योंमें 'वाम्पत्यरति' छिछले प्रेमकी द्योतक-मर बनके रत्न मयी है। उसमें भक्ति कम और स्मृत सम्मोषका भाव अधिक है। भक्तिकी ओटमें वासनाकी उद्दीप्त करना किसी भी रूपमें झिंक नहीं रहा जा सकता। पत्नीके द्वारा सेव सम्राटी जाना और उससे सम्मोषक लिए पतिका आह्वान दिया जाना भक्ति तो नहीं हो है और चाहे कुछ हो। 'वाम्पत्यरतिके रूपकी 'रूप ही रहना चाहिए था किन्तु अब उसमें करकट तो रहा नहीं 'रति' ही प्रमुख हो गयी तो फिर अवासीनताका उभरना भी स्वाभाविक ही था। शैव कवि और काव्य इससे बचे रहे।

'वाप्यारिभक्त विवाह' भी एक काव्य है। इसमें किसी साधुका विवाह शीघ्राहुमाटी या संयमकीके साथ सम्पन्न होता है जबकि आरम्भकी नायकका पुत्रकी नायिकाके साथ। मेरुनन्दन उपाध्यायका शिवोदयमूरि विवाहछन्द उपाध्याय जबसामरवा 'मेमिनाय विवाहको' कुमुदचन्द्रका 'अपभ विवाहका और अमरदासपाटीका 'विवाहमयीका विवाह इस विधाकी महत्त्वपूर्ण कविता हैं। 'वाप्यारिभक्त विवाह' शैवकी मौलिक कृति है। निगुनि संताने उनका निर्माण नहीं किया था। 'वाप्यारिभक्त पद्य' की रचना भी शैव कवियोंन अधिक की। शैव चेतन अपनी सुमति अर्थात् अनेक पतिवाके साथ होकर रचना रहा है। कर्मी-कर्मी पुत्र और माताके अलाके मध्य भी होछियाँ लेली गयी हैं। वैश्व तो हालियाँ सूर्यो शैव पत्नीमें विचरी हैं किन्तु शैवी सरागना सानतराय अमराम और अमरामके काव्यमें है बुरी अपह नहीं। 'उठनी पतिवाको 'वाप्यारिभक्त' चुनरी पहननेका भाव था। बहीरकी पहुरिया न भी चुनरी पहनी है किन्तु साधुशक्ति की चुनरी में संकात्मक कालिय अर्पित है।

मेमिनाय और पद्मिनीके सम्मिलन भुवनक और अष्ट काव्योंमें जिन प्रेमकी

अनुमति समिहित है वह भी स्मृक नहीं दिख्य हो या। बैरागी पक्षिके प्रति बरि पत्नीका सम्बन्ध प्रेम है। तो वह भी बैराग्यमे मुक्त हो होगा। राजमनीका मेरी स्वरके साथ निराद नहीं हो पाया था कि वे मोक्षपथार्थ बननेके लिए जैसे पशुओंकी वस्त्र पुकारमे प्रन विन झाकर तर करले चक घघ फिर भी राजमनीने बीरल वर्द्धन उन्हींको अपना पति माना। ऐसी पत्नीका प्रेम लूटा जबका माननामिधिन होता। यह कोई नहीं कह सकता। हिन्दीके अनेक मुक्तक रचनाजामें राजमनीक सौन्दर्य और विरहकी भावधारक अनुमतिर्था है। किन्तु वे अवर्धनकी प्रोपिठ-वृद्धिकाशमे मरिचिचि मी प्रभावित नहीं है। राजमनी सुन्दर है। किन्तु उस जयमे सौन्दर्यका कमी जामास नहीं होता। राजमनी विरहप्रपीडित है। किन्तु उसे पक्षिके मुक्तका ही अधिक ध्यान है। विरहमें न तो उसकी धर्या नाशित बन सकती है और न उसने अपनी राने ही पाटियाँ पकड़कर बिनापी है। राजमनीके 'मेरीस्वरकमु' रूपकीर्ति हेमचन्द्र और विनीतिकाकके 'मेरीस्वरपीठो में राजमनी का सौन्दर्य तथा विरहप्र अवमीकल्पन विनीतिकाक और वामचन्द्रने 'निमिराजी-मनी बाछमामा' में राजमनीका विरह कलम बाधका निरर्धन है। बड़ीपर भी अवनीकता नहीं है। सब कुछ मर्माशये रखा है। हिन्दीके अनेक काव्याम मेरीस्वर और राजमनीका केकर अनेक मयलारकाकी भी रचना हुई है, किन्तु उनमें नहीं जो "वाग्मरिचनका मुहुः स्नानमर्यानीनका वज्रताय और 'भी'सुक्तम कृतत्वय सहस्रका प्यारसमाका हिवा। जीनी वाग नहीं है। वह कि मयकाकके मंगला करन भी वासनाके नेकरने शोष का रहे वे मरीस्वर और राजमनीके सम्बन्धित मान्यिक पर हिन्दुसुमतिपात्र प्रतीक-अर ही रहे। सन्तोस अपनी वाक्मताका परित्याग नहीं नहीं दिया।

रहस्यवाद

जीन अवर्धनक परमात्मकाय साधनमम्मरीहा 'बोहापापुड - रामचिह्न वैराग्यगार और 'बोहापापुड - मरुचन' में आरम-ब्रह्ममे प्रेम करन और उसमें सम्मम होनेकी काय नहीं पया है। वही आरम-ब्रह्मकी अन्तिमे सम्बन्धित अनेक विन है। विरहप्र टन्त्रमयक प्रकृतिरा भी इकका-गा रन है। मयकाकीन हिन्दीके जीन कवि अवर्धनके इस रहस्यवादके प्रभावित है। किन्तु वे सम्मवादके सम्म है। उनकी अनुमतिपाम आका-व्यता अविन है। आचार्य मुन्दमुन्दके मावताहमें भी आकाव्य अनुमतिर्था ही पाया अधिक नहीं नहीं है। भाव

मध्यकालीन हिन्दी के केन कालोमें रहस्यकारी गीत और पद्य बिचारे हुए हैं। इनमें 'आराधना प्रतिबोधसार'—सकलजीति 'सम्प्राप्ति'—वरिष्ठेन 'उत्तर सारङ्ग'—सुमधन 'चेतनगीत'—मिलदास 'अभिरुच्यपास'—विभुवनभार 'सुन्दरसप्तशती'—सुन्दरदास 'सटीकपासीत'—पाण्डे रूपचन्द्र 'अध्यात्मगीत'—मनारसीदास 'मनदास विद्यास'—मनराय 'महत्तरी'—आनन्दचन्द 'हिठोप देवदासनी'—हमराय 'आनन्द विद्यास'—जगतदास 'चेतनसप्तशती'—सम्प्री बल्लभ 'अक्षरदासनी'—विद्यारीदास 'चेतन गीत'—विद्यार्थिदास और 'चेतन सुमधिसंसार'—मधारीदास प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनमें आरम्भ-बहुतेके प्रेमकी अभिव्यक्ति कवियोंके द्वारा की गयी है। कवक सरस ॥ ऐसी सरसता संस्कृत-प्राकृतके केन कवियोंमें नहीं पायी जाती।

सतगुरु

केन कालोमें सतगुरुका महत्त्वपूर्ण स्थान है। वहाँ सतगुरु और ब्रह्ममें घेद नहीं स्वीकार किया गया है। जन्मीन अहम् और सिद्धको भी 'सतगुरु' की संज्ञासे अभिहित किया है। नबीरका गुरु ब्रह्मसे पूज्य है। गुरुके द्वारा ही गौतम्य मित्रता है। अतः नबीरने गुरुको ब्रह्मसे बड़ा कहा है। गुरुके प्रति नबीरका यह दृष्टिकोण स्वाभाविक अधिक समान है, व्यक्तिपरक नभ। गुरुकी ओर जो भक्त ब्रह्मको भी 'गुरु' कहकर ही पुकारता है, उसकी गुरु-भक्तिमें सम्येद नहीं किया जा सकता। केन कवि गुरु-भक्त थे। उन्होंने पंचपरमेष्ठीको 'पंचगुरु' कहा है। पंचपरमेष्ठीमें ब्रह्म-सिद्ध रामिक हैं। आचार्य-उपाध्याय तथा साधु भी। साधु महि सम्मन्ती है तो गुरु-पदका अधिकारी है। गुरु बड़ी है, जो सम्मन्द् पंचका निवृत्त करे। सम्मन्द् पंचका वर्ध है मोक्ष-मार्ग। उसे बड़ी बड़ा सन्त है जो पंचपर पञ्च गुण ही। सम्मन्द् साधु समपर बलता है और उसके अंत-अंतसे परिचित रहता है। हिन्दीके केन कवियोंने 'गुरु' को मोक्ष-मार्गका प्रकाशक कहा है।

नबीर ने 'गुरु' की सन्तुष्टी बात तो बहुत ही शिल्पु उसके प्रति धिप्यकी अनुपकारक पडाता तो बड़े बड़ी व्याप ही है। उभर केन कालोकी गुरु-भक्तिमें अनुपकारको वर्णन स्थान मिला। केन धिप्यन गुरुके मित्रन और विरुद्ध दोनों ही गीत बार्धे। गुरुके मित्रमें धिप्यकी समुची प्रहृति कहलहसी हुई दिखाई दी और विरुद्धि कहलै, समुने विरुद्धी कथीत देखा। रसुकी 'विनयता बीर' उपाध्याय कवनापरकी 'विनयभक्तभूरिपोई' गुरुचक्रामरा

‘धीपुज्यवाहणीतम्’ सामुकीतिका ‘निमग्नसुरिणीतम्’ तथा ‘बोधराजका’ ‘सुपुष्पतक’ धनुषागतिक भक्ति के उत्तम दृष्टान्त हैं ।

हिन्दी के सभी कवियाने स्वीकार किया है कि मुझ के सामर्थ्यवान् होने मात्र से कुछ नहीं होता । सिध्यमें योग्यता ग्रहण करनेकी उपादान शक्ति होनी ही चाहिए । उपादान शक्तिके अभावमें मुझ कितना ही सम्मान से सिध्य समझता नहीं । बौद्ध कवियोंने अपने अनेक पद्योंमें इस भावको सरसताके साथ प्रकट किया है किन्तु मुझ अत्यधिक उदात्त होता है । सिध्यमें ग्रहण करनेकी शक्ति ही या न हो वह मुझ के आधीर्वाहका पात्र तो बनता ही है । बनारसीवासने ‘नाटक-समन्वय’में मुझको मेवके समान कहा है । मुझमें-से मेवकी ही भाँति ‘बानीकपी’ अलङ्कित बार निकलती है और सबसे सब बीजोंका हित होता है ।

‘ज्यों बरये बरपा सभी मेव अलङ्कित धार ।

त्यों सत्रगुल बानी किरै, बगत बीच हितकार ।

ब्रह्मकी प्रेरणा

प्रत्येक भक्त अपने भगवान्से याचनाएँ करता है । बौद्ध भक्तने भी की हैं । उसने कहीं पुत्र नहीं बन और कहीं मोक्ष माँगा । उसका माँगना कभी व्यर्थ क्या हो ऐसा सुननेमें नहीं आया । बीतरात्री प्रभुने अपने भक्तकी सभी मनो-कामनाओंको पूरा किया फिर वे मोक्षिक हों या आध्यात्मिक । किन्तु प्रश्न तो यह है कि जो भगवान् संसारसे मुक्त हो चुका उसका संसारसे क्या सम्बन्ध ? बौद्ध सिद्धान्त विनेयमें कर्त्तव्य नहीं मानता और बिना कर्त्तव्य के वह भक्तकी इच्छाओंको पूरा भी नहीं कर सकता । फिर बौद्ध भक्त किस संसारसे टिकता है ? उसके टिकनेका अर्थक्य है विनेयकी प्रेरणा । विनेय कुछ नहीं देते किन्तु उनके दर्शन और पूजा-उपासनासे भक्तमें पुण्यप्रकृतियोंका जन्म होता है । वे प्रवृत्तियाँ अकस्मिकी की विभूति देती हैं और तीर्थंकरका पत्र भी । अर्थात् उनमें अचिक और स्वाधी दोनों ॥ प्रकारका ज्ञानत्व देनेकी सामर्थ्य है । सारांश यह कि विनेय

१. दशकी ‘किन्तु भीष’ बौद्ध मन्दिर पाटीही कश्मीरके गुप्ता मं १ में मौजूद है । इसमें २५२ पत्र हैं । बोधराजका दण्डवत्पत्र भी इसी मन्दिरके गुप्ता मं २२६ में अंकित है । अलङ्कित रचनाएँ अलङ्कित हो चुकी हैं ।

२. पुण्यप्रकृति का अर्थ मानसिक भी अर्थ हो सकती है किन्तु अधिकतर भाषाएँ हीन और उत्तम हैं अभावधारणके समानो कल्पा हैं । धान धान और बीजोंमें अन्तर्भाव विधान बहुत बड़े आत्मानन्दकी बात है ।

कृष्ण की देते विष्णु सगरी प्रेरणा सब कुछ देनी है। यतसं बलमे ऐनी सामर्थ्यता कम होता है, जिससे वह स्वयं सब कुछ प्राप्त कर सकता है। इसे ही प्रेरणात्रय कर्तृत्व कहते हैं। इसमें जगत् ईश-ईश पुकारा सब ही सीमित नहीं रहती अपितु कभी-कभी प्राप्त करने के लिए कर्मक्षेत्रमें घुसती है। तब और कर्मका ऐसा सम्बन्ध बड़ी देखनेको मिलता है। हममें जैसा सब कुछ न था तबिनके निरास परावर्तनसे आकस्मिक बन पाता है और न कर्मकी शक्तिसे केवल होता है।

विनेश्वर की शक्ति प्रेरणाका आधार पुनः है। उसे केवल कविता की आत्मशान्तिमूर्ति ही को समझती रही है। तबमनुसृत्य मैं आचार्य सत्यनारायण विद्या है, “न पूजार्थस्त्वयि वातरागे न विन्वा वाच विद्वान्तर। तथापि ते पुष्पगुणस्पृशितं पुष्पाणि चितं दुरितान्त्रयेण ॥” मर्यादाकी हिन्दी के जैन वाक्याम ऐनी अवैकाल्य कविता है। ध्यानरायने विनेश्वर के प्रेरणात्रय कर्तृत्वको एक उदात्तमके द्वारा प्रकट किया है।

“तुम प्रभु कहित होतइवाक ।

आनन्द वाच मुक्ति में है, हम तुम्हें अगवाक ।

तुमरो नाम कहे हम नीके सब सब तीनी काक ॥

तुम ती हमकी कष्ट सब बहि हमरो बीन इवाक ।

कुने-कहे हम पावत निहारे जानव हो हम वाक ॥

और कष्ट बहि वह चाहत है राग-दोष की दक ।

हम भी एक परी सी बकस्त तुम ती कुरा विद्याक ॥

जानव एक बार प्रभु जग में हमको केहु निद्रक ।

आधुनिक हिन्दी के कविश्रीका मन भी आचार्य के प्रेरणात्रय सीमन्तमें ही स्थित रहा है। “विद्यावाच की राधाने पवनको धृती बनाकर कृष्ण के पास घेरा। धृतीने पूछा कि यहाँ तो सब दाले ही बाधे हावे मैं कृष्णको कैसे पहचानूँगी ? राधाने कहा

कैहें होंगि जित सब यहाँ मयवता धूरी होगी ।

आने मायी बहल करछे प्यारके साथ होंगि ॥

पासे होंगि परमनिधिनी सुखी राग होंगि ।

होबी होंगी हृदयकली कथारिणी सुखिता-सी ॥

देते होंगे प्रमित गुण वे देत अर्घ्ये द्वारा ।

कोहाको हूँ कहिय करसे स्वर्ग होंगे बनाये ॥”

राधाने कृष्णके व्यक्तिस्वमें एक ऐसा जागू माना है जिससे समीपस्वोंको परम निधियाँ और रत्न प्राप्त हो जाते हैं। कृष्ण कुछ देते नहीं उनका 'दण्डन' में ली सक्ति है जिसकी प्रेरणा भक्तको सब कुछ पानेमें समर्थ बनाती है। जिसकी केवल सद्गुणोंसे ही प्रथित गुण आ जाते हैं वह जागू ही है और क्या। इसे ही जैन आचार्य प्रेरणा कहते रहे हैं और जैन-कवि सहीके प्रेरणा-दीप बजाते रहे हैं। रायबन्धकी सोचाने राममें हेमचन्द्रकी राजकुमार नमिष्ठुमारमें मुसलमानकी बखाने पवनदेवमें प्रेरणाकाय सौम्यकी अनुभूतियाँ की हैं।

पञ्चकल्याणक स्तुतियाँ

तीर्थकरके पत्रमें जाने काय मेरे उनके किए जाने केवलज्ञानके उत्पन्न होना और मोक्ष प्राप्त करनेके अवसरपर जो उत्सव मनाये जाते हैं उन्हें 'कल्याणक' कहते हैं। वे कल्याण करते हैं अतः उनकी यह संज्ञा सार्थक ही है। जैन काव्योमें उनका अनुभूतिपरक विवेचन है। प्रबन्ध काव्योमें अधिक है फिर चाहे वे संस्कृत-प्राकृतके हों अथवा अपभ्रंश और हिन्दीके। वही तीर्थकरके प्रत्येक कल्याणकमें सम्मिश्रित एक-एक सर्ग है, किन्तु कवियोंका मन बर्मे और कर्म-कल्याणकोमें ही अधिक रमा है। भूचररासके पाद-पुण्यम इन शोक सारस बगन हैं। कविनी सबसे बड़ी सामर्थ्य है चित्राकन। हिन्दीके महाकवियोंने बहिरासिनी केवियोंके द्वारा मीठी सेवा सब बात बात तीर्थकरका पाप्मन-धिकापर स्नान इन्द्रका हाथक नृत्य और आनन्द' नाटक आदि पुरवोंको सफ़लतापूर्वक अंकित किया है। उनमें प्राकृतिक कटाका समन्वय होनेसे सौम्य और भी बड़ गया है।

प्रबन्ध काव्योमें यथाप्रसंग मुक्तक स्तुतियोंकी भी रचना की जाती है। उनमें छन्दस्व कल्याणकको लेकर तीर्थकरके प्रति अपना अस्ति-भाव प्रकट करना ही अधिक बहुल होता है। अपेक्षाकृत हिन्दीके प्रबन्ध काव्योमें ऐसी स्तुतियोंकी अधिकता है। हिन्दीके कवियोंने ही मुक्तक रूपसे भी पञ्चकल्याणक-स्तुतियोंका निर्माण किया है। संस्कृत-प्राकृतम जगदा गिराण्त अभाव है। यह हिन्दी कवियोंकी अपनी मिमी विशेषता है। पाण्डे कपलम्हकी 'पञ्चमसक स्तुति' आज भी जैन-मन्दिरोंमें प्रतिष्ठित पड़ी जाती है। जगरामके 'अनुपञ्चमसक'की एक हस्त लिखित प्रति मुझे बड़ीलके विशम्भर जैन-मन्दिरके सार्वजनिकभारमें मिली है। पाण्डे स्वयम्हने प्रतिष्ठित 'पञ्चमसकस्तुति'के अतिरिक्त एक 'अनुपञ्चमसक' का भी

निर्माण किया था। वह भी बड़ीसे शास्त्रमन्थारमें उपलब्ध हुआ है। भवानी बाघके 'पंचमनकवाच्य' की एक प्रति बनारसमें रामघाटपर स्थित प्राचीन जैन-मन्दिरमें मौजूद है। अद्वारक धर्मचर्याका 'पंचमनक' जयपुरके पाटोरीके जैन-मन्दिरमें उपलब्ध है। इस नाम्नामें जैन कवियोंका हृष्य जैसे समझ ही पडा है। जगरामने लघुमनकका एक बह् बरस देखिए, त्रिछमें छप्पन कुमारिबाप माँगी सेवा करती है।

ईक सचमुच हरपन कोषा ईक टाडी चँवर दुगलै की।
बसन आभूषण ईकसै, ईक मधुरी बैन बजावै की ॥
रँजन एक पहेली का ईक उतर सुनि हरबावै की।
निमि दिन अति आनन्द सबी हम नर मान बिठावै की ॥
महिमा विमुक्तन बाप की कवि कहाँ छी परचावै की।
अधिक को ना बसि मनो जगतसम जय दावै की ॥

दास्मभाव

मनुष्यको भवबन्धनका श्राप होना ही चाहिए। वह दासता की मनुष्यके हृदयमें जन्म लेती है। सांस्कृतिक ही होती है। उसका नीतिक स्वार्थसे मुक्त दासताके सांस्कृतिक पहलूसे सम्बन्ध नहीं होता है। जैन भक्त भवबन्धनका दास है। वह भवबन्धनकी सेवामें अपना जीवन बिता देता चाहता है। हिन्दुके अनेक जैन कवियोंने एक-दूसरेमें त्रिभङ्गकी सेवा करनी चाही है। उन्होंने न तो सांसारिक कुछ माँगे और न मोक्ष ही माँगी तो सेवा। सेवाजन्य आनन्द ही उनके जीवनका चरम कदम बना रहा। उनकी वह आवाजा पवित्र थी—स्वाध्वरहित।

जैन भक्तका वाग्व्यय की वँसा सदा और बरसतु है कि वह अपने दासको अपने समान बना देता है। आचार्य सम्प्रदायने कहा है कि हे भगवन् ! जो आपकी गुप्ता करती है, वे पीछे ही आप-वैसी कभीक नुपीयन होते हैं। इसीलिए कवि बनारसीदासने ज्ञानीने भिष्ट थी सेवाभावकी अति अनिवार्य बतलायी है। जो भक्तान् पीछेपर हमनी क्या करे कि उन्हें अपने समान बना के सब हों वह 'पीनरवाक' है। इसी कारण जैन भक्त बार-बार उस 'वीनरवाक' को पुनरुक्त है।

देहि नुपिबिदा ७०वीं स्तोत्र।

१ कवि भूवरदासकी 'महो जगज्जुन'की किताबी, जो 'अभिलेखवालीसंस्कृत'में प्रकाशित हो चुकी है।

‘सहो भगवन्तु एक सुविधो धरत्र हमारी ।
तुम प्रभु दीनदयालु, मैं इच्छिषा संसारा ॥

और वह भी सच है कि हमका पुनारजा कमा निरर्थक नहीं गया। दीनदयासुने दीनपर दया कर उसे भी 'दीनदयासु' बना दिया। ऐसे भयमान्का यदि कोई बात बने तो ठीक ही है। यदि न बन पाये तो दुर्भाग्य है।

हिन्दीके अनेक जैन कवियोंने शास्त्रमात्रकी शक्ति की है। उसका विवरण टीसरे अध्यायमें किया गया है। यह सनक छिए एक उत्तर होया जो जैन मतमें शास्त्रमात्र नहीं मानते। उनके कवनानुसार आत्मामें परमात्मा बननेकी वाञ्छा मौजूद है फिर उसे वास्तव करनेकी क्या आवश्यकता है। उनके सिद्धा न्तानुसार आत्मा और परमात्मा समान है। फिर वास्तवकी स्थान ही नहीं है। इसके अतिरिक्त वे भगवान्में कर्तृत्व भी नहीं मानते इसलिये भी वास्तवका सङ्गठन करते हैं। किन्तु आत्मा अभी परमात्मा बनी नहीं है, उसमें उन वास्तवका आविर्भाव नहीं हुआ है, या परमात्मामें मौजूद है अतः यदि वह परमात्मामें वैश्याभाव रखे तो अनुपपन्न नहीं है। अतः एक कर्तृत्वका सम्बन्ध है, वह भले ही प्रेरणात्मक हो है तो फिर शास्त्रमात्र भी शिथिल हो सकता है। जैन कवियोंने शास्त्रमन्त्रिकके अनेक पक्षका निर्माण किया है।

भारतीयकी महत्ता

आराध्यको महत्ता स्वीकार किये बिना ब्रह्मा ही उदात्त नहीं होती। यही तो ब्रह्मकी बात है। इसी महत्ताके साथ मनुष्य अपनी कपुताकी स्वीकृति स्वतः ही जुड़ी है। अर्थात् मनुष्य जन्मके क्षणकी क्षण और आराध्यको मनुष्य स्वीकार नहीं करता वह मनुष्य ही नहीं है। जैन ग्रन्थमें भी ये बातों प्रकृतिपौरुषादि दिये हैं। आराध्यकी महत्ता प्रकट करनेके अन्तर्गत यह है और उनमें एक यह भी है कि जैन आराध्यका अर्थ है जोसे ब्रह्म बनाया जाये। गुरु और मुनिकोंने इष्ट और रामको ब्रह्म माने और बुद्धोंने ब्रह्म कहा है। जैन विधियां भी जिनकेको अर्थ है जोसे ब्रह्म माना। ऐसा करनेसे अष्ट न आत्मा इष्टदेवता अर्थात् भाव ही प्रकट किया है। उद्धारके लिये अर्थ है अति बड़का अर्थार्थक नहीं दो। अपने इष्टदेवकी गुरुदेव बनाता मनुष्य बन गया है। विष्णु जिन अर्थ है जोसे उद्धार दिया गया है ये उनमें प्रति पुरुषार्थक भाव प्रकट करना सीक नहीं है। मनुष्यात्मक यदि निष्कामकाम अर्थक बननाके भाव करते रहे हैं। उनका यह कार्य निष्कामक

अधिक है, विवेक कम है। विमुचरूपका अण्डन समुचरूपकी भक्ति नहीं है। समुच और विमुचको एक माननेसे जैन कवि इस संदर्भसे निराश मुक्त रहें हैं। उन्होंने जैनतिरिक्त देखते अपने देखते बड़ा तो बनाया किन्तु उनको बुरा भी नहीं कहा। जैन संस्तर काव्याय तो नहीं-कहीं बड़ा विष्णु, महेश्वर प्रति तीक्ष्ण-पन भी दिखाई देना है किन्तु जैन हिन्दों रचनाओंमें ऐसा नहीं है।

जैन कविमाने आराध्यकी महत्ता एक अर्थ धैर्यम भी प्रकट की है। यह हीकी विवेक है और प्रथमरी जनेका अकारणपरक भी। इसमें भक्त कवि अर्थ देनाही आराधना तक करनेको तैयार रहता है, किन्तु तभी जब उसमें अपने हितोंके मुक्त नष्टि हो। रामके भक्त तुलसीदास कृष्णकी बन्धनाको भी तैयार है किन्तु जब वे मुरली छोड़कर 'बनुप-बाध' बारण करें। एक जैन कवि छंदर की पूजा करना चाहता है किन्तु तभी जब छंदर प्रत्यक्ष करता छोड़कर य जर्मान् पान्ति करनेवाले नग जायें। इसी भाँति वे 'ब्रह्मा' की अग्रामना करनेका भी तैयार है किन्तु तभी जब वह सबकीके मोह-बाधसे निरन्तर 'अनुप्रायम पान रोषर्हित' हो जायें। आचार्य ऐश्वर्यदे तो अपने आराध्यका नाम ही नहीं किया। उनके लिए तो वे तभी हितेश है जिनमें पारमार्थिक हीन सबका प्राप्त हो गये है।

अन्यथाप्राप्तमना दामायाः अक्षयुपमाया वत्स ।

महा वा विष्णुर्वा ह्यो जिनो वा नमस्तस्मै ॥

नमः तत्र समये नवा तथा बोधसि सोऽम्भविषया नवा तथा ।

धीतरोचकमुचः स चेन्नवायेक एव मयवन्नमोऽस्तु त ॥

अन्तरी समुताकी बात ऊपर गयी आ चुकी है। आराध्यकी महत्ताके समस्त भक्तोंको करना प्रत्येक मुक्त और वाप अनु ही प्रतीत होता है। मन्त्रिने अन्तम अनुप्राय भाव हीनताका योग्य नहीं है। नमः जिनो ॥ अधिकारिक अपनेको अनु अनुभव करता जनेका अण्डन ही निरन्तर होता आयया और आराध्यके अयोप वृत्तिय जनेका। तुलसीकी विनम्रपणिका में 'अनुप्राय' प्रमुख है। जैन कवि अनुप्राय-अन्यथाप्राप्तमना अण्डन अण्डन अण्डन और अनुप्रायके परमो भी अनुप्रायों ही मुक्तता की गयी है। अण्डनअण्डन एक नम देखिए

१. अण्डन अण्डन, अण्डनअण्डन अण्डन, अण्डन और अण्डन अण्डन ।

मन्त्रसमस्तार, अण्डनअण्डन अण्डन ।

‘जैसे कीड़ मूरत महासमुद्र तिरिब को,
 भुजानि कीं उद्यत मनी है तमि नाबरी ।
 जैसे गिरि ऊपरि विरलफळ तोरिब कीं
 बाणसु पुरुष कोऊ उर्मति उठावरी ।
 जैसे जलकुण्ड में निरखि साशि प्रतिबिम्ब
 ताके गहिब कीं कर भाँचो कर दावरी ।
 ऐसे मैं जलपुत्रि नाटक आरम्भ कीनी
 गुनी मोहि हैसंगे कहैंगि कोऊ नावरी ॥

जमुताके साप ही शीतलाका भाव भी बर्य होता है । शीतलाका अर्थ है
 घरीबी घरीबी केवल रुपये-पैसेकी नहीं हर तरहकी । मनुष्यमें न तो गुण हैं
 और न पुण्य करनेकी सामर्थ्य । उसको सिन्धानी पापीमें कटती है । इसी कारण
 उसे बारम्बार यमकि दुःखोंको भोगना पड़ता है । वह जोषण-मर बेचैन रहता है ।
 कोई भी मनुष्यान् उसके इस दुःखोंको तभी दूर कर सकता है, जब वह ‘दीनबन्धु’
 हो । अहिंसाको परम धर्म माननेके कारण जिनके तो स्वभावसे ही ‘परम
 नाशनिक होते हैं । जन्मोंन सबैव शीतोपर दया की है । हिन्दीके जैन कविमोंन
 उनके ‘दीनबन्धु’ रूपको लेकर बहुत कुछ लिखा है । उनमें वं शीलतरामकी
 ‘अध्यात्म बाख्खानी’ भैया ममवतीदासका ‘ब्रह्मविलास’ भूषरदासका ‘भूषर
 विलास’ धानतरामका ‘धानतविलास’ तथा मगरामका ‘मगरामविलास’ प्रसिद्ध
 हैं । इनमें ममबन्धुके इस विषय का भिन्नभेद है, जिसके सहारे शीतल तरती है मने
 ही उन्हीं शीतल कर्म किया हो ।

मनुष्यान् इसलिय भी मन्त्रान् है कि वह अक्षरानुष्ठा धारण होता रहा है । शीतल
 अपन ही पाप और अपराधोंके कारण ऐसा बन जाता है कि उसे कोई धारण देने
 को तैयार नहीं होता । ऐसीपर मनुष्यान् दया करता है । उनसे अपराधोंको परि
 मात्रित कर उन्हें भी मनुष्यमुद्रसे तार देता है । जिनके अर्थ ‘दीनबन्धु’ है तो
 अक्षरानुष्ठा भी है । अक्षरानुष्ठाको धारण देना भी दयासे ही सम्बन्धित है । शीतल
 कविमोंन जिनके इस रूपको लेकर जनेक अनुभूतिपरक ‘पदों का निर्माण किया
 है । वं शीलतरामका कथन है,

‘आऊँ कहाँ तमि धारण सिद्धारे ।

पूछ अनादिपत्नी पा हमरी माफ करा कल्या गुन धारे ॥

इसमें ही मनुष्यान् में अर्थ गुण विष्णु का मोहि पार निकारे ।

जस्तकी भी पूरा विरासत है कि जमे निबन्ध त्रिनम्र हों कारण दे सकते हैं। वे निबन्ध
कारण ही नहीं बल्कि पहले तार भी होते क्योंकि उनका ऐसा 'विदर' है। निबन्ध
मानवराशमें लिखा है।

“अब हम नेमित्री की वारन।

और और न मन कागत है ठीकि प्रभुके वारन ॥

सकक मनि अब-बहुन बारिद बिन्दु वारन तरन।

इन्द्र-बान्ध-बन्धिन्दु प्यासे वारन सुन सुन इरन ॥”

कीर्तन

कीर्तनका उत्पत्ति है भयबानुकी कीर्तिका कथन करना। वैष्णव मन्दिरास
ताल-मंजीरोंके साथ होनेवाले कीर्तनका रूप जैन मन्दिरासे कभी प्रचलित नहीं
रहा। पद्मनाभन वैष्णवार्थपर भी जैन मन्त्र मूल्य और वादनके साथ रास करने
लगे थे किन्तु श्री त्रिनम्रकमपुरि (वि. सं. ११६७) में कमुड और ताकरासो-
की वन्द कर दिना का वर्णन इस रास वृत्तमाली केष्टार्थ बिटो जैसे होने लगी
थी। अन्य रास प्रचलित थे मुरम और वादन भी। किन्तु इहाँ रूप भी वैष्णव
मन्दिरासे होनेवाले कीर्तन-जैसा नहीं था।

काव्यमें कीर्तनको नाम-रूप कहते हैं। त्रिनम्रने नाम-रूपकी महिमा जैन
कविकाने सर्वत्र रहीवार की है। माधुर्वाण्यमें ‘मल्लामरस्नोम म लिखा है
‘त्वन्नाममन्त्रमविष्ट मनुजाः स्मरन्तः सद्य स्वर्गं त्रिपतवन्ममया मरन्ति ॥”
आचार्य तिल्लमेनने भी ‘नम्यन्मन्त्रमस्तीव्रं त्रि लिखा है ‘अस्तामन्त्रमन्त्रमहिमा
त्रिबर्गस्तवस्ते नामापि पाणि मवती मवती कर्णान्ति ॥” हिन्दीके जैन धार्मिक-
में तो स्थापन-स्वागतपर भयबानुके नामकी महत्ताका अभिप्रेष निकपत्र है। ईस तो
मुर और तुलसीने भी अपने चाराध्वने नाम केने यात्रते ही असीम सुख प्राप्त होने
की बात लिखी है, किन्तु त्रिनम्रका नाम केनेसे साधारण वैष्णव तो मिलते ही हैं,
ताब ही उनके प्रति अनावर्षकका भाव भी प्राप्त होता है। जैनधर्म लिखता कावे
और कष्टके साथ ही मन्त्र उल्लेख पुष्पक हाकर वैराग्यकी ओर विचित्रा पार्य यह ही
त्रिनम्रक नाम-रूपका सर्व्वेभ्य है। कवि अकारधीवातने ‘नामनिर्भय विद्याम’ से ऐसा

सिद्ध भी है। प्रीति धनवतोशासने 'सुपुत्रकुपुत्रपुत्रीसिका' में जिनेन्द्रके नामकी अतिरम्य महिमाका वर्णन किया है। उसाद्वाराके लिए

'तेरो नाम कल्पवृक्ष इच्छा को म राखै डर तेरो नाम कामधेनु कामना हरत है।
तेरो नाम विद्यामय विद्या को म राखै पाम तेरो नाम पारस सो दारिद्र्य हरत है ॥
तेरो नाम अमृत पिये सैं जरा रोग नाश तेरो नाम सुरम्यक सुरत को हरत है।
तेरो नाम वातराग धरै डर बीतराग भव्य साहि पाय भवसागर तरत है ॥

कीर्तनका दूसरा अर्थ है मुर्खोंका कीर्तन। जिनेन्द्रम गुप्त तो है अमीन और मानव है सहीम फिर उन्हें कैसे बड़े। अन' बड़ अमीनको कहनेके लिए अति-सयोक्ताका सहारा लेता है। यहाँ अतिशयोक्ति शब्द अमीनके पक्षमें नहीं अपितु कहेबाटे सहीम के पक्षमें बटता है। सहीम कह नहीं पाता किन्तु जो कुछ भी कहता है वह भी उसके लिए बड़ा-बड़ा कवन है। अमीनके सीमारहित मुर्खोंको तो वह जान भी नहीं पाता जब उन्हें बड़ा बड़ाकर कहनेका तो कोई अर्थ ही नहीं है। 'स्वयम्भू स्तोत्र' में इसे अल्पमतिता प्रकाश-सेव' कहा है वह अल्पमति जो जिनेन्द्रके अशेषमाहात्म्यको जानता ही नहीं। जनकजयने विपाय्यार स्तोत्र में स्पष्ट ही लिखा 'बल्लु किंवात् कीरवामिरथस्रजवा स्तुतिस्तथोऽसकि-कमा तवास्तु।' हिन्दीके पद-साहित्यमें अमीन' के मुर्खोंको कहनेको अत्यन्त घोरताके साथ अभिव्यक्त की गयी है। कवि ज्ञानतरावने एक स्थानपर लिखा है,

'मनु मैं किहि किहि बुति करी तेरी।
गलधर कहत पार बहिं पाषी कहा बुद्धि है मेरी ॥
अब जयम मरि सहस जीम धरि तुम जस होत न पूरा।
एक जीम कैसे गुन पावै उख कहै किमि सूरा ॥
अमर उख सिद्धासन बली प गुंन तुममें न्वारे।
तुम गुंन कहन बचन बक नाही पैत गिबै किमि धारे ॥'

यं दीक्षतरामकी अध्यात्मवाङ्मय'में भी लिखा है कि जिनेन्द्रकी गुण महिमा यथयति भी नहीं वह पाते फिर भला मैं अतिहीन बहानी उठ भेदको कैसे पा सकता हूँ।

१. ज्ञानतरावका जयकला ४२३वाँ पद।

अध्यात्मवाङ्मय' ब्रह्मविद, अरपुरकी इन्द्रभिक्षित मणि 'य' अमर, ७५३वाँ पद।

‘गूढ़ स्वभाव त्रिभिन् महा तू मय वता
महिमा तरी गूढ़ नहीं नहि गनारणी ।
ए गूढ़ानमदेव निरन्तर सब मही
मै मनिहीन अचान भेद पावा नहीं ॥”

स्मरण

उन्नी प्रश्न अपने-अपने कारणोंसे स्मरण करते हैं । स्मरण ही विद्योत्थान एकमात्र उद्धार है । उन्नीके बहुर ब्रह्म जीविन रहना है । भवत तबनक स्मरण करता है, भवतक कारणवश नहीं हो पाता । राधा जब स्मरण करते-करते हृन्मय हो पयो उन्नी छते चैन पदा । चैन आचार्योंसे स्मरण और ध्यानकी पर्यायवाची कहा है । स्मरण कहके ही दब-दबकर चलना है फिर घने-घने छतमें एकाग्रता आती जाती है और वह ध्यानका रूप धारण कर लेता है । स्मरणमें त्रिउनी जलिक लम्बीनता बहुती आवेयी वह चलना ही तरुण होया आवेना । ‘एकैमात्र स्तोत्र’में लिखा है कि जबजानूके ध्यानसे मुक्तमें ‘स्वयंभार्य’की मति उत्पन्न हो जाती है ।^१ अन्त्याचमनिर स्तोत्र’में कहा गया है कि त्रिनेत्रके ध्यानसे जबमात्रमें वह जीव परमार्थ ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाना है ।^२

हिन्दीके जैन कवियोंने उक्त स्मरणके बहुर जबजानूके तादात्म्यकी बात बनेक स्वाधेनर नहीं है । कवि बवारसीराखने अध्यात्मकीर्ति’में लिखा है “मागह नरम करत विन ध्यान । आदर विमिर उन्नी अत्यन्त मान ।”^३ कवि

१ प्रादुर्भूतविरपम्पुनक त्वापनुध्याम्यतो मे

स्वयंभार्यं च इति प्रतिफलवते निर्विकल्पा ।

मिथ्यैर्द्वयं तदपि तनुयै तृप्तिमभेवक्या

वीपस्तमानीज्जनिमपकलास्त्वप्रसादाभूचमि ॥

—एकीभावस्तोत्र १७वीं पद ।

२ ध्यानाग्निब्रह्म अकटी जविनः अनेन

हेहं विहाय परमात्मसा अचमि ।

टीकागकानुपकमाचमनास्व ओके

आभीकरावधिरादिष मातुमेवा ॥

—अन्त्याचमनिरस्तोत्र १५वीं श्लोक ।

३ कनारतीविरास जगदुर, जगदुर्मल, १३वीं पद, ६ १९६ ।

पान्तरायका कथन है कि 'आत्मराम' सों अपनेमें अर्थात् ध्यान करनेसे 'बुद्धि' प्राप्त हो जाता है, मग्न और स्वाधीनमें भेद नहीं रहता होता एक हो जाते हैं।^१ मैत्रा भगवतीदासने 'सुत्रावली'में में 'ध्यायत आत्मा माहिं भगवतां पुत्र पद् पद् विराजत ईश'।^२ लिखकर ध्यायसे तादात्म्यकी प्राप्ति की गयी है। ५ दोष्ठरामजी भी 'तत्र वास्तव्यं विच्छेदं नहीं प्वाहं है निरप्रमि विद्या है।'^३

स्मरणसे केवल भगवान्का तादात्म्य ही नहीं अपितु भौतिक विभूति भी उपलब्ध होती है। मुनि आदिश्रवण परीर कोइकी दुर्गन्धिसे मुक्त या जिनेन्द्र की स्मृतिसे स्वर्ण-वैराज्य प्राप्त होता है।^४ द्वितीये कवि पान्तरायका कथन है कि प्रभुके स्मरणसे यह भी प्राप्त हो जाता है। 'सर्व और मेहक-वैराज्य प्रीति'।^५ भैया भगवतीदासने परमात्मलक्ष्मीमें लिखा है, "राग द्वेष को त्याग के पर परमात्म प्वाह। यों पावे सुख सम्पदा मैत्रा इम कल्याण ॥"^६ सामाजिक विभूतियोंकी प्राप्ति होती अत्यन्त है, किन्तु द्वितीये जैन कवियोंने आध्यात्मिक सुखके लिए ही बत दिया है। प्रभुके स्मरणपर तो कल्पसे सभी कवियोंने जोर दिया है, किन्तु ध्यान वाची स्मरण जैन कवियोंकी अपनी विशेषता है।

दशमकी महिमा

आत्मरामकी सतत देखते रहनेकी तीव्र अभिलाषा सभी बुझती नहीं। अँसियाँ हरि-हरसतकी भूखी बनी ही रहती है। हो भी क्या प्रभु काव्यसिन्धु हैं उनके काव्यमयसे व्यासकी व्यास गुप्त नहीं होती। गोपीके नेत्र तो कृष्णके मुखको देखते हैं। कुमा जाते के अर्थात् इस भाँति आत्मराम हो जाते के कि उन्हें कोर

१. पान्तरायका २२वीं पद।

मन्त्रिदास सुत्रावली, २ वीं पद ५ २७।

२. आत्मराम आत्मराम प्रारम्भ २२वीं पद।

४. ध्यानद्वारे मग्न अर्थात् स्वात्मगोह प्रविष्ट-
स्तत्वि विधिं भिन्नवपुरिष मनुष्योक्तरोपि ॥
पद्मावली २५ वीं पद।

५. पान्तरायका २२वीं पद।

६. मन्त्रिदास परमात्मदर्शनी २२वीं पद, ५ २६।

सज्जा और बुद्धशक्ति का भी ध्यान नहीं रहता था। दूसरों की तीव्रतरफा रस भी हुआ है। ॥ २४ ॥ टपटपी यथापर निरन्तर लया। तूफान गड़ी हुआ जो सूर्यनेत्र चारु कर दिखे। तूफान फिर भी न भिन्न लगे। अट्टारक आनन्दपूर्णने 'आदीश्वर कर्ण' में बालक आदीश्वरके नीमर्षका वर्णन करते हुए लिखा है 'देवनेपान्त यमो-यमो देवता जाता है। उसके हृदयमें बहु बाहक अचिन्तापिन्न भावा जाता है।' १ जर्णु वह तूफान का अनुभव नहीं करता। और वे जैन जब अपने शिव को नहीं देख पाते तो उसके प्रतीका-वस्त्रपर बैठे रहते हैं। दिन और रात देखते रहते हैं जिनमें काफ़ी ही शांति है। चिन्तु बुद्धनी नहीं क्योंकि शिवमिन्नकी लक्षक पाहें निरन्तर देखते रहनेकी शक्ति होती है। महात्मा आनन्दपूर्णने लिखा है कि मार्गको निहारते-निहारते आँखें स्थिर हो गयी हैं। जैसे कि लोगो समाधिमें और मुनि ध्यानमें होता है। विद्योपवी बात विनये बही जाये। नववीं ती ममबान्धा मुन देखनेपर ही शान्ति हो सकती है २

“यस्य निहारत कोचने इय काली अछोका।
आली सुत समानि मी सुनि ध्यान लछोका ॥
कीन सुपे किनहुं कहु किम माहुं मी लोका।
तेन सुत बोडे हके मेरे मयका ओका ॥”

हिन्दीके जैन कवियोंमें हृदयमें ॥ आनन्दपूर्ण के वर्णनकी बात अनेक बार बही है। उन्हें उसके देखनेसे एक चरम आनन्दकी अनुभूति मिलती है। उनके रहनेसे यह जीव स्वर्ग भी परमात्म बन जाता है। आनन्दनिसम्पने 'महानन्दिर' में लिखा है “अप्य किंहु अकार्णहि आर्णवा हे। कद महि द्रव अर्णु।” ३ कवि विद्यानाथने विद्याशारङ्ग्य में लिखा है कि ‘बहु देहों के मध्य ‘एक कव ‘बुद्धिबन्ध’ निरन्तर विद्यमान है, जो मुख पुष्पापर देवता है। उसे परममुख मिलता है। ४ अट्टारक पुनःपुनः भी ‘वस्त्रधारक’ में “देह भीतर चिम अप्य

१ आदिकविबुद्धादि ज्ञान-काल-ह नैटर पाह।

जिम जिम निरन्तर हरणह हिमकह तिम निम भाह ॥

आदीश्वरकाय, आदिराजकायकारकी कल्पितिका मति १६वीं पृष्ठ।

अकरकाल सद्य जग्यात्मकानुसारमरतन कर्म १६वीं पृष्ठ।

२ आनन्दनिसम्प, महानन्दिर आनन्दकायकारकी कल्पितिका मति, टीका पृष्ठ १६।

३ विद्याशारङ्ग्य, विद्याशारङ्ग्य, विद्याशारङ्ग्यकार की कल्पितिका मति, टीका पृष्ठ १६।

सरूप छद्म रूप माहि रहि भिम अप । सिखा है ।^१ जन्मोने देहके भीतर रहने वाले 'अमुक्त जप्पा' के दर्शनसे परमानन्द प्राप्त होनेकी बात तो एकाधिक बार लिखी है । कवि ब्रह्मरीपने ब्रह्मात्मबाबनी में स्पष्ट हो कहा है 'जि नीकै धरि भनि महि देखै सो दरसन होइ सबहि समु देखै' । पाण्डे हेमराजने उपदेसबोहासतक' में लिखा है कि बटमें बसे निरंजनदेवके दरसनसे ॥ सिधयेत' मिथ्या है जन्मना नहीं ।^२ कवि बनारसीदासका कथन है कि बटमें रहनेवाले इस परमात्माके रूपको देखकर महा कपलत नकित हो जाते हैं । उसके घड़ीरकी सुगन्धिसे अग्य सुगन्धियाँ छिप जाती हैं ।^३

'आत्मराम' के दर्शनसे भक्तकी बेचन हृदयके भीतर हो आनन्दकी अनुभूति नहीं होती । अपितु उसे समुची पृथ्वी भी आनन्दमय दिखाई देनी है । त्रिहस्त्रीपसे आये हुए रत्नसेनकी जब नागम्तीने देखा तो उसे पूरा विश्व हृत्-भरा दिखाई दिया । बनारसीदासने भी प्रिय आत्म'के दर्शनसे प्रवृत्तिमानको प्रफुल्लित दिखाया है । आनन्दरायने तो सब जगह बसन्त फैला हुआ देखा है ।

भगवान्‌के दर्शन में असीम बल है । दर्शन मात्रसे ही सभी मंगोकामनाएँ पूरी हो जाती हैं । अतः बीन कवि विनेश्वरको चिन्तामणि और कल्पवृक्ष-रूपसे सम्बोधनास सर्वत्र सम्बोधित करते रहे हैं । किन्तु 'दर्शन से भौतिक सुख पानेका अधिक रूपन बीन संस्कृत स्टावामें उपलब्ध होता है । द्वितीयके बीन कविमोने आध्यात्मिक आनन्दपर ॥ अधिक बल दिया है । यद्योविक्रमजीने अपने 'शास्वनास्तोत्र' में लिखा है,

'कल्पद्रुमोऽथ कश्चितो लोके चिन्तामणिमया ।
प्राप्य कर्मजड' लघो मन्त्रार्थ लय दर्शनम् ॥
झीनते सकलं पारं दर्शनम विनेश ! ते ।
एवमा प्रकीर्तते किं न लघुकितेन हविर्भुजा ॥

- १ उत्पत्तारहूवा मन्दिरकोत्तिनाग जगपुरकी हलसिपिन मनि, २२वीं चौपरी ।
- २ मन्दरीन ब्रह्मात्मबाबनी, पञ्चना हृत्पञ्चमीका मन्दिर, जगपुर प्रत्यक्ष म ११४ पक्षों पर ।
- ३ कोटि जगम की तब तपै मन बल काय समेत ।
मुदागम जगुनी बिना क्यों पावै सिधयेन ॥
पद्मैरद्वैतारण्यक कबीरजीका मन्दिर, जगपुर गैहन नं ३३६ १०वीं श्रेणी ।
- ४ बनारसीदास ब्रह्मात्मप्रदीप, ७वीं पृष्ठ ।

सम्रा और बुद्धशानिवा भी ध्यान नहीं रहता था। इधर कबी तीर्थचरवा ग्राम ही हुआ है कि एन्ट टफ्टशी म्बाकर निरसने लगा। तुष्ट नहीं हुआ तो तत्समनेष बारन कर लिये। तृप्ति फिर भी न मिल सको। अट्टारक आनभूषण 'बादीरवर प्यु' में बाकक बादीरवरके गोमर्दका वर्णन करते हुए लिखा है 'देवनेवाया क्मो-ययो देवना जाता है उसके हृदयमें बहु बाकक अधिवाधिक भाग जाता है।' बाकी वह तृप्ति का अनुभव नहीं करता। और ये नैज जब अपने प्रिय को नहीं देख पाते तो उससे प्रतीक्षा-रूपर बिठे रहने हैं। दिन और रात देखने रहने बाँधे ताक ही बाणी है किन्तु बुझनी नहीं क्योंकि प्रियमित्रनकी कलक कन्हें निरन्तर बेचन रहनेको पालि देती है। महारवा आनन्दचनने लिखा है कि मानको निष्पट-निष्पट बाँधे निरर हो गयो है। जैसे कि बाणी समाधिमें और मुनि ध्यानमें हीना है। वियौनकी बात विचछे बड़ी बाये। मनको तो भयवान्का मुन देखनेपर ही धानि हो सकती है।^१

“यंच निहारत कंचले इग कागी अटोका ।
 ओगी सुरत समाधि में सुनि ध्यान हटोका ॥
 ओन सुनै किरहुं कहुं, किम मीहुं में लोका ।
 तेरे मुख धनै हके मी मनका लोका ॥”

हिन्दीके नव-मन-काव्यमें जैसे आनन्दचन के वर्णनकी बात अनेक बार नहीं है। कन्हें उसके देवनेसे एक बारन आनन्दकी अनुमति मिलती है। उनके वर्णनसे वह जीव इक्ष्व भी 'परमात्म बन जाता है। आनन्दचनने 'महानन्दिर' में लिखा है 'अप्य विन्दु न जानहि जागृहा रे। बट मदि देव कर्णट ?' कवि विद्यासागरने विद्यापारअप्य में लिखा है कि 'बहु देहों के अप्य 'एक रूप 'सुनिर्वत' बिन्देव विद्यामान है जो मुख बुझकर देवता है। उसे परममुख मिलता है।' अट्टारक धुमचनने भी 'तत्पसारहुहा' में वह मीचर तिस अप्य

१. बाहिनियुक्तक अमरह अलकह बैजर पाइ ।

प्रिय प्रिय निरकह तरपह हियह प्रिय प्रिय पाइ ॥

बादीरवरप्य, चापेटाक अन्तरकी हलकिटि मति १९९० कप ।

आनन्दचन सयह अप्यअप्यमसारनमरअन कर्म १९९० कप ।

२. आनन्दचन, महानन्दिर अन्तरकाक अन्तरकी हलकिटि मति तीसरा कप ।

४. विद्यापार विद्यापारअप्य नि कैरअकअन्तर दूरी, अन्तर में १९९० कप ।

सक्य हुए रूप माहि रहि त्रिम जय । किन्ना है ।^१ जन्होंने देहके भीतर रहने वाले समुत्त जप्पा के दर्शनसे परमाण्व प्राप्ति होनेकी बात तो एकाधिक बार किन्नी है । कवि ब्रह्मदीपन अध्यात्मवाक्यी^२ में स्पष्ट ही कहा है 'जै नीकै परि धरि मरि देखै तौ बरसनु होइ सबहि समु देखै' । पाण्डे हुमरावने उपदेशदोहासतक^३ में लिखा है कि घटमें बसे निर्जगदेवके बरसगसे ही 'सिबपेट' मिळता है बम्बबा नही ।^४ कवि बनारसीदासका कथन है कि घटमें रहनेवाले हम परमात्माके रूपसे देखकर महा रूपवस्तु कहित हो जाते हैं, उसके शरीरकी मृगन्मिसे अन्य मृगन्मियाँ छिप जाती हैं ।^५

आत्मराम के दर्शनसे भक्तको बसत हृदयके भीतर ही आत्मत्वकी अनुभूति महीं होती अपितु उसे समुची पृथ्वी भी आत्मत्वमय दिखाई देनी है । सिंहमन्त्रीपसे जाये हुए पल्लवके लव नागमयीमें देखा तौ बस पूरा दिख हृद-मर। दिखाई दिया । बनारसीदासने भी प्रिय आत्म^६ के दर्शनसे प्रकृतिमात्रकी प्रपुल्लिखित दिखामा है । ज्ञानतरावम तो सब जगह बसत लेना हुआ देखा है ।

ममवाक्यके 'दर्शन' में असीम बल है । दर्शन मात्रसे ही सभी मनोबामनाएँ पूरी हो जाती हैं । जत जैन कवि विनेत्रको चिन्तायनि और कल्पवृक्ष-जैसे सम्बोधनोंसे सर्वत्र सम्बाधित करते रहे हैं । किन्तु 'दर्शन' से भौतिक सुख पानका अधिक कथन जैन संस्कृत स्तोत्रामें उपलब्ध होता है । हिन्दीके जैन कवियोंने आध्यात्मिक आत्मपर ही अधिक बल दिया है । महाविजयजीने अपने 'पार्श्वनाथस्तोत्र' में लिखा है,

“कल्पवृक्षोऽयं कश्चिदपि छिने चिन्तामणिमवा ।
प्राप्त- कामघट- सखो वज्रमर्त- तप दर्शनम् ॥
क्षीयते सकलं पापं दर्शनम त्रिवेदा ! ते ।
सुखा प्रकीर्णते किं न कश्चितेन हविर्मुखा ॥

१ लक्ष्मणदेव मणिरमोक्तान्त कवपुरकी इल्लसिदिग मणि, २१वीं बीपरी ।

२ अक्षरान्त अध्यात्मवाक्यी, कल्याण लालकरीब मणिर कवपुर गुप्तम न ११४ ४२वीं पृष्ठ ।

३ शोचि जनम ली तव ली मग बग काय समेत ।

मुदातम अनुमी विना क्यों पावै सिबपेट ॥

उपदेशदोहासतक, कवीकन्दलीका मणिर, कवपुर पैरम नं ३३६, १२वीं दोहा ।

४ बनारसीदास अध्यात्मवार्तिक, ७वीं पृष्ठ ।

यहाँ कवि बापके छायके जिस दुष्मके छदयकी वक्ष्यता कर रहा है वह पुनः पौत्राधिक धन-मन्त्रि और रोगछयसे अधिक सम्बन्धित है। हिम्मीक कवि पौत्राधिकारमें वैयक्त इतना ही बता कि भयवान्के वर्णनसे जिस दिग्गज आनन्दकी अनुमति होती है, उसके समस्त सांसारिक भुवज्य आनन्द तो अरपविन दीप है।

भक्तिस अंगोंकी सार्थकता

भक्ति म समर्पणका भाव प्रधान होता है। मन्त्र करने जीवनकी सभी सार्थक मानता है। जब वह भयवान्के चरचोपर समुचा बह आया। चरचोपर बह आनेका उत्तरमें यह नहीं है कि मन्त्र करनी बलि दे दे। आपे चरचर तान्त्रिक सम्प्रदायमें ब्रह्मो भक्तिके रूपमें स्वीकार किया गया। यह समर्पणका वह कुरी विह्वल व्याख्या की। यद्यपि तान्त्रिक सम्प्रदायका प्रभाव जैन वैश्वोपर दिखाई देता है, किन्तु वह बलि और मांस मद्यका एक नहीं पहुँच पाया है। जत जैन मन्त्र कविमें आपनेकी समर्पण तो किया किन्तु बलिमें रूपमें नहीं। जैन मन्त्रके सम्पन्नमें एक निराका सीम्बल था। उसने अपने प्रत्येक अंगकी सार्थकता सभी मानी जब वह जितनेकी बलिमें लम्बित हो। आपास सम्पन्नमन्त्रे स्तुतिविद्या में लिखा है, प्रका बड़ी है, जो तुम्हारा स्मरण करे फिर बड़ी है। जो तुम्हारे पैरपर चित्त हो जन्म बड़ी है। जिसमें आपने पाद-पञ्चरा आधय लिया गया हो आपके मन्त्रमें अनुरक्त होना ही मायका है। बानी बड़ी है, जो आपकी स्तुति करे और चित्त वह ही है, जो आपके समस्त शुभा रहे।” बप्पमह मुरिने भी “जिनस्त वप्पम् मे जिहा है” “वे बाँखें नहीं जो आपका दर्शन नहीं करती वह चित्त नहीं जो आपका स्मरण नहीं करता वह बानी नहीं जो आपकी गुणोकी नहीं बाँती और

- १ प्रजा सा स्मरतीति या तव चिरस्तवधर्मं ते पदे
जन्माह कर्म्म पर धर्माणि अवाप्ति ते पदे ।
माङ्गल्य य त वो रतस्तव मते नीः तेव वात्वा स्तुते
ते वा मा प्रकला जना । अमयुषे वैवाधिवैवस्य ते ॥
जुनिमिच्छ ११२५ स्तोत्र ।

- २ न तानि वज्जुपि न वीजिटीकवसे न तानि जेनासि न वीजिचित्पसे ।
न ता गिरी वा न वरुणि ते पुष्पाय ते शुभा वे न वज्जमाप्तिना ॥
जैन-प्रमाणेन तानावेवतामिना साधारणमित्यन्तम् १२५ स्तोत्र ।

में पुन नहीं जो आपके सहारे न टिके हों । 'सद्योविजयन पार्श्वनाथस्तोत्र' में श्री बर्मसूरिने श्रीपार्श्वजिनस्तवनम्' में और आनन्दमागिषय गणिन 'पार्श्वनाथ-स्तोत्र' में इसी विचारोको प्रकट किया है । हिन्दी कवियोंने भी इस धरत परम्परा-को अपनाया । कवि आनन्दरायका एक पद इस प्रकार है

“रे जिय जनम काही कोह ।

चरण ते जिन भजन पहुँचे दान दें कर अह ॥१॥

उर सोई आमें क्या है अब कबिर को रोह ।

जोम ली तिननाम गाथी सौँव सो कर लेह ॥२॥

झौल ते जिनराज दूरी और झौँल अह ।

अबन ते जिन भजन भुनि छुम लप लपै सो देह ॥३॥

सफक लन हह भौँति है ही आर भौँति न कह ।

है सुखी मन राम ग्यावा कई सदगुरु यह ॥४॥

कवि मनरामके मनराम-विकास में भी ऐसे ही एक पदकी रचना हुई है । उन्होंने लिखा है कि वे ही नेत्र सफक है जो निर्द्वन्द्वका वर्तन करते हैं । तीस लभी सार्धक है अब जिनैश्वरके समस्त भुके । बड़ी पदनाकी सार्धकता है जो जिनैश्वरके सिद्धान्तको सुनते हैं । जिनैश्वरक नामको अपनेमें ही मुखकी घोसा है । वचन हृदय बड़ी है जिसमें भम बसना है । हाथोंकी सफकता प्रभुको प्राप्त करवमें ही है । चरण लभी सार्धक है, अब वे परमात्मके पदपर बीकते हैं ।

‘शैव सफक निरपै छु निर्द्वन्द्व लोस सफक नमि ईसर साबहि ।

अबन सुफक जिहि छुनत सिद्धान्तहि सुखस सफक अपिउ जिन लोबहि ।

हिदौ सफक जिहि धर्म वसै भुव करन सुफक पुम्बहि प्रभु पार्श्वहि ।

चरण सफक ‘मनराम’ बई गनि ले परमारम क पद बाबहि ॥”

शैव मनवतीदासके ‘पंचैश्वर्य सहाय में प्रत्येक इन्द्रियने अपनी प्रशंसा यह कहकर ही की है कि मेरे-छाया बीसी मनवत्प्रिय सम्पन्न ही सकती है अन्यसे नहीं । एक स्थानपर श्रीमने कहा ‘जामहि तैं अपत रह जगत जीव जिन नाम । असु प्रसाद तैं सुख कही पार्श्व उत्तम राम ॥” इसी भाँति जीबना वचन है कि जीवने जिनम्ब विम्ब और प्रतिमा देव बिना इस जीवना वस्याय सम्भव नहीं है । साक्षात् यह है कि पंचैश्वर्य सहाय में प्रत्येक इन्द्रियकी सामर्थता मनव

१. आनन्दर लपक कलकता १९०५ पृ. ४ ।

२. मनराम विकास मन्दिर दण्डिबान अरपुर मेहन नं. ११५, ६ नो ५५ ।

यहाँ कवि पापके लयसे बिल पुष्पके लयकी वर्णना कर रहा है यह पुन पोषाधिक धन-सम्पत्ति और रोपधर्मसे अधिक सम्मन्वित है। हिन्दीके कवि प शौक्तरामन केवक इत्यादि कहते कि भगवान्‌के लक्ष्मणसे जिस विष्णु आत्मन्‌की अनुकृति होती है, उसके समान साधारण सुखबन्ध आत्मन्‌ तो अत्यधिक पीन है।

भक्तिसे अर्गोकी सार्वकस्या

‘भक्ति न सर्वत्रयथा चाथ प्रचलन होता है। यस्त अपने जीवनको ठीकी सार्वक मानता है। जब यह भगवान्‌के चरचोपर समुचा बह जाय। चरचोपर बह जानेका तात्पर्य यह नहीं है कि यस्त अपनी बक्ति है है। जाने बहकर तान्त्रिक सम्प्रदायमें भक्तिको भक्तिके रूपमें स्वीकार किया गया। यह समर्पणवाले पक्षकी विद्वत् व्याख्या थी। यद्यपि तान्त्रिक सम्प्रदायका प्रचार जैन वैश्वामोपर बिछाई देता है। हिन्दु यह बक्ति और मातृ-भक्त्य तक नहीं पहुँच पाया है। जत जैन भक्त वैश्वामोने अपनेको समर्पित तो किया। हिन्दु बक्तिके रूपमें नहीं। जैन भक्त समर्पणमें एक निरात्म शौन्धव्य था। उसने अपने प्रत्येक अङ्गकी सार्वकता ठीकी मानी जब यह जिनैन्द्रकी भक्तिमें लक्ष्मीन हो। जाचार्य समन्तमहने स्तुतिविद्या में लिखा है प्रजा नहीं है, जो तुम्हारा स्मरण करे धिर नहीं है, जो तुम्हारे पैरपर बिनत हो बन्ध नहीं है जिसमें आपके पाद-गदका आयय किया गया हो आपके मलय अनुरक्त होना ही भवस्थ है, नाथी नहीं है जो आपकी स्तुति करे और ध्यान वह ही है जो आपके लक्ष्य सुख रहे।’ वृष्णमह सूरिने भी ‘जिनस्त वनम् में लिखा है’ ‘वे जो नहीं हैं जो आपका दर्शन नहीं करती वह चित्त नहीं जो आपका स्मरण नहीं करता वह नाथी नहीं जो आपके गुणोंको नहीं माँगी और

१ प्रजा सा स्मरतीति वा तथ धिरस्तथावर्त ते परे
वर्गमात्र कर्षणं चर भवमिदं जगामिदं ते परे ।
माङ्गल्य च स जो रतस्तथ मर्त नीः जैन मात्मा स्तुते
ते वा ना प्रणता बना क्रमयुगी देवाधिदेवस्य ते ॥
स्तुतिविध्य २२६वीं स्तोत्र ।

२ न तानि यस्तपि न वैनिरीदयते न तानि चेनाति न वैविचिन्वते ।
न ता गिरी वा न वरमिदं तुषात्र ते गुणा ये न भवन्तमाभिदा ॥
जैन-भाष्यार्थ शास्त्राचार्यभाषितान् साधारणभित्तवन्तम् इति स्तोत्र ।

य पुण नहीं जो आपके सहार ॥ टिके हो ॥ यथोक्तिप्रयत्न पाश्चनामस्तोत्र में भी धर्मभूरिज श्रीपास्वजिनस्तवनम् में और आनन्दमानिक्य गधिन 'पाश्चनामस्तोत्र' में इन्हीं विचारोंको प्रकट किया है। हिन्दी कवियोंने भी इस तरह परम्परा-को अपनाया। कवि धानतरायका एक पद्य इस प्रकार है^१

“र जिन जनम साहा कह ।

चरम ते जिन भजन पहुँचै दान है कर कह ॥१॥

उर मोई जामैं दया है अरु अगिर को रोह ।

ओम सा जिननाम गाथे सोचि सा करि मेह ॥२॥

औंछ स जिनराज देखि औरि औंछे खेह ।

अबन स जिन बचन सुनि ह्रुम सप तपे सो रह ॥३॥

सकल सग रह मूर्ति है ही और मूर्ति न केह ।

है सुखो मन राम ज्योती कहि सदागुह पेह ॥४॥

कवि मनरामके मनराम-विश्वास में भी ऐसे हैं। एक पदकी रचना हुई है। उन्होंने लिखा है कि वे ही नेत्र सफल हैं जो निरंजनका रहस्य करते हैं। पीछे अभी साधक है अब जिनके समग्र भुक्त। उन्हीं परमात्माकी साधकता है जो जिनके सिद्धान्तको मुक्त है। जिनके नामकी अपनम ही मुखकी रोमा है। सत्ता हृदय बरी है जिसमें धर्म बसता है। इरादाकी सफलता प्रभुकी प्राप्त करनेमें है। है। चरम अभी सार्यक है अब वे परमार्थके पथपर पीड़ते हैं।^२

भौन सफल निरपेक्ष निरंजन सीत सफल नमि ईसर झाबहि ।

अबन सुफल जिहि सुख सिद्धान्तहि सुख सफल अपिपु जिन मांभहि ।

हिन्दी सफल जिहि धर्म बरी भुक्त करन सुफल पुण्यहि प्रभु बाबहि ।

चरम सफल 'मनराम' कहि गलि अ परमारम के पथ बाबहि ॥

भैया भगवतीबासके 'पञ्चेन्द्रिय संसार' में प्रत्येक इन्द्रियने अपनी प्रार्थना यह कहकर की है कि मरे-द्वारा बीसी घनबाह्यनि सम्पन्न हो सगती है। अन्यसे नहीं। एक स्थानपर जीमन कहा 'जीमहि तैं अपन रहि जगत जीव जिन नाम। जमु प्रमाद स सुख कहि पाथे उत्तम काम ॥ इन्हीं भाँति आँखना बचन है कि जानते जिनके बिम्ब और प्रतिमा देखे बिना इत जीवना बन्धना सम्भव नहीं है। सारास यह है कि 'पञ्चेन्द्रिय संसार' में प्रत्येक इन्द्रियकी सार्यपता भयद

१ धानतराय समग्र कम्पकता १९१५ पृ. ४।

२ मनराम विद्यास भक्तिर आभिधान जयपुर वेदमाला १९२५, ८ वी पृ. १।

भक्तिमें ही बानी गयी है। जयराम ओषराज विनयविनय देवावहू और कर
बन्धके बरिमें भी यह ही बात है।

मण्डिक लिए मनको चेतायनी

कबीर जाति निर्गुनिय सत्तोनी साक्षियों और पदोंमें चेतायनी की शक्ति
प्रसूत है। इस शब्दसे मन या चेतनको संसारके माया-बोहदे साधकान् किया गया
है। उसका उत्तरमें यह ही है कि वह मन संसारके जाकमें बँधा है। उसे चाहिए
कि वहसि निकलकर ब्रह्मकी शक्तिमें लस्यीन हो। चेतनकीबानी बात जैन और
बौद्ध-साहित्यमें अधिक मिलती है क्योंकि वे दोनों ही सम विरहितप्रधान हैं।
वेसे ही जैन प्राकृत संस्कृत और अवप्रसंगके धर्मपरक काव्यमें वीराम्बदा स्वर
ही प्रकट है। हिन्दु धर्ममें चेतनको सम्बोधन कर रहे बड़े हिन्दीके पद्य-साहित्य
बैदा कास्त्रिय नहीं है। बौद्धोंके सिद्ध साहित्यमें भी नहीं है।

कवि भूवरदास जैन पदांके प्रभावपुष्पके लिए प्रसिद्ध हैं। जैन जीव या
चेतनको सम्बोधन कर सिधे पदे उनके पद्य आध्यात्मिक छरस हैं। एक पदमें उन्होंने
लिखा है, “यह संसार रैनवा छपना है। तन और मन जानीके मुक्तबुद्धेन सम्यन
हैं। जीवनका कोई मरोटा नहीं। यह जन्ममें तुम्हके डेरणी नाति जक जायेना
बुझपी और करक बुझक किने छिरपर कहा है, तु जाये मनमें फूना हुआ क्या
छम्स छा है। कयेगर बुझक रनकर बोहूषी पिछाचने ठेठि बुझिनी काट
दिया है। जठ है जीव। बुझिके छिरपर बूझ डालकर भी राजमटीवरका
भजन कर।”

‘जैदा’ के पद्य ठेकसिधतासे लक्षणीय हैं। उन्होंने जनेक पदोंमें चेतनको
बधारी फटकार दी है। उन्होंने एक शब्दनामे लिखा है, “करे ओ चेतन।”

१. जयकल भजन क्यो नूजा रे।

यह संसार रैन वा छपना तन मन बारि कबुछा रे ॥

इत बोधक का बील जरोछा जाक में तुम नूजा रे।

जाक बुझार किने छिर झाडा क्या समझी मन नूजा रे ॥

वीह पिछाच कन्धी मति पारी सिध कर जँव कबुछा रे।

मन थी राजमटीवर भूवर, वो कुरबानि छिर नूजा रे ॥

भूवरमितास, कम्बुछा, २१वीं पृ.।

बनारिकाल व्यतीत हो गया गया तुझे अब भी चेत नहीं हुआ । बार दिनके किए ठाकुर हो जानेसे गया तु पतियोंमें भूमता भूम गया है । तू इन्तियोंके संग क्या मगा हुआ है । तू चेतनहारा होकर भी चेतन क्यों नहीं ?" सीमाको फटनारोंका बन्ध नहीं है । वही तो वे कहते हैं 'हे चेतन ! तेरी मति बिखने हर ची है । तू अपन परम पदको क्यों नहीं समझता । वही कहा 'हे चेतन ! उन दुःखोंको ब्रह्म पदे अब नरकमें पड़े संकट सहते थे अब महाराज हो गये हो ।' अन्तमें समझाते हुए कहा^१

'मगधंत मन्त्रो सु तन्त्रो परमाद् समाधि क संग में रंग रही ।

अहो चेतन त्याग पराद् सुषुप्ति, गही निज शुद्धि ज्यों सुखल लहो ॥"

जाने ही पटमें बड़े विद्वान्त्रको यह चेतन देख नहीं पाता । अब देखता ही नहीं तो भक्ति कैसी ? किन्तु इसका कारण क्या है ? कारण है माया । बैन साहित्यमें मायापर बहुत कुछ लिखा गया है । मायाका सम्बन्ध मोहनीय कर्मसे है । बाठ कर्मोंमें मोहनीय प्रबलतम माना गया है । मोहके कारण ही यह जीव भटकता फिरता है । मोह और माया पर्यायवाची शब्द हैं । वहीरने भी मायाको स्वीकार किया है । वहीरने बटमें बिराजे रामचो न देख पानेमें भी माया ही कारण है । बैन कहियोंने मायाको 'ठगनी कहा है क्योंकि वह समूचे संसारको ठगकर खा जाती है । जो इसपर विश्वास करता है, वह भूल पीछेसे पछताता है ।^२ वहीरने मायाको महाठगनी कहा है क्योंकि उसके आत्मसे ब्रह्मा बिष्णु और महेश भी बच नहीं सके हैं ।^३ इस मायाके बचानके लिए देवावतान एक

१ बैबल रूप बिराजत चेतन ताहि बिलोकि अरे पठवारै ।

काक बनादि विटीन भयो अजहूँ तोहि चेत न होत कहा रे ॥

भूक्ति पमो गति को फिरको अब तो दिन ध्यारि भये ठकुरारै ।

सादि कहा रह्यो अखनि के संग चेतन क्यों नहि चेतन हारै ॥

महाविनास रामचोपटी २ सर्ग, पृ २६ ।

महाविनास ब्रमावतार वलि, २०वाँ अध्याय २१वाँ पद पृ २१६ ।

२ महाविनास, रामचोपटी २ सर्ग पद २१ ।

३ सुन ठगनी माया हैं सब अण ठग जाया ।

दुष्ट विद्वान्त्र बिया जिन सरा ली भूद्वय निछाया ॥

भूद्वय राम भूद्वयविनास २०वाँ पद पृ २१ ।

४ माया महाठगनी हय जानी ।

निरगुन पतिनि लिये कर डोली बोली भपूरी जानी ॥

कबीर, सरद सम्प्रदायपर दिव्येनी हरि सम्पादिन, दिल्ली पृ ६२ ।

शक्तिमें ही मानी गयी है। बपराम ओकराम विनयविजय बेबाबू और कन
बाबूने पद्योंमें भी यह ही बात है।

मन्त्रिक लिए मनको बेताबनी

कबीर बाबू निर्गुनिये सन्तोंकी साक्षियों और पद्योंमें 'बनारसी की मर्प'
प्रमुख है। इन सबमें मन या बेतनको संसारके माया मोहसे सावधान किया गया
है। उसका तात्पर्य यह ही है कि यह मन संसारके जादूमें फँसा है। उसे बाह्य
नि बहुते निरवधार बहानी शक्तियों लक्ष्मी है। बेताबनीवासी बात ईश और
बीड़-साहित्यमें अधिक मिलती है। क्योंकि ये दोनों ही मन विरक्तिप्रधान हैं।
कैसे तो केन प्राकृत संस्कृत और अपर्यक्तके शक्तिपरक काव्यमें बेराध्यता स्वर
ही प्रबल है, किन्तु इनमें बेतनको सम्बोधन कर रचे गये हिन्दीके पद्य-साहित्य
मेंसा सम्बन्ध नहीं है। बीड़ोंके सिद्ध साहित्यमें भी नहीं है।

कवि भूवरदास कान्हे पद्योंके प्रभावशाली कवि प्रसिद्ध हैं। मन और या
बेतनको सम्बोधन कर किसी गये उनका पद्य आश्चर्यकर सरल है। एक पद्यमें उन्होंने
लिखा है, 'यह संसार रैनका सपना है, तन और मन वालीके बुझबुझके सम्पन्न
है। मोक्षका कोई तरीका नहीं यह अग्निम तूषके डेरकी मर्तिन जल बापमा
बुझपी और काळ बुझाक किसी धिरकर काड़ा है, तू जगमें मनमें फूला हुआ क्या
सम्पन्न रहा है। कन्हेवर बुझाक रनकर मोहकनी विद्याबने ठीरी बुझिके काळ
दिवा है। जग है बीव! कुर्मतिके धिरपर बून डाककर भी राजमतीवरक
मनन कर।'

'मैवा' के पद्य ऐकस्वित्तसे सम्बन्धित हैं। उन्होंने अनेक पद्योंमें बेतनको
कटाई कटकार दी है। उन्होंने एक सर्वप्रथम लिखा है, 'जरे जो बेतन।

१. जगमल बरन कही मूना रे।

यह संसार रैन का सपना तन मन धारि बनूषा रे ॥

इन मोक्ष का कील बरोका बाधक में तूष पूना रे।

काळ बुझाक किसी धिर टाया क्या सम्पन्न मन पूना रे ॥

मोह विद्याब कन्ही मति मारी मित्र कर बँध बनूषा रे।

जग भी राजमतीवर भूवर, जो कुर्मति धिर बूना रे ॥

भूवरविद्याब कन्हेवा १२४१ कर।

जनादिवास व्यतीत हो गया क्या तुम अब भी जेत नहीं हुआ। बार दिनके किए ठाकुर हो जानसे क्या तु गतियोंमें घूमना भूल गया है। तु इन्द्रियोंके संग क्या गया हुआ है। तु जेतनहारा होकर भी जेतना क्यों नहीं^१। भैयाको पत्तारोंका भजन नहीं है। नहीं तो वे कहते हैं 'हे जेतन। तेरी मति किसने हार ली है। तु भजन परम पदको क्यों नहीं समझता। कहीं कहा 'हे जेतन। उन दुःखानो भूल पड़े अब मरकम पड़े संघट सहते वे अब महाराज हो गये हो। अन्तमें समझाते हुए कहा^३

मगर्भत मज्जा सु सज्जा परमाद् समगति के संग में रंग रही।

जहो जेतन त्याग पराह सुखदि गहा विज सुखि ग्यों सुखत मही ॥”

जाने ही बटमें बसे विवालयको मनु जेतन हैन नहीं पता। अब देखता ही नहीं तो जकिन कीसी? किन्तु इसका कारण क्या है? कारण है माया। जैन साहित्यमें मायापर बहुत कुछ लिखा गया है। मायाका सम्बन्ध मोक्षनीय कर्मसे है। आठ कर्मोंमें मोक्षनीय प्रबलतम माना गया है। मोहके कारण ही मनु जीव बटवता फिरता है। मोह और माया पर्यायवाची शब्द हैं। जमीरने भी मायाको स्वीकार किया है। जमीरके बटमें विराजे रामको न देख पीनेमें भी माया ही कारण है। जैन जयियोंमें मायाको ठगनी कहा है क्योंकि वह समूचे संसारको झगड़ सा जाती है। जो इसपर विश्वास करता है वह मूर्ख पीछेसे पछताता है।^४ जमीरने मायाको महाठगनी कहा है क्योंकि उसके आससे बहाना बिष्णु और भूदेव भी भ्रम नहीं सक है।^५ इस मायाके बचानके लिए देवाब्रह्मने एक

१. वेबल टय विराजत जेतन ताहि विनीकि अरे मयवारे।

काम जनादि विपीन मजो अजहूँ लोहि जैन न होत कहा रे ॥

भूमि मयो मति को फिरको अब तो दिन व्यापि मये ठगुरारे।

कामि कहा रह्यो जलनि के संग जेतन क्या नहि जेतन हारे ॥

मन्दविनास रामचन्द्रोत्तरी, ५ सर्वाक्ष ५ २१।

२. मन्दविनास रामचन्द्र वलि २ सर्वाक्ष २१ सर्वाक्ष ५ २१५।

३. मन्दविनास, रामचन्द्रोत्तरी २ सर्वाक्ष ५ ३२।

४. मुन ठगनी माया हैं सब जय ठग साया।

दुक विवास दिया जिन तरा सो मूरख निछाया ॥

भूवरनाम भूवरविनाम सर्वाक्ष ५ ३२।

५. माया महाठगनी हम जानी।

निगुन पाँति निवे कर शोनी शोनी मचुरी जानी ॥

जरीर मरद सत्सुखनार विवेदी हरि सज्जन दिन्यी ५ २२।

बाबनिपाका निर्माण होना रहा है। जैन हिन्दी-कवियाने उनका अधिकाधिक निर्माण किया। उनमें अक्षितपरक अनुक्रम पाच सन्निहित है। जयराज जलोकी मुमबाबनी' हीरागन्ध मुनीमकी 'अध्यात्मबाबनी' पाण्डे हेमराजकी 'हितोपदेशबाबनी' पं मनोहरदासकी 'विद्यामणि नामबाबनी' विनयकी 'अक्षराजबाबनी' जिनरंगमूरि की 'प्रबोधबाबनी' लक्ष्मीवन्धनकी 'ब्रह्माबाबनी' और 'सर्वमाबाबनी' किशनसिंह की 'बाबनी' निहालचन्दकी 'ब्रह्माबाबनी' और भवानीदासकी 'हितोपदेश बाबनी' बाबनी साहित्यकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। हेमराजकी 'अक्षराजबाबनी' का एक पद्य इस प्रकार है

‘जयराज निरमल चित्त प्रभु नित्य सच रे ।
प्याह्ये सुखक प्याह पानीये कैचक रयाह
चरण कमल नमिष श्री जहमेच रे ॥
हाथा की कुमति हरि जीब हैं सुमति धरि
पूजिमे अ सुख भाव भगवत हेच रे ।
मेमिक रावण काच पूजिमे अ भगवान
पूजार्थ की श्रम पद् कही ततवेच रे ॥
हेमराज मणई सुनि सुणी सजन जन मन
मनो उमण्यो है श्रिय गुण साधनो ॥ १ ॥

जैन हिन्दी काव्यमें 'घटक' का प्रचलन कम था। १. पद्याकी रचनाको घटक कहते हैं। पद्य १ से कुछ कम बड़ भी हो सकते थे। पाण्डे कवचन्द का 'परमार्थी शोहाघटक' और भवानीदासके 'फुटकर घटक' का चस्केब इस ग्रन्थ में हैं। मैयाके परमारमघटक में मावयास्मीर्यके साथ सन्नासकारोका शोभ्य भी उपलब्ध है। घमक और वनेपका खूब प्रयोग हुआ है। पाण्डे हेमराजका 'उपदेश-शोहाघटक' शोभान बनीचन्दकीके मन्दिर (अयपुर) के सारत्रमन्दारमें उपलब्ध हुआ है। भवानीदासका 'फुटकर घटक' बनारसके रामघाटके एक आजीन जैनमन्दिरमें मिला है। बहुतरियाँ तो घटजोसे भी कम रची गयीं। समूचे जैन हिन्दी काव्यमें आनन्दचन्दकी 'आनन्दचन्द-बहतरियाँ' और श्री जिनरंगमूरिकी 'रंघ बहतरियाँ' ही बहतरियोंके नामसे रची गयी हैं। अन्य कृतियाँ भी हो सकती हैं। किन्तु वे अभी तक मज्झारानी खोजका विषय हैं। आनन्दचन्दबहतरियोंमें भक्ति और अक्षरमका समन्वय है। उनके पद्य भावविमोहता और सरसताके लिए प्रसिद्ध

१. हेमराजकी 'अक्षराजबाबनी' इल्लिप्रिज ६३१ वर जैन मन्दिर जयपुरमें भेज दी है।

परमें लिखा है कि बीसे बादीगरका बन्दर बादीनरके कहनेपर बारम्बार नाचता है, बीसे ही यह जीव मायाके आदेशपर नृत्य करता है।^१ कवि स्वयम्भवे अघ्यात्म धर्म्या' में कहा है कि हे मुड़ जीव ! महाभायाके बसीभूत होकर तुझके सम्मुख नमन नहीं कर पाता।^२ महात्मा आनन्दधनने आनन्दधनबहुरी' में लिखा है कि हे चेतन ! तुम मायाके बसमें हो बंध हो अतः अपने ही हृदयमें विराजमान धमताकवी आनन्दको प्राप्ति नहीं करते।^३ धानतरामने माया धमतासे पीछा हुआकर इस बाबरे मनको अरिहंतका स्मरण करनेके लिए कहा है।

‘अरहंत सुमर अब बाबरे ।

ज्यादि काम पूजा एवि माई, अन्तर प्रभु की काव १ ॥

बुचपी पब अब सुत मित परिवच गब तुरंग रब काव १ ।

बह संसार सुपन की माया जालि जीव विलराव रे ॥

ज्यान्-ज्यान् रे अब है बाव रे बाही मंगल गाव रे ।

धानर बहुत कहाँ कौ कहिय, केर ब कहू उपाव रे ॥”

बावनी और शतक आदिमें जैन भक्ति

मध्यकावीन हिन्दीके जैन भक्त कवियोंने बावनी शतक बत्तीसी और छत्तीसी आदि रूपोंमें अपने नाम अभिलेखन किये हैं। जैनोके संस्कृत-प्राकृत साहित्यमें ऐसी रचनाएँ अपेक्ष्य नहीं हैं। जैन हिन्दी कवियोंमें भी इनका प्रचलन जन्म ही हुआ है। गारुडबहीके अक्षरोंकी छेकर सीमित पद्योंमें काव्य-रचना करना हिन्दीके जैन कवियोंकी अपनी विशेषता है। ॥ शीकतरामका लिखा हुआ ‘अघ्यात्म गारुडबही’ नामका एक बृहत् काव्य शतक वि जैन मन्दिर बड़ौठके प्राचीन शास्त्रगुह्यारमें उपलब्ध हुआ है। यह शतक आठ अध्यायोंमें विभक्त है। इसमें लगभग आठ हजार पद्य हैं। गारुडबहीके प्रत्येक अक्षरको छेकर लिखा पद्य इतना बड़ा पुनश्च काव्य जैन हिन्दीकी अनन्य देन है। गारुडबहीमें बावन अक्षर होते हैं। अधिकशः रूपमें प्रत्येक अक्षरको छेकर एक-एक पद्यकी रचना कर

१ महाभक्तिजी अभिरामकेका एक प्राचीन ग्रन्थ ‘मोक्षार्थरसदि नाचने’ पर देखिय ।

२ यह महाभायाबाई की न बहू धनमुख नमन’ जन्मदास्तकेय नन्दिर बनी कन्द बभुरकी हस्तलिखित मणि ज्योती पद्य ।

३ आनन्दधनबहुरी परममुन्दमानकनकवत रत्नी, १२वीं पद ।

एक भी स्वान ऐसा नहीं है जहाँ पतिको पत्नीके किए व्याकुल दिखाया गया हो।

सूरदास याद्वि सगुणपाराके भक्त कवियोंके सहस्रों परामे-से किसी-किसीमें पद्य-पुष्पक तो रूपक है किन्तु इनकी कोई ऐसी समुची रचना नहीं जो रूपक संज्ञासे समिहित होती हो। शैव कवियोंकी अनेक कृतियाँ समुचे रूपमें 'रूपक' हैं। इनमें पाण्डे जिनरासका 'मालीरासी' लक्ष्मणराज अतीका 'वैद्यविरहिणी प्रबन्ध' कवि सुन्दरदासका 'चर्मसहेली' पाण्डे रूपचन्दका 'सटोलना पीठ' हृदकोणिका 'कर्महिन्दोक्तना' बनारसीदासका 'माँझा' लक्ष्मणराजका 'बरखाबडपई एवं 'सिद्धरामको विदाह' और भैया भववतीदासका 'सुभाबसीरी और चेतनकर्म चरित्र' प्रसिद्ध रूपक काव्य हैं। कवि बनारसीदासका 'नाटकसमवसार' एक उत्तम रूपक है। इसमें सात उत्पन्न अभिनय करते हैं। शीब नामक और मनोव प्रतिनायक हैं। ऐसी सरल कृति हिन्दीके जगत-काव्यको एक अनूठी रत्न है।

सूरदासकी भाँति शैव कवियोंके परामे-से एक-एकमें भी 'रूपक' समिहित है। भूवरदासके 'मेरा मन सूखा जिन पद पीँछे बसि बार काव न बार रे' 'जगत जन जूना हारि बडे' 'चरला चकटा नहीं चरला कुभा पुराबा' दामोदरदासके 'परम गुह्य बरसत ज्ञान हरी' 'ज्ञान सरीवर सोई हा अभिजन भैयाके 'कनका बगरी जीबमृग अप्युर्जम अतिबोर में करकोका सम्वय है। शैव कवियोंके रूपक अधिकारातया प्रकृतिये लिखे गये हैं। अतः इनमें सौन्दर्य है और शिष्टत्व भी। वे निपुणिए छत्ताकी भाँति कलाहीन भी नहीं हैं। देवादासके एक पदमें शैव और सुमतिकी होछोछे सम्मिश्रित एक रूपक देखिए

चेतन सुमति सखी	मिळ होवों बेको प्रीतम होती ॥१॥
समस्तिय जग की	चौक बजायी समता कीर मरायी जो।
शोच मान की करो दो	मिथ्या होव सगल की ॥२॥
स्वान स्वान की कवी-	लौटा भाव सुझावो जो।
आठ करम को चूरक	गुलक यदायी जो ॥३॥
जोव दवा का गीत	म माव बैचावो जो।
बाजा सत्य ब-	क बोली गावो जो ॥४॥
दाव छीक लीं	ना करो मिटाई जो।
'देवात्मक' वा शक्ति	आवा जोड़ी जो ॥५॥

एक भी स्थान ऐसा नहीं है, जहाँ पतिको पत्नीके लिए व्याकुल दिखाया गया हो।

सूरदास आदि समुदायकारोंके अनेक कवियोंके सहस्रों पद्योंमें-से किसी-किसीमें पुरुष-पुरुष तो कम है किन्तु समझी कोई ऐसी समुची रचना नहीं जो रूपक संज्ञासे अभिवृत्त होये हो। बैंन कवियोंकी अनेक कृतियाँ समूचे रूपमें 'रूपक' हैं। उनमें पाण्डे बिनवासका मालीरासी जयराज अलीका 'वैद्यविद्विषी प्रवन्द' कवि सुन्दरदासका बमसहेली पाण्डे रूपचन्दका छटोसभा नील रूपकीर्तिका 'कर्मद्विषोक्त्या' बनारसीदासका 'माँसा' जयराजका 'बरखाचठपई एवं धिबलमयी विवाह' और भीमा भयवतीदासका 'सुभावतोषी' और 'चेतनकर्म चरित्र' प्रसिद्ध रूपक काव्य हैं। कवि बनारसीदासका 'नाटकसमसार' एक उत्तम रूपक है। इसमें सात उत्पन्न अभिनय करते हैं। बीच नामक और जयव प्रतिनामक हैं। ऐसी सरस कृति हिन्दीके भक्ति-काव्यको एक अनूनी देन है।

सूरदासकी भाँति बैंन कवियोंके पद्योंमें-से एक एकम भी 'रूपक' अभिवृत्त है। सुन्दरदासके 'मेरा मन सूना जिस पक्ष पीछे बसि पार काच न बार र' 'बगल मन जूना हारि बडे' 'चरला चकला नाही चरला हुआ पुराना' चालतपसके 'परम गुण बरसत ज्ञान झरी' 'ज्ञान सरोवर सोई हो अभिजन भीपाके "काया बगरी जीबनुष जप्यकर्म अविमोर' में काकोरा सौम्य है। बैंन कवियोंके रूपक अभिजाततया प्रकृतिते किये गये हैं। अत इतने सौम्य हैं और चित्रत्व भी। वे निर्गुमिए सन्तोकी भाँति ककाहीन भी नहीं हैं। बैनासके एक परमे चेतन और सुमतिकी होसोसे सम्मग्नित एक रूपक देखिए

“चेतन सुमति सली निक दोनों केका प्रीतम होरी ॥१॥
समकित मठ की चौक बग्याची समता नीर सराबी जी।
अध मान की करो पोटकी ली मिथ्या दोष भगवि जी ॥२॥
स्वान भ्रान की ल्यो पिचकारी ली लोट भाव बुझायो जी।
नाठ करम को चरख करिकै ली कुमति गुलाक बड़ायो जी ॥३॥
बीब दया का नील राग सुनि संजम भाव बैबायो जी।
बाबा सत्य बचन ने बीको ली रूपक बाँयो गायो जी ॥४॥
दास लीक ली मेधा की क्यौं तपस्या करो मिठाई जी।
‘दैवागड’ वा रति पाई ली लीमन बच काया बीड़ी जी ॥५॥”

जैन भक्तिके विद्यासु स्तम्भ प्रबन्ध काव्य

हिन्दीके जैन कवियोंने अनेक महाकाव्योंका निर्माण किया है। इनमें त्रिलोक श्रवण उनका प्रमुख मन्त्राङ्गी भक्ति ही मुख है। जैन अवधरगके महाकाव्योंमें प्रभावित होते हुए जो हिन्दीके जैन भक्ति-काव्याय कुछ भागी विशेषतः भी हैं। अथ प्रथम महाकाव्य स्पष्ट करके जो भाषोंमें विभक्त किया जा सकते हैं। स्वप्नभूता 'पद्मचरित' मुखरत्नका 'महापुरुष' और कविका 'अम्बुधामिचरित' और हरिश्चन्द्रका 'गदिपद्मचरित' पौराणिक शैलीय तथा जनपाठ जनकद्वयी भक्तिसमय तथा मुखरत्नका बाबकृष्णचरित और नयनचन्द्रिका मुखरत्नचरित' रोमांचक शैलीमें लिखे गये हैं। यद्यपि रोमांचक शैलीके महाकाव्योंका भी मुख्यतः भक्ति परक ही है, किन्तु इनमें कुछ और प्रेक्षका अभिनिवेश भी बीच नहीं है।

हिन्दीके जैन महाकाव्योंमें पौराणिक और रोमांचक शैलीका सम्मिश्रण हुआ है। उदाहरण 'इन्द्रधनुचरित' ईश्वरसूरिका 'कलियापचरित' ब्रह्मपुत्रमन्दका मुखरत्नपुत्र कवि परिमलका श्रीपादचरित' माककविता 'मोक्षप्रबन्ध साक चन्द्र अम्बादमका 'पद्मिनीचरित' रामचन्द्रका 'सीताचरित और मुखरत्नका 'पार्श्वपुत्र' ऐसे हैं। महाकाव्य है। इनमें 'पद्मिनीचरित' की बादसीके 'पद्मावत' के और 'सीताचरित' की तुलसीके 'रामचरितमानस' में तुलना की जा सकती है। अथर्विष्ट महाकाव्योंमें भी कथाके साथ भक्तिका स्वर ही प्रबल है।

जैन महाकाव्योंकी दूसरी विशेषता है बीच-बीचमें मुखरत्न स्तुतिमाली रचना। यदि महाकाव्य तीर्थंकरके जीवन चरितमें सम्मिश्रित होता है तो पवनत्वात्मकके बलपूर्वक स्तुतिमाला निर्माण होता ही है। अवधरगकी प्रेरणा हिन्दीके महा काव्याय इन स्तुतिमालों रचना अधिक हुई है। मुखरत्नका 'पार्श्वपुत्र' में वर स्तुतिमाला है। ठीक प्रसंगपर विरक्त होनेके कारण उनका बहुत छोटा-सा रचनाकी रचनाका उत्प्रेरक पात्र और भी बत जाना है।

तीसरी विशेषता है इन महाकाव्योंका अल्पम अध्याय जिसमें नायकके वैदिकज्ञान प्राप्त करनेका भावपूर्ण विवेचन होता है। वहीं नायककी आत्माके परमसम्बन्ध होनेकी बात कही जाती है। इनकी जीवन्मूर्त परमात्माके साथ साक्षात् सम्बन्ध होता कहते हैं। उस समय अन्त और बाह्य आकाशकी स्थिति पर्याप्त अवसर मिलता है। अर्थात् कविनी आनुकूला मुखर हो उठती है। इन समय कविके मुखर जो कुछ विवक्षित है, वह आत्माके परमात्मककी उपासना

ही होती है। इस भाँति जैन महाकाव्य समुह सरल और निमग्न निरुद्ध को भक्तिके रूपमें ही रचे गये हैं।

हिन्दीके जैन चण्डिकाव्य अधिवाँछतया नमिनाथ और राजीमतीकी कथासे सम्बन्ध है। यद्यपि नमिनाथ विवाहके तोरचक्रारसे बिना विवाह हिमे ही वैराग्य केसर तप करन जैसे गये थे किन्तु राजीमतीने उन्हींको अपना पति माना और उनके निराहमें निरुद्ध रहने लगी। अतः उनके जीवनसे सम्बन्धित चण्डिकाव्यमें प्रेम-निवर्तिका पर्याप्त अवसर मिला है। उन्हीं केकर जैनकवि प्रेमपूज साहित्यकी भाषाकी अनुमति करते रहे हैं। इस दृष्टिसे ये काव्य रोमांचक कहे जा सकते हैं, किन्तु उनमें युद्धबाजी बात नहीं है। हिन्दीके नमिनाथपरक चण्डिकाव्यमें राजसेनारमुरिका 'नमिनाथकाव्य' सोमसुन्दरमुरिका 'नमिनाथनरसफ़लसु कवि ठकुरसीकी ममीसुरकी बेकि बिगोरीछासका 'नमिनाथ विवाह' मतरंग को नमिचन्द्रिका' ब्रह्मरायमस्तका 'ममीस्वररास और अक्षयराज पाटनीका 'नमिनाथपरित प्रसिद्ध काव्य-रचनार्थ है। हिन्दीमें हरिबंसपुराण भी है जिनमें ममीस्वर और उनके भाई बासुबेब इज्जत का समुदाय जीवन बनिष्ठ है। हरिबंस-पुराणोंकी परम्परा बहुत पुरानी है। हिन्दीके हरिबंसपुराण संस्कृत-अवतंसके अनुवाद-भर है। उनमें कोई मौलिकता नहीं है। किन्तु साब हो यह भी सब है कि हिन्दीके चण्डिकाव्य-जैसी सरसता और सुन्दरता संस्कृत और अवतंसमें नहीं है।

जैन भक्तिको धान्तिपरकता

कवि बनारसीबाबने 'धाम्ति' की रचराम कहा है। उनका यह कथन जैनके अहिंसा सिद्धान्तके अनुबन्ध ही है। जैन भक्ति पूजकसे अहिंसक है। जैनतर भक्तिमें हिंसाकी बात नहीं है भी आरम्भ हुई है किन्तु भी अवश्य। वैदिक धार्मिक अपने देवताओंको प्रणम करन के लिए बलि दिया करते थे। धर्म-पूजाके साथ हिंसाकी बात भी नहीं। सोमनाथके धर्मिके मन्दिरमें भाद्रपदीकी अमावसकी रातमें एकछो योद्धा पुँजारी सुन्दरी कथाओंकी कविता का प्रसिद्ध ही है। धार्मिक-धर्ममें अहिंसक बोध भी मान सहित और सुन्दरीसे निर्वाण-प्राप्ति मान उठे थे। जैन देवता धार्मिक-पूजक प्रभावित

अवश्य है। हिन्दु कात माँठ और बहिरा तक नहीं बढ़ सको है। जैन मतधर्मके 'सोपानाहु' आदि धर्मोंमें सात्विक-युगके नित्यम वाद पावे जाते हैं। फिर भी जैनमतिन आदि बहु पंचपरमेष्ठीसे सम्मन्विता हा आदि पक्ष आदि देवताओंसे अवका वपावती आदि देवियोंसे हितासे परिचित् भी कभी भी प्रभावित नहीं हुई। जैन मन्दिर और अन्य भक्ति-स्वक सर्वत्र अहिंसाके निरूपण वन रहे। हिन्दीके जैनमतिनपरक काव्यमें सात्विक पक्षोंका अभाव तो है ही हिन्दीके कविमेंसे मत्वाचित्वाधी वपावती आदि देवियोंकी वन्दना भी अत्याधिकम्प ही की है। जैन हिन्दीके सभी प्रकाश वाच्योंका प्रारम्भ सरस्वतीकी वन्दनासे हुआ है। सरस्वती ही उनकी दृष्टिसे है। मुक्तक काव्योंमें भी सरस्वतीकी पुष्प स्तुतिमाँ रची गयी है। सरस्वती देवोको जैन कविकाने वास्तविकी प्रतीक-के कर्म ही प्रस्तुत किया है। बनारसीदासकी सरस्वतीकी स्तुति-वन्दनाका एक पक्ष इस प्रकार है,

समाधान रपा अन्ता अछवा अनेकान्तवा स्वाहादाहुमुहा।
जिवा ससवा हाहादाही अताभी नमो देवि बागोदरी जैववाभी ॥
अकोपा अमाता अङ्गमा अकांमा अन्तज्ञातकपा मतिज्ञानघोमा।
महावाचकी भावना मध्यमार्गी नमो देवि बागोदरी जैनवाभी ॥”

भक्तिसे जेवमें असात्विकता वृत्त का कारण है विचारिता। जैन साहित्यकारोंने विमलसका सम्मान भक्तिसे नहीं बोझा। जैन-साहित्यमें कोई मध्यमाचरण ऐसा नहीं मिलने अवश्यतासे मुद्रापणोंका वर्णन ही। श्रीगोविन्द की राजा और 'रिद्वेमिचरि'की रामकर्म बृहत्तर है। नेमिनाथ और रामकर्म सम्मन्विता सभी जैन काव्य विरह-काव्य है। इनमें रामकर्म विरहका वर्णन है। रामकर्म विरहिकी भी उक्त कविता को उक्तके लिए वैराग्य कारण कर उप करने विरिनापर वक्त गया था। अत्र उक्तका विरह कामका पर्यायवाची नहीं था। उक्तमें विरहिकीका वक्त भी नहीं है। नेमिनाथ और रामकर्म केकर कविने नये मध्यमाचरण सात्विकतासे ही संयुक्त है। वृत्तों और 'गीतगोविन्द' की राजाकी मुक्त विचारिताको रवीन्द्रनाथ टागोरने भी स्वीकार किया है। गीतगोविन्दने भक्तिकाव्योंमें असे श्रृंगारकी स्थान विद्याया। हिन्दीके कवि विद्यावतिनी राजा भक्तिसे स्थानपर विद्यावतिनी ही प्रतीक है। उपपर गीतगोविन्दका स्पष्ट प्रभाव है। हिन्दीके जैन महाकाव्योंमें गीता अत्रना और

रामुसका स्तम्भर्य है, उसका प्रेम और विरह भी किन्तु सब कुछ मोलके ऐसे तानेमें बँधा है जिसे छट्ठीछटा नहीं तोड़ ही नहीं सकती। जहाँतक मुक्तक काव्योंकी वाग्म्यपरतिका सम्बन्ध है, वह जेठन और गुमतिके बीचमें ही चकटी रही। जबकि हिन्दीके जैन कवियोंने वाग्म्यपरतिका सम्बन्ध भीतिक क्षेत्रसे जोड़ा ही नहीं। सब कुछ व्याख्यात्मक हो रहा। उसे प्रकट करनके लिए जिन रूपबोली रचना हुई उसमें भी बिस्मयिताकी स्थान न मिला। उपमा और सत्प्रेषार्थ भी मांसल प्रेमके क्षेत्रसे न हुईं यहीं।

अद्यात्मिका तीसरा कारण है राग। राग मोहजो कहने हैं। जैन लोग मोक्षमार्ग कर्मजो सबसे बड़ा मानते हैं। उस पाटनमें सबसे अधिक समय लगना है। उसके बट जानेपर वह बीच परम आत्मिका अनुभव करता है। जैन लोग बीतरायणी उपासना करते हैं। बीतरायणीकी भक्तिसे ही समूचा जैन साहित्य बरा पड़ा है। जैन हिन्दी काव्यमें तो सबसे अधिक राग छोड़नेकी बात कही गयी है। बीतरायी प्रभुपर भी भक्त इसीलिए रोया है कि वह रागजो बीतरकर ही प्रभु बने है। जैन भक्त कवि अन्य क्षेत्रोंकी उपासना इसीलिए नहीं कर सका कि

‘दिये-देखे अगलक देख राग रिम लौ मरे।

काहू के संग कमिनि कोऊ न्यसुखबान लरे ॥

छानछानमें भी ऐसा ही बीतरायी भगवान्की प्रार्थना करते हुए कहा है कि हमने तीनों भक्तोंकी छान डाला है आपके समान कोई नहीं देखा। आप स्वयं तरे और संसारके जीवोंकी तारा ममता कारण नहीं की। और देव रात्री हेरी भयबा मानी है तुम रामुसको जोड़कर बीतरायी बने हो^१

‘तुम समान कोऊ देख न देखवा तीन भक्त कापी।

आप तरे भवजीवनि तारे ममता नहिं धानी ॥

और देख सब रागी होवा कामी कै मानी।

तुम हो बीतराय अइबाकी तत्रि राहुक रागी ॥



१. भूवरानि भूवरानिभ्यम् कणकता २१/१२ ५ १५।

२. प्रकृत्याप्य कामिनीर समस कणकता २२/१२ ५ १।

तैन भक्त कवि जीवन और साहित्य

१ राजसेखरमूरि (वि सं १४ ५)

राजसेखरमूरिका काव्य प्रकाशनालय काव्य कुसुमों हुआ था । ये भी ठिठक मूरिके छिन्न थे । श्री ठिठकमूरि अथयदेवमूरिकी परम्परामें हुए हैं । अथयदेव नामके सात मूरिकर मिल-नियत पञ्चकोमें ही चुके हैं । प्रस्तुत अथयदेव हर्षपुरीय बज्जके मूरि थे इनका समय बारहवीं सताब्दीका पूर्वार्ध माना जाता है । श्री राजसेखर भी कोटिबज्जकी श्रीमध्मन साखाके हर्षपुरीयबज्जसे सम्बन्धित थे । इनका बिस्व मकनारी का ।

श्री राजसेखरमूरिके 'प्रबन्धकोष' की रचना ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी वि सं १४ ५ में दिल्लीमें रहकर की थी । 'प्रबन्धकोष' संस्कृत बज्जा म्हात्तपुत्र इत्य है । इनके उपरान्त ही उन्होंने बीवरकी 'भारतकन्दली' पर एक नीतिशास्त्री रचना की । उनके 'विमोदकपाद्योद्भूति' में अनेक रस-मद कथावाक्य संकल्प हैं । 'विमिनाथ पदार्थ' उनकी एक प्रसिद्ध हिन्दी कृति है ।

१ मुनि कुरुविजय उपाधिन, कैलानी सम्प्रदाय स्वयं माध, प्रकाशना ६ २६, बम्बेसाह सन् १९९२ ई ।

२ श्रीप्रकाशनालयके कोटिबज्जनामनि पत्रे अथयदेविते ।

श्रीमध्मनप्रकाशनालय हर्षपुरीयामिने मन्त्रे ॥

मकनारिबिस्व विदित श्री अथयदेवमूरि सन्ताने ।

श्रीठिठकमूरि छिन्न मूरि श्रीराजसेखरके अग्रणि ॥

राजसेखरमूरि, प्रकाशनालय, ६ १९६८, गान्धिविजेन वि सं १९९१ ।

३ अथयदेवमूरिका पत्रे (१४ ५) ज्येष्ठामुनीबज्जकसन्तानाम् ।

मिन्नाग्रमिर्ष साध्व्य श्रीबज्जकोषोः गुण उपायान् ॥ कपी, ६ १९११ ।

मोहनराज कुरुविजय देवदर और राजसेखरके अग्र १ पृष्ठ १० बारहपिन्नी, बम्बे, वि सं १९९१ ।

नेमिनाथ कागु

दी मोहनकास बुझीचन्द देसाईने 'नेमिनाथ कागु' का रचनाकाल वि० सं० १४ ५ के लगभग स्वीकार किया है।^१

'नेमिनाथ कागु' में २२वें तीर्थकर नेमिनाथ और राजकुली कथाका काव्य मय निबन्धन हुआ है। नेमिनाथ कुम्हले छोटे भाई थे। जूनागढ़के राजा उग्रसेन की कन्या राजमयी (राजकु) के साथ उनका विवाह निश्चित हुआ। बापठ वाली किन्तु मोक्ष पदार्थ बननेके लिए एवमित्त किये गये पशुओंके कश्यप-कश्यपसे ब्याह होकर उन्होंने वैराग्य के किया। वे विरिन्नाएवर उप करने वाले गये। राजकुने दूसरा विवाह नहीं किया और नेमिनाथके मन्त्रिपुत्र विरहमें समूचा जीवन व्यतीत कर दिया।

'नेमिनाथ कागु' २७ पद्यांका छोटा-सा काव्य-काव्य है। इसमें नेमिनाथकी मन्त्रिपुत्री ही प्रधानता है।^२ दुस्योको चित्रित करनेमें कवि निपुण प्रतीत होता है। विवाहके लिए सभी राजकुने विधमें समीपता है। राजकु बन्धकछात्रीकी भाँति बोपी है। इसके धरीरपर बन्धनका डेप है। सीमन्तमें तिल्लुरकी रेखा चिनी है। गवरवी कुंजुमका ठिकठ आकार विद्यमान है। मोतिपोंके कुण्डल कानोंमें सुधीमित है। मुक्त-कमल पानकी काजिमासे रखा है। कण्ठमें हार पड़ा है। कंधुकीमें कसा जीवन और कसपर पड़ी विकसित माका हावमें कंधक और कानकटी मन्त्रिपुत्री बुझीचन्द जैसे भाव भी राजकुका विवाहोत्साह फूटा पड़ता है। उसकी भावपीका 'कनुसुनु' और पायजेवकी 'रिमसिम' तो भाव भी कानोंमें पड़ रही है। दावसे काल हुई उसकी जाँई मनमें विरासित पतिको देख रही है।^३

१ श्री ड १९।

२ सिद्धि बेहि सह बर बरिज ते तिल्लवर नमैनी ।
कागुबनि पतु नेमि जिनु गुण पाएसज नैनी ॥१॥
राजल देविसजं सिद्धि पयज सो देख धुणीआई ।
मकहारिहि रामसिंहार सूरि निज कागु रची आई ॥२७॥

३ किम किम राजमयेवि तन्त्र सिधपाह जनेवज ।
बपइमोरी कइमोई नमि बंधनु कैवज ॥
जुपु भराविज जाइ कुमुम कसूरी सारी ।
सीमंतह तिल्लुरेह मोतीछरि सारी ॥
गवरवि कुंजुम ठिकठ किम रयण ठिकठ तनु जाके ।
मोती कुंजल कवि विष विधासिज कर जाके ॥

पञ्चमणी टीका 'राधाभुवनिनि' में वर्णित राधारो योमास वहुन पुछ
बिलसी-जुमनी है । बीनो हो उपास्य मुद्रिते बाधित है ।'

२ सप्ताह (वि सं १४११)

'सो सप्ताह पञ्चमई सरसुनि' के अनुसार कविना नाम 'सप्ताह' हीना बाँधिए,
हिन्दु कविनाच स्वभावर सप्ताह' परम्परा होता है, अतः यही टीका लगता है ।
सप्ताह अष्टमास कालमें उत्पन्न हुए थे । उनके पिताका नाम साह मद्राचम और
माताका नाम मुक्कमु या ओ मुक्कवह (मुक्कवनी) थी । व एरण्य नगरमें रहते थे ।'

नरहित्य कज्जकरीह नयनि मुह वमलि लंबीलो ।
नाभोरर कटलठ कंठि अनुहार बिरोको ॥
भरवर बाहर कंचुपठ कुह पुम्कह माका ।
करे कंचय मधि-वकठ भूह कज्जकावह बाका ॥
रमुसुमु रघुसुमु रघुवरै कठि बाधरिवाली ।
रिमसिमि रिमसिमि रिमसिमिरे पयमैठर कुपली ॥
नहि ककलठ ककलठ के ओपुद विमिठि ।
अंजडिपाळी राममड विठ ओ बह मगरठि ॥

श्री इन्द्रीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्यका आरिवाल, ५ [३] पन्ना १६२९ ई

१ श्री, ५ १२।

२ कवरवाकनी मेरी जाति पुर अपरीए मुद्रि कनपाति ।

श्री वि कैमन्धिर लीकनजी (कस्तुर) के कनकरवाकनी प्रति, वैष्णव सं
११२, १७२ ई १७८० ।

३ मुक्कमु कचनि मुक्कवह घर बरिठ

सा मद्राचम बरह कवनरिठ ।

एरण्य नगर बसते बाधि

मुक्कवह बरिठ नह रविठ पुछाम ॥

श्री १७० ई १७८०,

मुक्कमु कचनि मुक्कवह घर बरिठ

साह मद्राचम बरह कवनरिठ ।

एरण्य नगर मठ नगर बसते बाधि

मुक्कवह बरिठ नह रविठ पुछाम ॥

श्री कैमन्धिर लीकनजी का दिल्ली, राजाप्रसाद, वि सं १९६ की किस्की
हुई प्रति ७०० ई १७८० ।

आमनके लिये भी मिक नये हैं। मित्र पुत्र नहीं आया। बनिमयी बेचन है।
 सब यह है कि पुत्र का पुत्रा है, पर बनिमयीको विधित नहीं हो पाया है। माँकी
 यमजानिधिनि आरनाआको नमिन चिमनत् अहित किया है,

“बन बन करिनि कहूँ अवातल बन बन सौ आबहुँ आपास ।
 मोल्हा नारह कछाड बिकल आन लाहि बर आबहुँ पूत ॥
 के सुनि बचन कह समान, त सबई पूरे सहिनाम ।
 प्यारि आबठे हीन कहे अकछाडक हीन कीचरे ॥
 सुखी बारी बरी सुनीर, अपन दुपक भरि जाये बीर ।
 तह करिनि मन विमल मथल पते अछापारि उहाँ पचड ॥
 नमस्कार तब करिनि कराह, बरम बिरहि लूहा उचराह ।
 करि आबहुँ सौ बिकल करेह, कल्प सिधायलु बैसन देहु ॥
 समावान पूरई समुदाह, बाह भूतल-भूतल बिकलाह ।
 सखी बूझाह जगह सार, बैचन कहुँ म कावहुँ बार ॥
 बीचन करन उठी तलिनी सुहृद मथन अना धर्माली ।
 बाहु न बुराह बूझि पुँबाह, बाह भूतल-भूतल बिकलाह ॥

इस व्याख्यात्मक मूलम्बर मलिनमय है। स्वान-स्वावपर मलिनके दृष्टान्त
 उपलब्ध होते हैं। एक बार प्रद्युम्न बीकास पर्यनपर मिक-बीरमाक्योकी मन्त्रना
 करने गये। उनकी ज्योति रलीके कथन समझती थी। प्रद्युम्नने उनकी अहङ्गमते
 बुझा की और बारत बँके जाये।^१

तीर्थकर बेकियावकी बेवकजान उत्पन्न हुआ। उनके कथनबहरनये सुरेन्द्र
 बुनीन्द्र मथनवाली देव जाये। बीहृष्य तथा हृष्यर भी पहुँच गये। बीहृष्यने
 स्मृति आरम्भ की। हे नाथको बीतयेवाले तुम्हारी बय हो। तुम्हारी नुर, समुर
 बैवा नरुँ है। हे देव। तुम्हारी बय हो। कुछ नमोका अय करनैवाके हे देव।
 तुम्हारी बय ही। मेरे जन्म-जन्मक परम है निमेष। तुम्हारी बय हो। तुम्हारे

१ कौ, पृष्ठ १५४-१५५।

२ फिर बेनामे वगैरे बचन निम्हि ज्योति विपद विषय समय ।
 अद्विधि बुझल लूहनु कपड लाहुनि मथन हाकिना आह ॥
 पृष्ठ, पृष्ठ ११ ।

प्रसारसे मैं हम संसार-समुद्रसँ तिर बाढ़ें तथा फिर बापस न बाढ़ें ।^१

जब प्रद्युम्नको नवसंज्ञान उत्पन्न हुआ तो इन्द्रान् स्तुति करते हुए कहा 'हे मोक्षस्वी जन्मकारको बुर करनवाले ! तुम्हारी जय हों । हे प्रद्युम्न ! तुम्हारी जय हो तुमने संसार-बाधको तोड़ डाला है ।'^२ और भी अनेक वृत्तान्त उपलब्ध हैं जिनके आधारपर प्रद्युम्नचरित'को भक्ति-साहित्यकी एक महत्त्वपूर्ण कृति माना जाना चाहिए।

३ विनयप्रभ उपाध्याय (वि सं १७१९)

विनयप्रभ आरतरवल्गुके जीन छाबु बे । उनके पुरका नाम बादा जिनकुसुम मूरि बा । जिनकुसुममूरिका स्तव्यवाच वि सं १३८९ में हुआ उद्युपरायन उनके पट्टपर विनयप्रभ ही अभिष्टित हुए । विनयप्रभ वि सं १३८२ में जीन छाबु ही बुके बे । यह माग्यता ठीक नहीं लगती कि वे वि सं १३९४ और १४१२ के बीच कभी उपाध्याय पदमे विनूयित किये पये।^३ क्योंकि एक प्राचीन पट्टावलीके आधारपर यह प्रमाणित है कि बादा जिनकुसुममूरिन अपने जीवनकालमें ही

१ देवि पवाहिन करिउ बहुत फुनि भावन आरमिउ बुति ।
जय ईश्वर्य आर्यकर बेच तइ मुर बनुर कराय छेव ॥
बाइ कममट्ट दुहु बिचकरण जय बहु अनम-अनम जिनु सरनु ।
तुन पठाइ इठ हुतइ तिरउ भव संसारि नवाहुडि परउ ॥
वही, पृ०-६६६, ६६७ ।

२ बुनइ मुरैस्वर बाभी पवर जय जय मोक्षतिमिर मूर मूर ।
जय कश्यप हुक मति गानु, जाइ तीडिनि आकिस भवपासु ॥
वही पृ० ६६९ ।

३ मोहनलाल कुशीनर बेतारि कैलुवर कविओ प्रमन मान ६ १३ पादटिप्पणी ।

४ Ancient Jaina Hymns, Edited by Dr Charlotte Krause
Scindia Oriental Series No 2 Ujjain 1952 Remarks on
the texts, pp 10

विनयप्रमको स्याध्याय पश्पर प्रतिष्ठित किया था ।^१

‘मौलमरासा’की प्राचीन प्रतिबोमें उसके कर्त्ताका नाम ‘विनयपट कव्याय’ दिया हुआ है ।^२ इसका संस्कृत रूप विनयप्रम स्याध्याय ही है । मिश्रबाबुजीने भी यही नाम स्वीकार किया है ।^३ पं. नाथूरामजी प्रेमीको १५वीं शताब्दीके कर्त्तार्यकी किसी हुई एक प्रति पाठ्यके बख्शारमें मिली थी। उसमें ‘मौलमरासा’के कर्त्ताका नाम चरमचलत दिया हुआ है ।^४ श्री मोहनलाल कुशीबन्द ईसाईमें भी विनयप्रमका बूझरा नाम चरमचलत माना है ।^५ अनुमानतः विनयप्रम साधु बीरनका और चरमचलत गृहस्थबीरनका नाम होगा ।

विनयप्रमकी कृतिषोम ‘मौलमरासा’के अतिरिक्त ५ स्तुतियाँ और हैं। जिनमें विविध तीर्थंकरोंका गुणकीर्तन हुआ है । प्रत्येकमें १९ २९ के अक्षरप पद्य हैं । डॉ. बारकट काउन्सेले सीमन्तर स्वामि स्तवन’को भी भाषाशास्त्रके आधारपर इंग्रजीकी कृति स्वीकार किया है ।^६ इस स्तवनके २ हैं पद्यमें कम्मकद विषयपद छोड़ कर बीरबुद्ध’ लिख है कि ‘विषयपद’ ही इसके कर्त्ता थे । ‘विषयपद’ ‘विनयपद’ बबबा ‘विनयपद’का विगड़ा हुआ रूप है । मिश्रबाबु-विनोदमें ईश्वरक-पद और बीरपद को भी इंग्रजीकी रचना बतलमाया गया है ।^७

१ ‘उवा श्री गुहमि (श्री विनयुच्छकमुरिभिः) विनयप्रमाविधिष्वेव स्याध्यायपदं वत्तं येन विनयप्रमोपाध्यायेन निर्बन्धीभूतस्य निबन्धातु सम्पत्तिविद्बर्ध मन्त्रवर्गिनमौलमरासो विहितः त्वगुणनेन स्वभावा पुनर्जननान् नातः इत्यादि ।

सुरिचारादौ नेमिजालौ मन्त्रिके ज्ञानमन्त्रारो प्राचीन स्यान्ती, कैल्युर्नर कविजो, प्रथम भाग, पृ. १९, पाठसिन्धी ।

२ ईश्वर भुरि अरिहत्त नमीयह विनयपद कव्याय कुशीबन्द ।

मौलमरासा ग्रन्थ, पद्य ४८ कैल्युर्नर कविजो प्रथम भाग, पृ. १९ ।

३ मिश्रबाबु, विनयप्रम किनोद प्रथम भाग पृ. २१२, अक्षरप वि. त. १९८३ ।

४ पं. नाथूराम प्रेमी हिन्दी जैन-साहित्य इतिहास पृ. ६९, जनवरी १९१७ ।

५ कैल्युर्नर कविजो, प्रथम भाग पृ. १९ ।

६ Ancient Jaina Hymns pp 90 91

७ श्री, the texts, pp 124

८. विनयप्रम किनोद प्रथम भाग, पृ. २१२ ।

गौतमरासा

गौतमरासा' गौतम स्वामीकी भक्तिमें लिखा गया है। गौतम भगवान् महावीरके प्रमुख वक्ता हैं। उन्हें भी मोक्ष प्राप्त हुआ था। जैन परम्परामें उनकी पूजा और स्तुतिका बहुत प्रचलन रहा है। संस्कृत और प्राकृतका विपुल साहित्य उनकी भक्तिमें रचा गया है। गौतमरासा' प्राचीन हिन्दीका ग्रन्थ है। इसके अनुसार गौतम मगध देशमें गुप्तर नामके गाँवके रहनेवाले थे। उनके पिताका नाम वसुमति था जो विभिन्न गुणोंसे युक्त थे। उनकी माताका नाम पृथ्वी था।

गौतम स्वामीका पूरा नाम इन्द्रमूर्ति गौतम था। वे समूची पृथ्वीमें प्रसिद्ध थे। उन्हें चौदह विद्याएँ उपलब्ध थीं। वे विमल विवेक विचार और अनेक मनोहर मुण्डोंसे युक्त थे। उनकी छाती पर हाथ प्रमाण था। उनका रूप रम्भा की भाँति था। गौतमके जैन वचन हाथ और चरणोंकी छोटासे पराजित होकर ही कमल जलमें बैठ गये थे। उन्होंने अपने तेजसे हराकर तारावर्ण चन्द्र और सूर्यको आकाशमें भ्रमाया था। उन्होंने अपने कपड़े कामदेवकी धर्तण करके निकाल दिया था। वे मेरुके समान और और समुद्रकी भाँति चम्पौर थे। उनकी चरित उत्तम था।

स्वैताम्बर जैन सम्प्रदायमें गौतमरासा'की बहुत प्रसिद्धि है। श्री मोहनकाळ बुकीचन्द देनाडिने उसकी १८ प्रतिषोंका विवरण दिया है।^१ इससे उसकी लोकप्रियता प्रमाणित है। डॉ० ब्रजदेवे उसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है 'उसमें भक्तिका तीव्रतम भाव छेतीकी निराखी ध्यान और प्रवाहकी मधुर गति छदि दित है।'^२

१ अश्वीनि तिरिभरहृषिति श्रीगौतममहन्,
मगधदेश सैन्य नरेश रिज-रक्षक पंडित् ।
मगध गुप्तर नाम मामु धर्हि पुनममसज्जा
वपु बसे वसुमति तरव वपु पृथ्वी भग्ना ॥
स्वैताम्बरा पत्र २ हिन्दी जैन-साहित्यका इतिहास पृ ३९ ।

२ वही, पत्र ३ ४ ।

३ जैनपुराण भक्तिको, तीसरी भाग, पृ ४१६-४१७ ।

४ Ancient Jaina Hymns pp 91

इसका निर्माण वि. सं० १४१२ में सम्भावित हुआ था।^१ प्राचीन हिन्दी के भक्ति काव्यों में 'बीजमराता' का प्रमुख स्थान है।

सीमन्धरस्वामीस्तवन^२

इन स्तवनों के अनुसार सीमन्धर स्वामी पूर्वदिशे के विह्वलमान बीस तीर्थंकरों में एक है। इनका जन्म पुण्डरीकिनी नामकी नगरी में भरतखेवकी विसं. चतुर्विंशतिका के १७वें तीर्थंकर कुम्भनाथ और १८वें तीर्थंकर बरहनाथ के मध्य-काल में हुआ था। इनका शासन अभी तक रहा है। वे भरतखेवकी आराधना चतुर्विंशतिका के ७वें तीर्थंकर छवय के समय में मोक्ष प्राप्त करेंगे।^३

स्तवन में भक्ति भाव पूर्ण रूप से विद्यमान है। कविने लिखा है कि मंसीरि के उत्तम सिद्धार गवत के टिमटिवाते तारापत्र और समुद्रकी तरंग-मातिका सीमन्धर स्वामी के मुखांका स्तवन करते ही रहते हैं। मरवाना का स्तवन जबून कर्मणि उत्पन्न हुए मल-पटक को बखाने में पूर्ण रूप से उत्तम है। जिननाथ का दर्शन करने से जन्म उत्पन्न हो जाता है, भवान कवाने से लक्ष्मि मिलती है।

“मैकगिरि-सिद्धरि वष-वर्षा को कुमह,
मनभि दाता लखह, बेहूना-कम मिअह।
बरम-भावर-कळे कहति-भाका मुखह,
सोविअहु, सामि तुह परमहा पुनपुअह ॥
उहवि जिन नाह निव जम्म दाऊको-कम्,
विमल-मुह अण अंवाण मंशिअह ॥”

१ गरी १ ६ ; हिन्दी केन साहित्यका इतिहास १ १२५ केन गुर्वर कविने, जन्म मान, पृ. १२।

२ का लक्षण 'Ancient Jaina Hymns' में ६ १२-१२४ पर मन्त्रादि हो चुका है।

३ भरत-खिलमि विरि-मुंय-अर-लंतेरे
जम्म पुंवरिगयी बिअय पुनककवरे।
भाविअ छवय जिन सतमे शिव-अए
बहुअ-नाकेअ, सिद्धि गयी तामिए ॥
करी पृ. ११ १०।

४ Ancient Jaina Hymns, pp 80-90

यस्यैव ह्येकं कर्म मयि पश्यन्ति निजामण
तात करवाणि तुह मयि च बहु गुण ॥१॥

सुर भक्तोंमें यमन पाताल और भूमण्डलमें भगरी पुरी, नीरविधि और
मेघ पतनकुसुमों ऐक-वैविध्योंके समूह नारि-नर और किन्नर सीमन्तर स्वामीके
आवरणपूर्वक भीत पाते हैं

‘सुर भवनि गणनि पायामि मूर्महरे
नवरि, पुरि नीरविधि, मण्ड-पञ्चन कुके ।
ऐक इन्दी गणा नारि नर किन्नरा
तुष्ट अस नाह नायनि सावर परा ॥२॥

ये भक्त भक्त हैं, जिनमें भगवत्प्राप्तिके सब संशयोंको हरनेवाले सीमन्तर स्वामी
विहार करते हैं । भक्तान् कामधट देवमणि और ऐकतर्कके समान हैं । उनका
नाम केने भगवत्से ही सब इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं

‘यस्य ते भवर अहिं सामि सीमन्तरो
विहरन् मणिज्ज अण सत्त्व-संसपहरो ।
कामधट, ऐक-मणि ऐक-तर्क ककिचट
पीड परिओह रहिं सामि तड मिक्किपड ॥३॥

भक्त-कविकी तीव्र इच्छा है कि उसका आगामी कर्म पूर्व विवेहमें ही
विद्यते वह सीमन्तर स्वामीके चरणोंमें बैठकर, उनका विषय उपदेश सुन सके ।
वह वहाँ स्वामीके मुखाके भीम गायिका और उनके चरणोंके ऐकतर्क प्रसन्न होया ।
इसे पूर्ण विश्वास है कि स्वामीके शासनमें दीक्षा केनेसे कम एक आर्यगे और मोक्ष
प्राप्त होया

‘कर तुमक आदि करि भयच तू निसुमिया
नाक जिम ईक रह, पाय तुह वणमिया ।
महुर सति तुम्ह शुभ-गदग हउ गायसा
निज भवनि रुच रोमचिह ओहमा ॥
तुम्ह नामि द्विउ नरज परिपाकिनी
हनिज कम्माणि, ऐक-मिहिं पामियो ॥४॥ १५॥

ममदागरी बलिगै मोग-गद राज-गद चक्री-गद और हृद-गद सभी
बिजुदियाँ ठपमद हठी हैं और परमद भी मिलना है

“मोग-गद राज-गद काव्य-गद मंद
चक्र-गद हृद-गद काव्य परम पर्य।
सुख भरी है सब वि मंगल,
एक मादव्य तुह सबक जमि गजग ७३३॥

इन स्तवनमें हकीकत यह है। प्रथम बीमबी प्रत्येक पंक्तिमें २ भागों
हैं। १ के बाद विराम है। बाबाय हेमचन्द्र छन्दोनुपासकमें इन छन्दों का
भावित दिया है। २ की एक हकीकत काव्यमें है।

स्तवन की भाषा में काव्य है और भाषा में स्वाभाविकता।

४ मेहनन्दन उपाध्याय (वि सं १८१५)

मेहनन्दन के बीजायुक्त काव्य की शिरोरश्मि यह है। शिरोरश्मि काव्य वि
सं १८७५ में छपाक श्रेष्ठ की पत्नी कारकेश्वरी कुमारी प्रह्लादनपुर नामके
नगरमें हुआ था। उन्होंने वि सं १८८२ में शिरोरश्मि कुमारी के पास बीजा
की और उनका नाम सोमप्रभ रखा गया। वह वि सं १८९५ में काव्य
काव्य के पद पर प्रतिष्ठित हुए। शिरोरश्मि कुमारी के जन्म के वि सं १८९५ में
शिरिष और शिरोरश्मि काव्य नाम दिया। शिरोरश्मि वि सं १८९२ में समाधि
पूर्वक स्वर्णनाम हुआ। शिरोरश्मि कुमारी के शिरोरश्मि वि सं १८९५ के
उपराज बीजा की होयी। उनके शिरोरश्मि कुमारी काव्य की रचना वि सं
१८९२ में हुई थी। अतः मेहनन्दन उपाध्याय और शिरोरश्मि कुमारी काव्य
एक ही थे।

मेहनन्दन उपाध्याय की तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं। ‘शिरोरश्मि कुमारी काव्य’
‘शिरोरश्मि कुमारी काव्य’ और ‘शिरोरश्मि कुमारी काव्य’। तीनों ही शिरोरश्मि कुमारी
काव्य हैं। पद्यमें गुरु-मिति और अक्षर-मिति दोनों तीव्र-मिति हैं।

१. Ancient Jaina Hymns, PP 88-90.

श्री मेहनन्दन उपाध्याय, ‘श्री शिरोरश्मि कुमारी काव्य’ श्री अरविन्द मासिक,
पेरियारिकी जैन-काव्य समाज १८८८ काव्य वि सं १८९४।

‘जिनोदयसूरि विवाहछठ’

‘विवाहछा’ शब्दकी व्याख्या करते हुए श्रीधरचन्द्र नाहटाने लिखा है, ‘जीवनके उत्साहशायक अनेक प्रसंगमें विवाह, व्यक्त आनन्द संमेलनका प्रसंग है। इसलिये कवियोंने इस प्रसंगका वर्णन बड़ी ही सुन्दर शैलीमें किया है। विवाहके वर्णन-प्रधान काव्याकी छंदा विवाह ‘विवाहछठ’ विवाहछठी और ‘विवाहछा’ पायी जाती है।^१

इन विवाहका काव्या में बीजाचार्योंका किसी कुमारी काव्याके साथ नहीं अपितु बीजाकुमारी अथवा संनयनोंके साथ विवाह रचा गया है। इस तरह में ‘विवाहछा’ कमक काव्य है। बीजा जिनोदयका साथ बुद्धा और बीजा अथवा ‘संनयनी’ बुद्धिमान है। ‘जिनोदयसूरि विवाहछा’ में भी आचार्य जिनोदयका बीजा कुमारीके साथ विवाह हुआ है। अर्थात् इस काव्यमें जिनोदयके बीजा केनेका वर्णन है। यह एक ललित एवं सरस काव्य है।

गुजरघटाकरी मुन्दरीके हृदयपर रत्नोंके हारकी शोधि पद्मपुर नामके नगरमें एक बार श्रीजिनकुण्डसूरि जाये। वैसे जाने जानक प्रकाशमें सम्मजनोंके मोहान्तरकारकी हृद करनेमें समर्थ थे।

‘अथि गुजरघटा मुन्दरी मुन्दरे अरधरे रथण हाउवमाणं ।
कच्छि केकिहरं नवक पदहणपुरं सुरपुरं वेम सिद्धाम्भियानं ॥
अह अउरवासरे पदहणे पुरवरे अथिज जण कमक वण बोहवणं ।
पपु मिरि ‘जिनकुण्डसूरि’ सुराजमा अथिजके माह विमिरं इरंठा ॥३॥

हैंद खपास अपने परिवारललित सूरिजीकी वन्दना करने गया। सूरिजीन वसके पुत्र समराकी रेलकर कहा कि यह पुम्हाउ समरा कुमार सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त है और सुविचक्षण भी है। मेजोनी जानक केनेवाके अपने इस पुत्रका विवाह हमारी बीजाकुमारीके साथ कर ली।

१ यह, ‘जैन पत्रिकाधिक काव्य मयह’ में, जि म १६६४ में है ॥ ३ ॥ ३ ॥ पर सम्प्रति हो चुका है। इसमें ४४ पद हैं।

२ श्री जलचन्द्र नाहटा विवाह और मंगल काव्याका परम्परा मरलीन साहित्य, डॉ रितना-असल सम्पादित आगरा विश्वविद्यालय दिल्ली विचारार्थ प्रथम अंक, जनवरी १९२३, पृ ६४ ।

‘मह सबक कल्लनं कायि सुविचकलण सूरि बद्रूप ‘समरं कुमारं ।
मचिच तुह मंजुली नचण आर्यवृणो परिणवा सम्ह विवला कुमारी ॥११॥’

इस प्रकार सूरिजीने सम कुमारको जैनदीक्षा पानेके योग्य घोषित किया और भीमपत्नी बने गये ।

कुमार दीक्षा ग्रहण करनेके लिए बारम्बार आग्रह करने लगा तो माने सम्मताया कि तुम्हारे कमरके समान हाथ अनुपम कम और उत्तम बंध है । येष्ट नाट्योके साथ विवाह कर सुखी होगी । मये-मये प्रकारके योगोंका उपयोग करो और अपने उत्तम कायमें हमारे कृकटो कीतिके सिद्धपर आनंद कर दो ।

“तय कमळ हळ कमळ हाथ पाय म पाडकि हेसितडं ।
कवि ज्योत्सम उत्तम बंध परचाविसु वर नारि हंडं ॥
नच-नच मनिहि थंच पचस मंगिचि मया बरकह कुमार ।
अमि-अमि सम्ह कुकि कळसु चडावि हाचि रीचाहिचह कितिवार ॥१७-१८॥”

पुन नहीं माना और अपने आग्रहपर बैठक रहा । तब कुमारके निश्चय को कलानीने जाना और व्याकुल बीबीने मौसु बुककादी हुई बोली कि हे वत्स ! जो कुछ तेरे मनको अच्छा लगे वह कर । इस प्रकार पद्मच कष्टसे स्वीकृति-सूचक वचनोंका उच्चारण कर वह पुर हो गयी ।

“उठ तुमर लिच्छवं जयनि जायेवि
उजहय नयनि नीरं धरंती ।
करिण त वच्छ वं तुम्ह मज भावय,
अच्छय गद् गद् सरि मर्बता ॥२॥

माँकी इन शेषश्रीमें स्वाभाविकता है और प्रसाद भी ।

यह सिद्ध है कि तीव्र मुक्त-भक्तिसे अनुभावित होकर ही कवि ऐसे रस-विह्वल स्वभावो को अंकित कर सका है ।

अज्ञित-क्षाम्तिस्तबमम्

मयवाग् अजिण्णाव जल्लोचनी चतुर्विधविद्याके सूत्रे और पान्तिनाथ सोलहवें तीर्थंकर हैं । श्रीकृष्ण और प्राहुन साक्षित्वमें दोनोंके ही दिक्के-मुक्के बनक

स्तवन है। प्रस्तुत स्तवन भी प्राचीन हिन्दीमें लिखा गया हीनों टीपकरोकी भक्तिका काव्य है।

भक्त कवि एक स्वामपर कहता है कि ममवान् अजित जिनम्ह संसारके गुह है और ममवान् सान्तिनाथ नथाको आनन्द देनेवाके है। बोमो ही विस्वको भीसम्पन्न कर कस्याय करते है। जीव मानको सुखी बनाना उनका उद्देश्य है। वे सुखरूपी समुद्रके लिए पूनोके चाँदकी भाँति है। अर्थात् उनकी कृपाके उचित होते ही बीबोके मुख-समुद्रमें आनन्दकी कहरें उठाने लगती है। उन जिनबरोको प्रणाम करने उनके गुणोंको गाने और सेवन करनेसे पुण्यके भण्डार भर जाते है। यह पुण्य मनुष्य ममको सफल बनानेमें पूर्वकृपसे समर्थ है,

‘मंगल कमला कंबुप सुग सागर पुनिम चबुप ।
बग गुह अजित जिनकुप, संसीसुर भवभाणकुप ॥
वे जिनवर एणमेविप वे गुह गाह सुसंसेविप ।
पुण्य मंथार भरेसुप, मानव मम सफल करेसुप ॥’

भक्त मुग-पुण्यसे ममवान्की धरधमें जाते रहते हैं। वहाँ उन्हें सान्ति मिली है और सुख प्राप्त हुआ है। वहाँ भी भक्त अजित और सान्तिनाथ की धरधमें बसा है। उसका कथन है कि वे ममवान् उत्तम और मयकके अग्रगण्य हैं। उनकी कृपासे मयके समुद्रों का जल दूर हो जाते हैं। ममवान्के नेत्र कमलोंकी भाँति विस्तार है जिनमें-से बयाङ्गी भुमन्त्रि फूटती है। उस भुमन्त्रिको पाकर यह बीद भव समुद्रसे पार हो जाता है। अर्थात् अजित और सान्तिनाथकी धरधम जानेसे यह भोका भक्त असार संसारको छीनकर मोक्षमें पहुँच जाता है।

‘वे उच्छव मंगलकरण वे समसर्जव कुरिचई हरण ।
वे वरकमल वमन वचय वे सिरि जिनराव भवण रचय ॥
हम भगसिद्धि भाजिम लणीप, सिरि अजित भति जिय मुह मणिप ।
सरगह बिहुं जिय पार्प सिरि निष्कलज्ज उवशाप ॥

सीम-धरजिनस्तवनम्^१

हम स्तवनमें ३१ पद्य है। इसकी माधामें पाचुर्ग्य भावोंमें सीम्यता और छादून वर्णनमें प्रीतिता है। कुर्यावन सफल हुए हैं। पद्यात्मनपर विराजे सीमन्धर

१ वा लम्बन प्रियम मान सुनि कुर्याविव मधारिन कैव ल्योव मतोव भद्रमरावा
१६१ ई में १४ १४०-१४१ पर प्रकाशित हो चुका है।

स्वामी और उदयनिरिपर सुसोमित सहस्रकिरणरा साधुस्य ब्रह्मात्म्य नहीं है ।
उपमान और उपमेयको स्वाभाविक रूपसे ही संघटित किया गया है ।

“त तमु अंतरि रचनिहि बहिर सिंहासशु प्रकथंनु,
त बाधपीडु तमु तस्मि विमलो मणि निमिड दिप्यंतु ।
त सह सीमन्त शिखरवत एवमामन्यवविद्नु
त सहस्र किरण जिम उदयनिरि पुण्य त्रि जेहि सुदिदु ॥१॥”

विद्यालयमें तो कविको अनुपम प्रकटता मिली है । बुझाँका विद्यालय कवि
की सबसे बड़ी बच्चा है । यह वही कवि नर सपना है, जिसकी अनुमति मूर्ख
और नस्लवादी भी हो । एक दिन यह है, ‘सीमन्त स्वामीके समकक्षरत्नमें जाती
हुई सुर-रजनीसी परिवारसहित सुविमानोंमें विश्रयमाण है । इनके कर्म
अद्भुत अत्यन्त है । इनसे विमानोंमें बैठनेके कारण देवायनाओंके शरीरमें
स्वप्न हो रहा है, और इस भाँति इनकी कमरमें पड़ी त्रिकुशियाँ भी हिल रही
हैं । इनसे बहुत ध्वनि निकलती है । देवियोंका हृदय मन्त्रवाणी की शक्तिसे उत्त-
रित है । वे जैसे कल्याणसे बसा विद्यालयमें बैठकर मन्त्रवाणी की गायी हैं । उन
मन्त्रवाणी वाली हैं ।

“त रचनार्त्तकिंकिन्निरचनि क्यगमंत सुविमान
त सपरिवार सुररमणिनि कवविमन्त्र विद्यान ।
त बहुत मति उदयनिरि हिम दस विधि तमु वसरंत
त समवसरनि जावह सचक जामिच गुण गान्त ॥१॥”

इस वाक्यमें उपमानोंमें एक भी बहुत है । एक कथनमें कहा है कि
मन्त्रवाणी दिव्यध्वनि पंगली कम निर्यक्त तरंगोंकी भाँति है, जो अमूर्त अपवि
बलाओंकी बोली हुई जाती जाती है । संसारमें चलते बीचोंकी बाह देवक अमृतसे
ही धान्त हैं सजती हैं, और मन्त्रवाणी दिव्यध्वनि एक अमृतके प्रवाहकी
भाँति ही है । सीमन्त स्वामीकी दिव्यध्वनि यथार्थ वरदत्त इन मैत्रोंकी भाँति
भी है, जिसकी आवाज सुनकर, अमृतपी मन्त्रवाणी वित्त करकर नाच
उठती है ।

“निम्नक व गंगानर्गलंनु वनप्रतिवसकतमु
मन्त्रव ५ लंनवदाह कवविमन्त्रवदाह तमु ।

सामिन् पृ तण्ड वचाणु विम विम गाजह मेह विम
तिम तिम पृ भविष्य चित्त वाचह करकर मोर विम ॥१५३॥

बाराध्यके मुनीपर रीझकर श्री भक्त भक्त बना है। यह धन मुनीके गीत पाठा ही रहता है। श्रीमदनखनने भी श्रीमन्धर स्वामीकी प्रशंसा करते हुए लिखा है उन विनेत्र घणवान्को जब हो जिनके वचनोंमें इतना समूत भरा है कि उसके समस्त चन्द्रका समूत-कुण्ड भी तुच्छ-सा प्रतिभासित होता है। भगवान्के नेत्र कोमल और विद्याक कमलकी भाँति है। देव-दुन्दुभियाँ भगवान्की महिमाको सर्वत्र चक्षुषोपित करती है। भगवान् अनन्त गुणोंके प्रतीक हैं, और उनका कृपा कल्याण पल-त्रय ही भक्तको संसार-समुद्रसे पार कर देता है। भक्तको पूरा विश्वास है कि ऐसे भगवान्को प्रणाम करनेसे मन निरासम्भ होकर भ्रमिष्ठ नहीं होया। उसने भगवान्से कृपाकर्मो आसम्भनकी आचना की है

‘अय विमवर ! सखरखारिवय !
जब कोमलकमल विद्याक लय ! ।
अय सरस भविष्यससरिमवय !
जब महिममहिम्न देवरय ! ॥
विकसत जलत गुणान ठाव ।
सर्वभक्तमिच्छिमवित्तवान् ! ।
भवतिष्ठुतारणतारणसमय !
परियह् जालवन्तु देह हन्तु ॥१८२॥

५ विद्वणू (वि सं १७१५)

श्री फिनोवक्कूरि विद्वणूके भी गुण थे। मुरिबीना समय वि सं १४१५ से १४१२ तक माना जाता है। अतः विद्वणूका भी वही समय है। विद्वणूने अपने गुणोंके लिए लिखा है कि वे तारागणोंमें जन्मके समान और अकलिषिमें निरिप्रवरके समान थे।

१ लंबड विह संधु लंबड सिरि विमज्जय मुनी

विम्व तारामण वंधु विम्व अकलिषिगुर निरिप्रवरी ।

श्री विद्व, शालीकमीनवर्द्ध वय ५०० विम गुर्जर वनिषो सीमो म्म १ ४११ ।

विठ्ठलजीके पिताका नाम 'ठनकर माण्डे' था। राजगुरुक पार्श्वनाथके मन्दिरमें वि. सं. १४१९ का किम्बा हुआ एक पिछालेख है। उसपर ३८ श्लोकोंकी एक प्रशस्ति अंकित है। उसमें एक श्लोकसे स्पष्ट है कि उस प्रशस्तिके कर्ता ठनकर माण्डेके पुत्र वैश्वामित्र गुप्ताचक श्री बीजा नामके कोई व्यक्ति थे।^१ विठ्ठलजी बचपनका नाम बीजा होता था। वैश्वामित्र भी है। विठ्ठलजी रची हुई 'शान्तिपदी' परंपरई नामकी रचना संभव है।

शान्तिपदी परंपरई

इसकी रचना मगधमें विहार करते समय कवि विठ्ठल वि. सं. १४२३ माघमास शुक्ल एकादशी गुरुवारके दिन की थी।^२ इसमें श्रुतपंचमीके दिन जैन रत्नमेश माहात्म्य और त्रि-सासनकी धारिणी उल्लेख है। इसकी भाषा प्राचीन हिन्दी है जिसमें गुजरातीका भी विधान है। वं नाथूचमरी प्रेमीने इसकी पुनर्पाटीकी अपेक्षा हिन्दीकी ओर अधिक झुका हुआ माना है।^३ इसमें ५४८ पद्य हैं।

त्रि-सासनोंके प्रति पाठा प्रशंसित करते हुए कविने लिखा है कि मगधमां त्रिनेत्रका सासन असीम है। उसका धार प्राप्त नहीं किया जा सकता। जो कोई उसको अहंतिधि पढ़ता बुनता और पूजता है, उसे श्रुतपंचमीके वरदा फल मिल जाता है।

त्रिनेत्र सासनि आकाश धार आसु न कम्पह अरु अपाद ।

पुनहु उचहु पंचहु तिसुनेहु, सिपलचमिपलु कहिचहु पद ॥

१ ठनकर माण्डे पुत्र विठ्ठल पंचमह मुक्त मण्ड ।

कही, पृ. ३४९ ।

२ कर्त्तरीचर्षी व पुत्रकी ठनकर माण्डायमेव पुष्कार्थे ।

वैश्वामित्र गुप्ताचक श्रीवात्रिजामेव ॥३८॥

कही पृ. ४१ ।

३ तर्पणार्थ कागद भीतु बरछडमई तेषीतमई प,

मिब मोदवह इध्यामि मुद नामव बहु उपगड

नवर विहार मजा पंचमि पुनु इध्म पादवड ॥

कही पृ. १४९ ।

४ हिन्दी में साहित्यका इतिहास पृ. ३१ ।

धुतपंचमीका एक गद्दी है कि जो कोई नर मनमें संयम धारण कर इस जगको करता है वह कभी दुखी नहीं होगा और इस पुस्तक संसार-समुद्रको तैर जाता है।

‘सिधपंचमि जल्ल साण्ह छोह जो नर करह सो बुद्धि न होह ।

संजम मन धरि जो बढ करह, सो नर निबद्ध बुद्धद तरह ॥१-२॥

धुतपंचमीके लक्ष्यार्थ है, धुतपंचमीकी शक्ति करना । धुतपंचमीका ही दूसरा नाम धारवा या सरस्वती है । कविने जीबीस तीर्थक्षेत्रों प्रार्थना की है कि धारवा उसे अपने पैरोंके रूपमें स्वीकार कर ले । जो धारवा हंसपर बैठकर बैठती है बिछरे हाथमें बीजा मुद्रास्थित है जो ब्रह्मदेवके वासन-प्रसारमें लक्ष्मी है जिसने चारों ओरों का सब किया है, जो अठारह कमल पर विराजती है और जिसके चक्र-वैद्य मुक्तसे अमृत सरता है, बिछनु ऐसी धारवाको शक्ति पूर्वक नमस्कार करते हैं।

‘धौंकार जिनह चउबीस सारह सामिनि करह जगीस ।

बाहुन हंस चढो कर बीज सो जिय सासपि अण्डह कीज ॥

अठह कमल ऊपनी गारि जेन पचामिष देह चारि ।

ससिहर बिंजु अमियरसु पुनह नमस्कार वसु ‘बिंजु’ करह ॥३-४॥’

कविने धौंकार मन्त्रके प्रति शक्ति प्रवर्धित करते हुए लिखा है कि संसारके विनाश-समुद्रमें फँसकर यह जीव चरके सभी वर्म-वर्म विस्मरण कर जाता है । यह क्षेत्र मान माना सब मोह और सम्बेद्धमें बैठकर मुनिबरोके योग्य न तो शान देता है न तप सपता है और न मोक्ष ही मोक्षता है । जब धावकके चरमें जन्म किया है, तो प्रति दिन मनमें धौंकार मन्त्रका चिन्तन करना ही चाहिए ।

विनासावर कवि नर परह, नर चंचक सबकह बीसरह ।

कौहु मासु मावा (मज) मोहु नर क्षेपे परिबद्ध संदेहु ॥

शब्द न विच्छेद मुनिवर बीजु ना तप सपिड न भागिड मोगु ।

साउय बरहि किबड अवतार राजुदिगु मनि चितहु नमकार ॥५-६॥’

'नमस्तत्त्वज्ञानाद्यस्य और महिमातत्त्वज्ञानाद्यस्य'।^१ आराधनारास' मुद्रापटी हिन्दीका काव्य है। 'मियबन्धु बिनोय' में इसका उल्लेख हुआ है।^२ 'नेमिनाथनय रसफागु' संस्कृत प्राकृत और मुद्रापटी मिथिल हिन्दीमें लिखा गया है।

आराधनारास^३

इसकी रचना वि. सं० १४५ में हुई थी। इसी वर्ष उन्हें बाबक पर मिला था। इस समय उनकी उम्र २ वर्षकी थी और वे अनेक विद्यालयोंमें निपुण हो चुके थे। आराधनारास एक प्रौढ़ कृति है।

नेमिनाथनयरसफागु

यह एक छोटा काव्य है। यह मयवान् नेमिनाथकी भक्तिसे सम्बन्धित है। जिन नेमि त्रिनेत्रके वीरगो धारण भी पाती है। भला यदि उनकी भक्तिमें कस्सीन क्यों न होना

समर त्रिमार्ग मकर त्रिमार्ग सारग या परदेवी रे।

गाईसु ममि त्रिनिर् निरक्षण राजन अगाह नमकी र ॥

बाठ प्रतिहाराकी महिमाको धारण करनेवाले मयवान् नमोद्वरकी पुरन्दर भी भक्ति करते हैं। उन्होंने जिनवरके पास छोटी राजमोटीने वस्त्रासपूषक संवम धारण किया था और पञ्चत सप्त मोल मिला था

'प्रथम असीक विशाक बुक पगर मुकुमाळ

नाद मगाहकृष्ण चक्रक चामर प,

हेमसिंहामणकृत मामेकक झककन

मुकुमि अंबरिप त्रिणि छत्र अपरीप।

हैम प्रतिहारत्र छात्र, कमर त्रिणा नगुपाक

रचई पुरंदरप धुरि अगाति पछप,

पार्कीप त्रिनिवर नामि संवम मम उरुपामि

सिक्कुरि मुहूर्ती प राजमला प सती प ॥ ३३-३४ ॥

१. मद्रासमाल मुद्राकपर देखाते जय मुद्राक कविता प्रथम भाग पृष्ठ ३। पारसिपटी।

२. मित्रबन्धु, मित्रबन्धु किनार प्रथम भाग पृष्ठ १०३।

३. मद्रासमाल मुद्राकपर देखाते जय मुद्राक कविता कीटी भाग कव्यों १ पृष्ठ ४३। पृष्ठ ४३।

७ उपाध्याय अयसागर (वि सं १४७८-१४९५)

मध्यकालम अयसागर नामके तीन कवि हुए हैं। तीनों ही तीन के और तीनों ही हिन्दी के उत्तम कवि माने जाते हैं। उनमें प्रथम की उपाध्याय अयसागर कहते हैं। उन्होंने त्रिनयनमूर्ति नाम की एक की थी जो त्रिनयनमूर्ति कहते हैं। थी त्रिनयनमूर्ति उनके विद्यापद थे। थी त्रिनयनमूर्ति उनके पान्थमूर्ति के उपाध्याय कहते मुनीश्वर विद्या था।

उपाध्याय अयसागर गुरुन और गुरुनके अयसागर विद्यापद थे। उनकी एक रचनाएं उपलब्ध हैं त्रिनयन उभेद्वर होहाचकोपर लघुवृत्ति उपलब्ध है स्तोत्रवृत्ति विज्ञानि त्रिनेनी परवरतावनीकथा और 'पुष्पीकान्तचरित' बहुत प्रसिद्ध हैं।

मन्त्रविद्यामें भी वे पारंगत थे। मैरीपिकाविद्यान नामके भी नारसिंह त्रिनयनमें पदमावलीमहिम चरयेन्ने उन्हें बर्णन दिये थे। मेरगाट नामके देशमें नागद्वय नामके गुरुनानवर नरसिंहगारसर्वभैरवम पारदा उनपर प्रसन्न हुई थी।

अयसागरके प्राचीन हिन्दीमें लिखे हुए एक मुक्तक काव्य प्राप्त हुए हैं, त्रिनयन त्रिनयनमूर्तिमूर्ति—(वि सं १४८१) अयसागर की मुद्रा—(१४८९) बीनमराठ 'मैमिनाथ विद्यापद'—(१४९८) 'कैवर्तपरिपाटी'—(१४८७) 'नरकोट महातीर्थ कैवर्त परिपाटी' लघुवृत्ति 'आध्यात्मिक विद्या' तीर्थ और कैवर्तमूर्ति के सम्बन्ध में हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने 'चतुर्विध त्रिनयन' कहकर टीकावली 'अमिन्तोष' स्वयंनपासनावस्तव और 'विह्वलन त्रिनयन' नामि स्तुति-स्तवमोका भी निर्माण किया था।

१. त्रिनयन उभेद्वर, दिनीय नाम मन्त्रकला १. ३२।

२. मैरीपिकाविद्याम नामके और नारसिंह त्रिनयनमने।

भीनेय प्रत्यक्षो मैया पदमावलीमहिम ॥

भी मेरगाट देशे 'नागद्वय' नामके गुरुनियेते।

नरसिंहगारसर्वभैरव लघुवृत्ति पारदा मैयाम् ॥

भीनकालावस्तवमन्त्रकला भी अयसागर नामके टीकावली कैवर्त नामके अयसागर १४९४ वि सं १. ४४।

चैत्यपरिपाटी^१ में पाटण रायपुर समुज्जयसिद्धि, निरिहार पाकीनागा और मुनागड मादि अनेक तीर्थोंका वर्णन है। इसमें २१ पद्य हैं जो छोरठा और वस्तु नामके छन्दोंमें लिखे गये हैं। इस कृति में अनेक स्पष्ट उत्तम काव्यके निरर्घन हैं।

‘नगरकोट तीर्थ चैत्य परिपाटी’^२ में नगरकोटके तीर्थों मन्दिरों और प्रतिमाओं का आर्थकारिक वर्णन है। चापापर पुजरातोका प्रमाण है। अठ स्पष्ट है कि चापाध्यायको मुन्दराठके ही रहनेवाले होंगे। १५वीं शताब्दीके कवियोंमें दुस्यका विभिन्न करनेकी ऐसी सामर्थ्य बहुत कम देखी जाती है। सदाहरणके लिए,

‘ननु बज्रिहि अंशुद सुचिह्न चरम विभासरर्चद् ।
अगु अकोरु असु इंसनिहि पामइ परमाणद् ॥
पासि पसंसदं कोटिकप्प गामिहि महि अमिसमि ।
महम्म अइकि विम रमके तसु गुण अंवारामि ॥
इमकुंमासिदि विज अरणि ए सचि प्पुणिपा द्ध ।
देवकिन्न कोटी अपरि करदं श्रीरजिण सत्त’ ॥

विजकुसुमसूरिचतुष्पत्ती का निर्माण अलिक्खकपुरमें हुआ था^३। यह एक छरठ काव्य है। इसमें सूरि विजकुसुमकी महिमाका वर्णन किया गया है। ‘नरत्त्वामी मुन्दराठ’ भी मुज्जयसिद्धका ही निरर्घन है। सभी स्तुति-स्तोत्र उत्तम हैं।

चतुर्विंशति विम स्तुति में २४ विनेय का स्तवन है। अथवागु आपमदेवके वर्णनोत्ते उत्पन्न होनेवाला आनन्द अनिर्वचनीय है।

‘सुचिहाण्ड अइ आरु अई, दीठड रिमह विनेस
मवण कम्मक विम उक्कसइ उगिड अकइ दिनेस ।
राम विहि तसु कपसरै, हिण्डई परमाणद्
मवण समिण रस अलिणक, पोटड भादि विचइ’ ॥^४

१ चैत्यपरिपाटी की इंगलिशिय प्रति पाटण नगराठी मुनि मुज्जयसिद्धितीर्थे मंथ
में एक प्रतियन न २-१ पर भीख है।

२ इसकी इंगलिशिय प्रति भी अणु क मन्थारमें है।

३ नगरकोट महातीर्थ चैत्य परिपाटी, पृष्ठ ११-१३।

४ राधा श्री विजकुसुमजी, नाहरा सम्पादिन परिशिष्ट न ३ २।

५ अणु अणु कविता १०० मां, पृ १४०६।

कविका विरसात है कि जगदानु महाभारती पारम्पर्ये जानते मन-मनन
कायते किये नये सभी राज-रूप दूर हो जाते हैं। तबने जगदानु बीरमे ऐसे
प्रसादकी भाषणा की है, जिससे यह मन-मनमें जगदानुके बीरकी सेवा कर सक

“राग होम कवि जो क्रियत मन्त्रक काय पसाव
तं मिथ्या दुक्कह ह्मद मरग बीर जिन पाव ।
करि पसाव सुख तिम किमह, महाबीर जिनराव
ह्वि भवि महवा जल मयि जिन मवर्त तु काय” ॥

८ हीरानन्दसूरि (वि सं १४८४-१४९५)

हीरानन्दसूरिकी जन्मा १५वीं सदीके उत्तम कवियामें की जाती है। वे
विष्णुनन्दके श्रीरामचन्द्रसूरिके शिष्य थे। उन्होंने अपनी कृतियोंमें मन्त्रकके
ठाकुरपुरके बीर मन्त्रका उल्लेख किया है, इससे प्रमाणित है कि वे राजस्थानके
रत्नेशाने थे। उनकी माया भी उत्तम राजस्थानी ही है। उस समयकी राज-
स्थानी बीर हिन्दीमें बहुत कान-सेव नहीं पा जितना आवश्यक है। यदि यह कह
ज्ये कि वे एक ही थीं तो अस्मिन् न होयी।^१ डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीने राज-
स्थानीका मुद्रणकी बीर हिन्दी सेवाने ही अतिशयेन सम्मान स्थापित किया है।
इस उद्य सट है कि हीरानन्दसूरि हिन्दीके महत्त्वपूर्ण कवि थे। उन्होंने ‘बलु
वाक्येनवाक्यक’ (वि सं १४८४) ‘विशारिकास पचास’ (वि सं

१. वी, पृ १४४ ।

२. वी, पृ १४४ ।
३. वी, पृ १४४ ।
४. वी, पृ १४४ ।
५. वी, पृ १४४ ।
६. वी, पृ १४४ ।

७. वी, पृ १४४ ।

८. वी, पृ १४४ ।

९. वी, पृ १४४ ।

१०. वी, पृ १४४ ।

१४८५) 'कविकाव्यसप्त' (वि सं १४८९) 'व्यासभट्टराज' 'बंभूस्वामी
बीबाहूका' (वि सं १४९५) और 'स्फुटिमत्र बारहमासा' की रचना की थी।

कविने विद्याविभास पद्माक्षीमें प्रथम जिनद्वार स्थापितनाथ नेमिकुमार और
पार्ष्णातकको नमस्कार करते हुए, बारवासे बरदानकी याचना की है और उनसे
सम्बन्धित मुख्य तीर्थोंके प्रति भी भक्ति भाव प्रदर्शित हुआ है।

‘पहिलुं पणमीच पद्म जियेसर सिर्जुअच अचतर
इमियाकरि श्री सोति जियेसर अर्जति निमिकुमार।
बीराउकिपुरि पास जियेसर साचकरे बद्धमान
कसमीर पुरि मरमति सामिनि दिठ मुसुनई बरदान ८९

‘बंभूस्वामी बीबाहूका’ बंभूस्वामीकी मन्त्रितसे सम्बन्धित है। उसके मंत्र
पद्यमें और जियेद्वार गौतम गणेश और बेबी सरस्वतीका स्मरण किया है।

‘बीर जियेसर पणमीच पास गणहर गोधम मनि घरीच
समरी सरसती कवि अण पास बीजा दुस्तक बारिथी ९।
बोसिमु बंभू बरित रमाळ नन नन माच सोदामसुज
रचणह संदजा बाळ रसान भविअण भाविहि सोमसुए ॥ २४^३

‘स्फुटिमत्र बारहमासा’म मुनि स्फुटिमत्रके बारह महीनोंकी जीवनचर्याका
चरित्र-पूर्वक वर्णन हुआ है। बारहवर्षीय अकाक पड़नेपर जब भट्टराज स्वामी
हलियमें बसे गये तो पाटकिपुनमें बीनसंबके अधिष्ठाता स्फुटिमत्र हुए। उन्हें
११ मपोका ज्ञान था। इस बारहमासामें २८ पद्य हैं। अन्तमें लिखा है कि जो
ज्ञानपूर्वक बारहमासा पढ़ता है उसके पास बुद्धि-सिद्धि अथवा होकर निवास
करती है।^४

१ कविकाव्यसप्त श्रीमत्कवि महाराजके सम्पादनके साथ दिल्ली-अनुसूचित भारतीय
विन्नी परिषद् प्रकाश ॥ १, भाग १ जनवरी-मार्च १९०६ में १४२२ ॥
पर प्रकाशित हुआ है।

२ जैनपुर कविजी प्रथम भाग अंक १६२५ ई ५ ५-५६।

३ जैनपुर कविजी, तीसरी भाग ५ ५२८-५२९।

४ स्फुटिमत्र बारह मासका ९ जै भाग बारि आर्णव कि।

निजा बारि अथवा बसादगुं ये बाके मूरि हीराचर कि।

स्फुटिमत्र बारहमासा चर्चाप, जैनपुर कविजी तीसरी भाग ५ ५१।

९. भट्टारक सकलकीर्ति (वि सं १४९९)

सरस्वती सङ्घके श्री पद्मसूत्री एक प्रभावशाली भट्टारक व । श्री भट्टारक रत्न-कीर्तिके देखी-भट्टारक, वि सं १९७५ में प्रगटित हुए थे । उनकी प्रथमा विमोचिषाये शिवात्मैर्वा (वि सं १४९५ और १४८९) में अंकित है । उनके दो विषय थे—भट्टारक सुमन्त्र और भट्टारक सकलकीर्ति । सकलकीर्तिसे ईश्वर की भट्टारकीय परीकी परम्परा आरम्भ हुई थी ।^१

भट्टारक सकलकीर्ति अनेक समयके एक प्रसिद्ध विद्वान् थे । उनका संस्तुन मायारर एकाचिरत्न वा । सङ्घले संस्तुनमें १७ सन्धोंकी रचना की पुराणनार शिवात्मसारदीपक मन्त्रिनाथचरित्र यशोचरचरित्र कृपयचरित्र मुद्रासनचरित्र मुद्रुमानचरित्र बर्ममानचरित्र पार्वनाथ पुराण मुखाचार प्रदीप शारदतुर्दि पठित्वा वमप्रसन्नोत्तरभाववत्तार सद्भावविपासनी वन्द्यभुमारचरित्र बर्मविपाक वन्द्यस्वामीचरित्र श्रीपञ्चचरित्र ।

भट्टारक सकलकीर्ति प्रसिद्धिप्राप्त भी थे । सङ्घले सैकड़ों मन्दिर बनवाने मूर्तिर्पणा निर्माण करवाया और उनके प्रसिद्धिदि मूर्तिस्तव स्वर्य आशाय बनकर सम्पन्न किये । उनके द्वारा प्रसिद्धि मूर्तिपार्थ सत्ताधीन इतिहासकी अनेक बातें अंकित हैं ।

सकलकीर्तिवा समय विजयकी १५वीं अष्टाश्रीका उत्तरार्ध मन्त्रा जाता है । सङ्घले सकलकीर्ति वि सं १४८१ में बहालीमें अनुष्ठान किया था । वहाँपर ही सङ्घले भाषण सुक्का पूर्विका वि सं १४८१ की मुखाचार प्रदीपको अपने अंकित आना विजयसकल अनुष्ठानसे पुरा किया ।^२

१. वितमन्त्र प्रसन्नोत्तर, प्रथम भाग, शिवाली पृष्ठ १६ ।

अनन्त्र प्रसन्नोत्तर प्रथम भाग, प्रकाशना ६ ६-१ ।

२. विहि अक्षरसे मुक्त आदिवा बहाली नगर मन्त्रार है,
अनुष्ठान निजा करो योमनो याचक नीचा हर्ष अपार है
अमीशरे वचराविषय बहाली नाथे गर नार है ।
मन्त्रक सच विहि बन्दिया पाप्मा अक्षरमन्त्रार है ॥
सकल श्रीरूप ही वयासो मन्त्रा याचनमन्त्रा अक्षरमन्त्र
पूर्विका विषये वृत्त कर्मा मुखाचार मन्त्रार है ।
आपना अनुष्ठान पापी नीचा अक्षर मन्त्रार है ॥
परी १ १ ।

मठारक सङ्कलीति वि० सं १४४४ में, ईकरवी गङ्गीपर भासीन हुए थे। वि० सं १४९९ में महामाता (मुद्रायत) में उनका स्थायीवास हुआ। हिन्दी के लिए श्री चम्पेन जी कुछ प्रयास किया। उनकी पञ्चस्वरूप समके सिद्ध बहुराजिनराम हिन्दीके उत्तम साहित्यकार बन सके।

मठारक सङ्कलीतिही हिन्दीमें किसी हुई पाँच इतिमाँ उरमय हुई हैं: 'माराधनाप्रतिबोधसार' 'गमोवागफ्तवगात' 'गमोवरमोन' 'मुक्तावलीगीत' और 'सोखहारमन्त्रराम'।

माराधनाप्रतिबोधसार

इसकी भाषा सरल है। समय प्रसादमुक्ता निर्वाह हुआ है। कविने जिन बासी गुरु और निर्गुण साधुओंको प्रशाम करके संक्षेपमें माराधनासार कहा है। इसमें संस्कृत माराधनाका सार है। जो कोई नर-नारी इस माराधना सारको पढ़ता और सुनता है वह सब-समुद्रसे पार हो जाता है। वह माराधना मनुष्योंको ज्ञान प्रदान करती है।

गमोकारफस्तगीत^१

गमोकार मन्त्र पञ्चपरमेष्ठीकी कल्पनासे सम्बन्धित है। प्रस्तुत इतिमें गमोकार मन्त्रका फल दिया हुआ है। यह एक बीति-काव्य है। उसके प्रत्येक पद्यमें उत्तम ज्ञान सम्बन्धित हुआ है। भाषामें प्रसादमूल है।

मेमीन्दरगीत

यह गीत जयपुरके पं. लालकरजीके मन्दिर मुद्रका नं ९६ और बिल नं० ३३८ में लिख है।

मुक्तावलीगीत

यह गीत जयपुरके बड़े मन्दिरके मुद्रका नं ३६ बिल नं २४५७ में प्रस्तुत है।

१ श्रीजितरङ्गबासी ममवि गुरु निरुप्य पाप प्रथमवि ।

कहुँ माराधना मुखिचार सदापि सागाद्यान ॥

आमेरद्वारमन्त्रकारकी दम्पतिद्विज मनि चरणा कम ।

२ जे मचई गुणइ नगमाँ तै आई मनि नइ पारि ।

श्री लक्ष्मीरूपि बहुराजिनराम मन्त्रिध गंगा ॥

कही, अलिप्त कम ।

३ रि जेन रत्नावली मन्दिर मनीनेके एक प्रत्येमें लिख है ।

१० श्री पद्मसिम्हक (वि की १५वीं शताब्दी अन्त-१६वीं शताब्दी आरम्भ)

श्री पद्मसिम्हक की एक मात्र कृति 'वर्मविचारस्तोत्र' है। उसमें ऐसा कुछ प्रकट नहीं होगा जिसके आधार पर उनका जीवन-वृत्त जयवा मुद्रा-परम्परा आदिसे विपक्षित सिद्धा का सचे। यह कृति उग्र गुटकेमें लिखी है। श्री वि सं १९२१ में लिखा गया था^१ किन्तु वर्मविचारस्तोत्र की भाषामें स्पष्ट है कि उसकी रचना १५वीं शताब्दी अन्त अथवा १६वीं शताब्दी के आरम्भमें हुई थी।

वर्मविचारस्तोत्र

इस स्तोत्रमें २८ छन्द हैं। वर्मघातक कुशाचा वर्मन करनेके कारण ही इसकी 'वर्मविचारस्तोत्र' कहल है। यह शीघ्र बलाहावी अल्पम-मूर्तिको कल्प कर लिखा गया है। गोट वादकाके तीर्थवर अल्पमात्र कुछ और कुरितोंको बह करनेवाले हैं। उन अल्पमात्रों का प करनेसे बीरका मन गुड़ होता है, और वह संतारने अमचने मुक्त हो जाता है।

सिद्धि सिद्धैसर पद्य अमंति पुर कीर्त्त मंडल।

कंद दृग्गई पद्मसिम्हक कुछ कुरित विहङ्गल ॥

सामी अंश किंति कुरक पिय मायम केरड।

गरवा विचर किमह शनिमुख अचरड करड ॥^२

कविने लिखा है कि मैं अनादिनाकष्ट निवारणें ब्रूया एह। यहूति निजना तो ऐश्वर्य - अति वाद और कल्पना आदि बना मनुष्य अम न मिल सता

"आदि अनादि निवार मादि बहुत कस्त अमिड मई।

सत्तर साठकमासमति मय पुरिज निज मई।

विन्दोदह बीमारिज नाह पविषड पंगिरिदि।

शुद्धि आड तह तह नाड अजसह बुद्ध मरिदि ॥^३

पूर्वजन्मके पुण्य-संवीपीत मनुष्य-वध भिना। किन्तु इसके प्राप्त होनेमें भी बीरको भी अथ एक वर्षके पुण्य सहने पड़े। यह भी मास तक रमणीके नाच-उठके बीचे बहा-गना कुछ सहना पड़ा

^१ यह पुस्तक वावू वासुदेवप्रसादजी जैन कलीकालके पास है।

^२ वर्मविचारस्तोत्र पद्य का हिं सं १४ ९ के लिखे हुए गुटकेकी दस्तलिखित प्रती।

^३ यही नीमरा पद्य।

‘पुण्य पुण्य संजीवि पुण्यं मनुजसु पाणि ।
विधिं हुक्क जय मास सङ्गं यस्मिं संतापित ॥
रमणि नाभितकि भाक कारि बुद्धं पुण्यं यच्छ ॥
कोसामारिहिं ता मुहैदि पुण जीवि पडित्थ ॥’^१

भगवान् ज्ञापनके रसोंकी महत्ता बताते हुए बनिम किया है कि है भगवान् । तुम्हारे रसों करनेसे ऐसा विविध होगा है जैसे मुझे विभामणि ही विविध पपी हो जैसे हमारे जौगलमें कल्पवृक्ष विविध फलोंसे फल बसा हो और जैसे हमारे घरमें सुरबेनुका ही बबहार हुआ हो । जिस किसीने भगवान् ज्ञापन नाचको अपनी भक्तिसे प्रसन्न कर किया उसकी सभी मनोवाञ्छित अनिवापार्थ पूर्ण हो जाती है ।

‘इंसयं मुग्ध विहाज अण्ड वितामजि चरिय ॥
सुरतस अंगण अण्ड अण्ड विविहण्णरि चरिय ॥
सुरहणेषु अंगणहिं पाह यण्डह अण्डरिय ॥
अह मेघं सिरि रिसहणाह मणरंजिच सरिय ॥’^२

इस काव्यकी भाषामें अपभ्रंश और प्राकृतके प्रयोग अधिक हैं । फिर भी उसके सौन्दर्यमें कहीपर व्याघात उपस्थित नहीं हुआ है । भाषामें प्रवाह है और भावमें स्वाभाविकता । उपयुक्त दृष्टान्तोंसे रस उत्पन्न हो सका है ।

११ ब्रह्म जिनदास (वि सं १५९)

ब्रह्म जिनदास अट्टारक सकलकीर्तिके छोटे भाई और शिष्य थे । वे भी सकलकीर्तिके समान ही उत्तमकोटिके विद्वान् थे । उनकी संस्कृत कृतियोंमें ‘बन्धुस्वामीचरित’ ‘हरिबन्धपुराण’ और ‘रामचरित’ का नाम प्रमुख रूपसे दिया जा सकता है । बन्धुस्वामीचरित की रचनाने उन्हें अपने शिष्य ब्रह्मचारी वर्मदासके मित्र-कवि महादेवसे सहायता प्राप्त हुई थी । ‘वर्मपञ्चसतिका’ अथवा ‘वर्मविकास’ उनकी रचना है ।^३

इनके अतिरिक्त उन्होंने ‘यशोचरदास’ ‘आदिनाचदास’ ‘शेषिकदास’

१ गरी, बीर्मा पत्र ।

२ गरी, १५वीं पत्र ।

३ बौद्ध भगवत्संस्मरणसंग्रह प्रकाशना पृष्ठ २१ ।

इहा जिनवासनं छन भगवान्के गुणोंको सद्गुरुके प्रसादसे जाना पा ।
भगवान्के बुनोपर रीझकर ही सम्हाल भव भवमें भगवान्की सेवाकी भावना की ।^१
कथाकोपसमह^२

इस कोपमें छह कृतियाँ संकलित हैं 'वसन्तसप्तम्यतकथा' 'निर्दोषसप्तमी
वसन्तका' 'वैशखपक्षिगतकथा' आषाढपञ्चमीगतकथा 'श्रीरामसप्तमीगतकथा'
और 'पंचदशमेष्टीगुणवर्धन' ।

पंचपरमेष्ठोगुणवर्धन एक मुक्तक काव्य है । उसका प्रत्येक छन्द एक
पूजक भावको सहजकर बना है । उसमें भीतिपरता है भाव-विमोहता और कथ
मी । यह पंचपरमपठितोका भक्तिसे सम्बन्धित एक उत्तम काव्य है । इस काव्यके
सुनने और मनसम-भावसे ही बीबके सभी मनोवांछित कार्य पूरे हो जाते हैं
और वह छिन्नपुरमें पहुँच जाता है । किन्तु सुनते और समझते समय उसका मन
निर्मल होता चाहिए ।^३

भनपाछरास^४

इसमें भनपाछके चरित्रका वर्णन है । भनपाछ भगवान् विमलका भक्त था ।
स्नान-स्नानपर उसको भक्तिका उल्लेख हुआ है । वहिका विश्वास है कि जीवोत्त
तीर्णकर और स्वाग्नीयी शारदाको प्रणाम करनेमें मनोवांछित फल उपलब्ध
होता है ।^५

- १ पद कम स्वामी काफी पण्डित बर्मावर्म जीवार से
मुगति रमणी प्रकाश नामा ए त्रिभुवन भयभयहार से ।
तह मुन मे जानी था ए मङ्गल तथो पसावना
मनि भवि स्वामी मेबहुं ए, भानु मह गुह पाम से ।
२/१ अन्तिम प्रकाशित वर्ष १९-२४ ।

२ अन्तराक्षमभारती हस्तलिखित प्रति ।

३ दो गुण जे भावने मनि करी निरमल माठ ।

मन बँधित कलकलना पाने छिन्नपुर टाठ ॥

४ अन्तराक्षमभारती हस्तलिखित प्रति ।

५ इस काव्यकी प्रतिलिपि पाण्डे कल्याणदे के अन्धकाराधी वि स २ ८, भावने
सूरी १ रत्नारका नरनाली मना थी ।
अन्तराक्षमभारती हस्तलिखित प्रति ।

६ और जिनवर लभुं से छार, तीवहर जीरोसमो ।

बँधित फल बहु बान बाछार सारब भासिण बीनधु ॥

अन्तराक्षम भक्तवत्सल ।

मिथ्या दुकड़

यह बड़ा जिनरामजी एक सऊन हूति है। उसमें साबुनमग्न सीम्बर है। यदि मे एक स्थानपर लिखा है, वीरे विनवरक निरुद्ध ही बमल छिन्न जाते हैं टीक वीरे हो जाहि जिनरामके दर्शनमें भग्नाके मन विवर्धित हो जाने हैं। वीरे विनवरके कायकार छट जाना है। वीरे हो मगवान् मोहको विहीन कर देते हैं।^१

अस्य मुख-मुखसे मनवान्के दरवाजेपर जाने रहै हैं और वही उन्हींसे नि-
सर्ग होकर जाने पावारी कहा है। उन्हें विनराम का कि दयालु भववान्
अवरमेव यमा प्रदान करेंगे। जैन अस्तु भी विमुक्तके नाथ मनवान् विनरामके
पाद पया है,

“हैं विवर्ती कर्मरुचें आवणीव ।
तुं विमुक्त स्वामी सुनि वर्णीव ॥
ज वाव करपा ते कहुँ अमुस ।
ते मिथ्या दुकड़ हाठ नर्मस ॥२॥

भगवान्के अस्तु मुवावा बलन करत हुए, अतही बलना करना एक पुराना
रिवाज है। वही भी ऐसा ही एक बोझ है

“जिनवर स्वामी सुमति हि गामी मिहि मवर मंडयो ।
भव बंछन रीणो समर मकाणो अछ जिनवास पाव बंदयो ॥१॥”
(अष्टिम)

अज्ञापरचरित्र

इसमें अज्ञापरचरित्रा चरित्र वर्णित है। अस्तुत प्रवर्णित सहाय किया
क्या है। अत्रावे प्रसन्नमुख है। आरम्भमें ही कविने मुनिमुक्तनाथ (२०वें
टीककर) आरम्भमें ही मीठम मनवर और मुख सखीकीतिही प्रथम किया है—

“मुनिमुक्त जिन मुनिमुक्त भी मत्तुं ते सार ।
तार्किक अ बीजसुं बीजिअ बहु दान वाचार ॥

१. जाहि जिनवर भुवि परमेवर नयाक बुधन विनासपी ।

भुवि बमल निधनर मोह तिमिरहर अस्तु वधारण भावणी ॥

मिथ्या दुकड़ कल्याण, अमररक्षणमकारकी प्रति ।

२. राम काव्यकी प्रतिनिधि, कविने अचरित्रार्थके कदमके निम्न अक्षर १ २१ में करवाये
कपी भी ।

महम्मदिय १ ६८, अमर १६३ है ।

सारदा स्वामिनि बकीस्तनु जिमि बुद्धि सार हुं बेगी मागुं ।

गणेश स्वामि नमस्तर्क, बखी सकल कीरति गुन भवतार ॥

तास चरण प्रणमीनं, करें सुरासुर सार ॥१॥

यशोपरचरित की महिमाका वर्णन करते हुए कविने लिखा है गुणोंके प्रकाश यशोपरचरितको सुनने-मानने ही मिथ्यात्व और राम-मोह दूर हो जाते हैं तथा दिनपुर स्रष्टव्य होता है ।

“गुणद्वय महार सुनिहं, जे नर अनुदिन भवें
हिय में धरीबहु भाव बहू बिगदास हम परिमर्षे
तेहने सिवपुर डाम ॥”

सम्यक्स्वरास

इसमें ममबान् रामकी कथाके द्वारा सम्यक्स्वकी महिमा बतायी गयी है । रामचन्द्र सुन्दर तो थे ही दिनकरके समान प्रतापघाती भी थे । वे शास्त्रवेत्ता महामती धार्मिक और देवसास्त्र-गुरुके परम भक्त थे । कविने उनकी भक्ति की है ।

‘जयवंत जय जगि सार सुन्दर रामचन्द्र बलानिध ।
कस्मीयर बह भरत बाबुध्न ज्यारि पुत्र धरि आजीइय ॥
कुल कमल दिनकर सकल साक्ष सुशानवंत महामती ।
देव वर्महं गुन परीक्षण रामचन्द्र क्षतिपती ॥१॥

भेषिकरास

इसमें राजा भेषिकरा वर्णन है । भेषिक ममबान् राजा था । उसे बिम्बसार भी कहते हैं । इसीका पुत्र बजाठछान् था जिसे जैन सास्त्रोंमें ‘वृषिक’ कहा गया है । भेषिक ममबान् महावीरके भौता थे । वैशाखीके राजा बेटककी एक लक्ष्मी विद्या सिद्धार्थ (महावीरके पिता) की पत्नी को और दूसरी भेषका भेषिककी राजी । भेषिक बहूने बौद्धधर्मानुयायी बना और बारमें महावीरका भक्त हो गया । महावीरके समवधारणमें भेषिक मुक्त प्रत्य-वर्त्ता था ।

कविने इस राजाके चारणमें ही लिखा है कि मैं ममबान् महावीरके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ और अन्य तीर्थकरोंकी भी स्तुति करता हूँ क्योंकि वे मनीषाछिन्न हो पुरुष करनेवाले हैं । स्वामिनी धारधारर ग्नीछावर होजा हूँ मैं भ्रष्ट बुद्धि प्रदान करती हूँ

(इसकी सम्पत्ति ३३३ आदेराग्यधरारमें दी-दर है)

‘बार जिनपर भीर विषपर मर्तु ते सार
 तीक्ष्ण चक्षुषीसमु बाँझि नहु दान दातार
 सारदा सामिनि बली तनु बुद्धिमार हुं बेनि मागु
 गणपर स्वामी नमस्कृत श्री सकल कीरनि मबतार
 श्री मुचबर्षारति गुणमणि नर करिहुं राम हुं सार ॥’

१२ मुनि चरित्रसेन (वि. नं. १५वीं छापाखरीक प्रथम या द्वितीय बार)

मुनि चरित्रसेनकी समाधि नामकी रचना अप्रमत्त हुई है।^१ इससे मुनि चरित्रसेनके जीवन और जीवनशक्ति का कोई परिचय नहीं मिलता। समाधि^२की भाषासे ऐसा अचरम प्रतीत होता है कि वह १५वीं छापाखरीक उत्तरार्द्धकी रचना है। भाषामें सम्पादकी अन्धकार पचासह और पाषण्ड-वैसे अन्धोंका प्रयोग है। क्रियाओंके उच्चारणहुका होनेसे अप्रमत्तता का पुट अधिक भासूम होता है। इसकी बेस-बूपा प्राचीन हिन्दीकी है।

यह रचना समाधि-अक्षिपके अन्तर्गत आती है। इसमें ‘हुकल्लललो कमलललो समाधिमरणं च बाहिकाहो वि। मम होइ तिष्ठन बल्लभ तब जिनपर चरन अस्तेम’ वाली भावनाका ही प्रभाव है। इसका अर्थ है कि समाधिमरण भी भवबानु विनेशकी कृपासे मिल जाता है। यद्यपि यौनमन सिन्हा है कि यदि भगवान्की कृपासे समाधि मिल जाये तो रचन ज्ञान और चरित्र समृद्ध होते हैं और सम्पत्ति बन जाता है,

‘गणहृद आमिष वृ त्रिभ संति समाधी ॥

ईमज व्याज चरित्त समिद्धी संमाधी विषयेचई दिष्टी ।

ओ करैह नी मग्गाहृष्टी ॥२१॥

‘समाधिमरण’के कारण करनेपर आत्मा और परमेश्वर एकत्वही ही भावना आनी चाहिए। दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। दोनों पुनः-पुनः हैं। जीवन ही ज्ञान और चरित्र सभी अस्माकी है। कुछ समय बाद यह हो जायेगा। ज्ञान है जीव। हममें आनन्दका अनुभव करो

१ यह कवि किरणके समाधि-उद्धरणे उन रचनाकी अभिलेखे साधनकारके मोक्ष है। यह उन वर्ष में लिख है जिनमें किरणकरके ‘मिर्मर रंजक रत्ना’ और ‘कमलल्लो विषाग’ भी लिख है।

‘घटस्थ आधि जिया बेदस्थ विमिखा
 पुमरु कम्मवि अप्पव मिखा ॥ सम्माधी ॥
 बोद्धव भविय धणु परिमणु णम्मय
 जोव हा । धमु सरीसठ होसइ ॥ सम्माधी ॥ ३६ ॥

कविने एक स्वागपर लिखा है कि नमिनाथके समाधिभरणका स्मरण करो । ऐसा करनेसे भग्नभरणका समुदाय विध नष्ट हो जायेगा । फिर वह अन्तिम दिन धुम होगा वह मृत्युको भी भोतकर यह बोध दिवलीक प्राप्त करेगा । ऐसी दक्षिण धादिनी समाधिका जो प्रतिदिन ध्यान करना है वह अवश्य ही सन्नरामर पदको प्राप्त करता है ।

“नेमि समाधि धुमरि जिय चिसु नासइ ।
 जिय पर मरकरि पाठ पचामइ ॥
 सोइहु सो दिवसु समाधि मरीइइ ।
 कम्मण भरणइ पाणिइ होइइ ॥
 चहुमी समाधि जो मणु-विणु सावइ ।
 सो भज्जामक मिथ सुइ पारइ ॥ ५ ॥”

‘समाधि’की भावार्थ सरलता है और भावोपभक्तिका चारुत्व । स्वामा विपरीत कान्यको लोचन्य प्रदान किया है ।

१३ लावप्यसमय (वि स १५२१)

लावप्यसमयका ब्रह्मपत्नी नाम लघुपुत्र था । उनके पिताका नाम श्रीधर और माताका नाम जामक देवी था । उनके तीन भाई थे बन्धुपाक किनरास और मनलदास । एक बहन भी लोकावती । वे श्रीमानी शक्ति थे । उनके बाबा पाटनगरसे अहमदाबादमें आकर बस गये थे । उनके सबसे बड़े पुत्र श्रीधर ब्रह्मपुरम रहते थे । वहाँ ही लघुपुत्रका जन्म हुआ था । उनकी जन्मतिथि पीप वरी ३ सं १५२१ मानी जाती है ।

लघुपुत्रके जन्माक्षरोंपर विचार करते हुए मुनि सन्नवरत्नन उनके पितासे कहा गुम्हाय पुत्र तपका स्वामी होगा जबका वह कोई तीव्र करेगा । कहा यदि महान् विद्वान् और गुरुके बचनोपर चलकर भग्न बड़ा ईश्वरी होगा

‘सुनत भेदि होसि तपधनी कई प जासई सीरथ मणी
कई प पासाई मोरठ बरी बर बिद्या होसई श्रीधनी ॥३०॥

इस होनहार बाळनको तपनञ्जलि अम्मीसागरमूरिने जेठ सुदी दशमी (वि सं १५२९) के दिन पाटनके मध्य पालनपुरीके अपानसमें मञ्जोत्सवपूर्वक बीसा बी और कलवा नाम आबन्धसमय रखा। इस प्रकार अम्बन्धनमके बीसापुत्र अम्मीसागरमूरि और बिद्यापुत्र समयरत्न थे।^१

कविने स्वयं एक स्थानपर लिखा है कि सोमस्यै वर्षमें मुक्तपर छप्पत्ती माताकी कृपा हुई, और मुखमें कवित्व शक्तिका अम्ब हुआ। जिससे मैं ऊँच कवित्व बीसई रात और अनेक प्रकारके भीत तथा राय-राबिनिबोकी रचना कर सका। सिद्धान्त बीसई इन्हीका एक प्रसिद्ध काव्य है। नन्दवत्सीकी रचना बी इन्हीने ही की थी।

आबन्धसमयकी कथानि अनुक्तिमें व्याप्त हो बनी थी। बड़े बड़े मानी राजा-महाराजा सरदार और सामन्त उनके घरवालों सुनते थे। वि सं १५५५ में उनको पच्छिम पर भिजा। वे अनेक देश-विदेशोंमें बिचरण कर कपरेस लेते थे। एक बार बिहार करते-करते कोरठ देशमें आये और गिरिनारपर ठहरे। इन्हीने अलहिकबाठ पाठमके पास माळसमुद्र नामके बीसमें जातुर्मास किया। उस समय इन्हीने वि सं १५९८ में विमलरास की रचना पूर्ण की।^२ वि सं १५८९ में उनका स्वर्गवास हो गया।^३

‘सिद्धान्त बीसई’के आश्रित ही कविने लिखा है कि अपवान् जिनेन्द्रके पीरोंमें

१. मुबबबने बईराबी कमु मात तात पय कापी रहिउ
जेठ सुदी दिन बसमी तनठ ऊबनबीसई छप्पत्त बजउ ।
पाटनि पालनपुरी पोसाक अम हुई बरफा गुसाक
रिई बीसा जति आर्जवपुरि मञ्जवति अम्मीसागरमूरि ।
संभ समन सङ्ग सावी समई नाम ठविठ मुनि आबन्धसमई
मबनइ करय बीपवर बीब समयरत्न गुब बिद्या बीब ।
कही कय १-४६ पृ ७० ।
२. सरसति मात मया तब कही बरस सोकमई बानी हुई
रजिबा रास सुवर छबन कर कवित्त अऊपइ बरब ।
बिबिब पीत बहु करिआ बिबाव रबीबा बीप सरस संवार
कही कय ४४ ४५, पृ ७० ।
३. बरी कय ४५ ४६ पृ ७० ।
४. अम्बुबरकविजो मयय धान पृ ७० पादप्रियन्धी ।

नमस्कार करनेसे अपार रूप होता है। सद्गुरुक प्रसादसे मुक्त देवी सरस्वतीकी प्राप्ति हुई है। मे भगवान् महावीरके गुथाको पाता हूँ जिन्हें सुनकर ही बीव विबपुरी प्राप्त कर लेता है।

आवधसमयकी अन्य रचनाओंमें स्तुतिमय एकवीरों—वि सं० १५५१ 'पौठमपूज्य वज्रपद'—वि सं० १५५४ 'आलोचन विनती'—वि सं० १५६२ 'नेमिनाथ हमबडी'—वि सं० १५६२ 'छेरीसा पार्श्वनाथस्तवन'—वि सं० १५६२ 'वैराग्यविनती'—वि सं० १५६२ 'विमलप्रबन्ध'—वि सं० १५६८ 'अन्तरिक्ष पार्श्व विमलप्रबन्ध'—वि सं० १५८५ 'सुमति साधु विवाहमो' 'मद्योमय पद' 'रंगरत्नाकर नेमिनाथप्रबन्ध' 'पार्श्वविमलस्तवनप्रभाती और वसुविमलविमलस्तवन' अतिपरक कृतियाँ हैं।

प्रायः इनके प्रारम्भमें सरस्वतीकी श्रद्धा की गयी है। नेमिनाथ हमबडी के प्रारम्भमें लिखा है 'सरसवचन श्रीको सरस्वतारे नाथस्तु' नेमिकुमारो सामकबरन सोहामनो से राजोमली सरतारा रे हमबडा। अन्तरिक्ष पार्श्व विमलप्रबन्ध' में भी सरसवचनको सरसता मात बोकीस आदि अस रीत्यनाथ लिखकर सरस्वतीसे याचना की गयी है। 'सुमति साधु विवाहमो' में लिखा है 'सरसति सामिनि विद मविदान मझ मनि अति उमाहकड प। 'रंगरत्नाकर नेमिनाथ प्रबन्ध' में कई पद्योंमें सरस्वतीके शीत वाये बये हैं।

'तुल तुलु सोहई बग्यक कवि पृथिम सतिहर परिसकळंती
पय कमचम गुग्गर कमळंती हंमगमनि आऊइ कमळंती ॥३॥
आऊइ कमळंती अति जवळंती बीणापुस्तक पवर घरई,
करि कमळ कमळक कमळ कुंडक रविमंडक परिकंती करई ॥५॥
सार सार ब्यावर बबी तुल पय कमळ विमळ बंदेवि
मानु सुमति सदा ठई देवी सुरमति बूरिबिबी भिदवि ॥२॥'

'पार्श्वविमलस्तवन प्रभाती' में भगवान् पार्श्वनाथकी विनती करते हुए कविने लिखा है

१. सवक विगंयह पाव ननु, हिनजई हरप अपार
अहार जेई बोकिविजं साजड ममय विचार।
छेविज सरसनि सामिबी पामिज मुमुज पसाड
सुनि मबीअज जव बीरविज पामिज विबपुर भाउ ॥१२॥
मेगुजरकविषो प्रथम भाग पृ० ५६।
मेगुजरकविषो प्रथम भाग पृ० ७१-८८।

“बालार्जुन शिवधर पाय गुना प्रियायन कीछ बिकास ।

बिबलि छति मयपाश हुँ पुँ ईउ तुमाछ दाम ॥१॥

शुद्धभरेवकी रचना करतें हुए, अनुविमलश्रित्तमन के प्रारम्भ हो गया है,

“कनक ठिकक माछ हार दाईं बिहाये

अवमपव पन्नाके पावना पंक डाछे ।

अर शिवधर माछ छुटर एक माछ

महमय अशुभ्यक राग निर्द राग डाछे ॥१॥

वैराग्य विनयी ये भी भवयान् शुद्धभरेवकी ही विनयी की मयी है ।
मययान् भवसे छारनेवाके कीर मुक्तके कारण है

“अब पडम जियेसर अति अकबर अर्वाहर शिमुचनधनीव

अशुभ्य सुन्दकारण मुनि सरराय वाचवही सबक भनीय ॥१॥”

१४ सवगसुन्दर उपाध्याय (वि स १५ ८)

अब सवगसुन्दर उपाध्याय बहुरायकके अयनु-वरमूरिसे सिध्य वे । उनकी मुक्त-वरमय इस प्रकार की : अबसेवरमूरि शिवसुन्दरमूरि शिवसुन्दरमूरि कीर अयसुन्दरमूरि । उनका समय वि स १५४८ के आध-प्राय माना जाता है । उन्होंने छारसिक्लामनरास की रचना वि स १५४८ में की थी ।^१

छारसिक्लामनरास

इस रासम २५ पद्य है । इसमें जीवनधर्म-सम्बन्धी अनेक शिक्षाश्रोता कहके ब्रुता है । इसकी मायापर मुक्तपनीका प्रभाव है ।

वार्त्तप्रभुकी रचना करत हुँ नविन लिखा है कि ये तेईसवें टीर्थकर वार्त्तनाथके वीरय एकविष्ट होकर प्रभाव करता है । मुझे यह एकविष्टता मुझे प्रसादसे मिली है ।^२

१ कैमुवरविष्ट प्रथम भाग, पृष्ठ ६७, पन् २३३-२३४ ।

२ कनकाई बहनाकई सवत्यारि मयनिरि मुनि बसमी मुक्त मानुष्यपूरि, निनु निनु मयक अयकयूर ।

कई, पृष्ठ ६ पन् २३२ ।

अनुरा के वर मयिराये छारसिक्लामनरासकी जो प्रति है कलस की रचनापत्र १८४५ वि स ही अभिलि है ।

३ मेचीमय भी वाचमाह प्रभु केरा पाय

हु प्रभु एकविष्ट कई लही मुमुक्ष पनाय ॥१॥

देवी सरस्वतीसे वरदान माँगते हुए कविने कहा 'हे माता सरस्वती ! मैं
आजसे एक वचन माँगता हूँ कि आ कविराज मुझसे पहले हुए हैं मेरा मन उनके
वरणोंमें डबा रहे ।'^१

अपाध्यायजीने सबकार मन्त्र और चौदह पूर्वोंके प्रति भक्तिवा प्रवर्तन करते
हुए लिखा है मैं समोकार मन्त्र और चौदह पूर्वोंका ध्यान करता हूँ । उनकी महिमा
बयान है एक बिज्जासे वर्णन करते हुए पार नहीं पाया जा सकता ।^२

धुनभक्तिसे अनुश्रवित होकर उग्राने लिखा है जो कोई इस कामको
हृदयमें धारण करता है उसके सब पाप धुन जाते हैं और अत्यधिक सुख प्राप्त
होता है । वह दुःखमायराय पार हो जाता है । उसे अधिकतम शिवसुख
मिलता है ।^३

श्री संकासुन्दरन अपने पुत्र कवसुन्दरको भी आराधना की है । उनके मुख
निर्मल यद्यपे धारण करनेवाले थे ।

१५ ईश्वरसूरि (वि सं १५९१)

ईश्वरसूरि सण्देरायकर श्रीछान्तिमूरिके शिष्य थे । उनकी मुद्र-परम्परा
इस प्रकार है : यद्योमन्त्रसूरि छान्तिमूरि सुमनिसूरि और छान्तिमूरि । छान्ति
सूरिके समय १५५ वि सं के आस-पास माना जाता है । इसी समय उन्होंने
सागररत्नरास की रचना की थी । यही ईश्वरसूरिका भी समय है । उन्होने वि
सं १५९१ में ललितायनरिका की रचना की । ईश्वरसूरिने वि सं १५९७ में
नाथसङ्के मन्दिरमें आदिनाथकी प्राचीन प्रतिमाका उद्धार कर उस पुनः प्रति

१ माता सरस्वति देवि कन्हई एक सुवचन मागुं

ज कविपद आगई हुआए तेह करण लगुं ॥२॥

२. ध्याऊँ श्री नववार मंत्र ब्रह्म पुरुष नार

बनबना एक बीमहीए न लहोऊई पार ॥३॥

३ एक मना मे हिम बगीचई मचना सईना पातिग आसह

होसई मुख तह अति धभुए ।

ए शितसिध्दा निनु लईइ बरस्यई दुखमागर त मिरचम सरस्यई

शिव मुख अविचल पासत्यह ॥२१९१३॥

४ बघ बीरनि अह निरनक ए जयगुजर जेह

सबेननिधि मुद यचहुए आराधु तेह ॥४॥

दिन किया था। इस प्रतिमाको भी यद्योगेश्वरसुरि मन्त्रसहितके बछसे बि सं १९४ में काये से।^१

ईश्वरसुरिका दूसरा नाम हैकमुन्दर भी था। उन्होंने ओषधिवारप्रकरण 'विषरत्न' 'कलिकागचरित' श्रोपाक चौपई' छटीक वट्पापास्तोत्र 'नन्दियेन मुनिके छह गीत बढोमप्रबन्ध और सुमतिचरित'का निर्माण किया। इनमें 'कलिकागचरित'का दूसरा नाम 'रासकचूडामणि' और यद्योगेश्वरप्रबन्ध'का दूसरा नाम 'कस्तुबिन्द्यामणि' भी है। सुमतिचरित'की रचना बि सं १५८१ में बीजाबीके दिन नाहकाईके मन्दिरमें हुई थी। उसकी भाषा संस्कृत है। 'कलिकागचरित' हिन्दी भाषाका काव्य है।

कलिकागचरित

इसमें नृप कलिकागका चरित वर्णित है। कलिकाग मन्वान् विनेत्रका परम पत्न था। वह इस काव्यका मूल स्वर धरित है ही सम्बन्धित है। इसकी भाषा हिन्दी है जिसमें प्राकृत और अपभ्रंसके अन्तोंका प्रयोग अधिक हुआ है। उसपर गुजरतीका भी प्रभाव है। ईश्वरसुरिके पुत्र बालिसुरिके सापरवत्त चरित'में भी प्राकृत अपभ्रंस और गुजरतीका मिश्रण है।

इस काव्यमें छोकड़ प्रकारके अन्तोंका प्रयोग हुआ है। वे अन्त इस प्रकार हैं। भाषा बुरा पाठाटक वट्पद कुण्डलिया रसात्मका वस्तु इनप्रयोगेन वक्ता बहिल्ल मडिल्ल काव्यार्थबोली बहिल्लार्थबोली सुखबोली बर्धनबोली समझबोली अल्प्य और खोरली। इस पाँति यह काव्य विविध अन्तोंम लो निबद्ध है ही श्रेष्ठ बहल्यार और सरस गुणोंसे भी धन्युक्त है। कविने स्वयं इसके काव्य-वीर्यकी प्रशंसा करते हुए किया है

‘मार्गकारसमन्त सचकन्त’ ‘सरसमुगुन्तर्नद्वयं।

ककिर्दमकुमारचरित ककलाककिबन्ध निमुनेह ॥३॥^२”

१ नाथुराम प्रेमीने भी इसके बाहु और अन्त दोनों ही प्रकारके वीर्यकी प्रशंसा की है।^३

१ माधवी कैलेशचन्द्रा मुनि विवर्धितकी सम्पादित, द्वितीय भाग १११वीं पृष्ठ।

२ कैलाशचरितकी प्रथम भाग, पृष्ठ १०७।

३ कैलाशचरितकी, तीसरी भाग, पृष्ठ ५१२।

४ हिन्दी में साहित्यका इतिहास पृष्ठ १४।

मन्वान् पार्श्वप्रभुके पूर्वमन्त्रका नाम कसिताग था । उन्होंने त्रिमासकी मक्ति से ही तीर्थंकर पर प्राप्ति किया था । जब यह चरित पार्श्वप्रभुके ही पूर्वमन्त्रका चरित है । इसी कारण कविने इसको पुण्य चरित कहा है

‘इष पुण्यचरित प्रबंध कसिप्रग मृपसंबंध ।

पहु पाम चरितह चित अरुण पद चरित ॥ ७३ ॥

श्री ईश्वरसूरिने माळवाके राजा मनीसहीन (१४९८-१५१२ ई) के प्रधान मंत्री श्रीपुत्र (श्रीमाली बंध) की प्राचनासे इन कसित वाग्देवता निर्माण दि सं १५९१ में किया था ।^१

कवि ‘कसितोचचरित’के प्रारम्भमें ही आविप्रभु आपमदेव और तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथका समस्वार करते हुए लिखा है

‘पहम पहम विशद पहम निच पहम धम्म पुर धरये ।

बसह बसह त्रियैस, बमामि सुरनामिष पबबंध ॥ १ ॥

सिरि आससेण नरवर चिवाककुळ ममर मीगिहा ।

भोगिह सखिय पामो दिसठ सिरि तुम्ह पहु पामो ॥ २ ॥’

१६ स्वस्मरुल (दि० सं १५७१)

कवि स्वस्मरुलका काम श्रीमाम्बयमें हुआ था । उनके पिताका नाम जसवन्त था । वे बड़े ही धर्मात्मा और सदाचारी व्यक्ति थे । उनके घर पुन-जन्म हुआ जिसका नाम जसव रखा गया । जसव ज्यों-ज्यों बढ़त लगा उनमें जैनधर्मकी मिष्टा भी बढ़ती गयी । जैन पुण्योके अध्ययनसे उनका मन बेसीरवरके चरितमें विषेय करते रहा । उन्होंने दि सं १५७१ में बेसीरवरगीतकी रचना की ।^२

कवि स्वस्मरुल ‘यह गोवाचल अर्थात् ग्वालिमरके परमेश्वर के । जस नाम

१ मन्त्रप्रकृतिप्रो प्रथम भाग, पृष्ठ १५ ।

२ वाचक निरीयल अथ जसवन्त निहरी त्रिय जय परठ ।

यह जसव कवि बंधी पुन एक ठाणें पर भयी ।

जनमन नाठ जगुह निग भिबो जैनधर्म दिहु जोयदु यरी ।

मेनि चरित ठावें मन रहू मुनि पुण्य उर नामो कहू ॥ १ ॥

कानेरताकमवहारकी हल्किगिता भनि । यह भनि १८० दि सं की है । इनमें ४४ पद हैं ।

३ इति, पद्य २ ।

महाराजा मानसिंह आत्मियरके राजा थे। उन्होंने महाराजाके विषयमें लिखा है कि महाराज मानसिंहका धर्म मुसलम और साहज नव प्रसिद्ध था। उसके राज्यमें सब सुखी थे और राजाके मयाग ही प्रजा भी मुन्नोंका उपभोग करती थी। उनके राज्यमें क्षेत्रधर्मका भी बहुत प्रचारसे प्रचार हो रहा था। प्रत्येक भावक प्रतिदिन छह आकरयन बमोंका अभिषेक करते सम्पादन करता था। कवि चण्डिका भी क्षेत्र धर्ममें निष्ठ रहते हुए मयवान् नेमीस्वरके गीत पाते थे।^१

नेमीश्चर गीत

यह एक छोटा-सा गीत है। इस गीतका सम्बन्ध मयवान् नेमीस्वर और राजकुंके प्रसिद्ध कथानकसे है। प्रारम्भमें ही कविने अपने धर्म-पूजक भावकी प्रशंसा करते हुए, लिखा है कि मयवान् जिनेन्द्रको नमस्कार करनेवाला बीच घर समुद्रसे पार हो जाता है। वंचनुराको प्रणाम करनेसे मुक्ति मिलती है। पारसाको मनामसे जगत् बुद्धि उपजती है, और जाहीराम मयवान् नेमीस्वरके गीत पानेसे पुनः जीवन प्रगल्भ होते हैं।^२

अन्तमें भी लिखा है कि इन गीतको पढ़ने और सुननेसे ज्ञान उत्पन्न होता है। प्रत्येक जोशका वर्तमान है कि मयको निरूपण करके नेमीस्वरकी कविता में समाये

‘पवन सुवन की उपर्ये भवान्

मन निरुपक करि शिव चरहु।

राजमती शिव संजमु चिन्ती

नेमी कुंवर ममी सचक मची नची।

नेमि कुंवर नेमि शिव करि है ॥”

१. नेमि—नेमि मुनः समस्त निवान् मह योगेश्वरु धर्तित दान।
एक सेवनका लंका अति ती बह राज नवक चरवीर।
मुनः बन्ध बाबु बु साहज और मानसिंह नव आनिन्दे।
राजे राज मुन्नों नव लीगु राज नमान करहि दिन भीगु।
क्षेत्रधर्म बहु विधि जलै भावय दिन पु बरे पटधर्म।
निम्नै चिन्तु सावेदि शिवधर्म नेमि कुंवर नेमि शिव करि है।
नेमीस्वरन ग क १।

२. प्रथम चरण शिव स्वामि मुद्राद कवी भव सायद पावहि चार।
नरः मुक्ति बुनि बुक्ति निरी, वंच नरन पुनः शिमुवन लाव ॥
मुनिरन उर्ये बुद्धि असाह साग्न मगाविष्ट लीहि।
पुनः जीवन को दिने पसीड की पुन बाव आरुद्राह ॥

१७ भट्टारक ज्ञानभूषण (वि स० १५०२)

ज्ञानभूषण नामके चार भट्टारक हुए हैं। चारों ही मूलतः सरस्वतीमण्ड और ब्रह्माकारणयसे सम्बन्धित थे किन्तु उनकी साक्षात् मित्र-मित्र थीं। प्रथम ज्ञानभूषण ईश्वर धाखाके भट्टारक सकलकीर्तिके प्रसिद्ध और भुवनकीर्तिके सिद्ध थे। 'श्रीन बाहुप्रतिमा-शेखरप्रभ' से प्रकट है कि वे सागबाड़े (बामड़) की गद्दीपर वि सं १५३२ से १५५७ तक बसीन रहे। ठगुपरान्त अपने सिद्ध विजयकीर्तिको भट्टारकीय पक्षपर प्रतिष्ठित कर स्वयं ब्रह्मात्मरसमें मग्न रहने लगे। वे गुजरातके रहनेवाले थे। उनकी स्थापित चतुर्विध व्याप्त थी। उन्होंने वेदक मन्दिरोंका निर्माण भुक्तिवाकी प्रतिष्ठा और विविध तीर्थसेवाकी भाषाएँ ही नहीं की अपितु विभिन्न वैष्णवी चमत्कारों का व्यापक रसका पाग भी रचया। वे व्याकरण कव्य अर्थकार, साहित्य तक और ब्रह्मात्म आदि शास्त्र की कमलोंपर विहार करनेके लिए राजहंस थे और कुछ ध्यानामृतकी उन्हें काम्यता थी। परमार्थोपदेश, आत्मसम्बोधन और 'तत्त्वज्ञानतरंगिणी' उनकी विद्वताके चोटक है। गुजराती जनकी मातृभाषा थी। उन्होंने हिन्दीमें आशीस्वर 'छागु' की रचना की थी।

दूसरे ज्ञानभूषण वे थे जिनका सम्बन्ध सूर्य साखासे था। उनकी मुरु-परम्परा इस प्रकार मानी जाती है। शैवज्ञकीर्ति (वि सं० १४९३) विद्या मन्दि (१४९९ १५३७) मन्त्रिभूषण (१५४४ १५५५) छन्दोचन्द्र (१५५६-१५८२) वीरचन्द्र (१५८३ १६०)। ज्ञानभूषण वीरचन्द्रके सिद्ध थे। उनके पञ्चात् ज्ञानभूषण ही भट्टारक बने और वि सं १६ से १६१६ तक भट्टारक पक्षपर प्रतिष्ठित रहे। उन्होंने 'जीवन्मररास' सिद्धान्तसारभाष्य' कम्मपगड़ी टीका और 'पोपह रासदा' निर्मात्र किया था।

१ संवत् १५४२ वर्षे ज्येष्ठ शुदि ८ तमी श्रीमन्मन्त्रिभूषणः ॥

सकलकीर्ति उत्पट्टे म श्री भुवनकीर्ति उत्पट्टे म श्री ज्ञानभूषण
मुकुन्ददेवात् आगता पोरबाह आसीन स बाहु मनाजुः ॥

जनेकात्म, वर्ष ४ ५ ३ ।

२ श्री बुद्धिसागरचरि, श्रीन बाहुप्रतिमा-शेखरप्रभ प्रथम भाग, १६७, १७२ और १५ ६ प्रतिमा मिला।

३ मन्त्रिभूषण व्याकरी, श्रीन विद्यामन्त्राखर श्रीन विद्या ३ ४३ ४२ ।

४ भट्टारक छन्दोचन्द्र, बोहरापुरकर सम्पादित, श्रीन छन्दोचन्द्र सरस्वती सच होनापुर
वि सं १४ ५ १६५ १६७ ।

५ श्री परमानन्द शास्त्री बोहरास और भट्टारक ज्ञानभूषण, जनेकात्म वर्ष १६
वि सं ४ २, ५ १७६ ।

तीसरे ज्ञानमूषक अट्टरघाटाके अन्तर्गत हुए हैं। इस पाञ्चाङ्ग प्रारम्भ अट्टरक सिद्धकीर्तिसे हुआ था। उन्होंने अनेक मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करायी थी। उनके एक श्लोक है—
 'सं० १५२' लिखा है। उनके बाद 'वर्मकीर्ति और उत्पत्त्यात्' चौकमूषक अट्टरक हुए। ज्ञानमूषक चौकमूषकके अनेक शिष्योंमें प्रमुख वे 'अत' उनके उपरान्त ज्ञानमूषक ही अट्टरक बने। 'व्योतिप्रकाश' के एक श्लोकसे पता चलता है कि उन्होंने विरकालसे जुटा हुए 'वीन' विधि पत्रकी पञ्चविकी प्रकट किया था^१। वे १७वीं शती (शिष्य) के द्वितीय चरणमें हुए थे।

चौथे ज्ञानमूषक काशीर साक्षात् अट्टरक रत्नकीर्ति (तृतीय) के परचाप अट्टरक परपर प्रतिष्ठित हुए थे। रत्नकीर्तिका उभय वि सं १७४५ से १७६६ तक माना जाता है। अतः ज्ञानमूषकका उभय इसके उपरान्त ही माना जा सकता है^२। उन्होंने कतिपय मूर्तियोंकी प्रतिष्ठाके अतिरिक्त कोई साहित्यिक कार्य नहीं किया।

यहाँ उल्लेख प्रथम ज्ञानमूषकसे है, जिन्होंने हिन्दीमें 'जाहीस्वर फायु' की रचना की थी। इसके पूर्व जिनपद्यमुरिका 'भुक्तिमहाफायु' और राजेश्वरमुरिका 'मेमिबावफायु' बन चुके थे। 'फायु' एक प्रकारका लोकगीत है। यह प्रायः बहुरूपमें गाया जाता था। जाने बहुरूप बहुरूप प्रयोग दिखीके भी ज्ञानमूषक और लोचन निरूपणमें होने लगा। वीन हिन्दी कवियोंने बहुरूप निरूपण

१ सं १५२ ४४५ जावाह भुक्ती ७ पुरी श्री भुक्तने न श्री विनयन उत्पत्ति श्री सिद्धकीर्ति अट्टरकभुक्तान्ने अट्टरी वास्तव्ये छात्र श्री विपी भार्या द्वारा— इतिपावन प्रतिष्ठित ॥

कैमसिद्धावस्थापरम प्रकाशित प्रियासिद्ध संवत् १ ११। अट्टरक सम्मान, कैमसिद्ध १ १।

२ श्रीकैमसिद्धिदिव्यमिह प्रकट
 स्वकीयकार अथवा कवचामुरीन।

वातावरणविनिता विनय प्रपद्य
 श्रीज्ञानमूषक अथवासिद्धमस्तम् ॥
 म्प्राप्त संवत् ११११।

३ नागरीके पञ्चमीश्री प्रकाशित बाधानली कैमसिद्धावस्थापर १ १ १०
 अट्टरक सम्मान, पाद दिव्य ११।

४ उनकी एक इच्छादिष्टि प्रति (वि सं १९२४), अमेरिकाअमेरिका अथवा
 प्रकाशित १८ ११ मीर है। यह वास्तवमें वास्तव श्री वृत्तकी प्रेरणासे सिद्धी
 ली थी।

महिमाके वर्णमें पद्म का प्रयोग किया है। बनारसीवास आदि कवियोंने अध्यात्म पद्यों को भी रचना की।

‘आदीश्वरछानु भ संस्कृत पद्य और फिर उन्हींका भाव हिन्दी पद्यमें दिया गया है। इसमें भगवान् आदीश्वरका समूचा जीवनमन्त्र वर्णित हुआ है। प्रत्येक तीर्थंकरका जीवन पंचकस्यासकामें विभक्त है और इसी रूपमें उपस्थित करनेकी परम्परा पहलेसे लकी जा रही थी। ‘आदीश्वरछानु’ भी इसी शैलीमें लिखा गया है। इसकी रचना वि. सं. १५५१ में हुई थी। इसमें ५९१ पद्य हैं।

समुने हिन्दी साहित्यमें सूरदासका शास्त्रार्थन प्रसिद्ध है। उन्होंने बाळक कृष्णकी अनेक मनीषाभोला विषय लिखा है। उक्त यह है कि वे इस क्षेत्रमें अकेले नहीं थे। मध्यकाशीन वीर हिन्दी कवियोंने तीर्थंकरके गर्भ और जन्मसे सम्बन्धित अनेक मनोरम चित्रोंका अंकन किया है। इन अवसरपर होनेवाले विविध उत्सवोंकी कथाको सूरदास छु मो न सके हैं। यह वीर कवियोंकी अपनी शैली थी जो उन्हें अपनी पूर्ण परम्परासे ही उपलब्ध हुई थी।

इस कृतिमें आदीश्वरके जन्मोत्सव-सम्बन्धी अनेक वृत्त हैं, जिन्हें कविने विनम्र ही उपस्थित किया है। जन्मके पश्चात् तत्काल ही दम्भ बाळक-आदीश्वर को पाप्मक सिद्धापर स्नान करानेके लिए ले गया। शेषपक्ष और-समुद्रसे रत्न-मण्डित स्वर्ण-कन्यामें बह भर-भरकर जान लये। उस समय विभिन्न जातोंसे विविध अग्निवा प्रस्तुति हो ली। उनके लिए उपयुक्त पद्योंका चुनाव कवि-सामर्थ्यका प्रतीक है।

“आहे रचन कवित अति मोटाठ मोटाठ कीचड़ कुंभ
 और ससुत्र घड़ पूरीच पूरीच आभीयू जैम ७८१॥
 आहें मूमि मूमि लक्ष्मीच बरजह मूमि मूमि मऊक नाद
 दणव दणव टोकारण सिमि सिमि झककर साव ७८२॥

आदीश्वरकी मूर्ति उसे मोतिमाका एक मोटा-सा हार पहना दिया है। उससे बाळकका शोभन बढ़ा नहीं। वह एक बोला-भास बनकर रह गया। किन्तु बेचारी माँ अपने बिलकुल क्या करे। वह अपने पुत्रको विविध आमृतपत्रोंसे लबाना ही चाहती है। वह सोचती है कि बाळकका स्वाभाविक शौण्ड्य इससे और भी बढ़ जायेगा। माँकी यह क्षुब्ध भी कितनी स्वाभाविक है।

१. आहें एकान्त अविना घन पक्ष कोक प्रमाण।

पूवउ मल्लिखई जिप्रितिई से नर अतिहि सुजाय ॥

आदीश्वर पाण्डु, अमरपद्मसमवासी इत्यादिदिन मणि, १९२१ ई. व.।

आहे कांठह मोटा मोठीपणु पहिराणु हार ।

बहिरीनी भूषण रंगिन जंगि कगा रज भार ॥३८॥”

कविने बालकके प्राकृतिक शौण्डर्यको विविध उपमाओंके द्वारा अतिशय किया है। उसका मुख पूर्वमासीके चन्द्रके समान है। अनुपम है। संसारके किसी पदार्थसे उसकी तुलना नहीं की जा सकती। उसके हाथ कस्तुरीकी धावके समान हैं और वे मुटुको एक लम्बे हैं। अर्थात् उस बालकके महापुरुष होनेकी सूचना देते हैं,

आहे मुख त्रिभु पृथिवी चंद्र चरित्रन मित पद पीठ ।

त्रिभुवन मलय मलयि सरीपड कोई न होत ॥

आहे कर सुरतक बरं कात समान सजातु प्रमान ।

तेह सरीपड कदकहीं धूप मकर्महि जाति ॥३९॥ १३९॥

वाक्-शौण्डर्य कविनी वस्त्रावर निर्भर करता है। वह जिसकी सजा होती है शौण्डर्य उतना ही अधिक होता है। यहाँ उसकी कमी नहीं है। बालकके नेत्र कमल-दलके समान हैं अर्थात् कमलके पत्तों-जैसे दीर्घमित और सुन्दर हैं। बालककी बापीमें नीमकटा है। बालक केवल बाह्य शौण्डर्यसे ही नहीं बल्कि आन्तरिक गुणोंसे भी युक्त है। उसमें समूचे गुण इस भाँति भरे हुए हैं जैसे मग्नो वार बालीन घरोवरमें निर्मल नीर भरा हो

“आहे मलय कमल एक सम त्रिज कामक बीकह बापी ।

वार घरोवर निरमल सकल सकल गुण जाति ॥४०॥

इसी भाँति कविने वस्त्रावरके निरन्तर बहनेका वर्णन किया है। आलीस्वर दिन-दिन इस भाँति बह रहे हैं, जैसे छितीयाका चन्द्र प्रतिरिक्त विकसित होता जाता है। उनमें धनी-धनी जड़ि बुद्धि और वसिष्ठता प्रस्फुटित होती जा रही है, जैसे समाधिस्थानपर सुम्बने फूल खिल रहे हो

“आह दिन-दिन बालक बावह बीज तनु जिम चन्द ।

रिद्धि विबुद्धि विस्तृद्धि समाधिस्था फूल फूल ॥४१॥

जीवन आनन्द आलीस्वर सम्राट् बन । एक दिन अपने दरबारमें नीकनना नामकी नर्सकी मृत्यु करती-करती ही दिवंगत हो गयी। सम्राट्के हृदयमें वैराग्यका भाव बढ़त हुआ। वे सोचने लगे आयु कमल-दलके समान लक्षक है तथा जीवन और मृत्युके नीरनी भाँति बदलत है। कुछ काल और बुधित मोह होता है किन्तु विचार ही यह करता है कि मरती समय कीन साथ देता है,

“आह जानु कमल एक सम लक्षक लक्षक जाति ।

जीवन जन हृद अक्षिर करम जिम करतक नीर ॥४२॥”

“आहे पुत्र ककुत्थ सुमित्र तणीय यणीय कहूँ साथि ।

तेह भोसारी बिचारि कहूँ कुण भावइ साथि ॥१८॥

उनका कथन है कि आत्माके बिना यह शरीर किसी काम नहीं आता जैसे सुदन्तके बिना पुष्प निरवयव ही है।

‘आहे कुसुम वन्यम परिमल नीमपत्र कहूँ केहउ सार ।

आत्म कहूँ नहीं काम शरीरि न पुत्र कगार ॥१८९॥”

अनेक बौद्ध कवि ऐसे हुए हैं जो एक ओर संस्कृत एवं प्राकृतके विविध विद्यान् वे अर्थात् सिद्धान्त और तर्कशास्त्रक पारंगामी होते हुए भी दूसरी ओर सहृदय भी कम न थे। उनका काव्य उनकी सहृदयताका प्रतीक ही है। कवि ज्ञानमूपनकी वचना ऐसे ही कवियामों की जाती है।

१८ भट्टारक शुभचन्द्र (वि सं १५७३)

भट्टारक शुभचन्द्र पद्मनम्बिकी परम्परामें हुए हैं। उनका कर्म इस प्रकार है पद्मनम्बि, सप्तक्रीति मन्त्रक्रीति ज्ञानमूपन विजयक्रीति और शुभचन्द्र^१। इस धर्मि वे ज्ञानमूपनके प्रशिष्य और विजयक्रीतिके शिष्य थे। इन्होंने भट्टारक श्री ज्ञानमूपनकी प्रेरणासे ही बाबिराजद्वारिके पार्श्वनाथ काव्यकी पंक्ति टीका लिखी थी।

भट्टारक शुभचन्द्रका समय सोलहवीं शताब्दीका उत्तरार्ध और सत्रहवीं का पूर्वार्ध माना जाता है। उन्होंने सं १५७३ में आचार्य अम्बत्तचन्द्रके समयसार चरमोपर अम्बत्तचन्द्रमिनी नामकी टीका लिखी थी और सं १६१३ में वर्षी ज्ञानचन्द्रकी प्रार्थनासे स्वामीक्रीतिकेमानुग्रेसर^२ की संस्कृत टीका की। अब उनका रचना-काल तो निश्चय रूपसे वि सं १५७३ से १६१३ तक माना ही जा सकता है। उनके जन्म और मृत्युके विषयमें कुछ भी बात नहीं हो सका।

भट्टारक शुभचन्द्र अपने समयके गण्यमाग्य विद्वान् थे। उनका संस्कृत भाषा पर अधिकार था। उन्हें “त्रिविधिनिघावर और पट्टमापाकविचक्रवर्ती” की पदवियाँ मिली हुई थी^३। ग्याय व्याकरण सिद्धान्त छन्द जलन्तार आदि विषयोंमें उनकी विद्वत्ता अप्रतिम थी।

१ बाबद्वारात्मप्रशस्ति अन्तर्गत स्तोत्र १६७-१७२ कैलाचन्द्रमणिप्रमद प्रमद भाग, पृष्ठ ४१३ ।

२. ५ आचार्य मेरी बौद्ध साहित्य और इतिहास पृष्ठ १५३ ।

दानकर रेंवता है। काष्मकी चुनड़ी बह है जो जिनकर प्रणीणकोसे छापी गयो हो। इसे चुनरी या 'भूणि' भी कहते हैं। मुनि विमलचन्द्रके इस काव्यमें एक पन्नीमें पठिसे ऐसी 'चुनड़ी' छानेकी प्रार्थना की है जिस ओडकर जिन-शासनमें विश्रामता प्राप्त हो जाय।

'चुनड़ी में साकेतिक रूपसे जैनधर्म-मन्त्राली चर्चाभाषा मंदसत है। उन्हें पढ़कर जैनधर्मके प्रति झठाका जगम होता है।

पत्नीको पूरा विश्रवास है कि ऐसी चुनड़ी में से पारदुकासरी जुगुँयाकी भाँति धीनक प्रकाश छिटकेया जिससे समूचा भक्षानागवहार नष्ट हो जायगा। उसकी इच्छा है कि वह दौतक जुगुँयाई उससे हृदयमें बैठ ही निवास करे जैसे शान्तरोवरमें शंखध्व रहती है

पणचडै कोमल-कुचकच-जयणी
अमिष गन्ध अल-सिध-धर-वचणी ।
पमारवि सारोदु काराह जिस
आ अंधारउ सबसु बि जामह ।
सा महु निवसउ प्राणमहि
हंस-वधू जिस कहि सरासह ॥ १ ॥

पत्नीने मोह महात्मनी ठाठनेके लिए जिनकरके समान पंचपुरम भी प्राप्ति की है कि उसका पति ऐसी चुनड़ी लावे जिसका छहारे वह भव-समुद्रमें पार हो सके।

'चुनड़ी की भावामें प्राकृत और अपभ्रंशके पाशोका प्रयोग अधिक हुआ है।

१ हीरा रंज-मणि-जयदंभी ।

पीरउ विउ कामह बिहगनी ॥

मुँरर जाह मु बैरहरि

महु वप विरउउ मुरम मुचकण ।

मह जिवावि चुनहिय

महँ जिध-जामणि मुरदु विपकण ॥ ३ ॥

२ बिगई बरिहि पंच-मुन

बाह-महा-जय-जालह-निधयर ।

गद जिवावि अरिह

चुनउ जकाह विउ अरिहिय वर । पणज पणव ।

महाराज भूमचन्द्र ने 'पाण्डवपुराण' की रचना वि. सं. १९८ में की थी। उत्सवार्थ रचाना वि. सं. १९११ में करवन्धुचरित और वि. सं. १९१९ में 'स्वाधीकारिकेयानुप्रेक्षा' की टीका लिखी। 'पाण्डवपुराण' की प्रचलित में उनके द्वारा लिखे गये २५ प्रश्नोक्ता बल्लेख हुआ है।^१ श्री कस्तूरचन्द्रजी कासडीवालने इनके ४ छे भी अपिष्ट प्रश्नोक्ती सूचना दी है।^२ महाराज भूमचन्द्र ने हिन्दी में 'उत्सवसार हुआ' की रचना की थी।

उत्सवसार हुआ

इसकी हस्तलिखित प्रति 'टीकियाल कीन मन्त्रि कवय' के छात्र-अम्बारमें मौजूद है। इसमें ९१ पद्य हैं। मायापर बुधराटीका अधिक प्रभाव है। सरल भाषामें उत्तम भाव प्रतिष्ठित हो सके हैं। पाठका निरूपण करते हुए कविने किया है

'कर्मकर्मक विचारनो है मिश्रित होय विवाह।

मोह उत्तम की जिन कही जानवा यावु अस्वास्त ॥१९॥

कविने रच और आचार्योके दोहको कृत्रिम माना है। उनकी बुद्धिमें सभी चीजोंकी आत्मा उवाग है। आत्मासे आह्वयत्व अपना धृष्टत्व नहीं आ सकता क्योंकि उसका स्वल्प उत्तमाद्य रूप नहीं है। इसीको व्यक्त करते हुए कविने कहा है,

'अल्प नीच नहि अपना बुद्धि

कर्मकर्मक एको की तु सोह।

मोह्य कविन वैश्य न छुह

अप्या राजा नहि होय छुह ॥ ॥

आत्मा पवित्र है। वह जनी-निर्जन दुर्लभ-सकल दुर्प-नीच और दुष्ट-दुष्ट सबसे परे है। ये दोष बने नहीं छाते

'अप्या नहि नहि नहि निर्धन

नहि दुर्लभ नहि अप्या चण्ड।

मूर्ख बर्ष होय नहि ते जाय

नहि सुखी नहि सुखी अतोय ॥२०॥

१ यही छ १५४।

२ मठलिम्बाज जीकस्तूरकर कासडीवाल सम्पादित। जीकस्तूरजी प्रतिभामय कमेटी कस्तूर, मध्याह्ना छ १९।

एक स्थानपर कविने लिखा है कि कुछ विद्यामन्त्रक्य जपना धाम ही ज्ञान है । उसका विमलवन करनेसे मोह-माया दूर हो जाते हैं और सिद्धि प्राप्त होती है । बारम्बारसे सिद्धिमें ही मुक्त मिळता है जगन्नाथ नहीं

‘ज्ञान मित्र भाव कुछ विद्यामन्त्र
जीतलो मूको भाया मोह गेह देहए ।
सिद्धवन्तो मुक्तमि मक हरदि
जायना भाव कुछ पृथक् ॥९१॥’

गुस्की महिमाका उत्केष करते हुए कविने स्वीकार किया है कि गुस्की ह्वाके बिना कुछ विरूपके ध्यान करनेसे कुछ नहीं होगा । गुस्की कृपासे ही कुछ स्वप्न प्राप्त हो सकेगा

“श्री विद्यावकीर्ति गुह भनि करी ध्याई कुछ विरूप ।
महारक श्री गुहमन्त्र भनि था तु कुछ सकने ॥९१॥”

ऐसा प्रतीत होता है कि इस काव्यकी रचना किन्हीं ‘बुलहा’ नामके धर्मप्राप्त व्यक्तिकी प्रेरणासे की गयी थी । स्थान-स्थानपर उसका नाम आया है,

‘रोग रहित संगीत सुली रे संपदा पूरव ठाण ।
धर्मबुद्धि भन छुदि श्री ‘बुलहा’ धनुस्सि जाण ॥९१॥’

चतुर्विंशति-स्तुति

मठारक घुमचक्रकी यह इति श्री विष्ण्वर बीन मन्दिर बधीचन्द्रकी जय पुरमें मौजूद है । इसकी भाषापर श्री गुजरातीका प्रभाव है ।

क्षेत्रपाठ गीत

पाटीरी कि बीन मन्दिर जमपुर गुटका नं ५६ से ९९वीं संस्कारपर लिख है । इस गुटकेका कैलान-नाक दि सं १७७५ है ।

अष्टाष्टिका गीत

यह मोठ श्री लपर्युक्त मन्दिरके ही गुटका नं २१६ से पु २१ पर संनक्षित है ।

१९ विनयचन्द्र मुनि (१९वीं सदी प्रथम पाद)

मुनि विनयचन्द्र माधुर संजोय मठारक बालचन्द्रके शिष्य थे। वे विनयचन्द्र मुरिसे स्पष्टतया पक्के हैं। विनयचन्द्रमुरि औरतुओं घातकीके रत्नसिंहमुरिके शिष्य थे।

मुनि विनयचन्द्र गिरिपुरके राजा ब्रजवल्लभके राज्य-नाम्न हुए हैं। उन्होंने ब्रजवल्लभके राज-विद्यारथें बैठकर ही अपने कुनबी काव्यका निर्माण किया था। ब्रजवल्लभका समय १६वीं सताब्दीका प्रारम्भ माना जाता है, यहाँ यह सिद्ध है कि विनयचन्द्रका रचनाकाल भी यह ही है। इनके अति रिक्त विस्तृत पुस्तकमें 'कुनबी' काव्य लिखा हुआ लिखा है, वह विक्रम संवत् १५७५ का लिखा हुआ है। इससे सिद्ध है कि काव्यका निर्माण वि सं १५७५ में पूरा हो चुका था।

'कुनबी'

कुनबी एक प्रकारकी ओखनी है जिसे रैपरेख निम्न-लिख प्रकारके दोह-बुटे

१ माधुर-संजोय उद्यम मुनीसह।

रत्नसिंह बालचन्द्र पुत्र बल-सह ॥

मुनि विनयचन्द्र कुनबी, दूसरा वह प्रथम दो श्लोकों अनेकाल वर्ग ५, विरच ५-७ व ११।

२ कैलाशकनिजो, प्रथम भाग, पृष्ठ ५।

३ छि-द्वयनि गिरिपुर अति विख्यात ॥

उद्यम-संजोय न बर-बलि जामल ॥

छवि विरचिते मुनिवर

ब्रज बरिबहो राज-विहारहि।

वेरें विरह्य कुनडिय सोहल

मुनिवर जे कुन बारहि ॥११॥

अनेकाल, वर्ग ५, विरच ५-७ पृष्ठ १११।

४ वह गुणा ५ दीपकम्बो वंशवायो जगत्तर सिद्धि देराह नामक जीने के मणिरसे उन्मत्तिका शास्त्रमन्त्रारमें किया था। वह गुणा वृक्षमन्त्र देरके अन्तर्गत गुणार्थ कुनमें सीमांत नगरीं वि सं १५७५ जेह हन्दा मणिराजो, मणिराजराजे कुन गुणार्थ वंशवायो राजवालयमें लिखा गया था। अनेकाल वर्ग ५, विरच ५-७, पृष्ठ ११७।

५ वह वा-५, श्री विष्णुवर केन वहा मणिर जगत्तरके गुणार्थ वर्ग १५५ में भी वर्णित है। वह गुणा वि सं १५७० वैशाख सुदी ७ वा लिखा हुआ है।

हाथ पर रोगा है । बाध्यही चुनही वह है जो बिम्बर प्रकीर्णकमें छापी मयी हो । इसे चुनही या भूमि भी कहते हैं । मुनि विमलचन्द्रके इन वाक्योंमें एक पत्नीने पतिसे ऐसी 'चुनही' छपानेकी प्रार्थना की है जिसे बोझकर जिन-साधनमें विचलनता प्राप्त हो जाये ।

'चुनही में सकेतिक रूपमें जीवनपर्य-मध्यस्थी बचसिंवा लक्ष्मण है । उन्हें पढ़कर जैनधर्मके प्रति श्रद्धाका जन्म होता है ।

पत्नीको पूरा विश्वास है कि ऐसी चुनही मम दारदुःखकी मुहूर्तयात्री घनि घीतक प्रकाश छिन्नेगा जिससे ममूचा अज्ञानात्मकता नष्ट हो जायेगी । इसकी इच्छा है कि वह पीछेसे जुन्हाई समके हृदयमें बीसे ही निवास करे जैसे मानसरोवरमें हंसकण्टकसी है

‘पल्लवर्द्ध कीमल-कुचकच-जलधरी
अमिष गन्धम अण मिष-दर-वचणी ।
पसारिषि सावन्तु आराह जिम
जा अंधारह सबसु बि नामह ।
मा महु निबन्धन माणसहि
हस-वधु जिम हवि सरासह ॥ १ ॥

पत्नीने मोठ महात्मको लोडनके लिए दिनचरये समान पंचगुप्ते भी प्रार्थना की है कि उसका पति ऐसी चुनही लावे जिससे सहारे वह मर-समुद्रमें पार हो सके^१ ।

'चुनही की भावार्थ प्राहुन और अज्ञानके दारुणा प्रथीय अक्षिप्त हुआ है ।

१ हीउ दंग-मनि-जलधरी ।

गौरह पिठ कोलह विहमणी ॥

मुहर आइ मृ बैडारि

महु वप विज्जह गृह्य मुक्कवन्ध ।

मरु जिगर्हहि चुनहिय

हर्हि जिम-जालणि मुट्टु विमरगग ॥ १ ॥

२ विमलं वरिषि बच-मुह

महु-महा-जम-गारुध-विचपर ।

पारु विज्जहहि चुनहिय

मुट्टु गमणह विउ मीटिबि वर । वन्धु प्रवह ।

उसका समूचा कर प्राचीन हिन्दीका है। इसमें कुछ २१ पद्य हैं। इन काव्यर एक विस्तृत संस्कृत टीका भी है। हिन्दी इसके रचयिताका नाम उसमें नहीं दिया है।

निम्नरपंचमाधिष्ठानकथा

इस कथामें मविष्मत्तका चरित्र लिखा गया है। मविष्मत्त मणवान् त्रिवेण्वा परम यज्ञ का। कथाका मूल स्वर मल्लिके हैं। सम्प्रतिष्ठित है।

प्रारम्भमें ही कवि पद्यपुत्र चारदा और जगने पुत्रके पुत्र पुनि उदयचन्दकी कथा की है।

“पद्यविनि पंच महागुरु, सारद चरित्रि मयै।

उदयचन्द सुमि चरित्रि सुमरित्रि काक पुन ॥”

कविता विस्वास है कि जो कोई मन्त्रजन इन कथाको पढ़ना और पढ़ावा है, उनके सब पाप क्षम-मात्रम भूट हो जाते हैं। हिन्दी ऐसा उची हो करना है, जब कि यह बई और जोबसे मूल हो और उसका मत बचमें हो।

“मविष्मत्त पदपु पदपदपु दुरिपदु रैदु जके।

मानु म करदु म कदु मरु रैचदु कदु ॥” अन्तिम ॥

कविता यह भी कथन है कि जिन वाचनासे प्रेरित होकर यह पंचमी कथा बनी गयी है वह कम्पन माध मविष्मत्त चित्रिके वर्धन कथनेम पुत्र समर्प है।

“जेन अर्चति मकारा पंचमिय बच हो।

भम्बदि छे दुरिमाचिय मविष्मत्त मिद्विपदा ॥” अन्तिम ॥

इस कथाकी भाषा भी प्राचीन हिन्दी है। जिनमें अपभ्रंश और प्राकृतके शब्दों-का नियम है।

पञ्चकस्यापिकरासु

टीर्ककरके कर्म जन्म पद ज्ञान और मोक्षकी पंचकस्यापिक कहते हैं।

१. यह कथन अनेकाल पूर्व है, विस्तृत २-७ में पृष्ठ २३७-२४२ तक प्रकाशित हो चुका है।

२. केवल पञ्चककी मन्त्रि हिन्दी मन्त्रिद पञ्चके उत्तराष्ट्र मन्त्राष्ट्र का इन्द्रपिडित प्राचीन मन्त्रि।

३. सुमि मन्त्रकत्त निम्नरपंचमाधिष्ठानकथा इन्द्रपिडित मन्त्रि, पञ्चककी मन्त्रि, विस्तृत मन्त्र कथ।

४. पञ्चककी मन्त्रि हिन्दी, मन्त्रिद पञ्चके मन्त्राष्ट्रकी इन्द्रपिडित मन्त्रि है।

५. दीर्घकत्तकी मन्त्राष्ट्रके मन्त्र पञ्चकी, जो कथे केगर्ह मन्त्रके इन्द्रपिडित मन्त्र है, यह रचना इन्द्रपिडित है।

इस कव्यमें बोधोस तीर्थंकरोंक पंचकस्यायकोंकी विविधोक्ता उल्लेख हुआ है। यह उल्लेख जैनप्रायमानुसूत है अतः प्रामाणिक है।

कविने लिखा है कि तीर्थंकरके पाँच निमल कस्यायक सिद्धि प्राप्त करामने पूर्ण रूपसे समर्थ है

‘सिद्धि सुईकर सिद्धिपुत्र पञ्चविधि सि अथपथायन कवक।

निर्दिहि कारण सुखमिहस सबकवि जिनकहाणह नियमक ॥

कविका विश्वास है कि मगवान् जिनमूके पंचकस्यायकोंकी सक्रि निबिड़ ब्रह्मकारको विधीर्ष करती है। यह कनेकानेक उत-उपवासके बराबर फल प्रदान करती है,

“पुयमनु पुरुति कवकाण्ड विधि निर्दिधदि अहह गद्गाण्ड।

तिहु आर्यविलु जिलु मणह, अडहु होह उपवास गिहस्पह ॥

अहवा सचकह लक्षण विहि विजयचर्च ह सुणि कहिह समारह ॥

मगवान् आपमदेव वासुपूज्य, विमलमात्र और नमिसुकी अम-ठविमाना उत्प्रेष करी हुए कविने लिखा है,

‘पहम परिह हुहवहि आसावहि रिमह गम्मु तहि उत्तर सावहि।

अंधारी छहहि तहिमि अंधमि वासुपूज गम्मुच्छड ॥

विमल सुविहड अट्टमिहि वसमिहि नमिजिय अम्माणु तहवड ॥”

इस पदकी भी भाषा प्राचीन हिन्दी ही है। उसपर अवर्जस और प्राकृतका प्रभाव है।

२० कवि ठकुरसी (वि सं १५०८)

कवि ठकुरसी कच्छेलशाल जातिमें उत्पन्न हुए थे। उनका मोक्ष पद्मरूपा था। उनके पिताका नाम बेन्हु था जो एक कवि थे। उनकी माता कमलिष्ठ थी। शोनीका ही प्रभाव पुनपर पडा और ठकुरसी एक जहार कवि बन सके।

उनका जन्म अम्पावनी नामकी नगरीमें हुआ था जो उस समय घन वास्यादिसे विभूषित थी। वही जनवान् पार्ष्णनाथका एक जिन-वन्दित भी था वही

१ बेन्हु मृगमु गुच गाऊँ कवि प्रयट ठकुरसी गाऊँ।

वैविधिय बेल पर्याप्त। श्रीराम वरीकम्पजी अमुरको दम्पतिरिदा घनि, गुल्का सं १४ व १२६।

बैठकर भट्टारक प्रयागग्र बसोपदेश देने से । वही तोपक नामके विद्वान् और
बीजा शास्त्र पारंगत बाबुलाल भूमिदास नामके और भुक्तम आदि उत्तम
पात्रक रहने से ।^१

कवि ठगुरमीने 'हृदय चरित्र' विषयमात्रतकका 'दशमिप्रिय वेद'
'नेमीनुरमी वेद' पारंगतगुणसत्तावसीसा 'विस्तारविश्रयमात्र' 'सुमनेत्रि और
मोक्षरस्तव' की रचना की थी । सभीकी माया प्राचीन हिन्दीका चिह्नित
रूप है । उसमें यत्र-तत्र अन्तर्गतके चरित्राका भी प्रकाश हुआ है । रचनाएँ सरल
हैं । सभीमें प्रभावगुण मौजूद हैं ।

कृपण-चरित्र^२

कविने इस कृत्तिको वि. सं. १५८ में पीप मासकी पंचमीक दिन बुरा
क्रिया का ।^३ इस नाममें ३५ छन्द हैं । इसमें एक कर्तुनका जाँझो-देना चरित्र
चित्रित किया गया है ।

कविने मरमें ही एक हृदय रहता था । वह कर्तुन का और उसकी कली
उत्तर तथा चरित्र । एक बार कलीने मुना कि विरलारकी यात्राके लिए ईश
का रहा है । उसने वही चरित्रका पत्रिष्ठ आग्रह किया । कलने कहा कि वही
आकर इन चरित्रान् विमलावने वसल करेगा । कलने मुन पत्रुवाकी कथन ब्रह्मर्षि
ब्रह्मर्षि ही ईश्वर्य कारण किया था । कलकी वल्लभास अन्त सकल होवा और
अन्तर पर प्राप्त कर सर्वेमें^४ ।

म्यकली बाद गुनकर हृदय बेचन हुआ और अपने एक दूसरे कृपण मित्रकी
सम्पत्तिसे कलीका उत्तरकी मक्ति पर भेज दिया ।

१ व. कल्याण शास्त्री, कविर ठगुरमी और कल्याण कृत्तिकी, अनेकाल वर्ष १५
क्रि. १ ५ १५ ।

२. पर नाम कविति विरलार के अन्तरकी सम्पत्तिसे, एक गुनमें
मिया है ।

३ मैं बहुर ही मयह पीप पानी कवि जाण्यो ।

मिसी हृदय इक बीठ, मिसी गुन तागु बखाम्यो ॥

कविते विरलार के अन्तरके उत्तरकी सम्पत्तिसे प्रति १२वीं
अन्तर, कल्याण व. नाम्नाय प्रदी हिन्दी के साहित्यका इतिहास कविते,
१ १ ई. ५ १५ ।

४ कल्याण शास्त्री कविर ठगुरमी और कल्याण कृत्तिकी अनेकाल वर्ष १५
क्रि. १ ५ १५ ।

‘कृपण कहै रे मीठ भग्न बरि भारि सतायै ।
जात जाकि बलु पारकि कहै बी मोहि न भायै ॥
विहि कारण कुपवर्क रपय दिन भूत न छाई ।
मीठ मरणु जाहूँ गुम्तु आर्यो रू भायै ॥
या कृपण कहै र कृपण सुनि मीठ न कर भवसाहि दुख ।
पीहरि पडाइ ई पापिणी कहीं को दिन रू हीइ सुख ॥

अब संव यात्रासे लौटा तो कृपणने देखा कि कई लोगे बसीम घन कमाकर जाते हैं। उसे अपने न जानेपर दुःख हुआ। इसी दुःखसे प्रपीडित होता हुआ वह मरण-सम्यापर छेद गया। उसने कस्मीसे प्रार्थना की कि मैंने तुम्हारी जीवन भर एकनिष्ठतासे सेवा की अब तुम मेरे साथ जाओ। कस्मीने उत्तर दिया तू न। तो वैद्यमन्दिरोमें जाकर मन्वान्क धर्म-पुत्रादिम ध्यान समाय और न ठीक-यात्रा प्रतिष्ठा तथा अनुचित संवाहिके पोषणमें घन धन किया अब मैं तेरे साथ नहीं जा सकूँगी।

‘कष्टि कहै र कृपण छूट हौं कहे न बोकों
तु को कष्टन दुख वैह गीक कायी तासु बाकी ।
प्रथम कष्टन सुख पडु वैह वैहुरें अविशैं ।
दूजे जात पविट्ट बाणु यदसंबहि दिगैं
न कष्टन हुजे तैं मजिबा ताहिनिहूँ कया कहीं ।
अलभाहि जाह तुं ही रही बाहुनि न सगि पारे कहीं ॥

कस्मीके इस उत्तरसे आत्यधिक दुःखी होता हुआ कृपण मर गया। पत्नीने उसके घनकी पुष्प-वृक्षोंमें धन किया।

इस भाँति इस काव्यका मुख्य अंश कृपणकी कृपणतासे सम्बन्धित होकर भी भक्तिसे युक्त है। विनैमकी भक्ति इस लौकिक तो कस्मी—सम्पत्ति प्रदान करती है परन्तु अन्तमें भी पुष्प कर्मके अवसरे कहती—वरम शोभा मिलती है ऐसा इस काव्यका निष्पत्ति है।

मेघमासाप्रत्यक्षा

कवि ठकुरसीने इस काव्यका निर्माण अम्बावती नामकी नयनीमें बधिरदुःख भक्तिशास्त्रके कहनेसे वि सं १५८ आनन्द गुरी केठके दिन किया था।

१ यह काव्य अन्तमेंके मशरक दर्शकीर्तिसे रमणभयटारके एक गुरकेमें भक्ति है।

२ हाथ न साह महति धईतै पहाचैव पुत्र जयएसतै।

पहाचैव साहि असीतै अम्बक सावण भाति छठिनिच मयक।

मेघमासाप्रत्यक्षा अन्तिम मशरक, अने बाल्य वर्ष १४ विरल १ व १६ पार दिव्यी।

इसमें ११५ कवचक और २११ पद्य हैं ।

इस काव्यमें मेघमाळाद्यत करनेकी विधियाँ सांगोपास वर्णन हुआ है । कवामें निरुद्ध होनेके कारण विधियाँके उत्प्रेक्षामें कसता नहीं जान पायी है । यत्र-तत्र मयदान् विनेत्र और पंचमुखोंकी अंकितकी बात भी कही गयी है ।
पंचेन्द्रिय चेष्टे

इसकी रचना बि. सं. १५८५ में कार्तिक सुदी १३ के दिन हुई थी । इसमें पाँच इन्द्रियोंकी वासनाया विध तत्परिचित किया गया है । यद्यपि इसका मूल स्वर उपदेश है किन्तु यही इसकी रम्य है कि पाठक रस-विभोर हो जाता है । इस काव्यमें केवल छन्द पद्य है ।

कविये प्रत्येक इन्द्रियकी हानि विवक्षितके लिए, प्रायः वृहन्ताका उदाहरण किया है । इससे काव्यकी रमणीयता और भी बढ गयी है । प्राण इन्द्रियका सम्बन्ध बन्धन है और बन्धनोत्तरी सर्वत्र हानि उठाना है । कविये बहु भ्रमरके वृहन्तासे पुष्ट किया है । एक भ्रमर कमलमें इसलिये बन्ध हो गया कि वह रस भर उसके रसको बजाकर के सके । किन्तु सूर्योदयके पूर्व ही एक हाथी बाया और कमलको नाकसहित कप्याकर पीरोसे कुछछ बिना जिससे भ्रमरकी भी प्राण रवाने पड़े । कविका कथन है कि प्राण इन्द्रियकी बरचना स्वीकार करन वास्तव्य नहीं हाक होता है^१ ।

१ राजकी एक इच्छाविधि प्रति अभिरक्षाकमकार, कल्पुरमें मौजूद है । वह बि. सं. १६०० में लिखी गयी थी । एक प्रति मया मन्दिर धैर्यमें भी है ।

२ संक्षु पन्थाईर पिप्पास्यो लेखि सुखि काठिग मासे ।
इ पाँच इंद्री बसि राजी सो इतर परत सुख बासे ॥
कवि मुरली पंचेन्द्रिय जेल अमेरताकमकारकी प्रति ।

३ 'कमल पयटो भ्रमर विनि बाध कर रस कद ।
रमपि पबीतो समुद्रपो नीसरि सक्यो न मुहु ।
सो नीसरि सक्यो न मुहो अतिप्राण बररस कही ।
मनचित रबधि बसाई, रसलेखु भावि बसाई ।
बह झूनी सो रवि विमली सरवर विगरी को कमली ।
तब नीसरिस्वो यह झेई समुद्रस्या बाह नहीई ।
चिठि निरी गनु इहु नामो विनकद धगिवा न पायी ।
बहु पैठि सरोवर पोयी नीसरत कमल पाखडी छोयी ।
बहि सुखि पाकसि बाप्यो बकि माएवी बरहरि कपी ।
यह गद्य विधे बसि हुनो बसि बाहुक अपूटी भूयो ।
बलि मरण करण बिठि बीनी अति गनुबाहु दि कीकी ॥१॥'
पंचेन्द्रिय जेल, प. अर्याल्ल साकी, कविर मुरली और कविके इन्द्रिय
अमेरता, की १४ दिग्ग १ पृष्ठ ११ ।

स्वयंस्त्रियकी नियमता दिखाता हुआ कविन जितना है कि इसी इन्द्रियके कारण वनमें स्वयंस्त्रिय विचरनेवाला हाथी सोहेरी श्रृंगसाजामें बैसता है, और अंगुष्ठके धारोंको सहन करता है^१। कीचक रावण और दंकरन भी इसी इन्द्रियके कारण बनेवों दुःख उठाये थे।

नेमीसुरकी चेष्टा

इसका दूसरा नाम 'नेमिराजमयी' है भी है। इसका कोई स्पष्ट संवत् नहीं दिया है। चिन्नु अनुमान है कि अर्धयुक्त रचनाओंके आस-पास ही यह भी रचा गया होगा। इसमें भगवान् नेमिनाथ और राघुलके जीवनका परिचय है। इसमें तीर्थंकर नेमीस्वरजी भक्ति ही प्रधान है।

पार्ष्वनाथ सकुल सत्ता यत्तोसी

इस काव्यकी रचना वि सं १५७८ में हुई थी। इसकी हस्तलिखित प्रति पं मूचकरजीके मन्दिर जयपुरमें गुटका नं २५ में अंकित है।

गुप्त चेष्टा

इसकी हस्तलिखित प्रति पं मूचकरजीके मन्दिर, जयपुरमें गुटका नं ९२ में लिखी है। यह गुटका सं १७२१ का लिखा हुआ है।

'चिन्तामणिद्वयमाला' और 'वीमन्तर-स्तवन' का अन्वेषण पं वस्तुरामदासजी वाकने किया है।^२

१ वन उखर फल छठ छिटि, पय पीवत ॥ स्वच्छंद ।

परसय इन्दी प्रेरियो बहु बुल छई बयल ॥

बाण्यो पाव अंगुष्ठ पाके सो दियो मगकी पाछे ।

परसय प्रेरहुँ बुल पावो तिमि अंगुष्ठ पावा पावो ॥

पञ्चद्विज बैल मलामन्दिर बैरलीन्दी हलसिधित प्रति ।

२ परसय रस कीचक वुरपी गहि भीम पिछासल भूरपी ।

परसय रस रावण नामह बारपी अनेसुर रामह ।

परमज रस दंकर राखी सिय जाने मग क्यो ताक्यो ।

३ वर काव्य भी दि केन वडा मन्दिर जयपुरके गुटका नं ६१ में और भी दि केन मन्दिर वशीमन्त्री, जयपुरके गुटका नं ५ में अंकित है।

४ राजन्नामके केन राजमण्डारोन्नी दम्भ गणी भाग ३ अष्टावन्ता पृष्ठ १४ ।

२१ विनयसमुद्र (वि सं १५८३)

विनयसमुद्र उपदेशगण्डक हर्षसमुद्रके शिष्य थे। हर्षसमुद्रके भी गुरुका नाम सिद्धिपुरि का।^१ विनयसमुद्रका रचना-काल वि सं १५८३ से १६५ तक माना जा सकता है। उन्होंने वि सं १५८३ में 'विश्वमयप्रबन्ध चौपई' की और वि सं १६५ में 'रीतिनेय रास' की रचना की थी। इन समय उनकी जात रचनाएँ अनकम्प ॥ सभी इनगुण समयके अन्तर्गत ही रची गयीं।

वे रचनाएँ इस प्रकार हैं 'विश्वमयप्रबन्ध चौपई' जायनघोषा चौपई' 'अवध चउपई' 'मुपावती चौपई' कम्पनबाका रास 'विषयेनरघावती रास' और 'पपचरित्र'। इनमें अवधचउपई की मुनिरत्नमूरिके संस्कृतमें लिखी गयी अवधचरित्र' का माधव लेखर लिखी गयी है^२ अवशिष्ट सभी मौकित हैं। इन रचनाओंपर मुद्रापीठा विशेष प्रभाव है।

विनयसमुद्रकी कृतियोंमें अष्टिके उद्धरण

'विश्वमयप्रबन्ध रास'^३ में ४६९ पद्य हैं। इसके प्रारम्भमें श्री सरस्वतीकी नमना करते हुए कविने लिखा है

“देवि सरमति प्रथम प्रणयेवि चीत्ता पुन्तक कारिणी।

अथ विहासि सु प्रमति अकह काममीरपुर बामिणी ॥

'पपचरित्र' में सीताका चरित्र प्रधान है। इसके शीर्षकी प्रतिमात्रा बचन

- १ श्री उपदेशगण्डक बनवर मूरि, चरण चरण मुख चिरक मयूर।
रवध प्रभु मुखक मूरि, तनु अनुकमि अंश सिद्धपुरि ॥
तेह नर बाचक हर्ष समुद्र तनु अमु अवध बीर समुद्र।
तनु विनये विन का बुद्धि पण्ड रण्णु प्रथम निरखि ठपेह ॥
विश्वमयप्रबन्ध रास पद्य ४६७-४६८, राजन्नागदे जैनशास्त्रपरशास्त्री प्रबन्धकी भाषा १ पृष्ठ २६६।
- २ अवध म्येन्द्र हृयो विताक तानु चरित्र गुणी रसाक
की मुनिरत्न मूरिजो बड़ो तेजवरी धारारण कड़ो।
अन चउपई अमिय प्रणीत ११वीं पद्य जैनपुराणविज्ञो, प्रथम भाग, पृष्ठ १६६।
- ३ वर कान्ध, कमपुरे डोकिरोठि वि जेन मन्दिरके गुम्हा नं १२ में अविन है।
रचनाकाक वि सं १५८३ लिख है।
- ४ सरस्वतीजी रचना वि सं १६५ में हुई थी। इसकी एक हस्तलिखित प्रति अजमेरके शास्त्रालयमें मौजूद है। वह प्रति वि सं १६५३ अनाद भाग राजन्नाग १४ की किताब है। अजमेरविज्ञो भाग १ पृ १७०।

करते हुए कविने लिखा है कि जो कोई इनको कहता और सुनता है उसके मन की सभी माधुर्य पूर्ण हो जाती है।

“कीपी कथा प सीता तणी सीकठणी महिमा अस्तु वणी ।

सापई भणित्तो बड्ड गुण पुणी पूरइ आस सदा भव तथी ॥१०॥”

‘भाराम सोमा बीपई’^१ के आदिम मयवान् अरिहन्त और रत्नमयी महिमा का वचन किया गया है।

‘यो जिन शास्त्रिणि अणि अण्ड जिनि राजा भरिहंत ।

वधा चर्म मापड मछड भय मंजण मगरवत् ॥११॥

जिनवरि आप्पा श्रीमुण्ड बोकाई जिनि सुपवित्त ।

शान बनई हरिसण वकी चरण तत्त्व गुणजत्त ॥१२॥

रत्नत्रय से भर कही पाकाई से भर धम्म ।

वकि विसेपि वंसम कही सुण संयोग सुपुण्य ॥१३॥”

‘मुवावतो बीपई’^२ के भारम्ममें श्री धारवा पुत्र बीबीस तीर्थंकर और नम्रवान् अरिहन्तकी वन्दना की गयी है,

“सासन्नि वैवति धारवा सुगुहमी वप समुद्र ।

वकि समरव अठवीस जिन धारज मवइ समुद्र ॥१॥

श्री जिनसासन वर नवर राजा श्री भरिहंत ।

समवसरम कहीछ समो मापइ श्री मगरवत्त ॥२॥

‘विमसेनपपावती राठ’^३ में ‘नवकारमण की महत्ताका वचन किया गया है।

‘मयम और भवि हि बड्ड, होऊ कार विमसार ।

अविम सावरइ गंग अकि मंजइ अड्ड नवकार ॥३॥

इसी राठके भारम्ममें मयवान् धाम्पिनाथ जो बीबीस वक्रवर्ती भी से की वन्दना की गयी है।

१ भाराम सोमा बीपई बीकानेरमें वि स १५ २ में लिखी गयी थी। इसका भारि धीर भण्डा माव श्री योगलाल दुलीचन्द वैपायने दिया है।

बैतुमरकविजो टीको माव, इ १२५ ।

२ मुवावती बीपईकी रचना बीकानेरमें वि स १५ २ में हुई थी।

परी इ १२६ ।

३ विमसेन कथाकी राठकी रचना जोगपुरमें वि स १५ ४ में हुई थी।

परी इ १२७ ।

छोबमें-अ भयवान् महावीरका स्नातोत्सव मनानेके लिए आया । आपे ही चौबीस तीर्थंकरोंको कुसुमोज्ज्वलि भरित की । भयवान् महावीरको प्रणाम किया । वे भयवान् ककि-मण और कस्तुरको बस करनेवाले हैं । उनके स्नातोत्सव जीवको सभी पापासे मुक्त कर देना है,

‘आइ जिनिषु रिउडु पणवण्डिणु, कडवीसइ कुसुमोज्ज्वलि इण्डिणु ।
बद्धमाय जिणु पणविनि मारि ककमासु कस्तुरसवि बण्डिणवारे ।
हुकइउ पावेण्डिणु मसुप कम्म जिणनारि रेसिउ सुण्डिणि भम्म ।
महु मउअ मंसु नउ अहिकसेइ, पणुअर न कवाइ विगसइ ॥

कविने अन्तमें लिखा है कि वह इस काव्यकी गुह-भक्ति और जिन-भक्तिये ही पूरा कर सका है,

‘भीष्मा बंधू उपायं कार्यं गुहमधिप सरसइहि पसायं ॥
अमरणाक वरवसे उण्यअइ महहरिधइण ।
मधिप जिणु पणवेणि पण्डिअ पण्डिआ उण्डिण ॥

पञ्चकस्याज’

कविने प्रारम्भमें ही लिखा है कि मैं जन जिनेश्वरक पञ्चांगिक कस्यापोका वर्णन करता हूँ जिनके चरणोंपर हम्राके मणि-भठिठ मुकुट सुना करते हैं,

‘सहस्र सहस्र मणि मुकुट वसु सुविउ चरण जिनेण ।
गम्माविक कडकाण पुअ वण्डअ मण्डि विसेण ॥

चारों प्रकारके हस्त धन वचन और वाक्ये तीर्थंकरके धर्म अगम उपदान और निर्वाण वस्त्रावर्कका महोत्सव मनाते हैं

‘गम्म अम्म उप पाण पुअ महा अमिअ कडकाय ।
कडविअ अण्ण आवकिअ मणवकाण महान ॥

छीवर्म स्वर्गके हम्रने करने अवधिजालसे प्रभुके धर्म-वस्त्रावर्क अद्वय समसा और उल्लेख बुद्धोंको प्रभुकी अगम-अपरीको सुन्दर बनानेकी आज्ञा दी

‘सौवर्मिमास अवधिजारा कडकाण गम्म जिण अवधारा ।
अपरी एण्णा अगादिण्णी कुण्वेरसिक्कल सिर अर किण्णी ॥”

२३ देवकलश (चिन्मयी १९वीं शताब्दी का कालावधि)

देवकलश उपदेशपत्रके कथाम्याय देवकलशके शिष्य थे। उनकी गुण-परम्परा इस प्रकार है। देवकुमार कमलागर और देवकलश^१। देवकलशके जन्म-स्नानके विषयमें कोई स्पष्ट ज्ञान नहीं मिलता। किन्तु उपदेशपत्रकीय होनेके नाते यह कहा जा सकता है कि वे गुजरात प्रांतके ही रहनेवाले थे। उनकी भाषापर भी गुजरातीका अधिक प्रभाव है।

अपिदत्ता

यह देवकलशकी एक-मात्र रचना है। इसका निर्माण वि सं १५६९ में हुआ था। इसकी एक हस्तलिखित प्रति दिल्ली के छठे बूबाके विनम्वर जैन मन्दिरमें मौजूद है।

‘अपिदत्ता’ एक कथा नाम है। अपिदत्ता राजा सिहरणकी पत्नी थी। इन नाममें उसके शीतमुखा उद्यम वर्णन है। जन्ममें सिहरण और अपिदत्ता दोनों ही साधु-जीवाचार कर ली और बहुरपुर नामकी प्रसिद्ध नगरीसे निर्वासन को प्राप्त हुए। बहुरपुर मन्वान् शीतलनाथकी जन्मभूमि मानी जाती है।

इस काव्यको उत्तमकोटिमें मिला जा सकता है। उक्तिवैविध्य और भावोन्मेषने ऐसा आकर्षण उत्पन्न कर दिया है कि उसके पाठकने हृदयका तात्पर्य अवश्य ही ही जाना है। आत्मज्ञानमें समाप्तपथके निरूपणने ‘रस को जग दिया है।

आयामें ऐसा आश्रित है कि उपदेश अथवा वर्णनात्मकताकी गुणवत्ता भी सरल ही मयी है। सिहरणके पिता जनकरणके पुत्रोंके समयका वचन ऐसा ही है।

१ श्री कल्याण वर्कसिंहार नाथकवर श्रीदेवकुमार विद्या भवद अपार।

ठासु पाटि उद्यमय कर्ममापर हुआ सर्वबुधमधि रजसावरपात्रनना आचार।

ठासु पट्टि उद्यमय कमलाग देवकलशोल महिमावन्त दिन-दिन से उदित।

उक्तिता ओरै अनिम प्रसिद्धि, पृष्ठ १४३-१४ कमण्डोरविकी, भाग १ पृ २३३।

२ नाम सीतरेव वर्कसिंह हरनिह पनरत सह बुधपठारि वरपिठई।

रचित श्रीकल्याण ए अरित विविदत्ता वैरस।

सीत उभाठ नाथन लनवेरत कह प्रगट सखत ॥

विनम्वर जैन मन्दिर गठके बूबा विरजाली हस्तलिखित प्रति।

‘कनकवत्सा परि तनु जमिराम तिथि कथकरम दीपद नाम ।
गुणिपन संघ धनु तनु मयह निरगुण दीप मय कमकमह ॥
सूरधीर समरोगधि धीर हाठा अछभिनि सिम गंभीर ।
बोझ सुककिठ मञ्जरी बाणि सहु को तिथि रोझह अमिराम ॥१० १८॥
घोसन्दी महिमाका बचन करते हुए कविन मुन्दर घमामे लिखा है

सीकई हूँ नीरोग पुण् श्रीकई टकई फिसेस
सोकरई कय सकय हूँ, श्रीकि न बुन कय केस ।
सीकई जय जगि बिस्तरह, सीकि न हूँ रंछाप
सीकई संचई पुण्य धन साकि पत्ताकई पाप ।
सीकई रोझह सोऊ सवि बिबुध करई सुपसाठ
हिमाद्रिक सिद्ध तपन सीकई सयक उपाठ ॥७ १-७॥

जो नर-नारी आर्यपूर्ण ‘श्रुतिवत्ता बोपई’ को पढ़ते हैं और सुनते हैं उनके सभी मनोवाञ्छित फाय पुण्य हो जात हैं वे सकल धारणसिद्धान्तात्म निपुण बन जाते हैं तथा वे नवरत्न मन्तराल और जिनकरके मुचोको पड़बाग उठते हैं,

वे नर नारी भावह मजिसिह,
जोनी मग ककड भित्तु मुनिसिई
भाव सकति भरपुरि ।
भित्तु भित्तु ठ मनचंकिठ पानह,
सकल धारण सिद्धत बकायह,
नव तठ नव रस बाधो मानह,
जिनकर गुन बिहसति ॥३ १-३ २०

२४ मुनि जयलाल (विष्णुजी १६वीं शताब्दीका उत्तरार्ध)

मुनि जयलालकी रचना विमलनाथस्तवन से मुनिजीक बीबन और गुरु-परम्पराके विषयमें कुछ भी निर्दिष्ट नहीं होता । यह रचना विमल गुटकेमें लिखी है यह बि सं १६२६ का लिखा हुआ है हमसे मिला है कि मुनि जयलाल बि सं १६२६ से पूर्व कभी १६वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें हुए हैं ।

विमलनाथस्तवन

यह बाप्य ठेरहूँ लोचंकर विमलनाथजी मभिसे सम्बन्धित है । बैराटपुर (जयपुर रियासत) में विराजमान विमलप्रभुजी प्रतिमाको लक्ष्य कर ही हम

१ पर बुद्धका श्री कामलायसाधनी श्री जर्जालोक समर्थमें मन्त्र है ।

छन्दोका निर्माण हुआ है। कहा जाता है कि यह प्रतिमा अतिशयपूर्ण थी। उसकी मूर्तिसे पाप तो दूर भागते ही थे पुण्य-प्राप्त भी सम्भव होते थे। किन्तु मूर्तिमें बिमोर कवि बैसब तो चाहता ही नहीं मोक्ष को नहीं चाहता उसे तो सब धर्ममें जाने प्रभुके दर्शनाको ही प्यास है।

‘तुम दरसन मन हरया खैदा खेम खमोरा भी।

राज रिधि मोगड नहीं मरि मरि दरसन पोर भी ॥१३४॥’

मनवान्के दर्शन कर भक्तका हृदय हो जाता स्वामाधिक है। बमोर जैसे बन्धुके दर्शन कर प्रसन्न होता है। जैसे ही भक्त भक्तवान्को देखकर आत्माविष्ट हो जाता है। छन्दोके बैसबसे ऊपर उठना साधन नहीं है किन्तु जो प्रभुके दर्शनोकी ही बन्धनमें चाहता है, उसके लिए यह कठिन भी नहीं है। कविताकी इन दो पंक्तियोंमें ही बलि-रत्न जीवन्त-सा ही उठा है।

कविता कथन है कि इस विश्वमें प्रभुके अतिरिक्त और कोई नि स्वार्थ भावसे सहायता करनेवाला नहीं है। विश्वके सभी प्राणी यहीच कि मात्र पिता और बलिना भी स्वाधिके साथी है। इस कथनका तात्पर्य है कि प्रत्येक प्राणी भक्तवान् जिनेश्वरका ही सहाय ले अन्यथा बाधक व्यर्थ है,

“मात्र पिता बलिना माई, स्वार्थि सबह संगाई भी।

तुम्ह सम प्रभु कोई नहीं हरद परवि सहाई भी ॥१३५॥

वीरपुरके सेराहें जिननामक भी विमलप्रभुका गुणदान करते हुए कविने लिखा है, वे प्रभु समस्त अङ्गि विद्विषोके बैसबाके हैं। उनकी मूर्ति करनेसे मोक्ष तो स्वतः ही सम्भव हो जाता है। वे भक्तवान् चतुर्विध संघका संरक्ष करते हैं, और हमूचे पापको बहसे क्लेश केन्द्रमें धरव है। मुनि बयलाक बयना करते हैं कि हे भक्तवान्! आप अपना धूम-दर्शन प्रभुसे खा प्रधान करें। इससे भक्तका जीवन कुतार्थ हो सकेगा

“वैराग्युर भी विमल जिनवर संवत् रिधि सिधि दापगे।

इमि धुनिह मरिहि निषह सचिहि तेरमह विषवापगी ॥

भी संवत् संवत् करण संवत् भुवि पाप निरंजनी।

भी बयलाक भुविह बरह वैदि नाम सुदसणी ॥१३६-१३७॥

२५ भट्टारक जयकीर्ति (विष्णुकी १६वीं शताब्दीका उत्तरार्ध)

भट्टारक जयकीर्ति जो मुनि भी जयकीर्ति भी कहते हैं। उनकी रचना ‘मन्देय परिम शिव मुक्तये निबद्ध है, यह विष्णु सं १९९१ ईसाब गुरी १९

का किया हुआ है।^१ और उनका काव्य 'पार्ष्व भवान्तरके छन्द' जिस गुटनेमें वर्णित है, यह वि० सं १५७९ का किया हुआ है।^२ इसमें प्रमाणित है कि उन्होंने अपनी इन कृतियोंका निर्माण विक्रमकी १६वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें कभी किया होगा।

यह सुनिश्चित है कि मट्टारक अवकीर्ति उस अवकीर्तिते स्पष्टरूपेण पूरक है जिन्होंने छन्दोनुमासन का निर्माण किया था और जो रामकीर्तिके कुछ थे।^३ वे छन्दके विद्वान् थे और मट्टारक अवकीर्तिकी उपर्युक्त दोनों रचनाएँ हिन्दीमें हैं। उनकी एक अन्य कृति 'ब्रह्मचय उपदेशमाळा'के नामसे प्राप्त हुई है, जो दि. वैन बहा मन्दिर कयपुरक गुटका में २५८ में लिखी है।

'पार्ष्व भवान्तरके छन्द' का सम्मान्य मन्वान् पार्ष्वनाथकी प्रकृतिते है। इसमें तीर्थंकर पार्ष्वनाथ पूर्ण भवोन्मा कर्णन हुआ है। पार्ष्वनाथ जीके लेखित हीर्ण कर थे। इस काव्यमें कर्णनकी गुणगता नहीं है, अपितु एक प्रवाह-पूय हीन्य है।

२६ श्री क्षान्तिरंग गणि (वि की १३वीं शताब्दीका उत्तरार्ध)

श्री क्षान्तिरंग गणिकी रचना औरबाब 'पार्ष्वजिनस्तवन' उस गुटकेमें लिखी है जो वि सं १६२६ का किया हुआ है।^४ इससे निश्चित है कि वे इस संवत्से पूर्व कभी हुए हैं। सम्भवतः वे १६वीं शताब्दी विक्रमके उत्तरार्धमें जीवते थे।

नगर औरबाब जिहा सीतापुरमें है। उसके जैन मन्दिरमें पास जिनकी प्रतिमा विद्यमान है। कहा जाता है कि यह प्रतिमा अतिप्रमत्त है। उसमें कुछ ऐसी बीतरामता है कि उससे प्रत्येक दर्शक प्रभावित होता ही है। क्षान्तिरंग गणिके इसी प्रतिमाकी कवय कर 'पार्ष्वजिनस्तवन' की रचना की है।

मन्वान्जी महतामें भक्तकी पूरा विश्वास है। यह जानता है कि मन्वान्जी द्वारासे अज्ञान की दूर होता ही है किन्तु जन्म-जन्मके अनौचित्य का भी प्राप्ति होता है। औरबाबकी लुप्तोक्ति करनेवाली पार्ष्व जिनो की प्रतिमामें मोहिनी

१ यह गुटका का वि. वैन बहा मन्दिर कयपुरमें वेहन में २५८२ में लिखी है।

२ यह मट्टारक व. बीरचन्द्र कटन्याकी 'देगहू' नामके गाँवके वनमन्दिरके स्थान मन्वान्की शोध करते हुए प्राप्त हुआ था।

अनेकाल वर्ष ५, डिग्री ६-७ अक्षांश १४४२ ई. पू. २५७।

३ व. मन्वान् मदी अथवातिरु और इतिहास पृ. ४५।

४ यह मट्टारक का व. नामगायगावकी वन अर्थ, मन्वाने पास है।

सज्जि है किन्तु उस सौन्दर्यको भगवत्जन ही देख पाते हैं। गुरु भट, किन्तु भाव
बीर बरेल्ल सभी भगवान्‌के चरणाम गुरुवर बनाया जगम सफल बनाते हैं।

‘पाम जिर्ण्ड लहसाबाइ मंडल, हरपधरी निगु नमस्स ही।
हार तिमिर सब छुटिहि हरस्सुं भगवन्तिष्ठ कछ बरस्स हो ॥
भुवन् विमाक मरिच मम मीहइ अमुपम कौरणि साहइ हो।
गुरु वर किन्तु बाग नरसर पञ्चमइ ग्रह सम पावा हो ॥’

नगर छैराबाबके पार्श्व शिखरका रूप में ही और मन दोनोंको ही ब्रह्मा
कहा है। इनके दर्शन करन-भावस ही भगवन् सभी भक्तिकापार्य ऐसे पूरी हो जाती
हैं जैसे मागो व बहानुज ही हो। कोई उन भगवान्‌से स्वय-निष्ठनचारिणी
सम्मीची बाचना क्या बने वह तो स्वय ही भगवान्‌के चरणामें स्थित होकर भुकी
छूटी है। अन्तिम पंक्ति में भी उन भगवान्‌की प्रणाम किया है, उन्हें विस्वास्त है
कि ऐसा करनेसे कुछ दिन-प्रति-दिन बढ़ना ही आवेगा

‘इह पास शिखर बचनमज्जर कथ्यरुवर सौहइ।
भी नकर लपसाबाइ मंडल भविष्य जगमम सौहइ ॥
भी कनक विछडु भुमीस गुरु किहमी विवच भुमीसरो।
उछु सीस मणि अतिरंग पमजइ हबइ दिव दिव सुलकरो ॥

२७ श्री गुणसागर (चिन्मयी १९वीं अष्टावलीका वचनार्थ)

श्री गुणसागरकी रचना ‘नास्त्रमिस्तवन भी उपर्युक्त गुट्टीमें ही निम्न है
इस आचारपर जगका समय भी वि र्त १९२९ से पूर्व माना जा सकता है।
कनकी दूसरी कृति ‘घातिनाचस्तवन जगपुरके ठीकियोंक शैव शक्तिमें गुट्टी
नं ९७ में अंकित है।

श्री गुणसागरकी शैली ही कृतिमें अन्तिमे सम्बोधित है। पद्योंमें भगवान्
पार्श्वनाथकी और गुट्टीमें भगवान् घातिनाथकी स्तुति की गयी है।

‘नास्त्रमिस्तवन’ एक दर्शन-ग्रन्थ है। इसमें भगवान् पार्श्वनाथके दर्शनकी
महिमा बतलायी गयी है। भगवान्‌की भक्तिमें विमोह होते हुए कविने किया है
कि पार्श्व-ल्लोत्रके दर्शनोपर लोकावर ही आहूँ। उनके दर्शनमें मन रंग को
बीर कीट पाओ। भगवान्‌के दर्शन सभी संकटोको—आहे व मार्य पाट बीर
सदानमें प्रत्यक्ष हुए हो भगवा भावपासके चरण आने ही उपसम करनेमें
समर्थ हैं। देखक विषट संकट और नष्ट ही धान्य नहीं होते अन्ति बरे-बरे

दुखित और वापोंका भी निवारण हो जाता है। भगवान्‌के दशन अक्षय सम्पत्ति (मोक्ष) के कारण हैं उसे प्राप्त करनेके लिए सभी आत्मन्त रंग और विनाश त्योहार कर देवे चाहिए,

‘पास्त की हो पाप दूरस्थ की बलि आर्द्र्य पास मगरंग गुण गाह्यै।
पास्त बाट बाट उद्यान में पास मार्ग संकट उपसमै । पा ।
उपसमै सकल निरुद्ध कष्टक दुरित पाप निवारणो ।
आर्जव रंग विनोद बाक अये संपनि करण्यो ॥ पा ॥”

२८ वृचराज (वि सं १५३०-१५९०)

वृचराज द्वितीयके एक प्रसिद्धि कवि थे। राजस्थानके शैल साहित्यग्रन्थारोमें इनकी अनेक रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। किन्तु किसीमें भी उन्होंने अपना परिचय नहीं दिया है। उनकी प्रसिद्ध कृति ‘नेमिनाथचरितु’में केवल इतना लिखा है कि वे मूलसंके के सद्वारक पद्मनभिकी परम्परामें हुए हैं। इनके बंध और माता पिता नाविका कोई सम्बन्ध नहीं हैं। सम्योपस्थितक अयमाकमें रचना-स्वक हिसार (पंजाब) दिया हुआ है। उनकी रचनाओंपर राजस्थानीका प्रभाव है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि वे राजस्थानके रहनेवाले थे। वे ब्रह्मचारी के नामसे प्रसिद्ध थे। ब्रह्मचारी होनेके कारण वे अन्न-वस्त्र नूपते फिरते थे अतः किसी ग्रन्थके हिसारमें समाप्त करनेसे हिसारकी इनकी अन्तर्भूति मान लेना प्रायश्चित्त नहीं है।

वृचराजका रचनाकाल वि सं १५३०-१५९० माना जा सकता है। ऐसा उनकी रचनाओंसे प्रकट ही है। उन्होंने अपना कुमरा नाम बन्ध बोलू भी लिखा है। हो सकता है यह कनका उपनाम हो। इनकी कविता अविद्वत् थी। वि० सं १५८२ में इनकी सम्पत्ति कोमुदी’की एक हस्तलिखित प्रति बाटानु नगरमें बँट भी गयी थी। उनकी अवलम्ब रचनाकादा परिचय निम्न प्रकार है :

मयण सुख

यह एक काव्य है। इनका निर्माण वि० सं १५८९ में हुआ था। इसमें भगवान्‌ अन्तर्मदेव और नामदेवका मुख लिखाया गया है। अन्तर्मदेव मोक्ष कपी करनी प्राप्त करना चाहते हैं किन्तु नामदेव बाधा उपस्थित करता है, अतः मुख होना अनिवार्य हो जाता है। नामदेव प्रभुन सदाबन्ध मीह माया राग देव है।

बसन्त ऋतुना पुनः । बहु पक्षेसे जाकर वामनी जीतना बातावरण तैयार करता है । कुछ एवं कठार्थ नमा रूप वारण करती है । पुण्य विरचित हो जाती है । कोकिल कूट-कूटनी रह जगाती है । भ्रमर पुंभार करते हैं । मुनिर्मा गृगार रचाती है ।

“वन्द्य बीसाल वसंत आवड छलु कीद मिलित्तिब ।
सुगंध मळना पवन सुष्ठिब अंब कीदल सुष्ठिब ।
रम्यस्थिब केवड ककिब महुवर सुतर पठिह काव्य ।
गावलि चीब बजलि बीला तछलि पाहुक आह्व ।।१७।।

सन्तोषप्रतिष्ठा

इसकी एक हस्तलिखित प्रति दि. जैन मन्दिर वाववा कुँटी (राजस्थान) के मुठवा संख्या १७९ में पत्र १७ से ३ तक संरक्षित है । इसमें १२३ पद्य हैं । माया पदपर छोड़ा रह पक्षी बहिल्ल रासा बंधाम्भु, गीतिका बोटक रविना बाहि छनीका प्रयोग हुआ है । इस वाक्यकी रचना द्वितीय नगर के मध्य दि. सं. १५९१ माघपद सुदी ५ बुधवार, स्वाति नक्षत्र बुध लग्ने हुई थी ।

इसकी माया प्राचीन हिन्दी है । उपर राखलानीका प्रभाव है । इसमें कविने जोब मोह नीर रोपपर लिखते हुए सन्तोषकी पक्षता स्थापित की है । इसका अन्तिम पद ‘रह छलमे’ है ।

‘पछहि जे के सुख मागहि
जे छिल्लहि सुख जिलाव सुख ज्योव जे सुपहि मनु बरि ।
ते अलिम नारि नर कमर सुख मोषपहि बहु प्यारे ॥
बहु संतोषह जलतिऊब बंदिठ ‘बन्दि’ समाह ।
मंगल नीपिह लंब बहु करह नीच भिन्नराह ॥१२३॥”

जोबके प्रभावको कहते हुए कविने लिखा है कि वह मुनिवो तकको मर्दा छोड़ता

“बल मझि सुनीसर जे बसहि सिब रमयि कोसु सिब हिबह मंदि ।
इकि कोसि कागि पर भूमि बाहि नर करहि सेव जिन जीठ मयहि ॥”

- १ सन्तोषहु जलतिऊब बंदिठ द्वितीय नगर मंथ में
जो सुपहि जलिय इक मय ते पावहि बंदिठ सुख ॥१२॥
सबनु पगरह इत्ययन बहनि सिब पाकिब पंचमी दिवसे
सुख नारि स्वाति बुधे जीठ तह बाहि बंधना मेघ ॥१२१॥
सन्तोषमयिनीका नामरासाजी हस्तलिखित मन्त्र ।

चेतन पुद्गल जगल

यह कृति अव्युक्त मन्त्रिरके जसी गुटकेमें पत्र ३२-४४ पर अंकित है। इसमें १३६ पद्य हैं। उनमें चेतनको पुद्गलकी संमति न करनेकी बात कही गयी है। चेतनको विविध प्रकारसे साधवान कर विद्वान्मकी भक्तिकी ओर प्रेरित किया गया है। इस कृतिकी भाषापर अवलम्बका अधिक प्रभाव है। अविनाश दाम्याकी प्रवृत्ति उद्भवात् है।

कविने एक पद्यमें लिखा है कि यगवान् जिनैह इस संसारमें दीपकके समान हैं। इस दीपकके सहित होनेसे मिथ्याकपी आगकार भाव जाता है। इसी दीपकके प्रकाशमें यह जीव संसारकपी लघुको भी ठीकर पार हो सकता है,

“दीपगु हकु सचनि जगि जिनि दीपा संसारि।

बासु उबब सहु मागिया मिथ्या विमल धाम्याह ॥१॥

जिन साधन महि दीबहा ‘बल्ह’ पचा नबकाह।

बासु पसाए तुमिह तिरहु सागह बहु संसार ॥३॥”

भव-यवमें जिनैहके पैरोंकी सेवाकी याचना करता हुआ भक्त कवि कहता है

‘करि कह्या सुसु बीनती विभुचन कारण देव।

बीर जिनैसर देहि सुसु जनमि जनमि पद सच ॥२१॥

चेतन और पुद्गलमें यह अन्तर है। चेतन चिरन्तन है और पुद्गल बिलम्बर। चेतनमें शक्ति है और पुद्गलमें अज्ञता। जैसे फूल मर जाता है और परिमल बीजिंग रहता है, वैसे ही शरीर नष्ट हो जाता है और चेतन जिन्या रहता है। इस लक्ष्यको कोई-बोई ही जानते हैं

‘हनु मरह परमसु जीवह, तिसु जान सहु कोह।

ईसु बकह काणा रहह किचल नचापरि होह ॥८१॥

कवि वृक्षान्त होनेमें निपुण है। जबतक मोठी लीपमें रहता है उसके सभी पुण पकायन कर जाते हैं इसी भाँति जबतक चेतन अङ्गके साथ है, उसे बुझ-ही बुझ भोवने पड़ते हैं

‘जब कगु मोठी लीप महि तब कगु समु गुल जाह।

जब कगु जीबहा संगि जह तब कगु रूप सदाह ॥१॥ ५॥

टंडाणा गांत

टंडाणा टीह शगरे बना है। टंडाणा अर्ध है व्यापारियोंका बजड़ा हुआ समूह। यह विरह भी नगिकान् प्राणियोंका समूह ही है अत इस गीतमें टंडाणा

धर संसारके अन्ध ब्रिग गमा है । इसमें प्राणीमात्रको संसारसे छत्रप छत्रके
क्रिप बड़ा गया है,

“माय विद्या भुवमन्त्र सरीरा बुद्ध सब जीव बिरामाये ।
हृषण पंथ जिम लक्ष्मण नामे ह्महुं रिखा डकावाये ॥
विषय स्वारथ सब जग बडे करि करि बुधि बिनामाये ।
छाहि समाधि महारथ नूपम मजुर बिन्दु कपटावाये ॥

नेमिनाथवसन्तु और नेमीन्द्रवरका बारहमासा

बृषपञ्चमी से हो इतिषी अत्यधिक सुन्दर है । पृथ्वीमें नवमीपना दिग्दृष्टी
राजीमजीकी धन मनोरथार्थिता विषय है, जो नमिनाथके अकस्मात् वीरप्य जेके
सपत्न्य ब्रह्मन्त आनेपर बना थीं । बृषपञ्चमी राजीमजीकी विद्यावत्पन्न
वर्णन है ।

पठिके बचका अनुसरण करनेके लिये राजीमजीने वीरप्य भी के किया था ।
तत्त्विकी होनक उपरन्त नवमीपना राजीमजीका वसन्तको देखकर प्रथम अनुमन
हुआ

‘बहुत धनु कड मोर के भमि बिनु गढ़ गिरनारि
गहरे मणि मजुक्क निह बन्ध, संजसु हंससु मछारि ॥१॥
सदिय बसंत सुहाक र बीमह शोरड ह्मनी
कोइक बुहकह, मजुकर सारि सब बन्ध बहसो ॥२॥
विषयसिरी बह महुके हरि, संजरा क्यहुन कारी
गणहि गीत स्वरारबदि, गंजब गढ़ गिरनारी ॥३॥”

बद

बृषपञ्चमे ८ पर रि जैन मन्त्रि नावरा बूरी (राजस्वान) के मुट्ठा
नं १७९ पत्र १ पर लिखे हैं । दो पर निम्न प्रकार है—

‘रंग हो रंग हो रंगु करि शिवबध प्यार्थ
रंग हो रंग होइ सुरंग निह मय कार्थ ॥
कार्थि ननु मजुरंग ह्म सिद्ध बधरंगु पर्वगिवा
मुक्ति रहइ जिह मजीठ कपड़े ठेक जिण क्कुरगिवा ॥
शिवकगनु बरतव रंग ठिबकगु ह्मसि कर्न रंगाव हा
कवि ‘बन्ध’ काकनु कोहु छाय रंगि शिवबध प्याव हो ॥३॥
रंग हो रंग हो मुक्ति बरणी मजु कार्थ
रंग हो रंग हो मय संसार व प्यार्थ

आर्ह्यै बहु ससारि सागरि भीय बहु बुद्ध पार्ह्यै
 चित्त बाहु चतुर्गति विजया कोरै सोइ मारगु प्यार्ह्यै
 तिमिरह छारणु ब्रह्म भरावत सुगुण निष्ठ गार्ह्यै
 कवि 'बरह' काकनु छोडु श्रद्धा मुक्ति सिद्धार्थ काह्यै ॥१॥"

२९ छीहल (वि सं० १५७५)

छीहल छीहल की सतायीके सामर्थ्यवान् कवि थे । विविध शास्त्रमन्त्रारोमें उनकी पाँच रचनाएँ प्राप्त हुई हैं । किन्तु इनमें कविका शक्तिचित् भी जीवन परिचय निरूप नहीं है । उनपर राजस्थानीका प्रभाव है । अतः यह सिद्ध है कि वे राजस्थानके निवासी थे । उनकी कृतियाँ मुक्तक हैं । उन्हें आध्यात्मिक भक्ति का निवर्णन कहना चाहिये । इनमें दो तो रूपक ही हैं । समूची मुक्तक रचनाको रूपके रूपमें निर्मायकी छीहली जीनाकी अपनी है ।

पञ्चसहेली गीत

इसका निर्माण वि सं १५७५ फाल्गुन सुदी १५ को हुआ था । इसमें १८ पद्य हैं । भास्विन टम्बोळनी छीपनी कसाकनी और सुनारिन पाँच सहेलियाँ हैं । पाँचोंने अपने-अपने प्रियके विरहका वर्णन किया है । वास्तवमें वह परमात्मन का ही विरह है । जब प्रिय मिल जाता है, तो वह भी बहूके मिठन-जैसा ही है । प्रेम उत्पन्न होकर विरहमें पुनः होता है । उसकी साधना अचूरी नहीं रह पाती । प्रिय-मिलन होता है । उससे परम आनन्दकी प्राप्ति होती है । यह एक सुन्दर रूपक-काव्य है । इसमें पाँच सहेलियाँ भिन्न-भिन्न जीनाकी प्रतीक हैं । उसका प्रिय-मिलन ही ब्रह्म-मिलन है । यहाँ रूपकेके माध्यमसे ब्रह्म-मिलनकी तुलना विरहमय पीड़ा मुख्य है ।

भास्विनका पति उसे जरे जीवनमें छोड़कर कहीं जाता गया है । उसका बुद्ध बनता है । कमल-अवन मुरझा गया है और बनराजि-जैता छटीर सूख गया है । पियाके बिना उसे एक-एक क्षण एक-एक बरसके बराबर लगता है । जिस छटीर रूपी बुद्धपर जीवन-रससे मरे स्तनकभी दो नारपी कने वे वह विरहकी अग्निमें

१ यह शीत कृष्णकालकी वास्तव्य मणिर, जयपुरके मुख्य न १५४ में अंकित है ।

२ संवत् १५७५ पञ्चमसूरज पूर्णिमा प्रायुष मास ।

पञ्च सहेली बरनवी कवि छीहल परमास ॥

पञ्चसहेली गीत पृष्ठ २५, पृष्ठ २५ ।

सूखने लगा । और तीजनेवाला दूर है । उठने चम्पली के बिछोवे में एक मया
झर गूँसा था । यदि वह इसे पतित के बिना पहुँचे तो जहाँकी जहाँ-सा प्रति
वासित हो

‘कमलबद्धन कुम्हारवा मूँकी मूल्य बनराह ।
बिग पावा रह एक दिन बरस बराबरि आह ॥
तन तरवार एक कम्पनीवा बुद्ध नारिग रसपूरि ।
सूखन कागा बिरह-रक्त मीनकादाय बुरि ॥
जम्पलीकी पंखरी मूँका बरसत द्वार ।
आह इहु पहिरत पीव बिन कागह जंग अगार ॥

पतित के बिना बिरहने उम्भोजनीकी बोलीक भीतर चुपकर उठने छठीरकी
माया है । उठके पते छड़ पड़े हैं और बेकि मूल्य यमी है । चम्पली रात कम्पनी
हुमर हो गया है । बोम्पके सम्पन्न दिन बैठे बटे छाया देनेवाला पति बरदेष्ट
बका गया है । जम्पलीके बिरहकी पीरकी चुपचा जान ही नहीं लगता । उठके
तनकी बपदेकी बिरहकी बर्षों बुकम्पी बरबरसे बिन-रात नाटता बका
जाता है पूरा व्योम नहीं केता । बिरहने उठके चुपको गह कर बुकका तंवार
जिया है, जिम्पु एक कपवार मी जिया है, जो उठकी देहकी बकाकर छार कर
दिया । इतने उठको बुकमें मुक्ति मिल गयी । कम्पलीकी देहपर मरनाटे
बोम्पकी पत्र आहु बिरहकी हुई है । जिम्पु पति दूर है, जतः वह बिरहके राव

१. दूरी कहत उम्भोजनी मुनि जगुछई बात
बिरह मारपा बीन बिन बोली नीतरि बात ॥२४॥
पाठ भंडे तन कम्प के बेल गई तन मुक्ति
हुमर पति बसत नी जमा पीवरा मुक्ति ॥२५॥
तन बाकी बिरह बह पटीया दुलख बसति
ए दिन हुमरि बैठ भरत जाया प्रीत परवेति ॥२६॥
२. तीसी जीवनि आलीया धरि बुद्ध बोम्प नीर ।
हुमा नीर न जानई मिरत बीवह नी पीर ॥२७॥
तन बका बुद्ध नगरनी दरजी बिरहा एह ।
पूरा व्योम न बोम्प बिन-बिन नाटत देह ॥२८॥
मुक्त नाटत बुद्ध बंजरया देही करि बहि छार ।
बिरह बीया नत बिन हम बम्पनु कपवार ॥२९॥

होधी सेते । उसे तो 'बिसूरि-बिसूरि कर मरना है।' सुनारिन बिरह रूपी समुद्रमें इस भाँति डूब गयी है कि उसकी बाह नहीं मिल पाती । उसके प्राणोंको मदन रूपी सुनारने हृदय रूपी अँधीठीपर जसा-जसाकर कोयला कर दिया है ।^१

कतिपय दिनोंके उपरान्त फिर वे पाँचों मिलीं । अब उनके चेहरे आह्लासित थे । उनका सार्ई जा गया था । उनके दिल सुखमें डीठ रहे थे । बियोप देने वाला वस्तु जका गया । अब वर्षा ऋतुका आगमन हो गया तो पति भी जा गया है । मनकी सब आसार्ई पूरी हो गयी है । तम्बोल्नीक बोली खोसकर, बनार बीकनसे भरे घातको निकाला और पतिके साथ बहुत प्रकारसे रंग किया मगसे मगन मिलाया । इसे ही रमस आनन्दन कहते हैं । इसके लिए कबीरका बिल मज्जा बा और उससे भी पूर्व मुनि रामसिंहका । ताबक जीव अब ब्रह्मसे मिलता है, तो ऐसे ही अंगसे अंग भिन्नकर भिन्नता है । बिना एक हुए वह एक ही नहीं सकता । तम्बोल्नीका यह भिन्न रहस्यवादी गुरीयावस्था है । परम आनन्द उसीका पर्यायवाची है । वह भिन्न देखिए,

“बोली लोक तम्बोल्नी काव्या पाय अपार ।

रंग कीया बहु प्रीयहुं नवन भिकाई तार ॥५९॥”

पन्थीगीत

यह मन्दिर बीकान बधीचन्दजी अमपुरके पुठका नं २७ बेलन नं ९७३ में निबद्ध है । इसमें केवल कुछ पद्य हैं । यह भी एक कपक-काम्य है । इसमें प्रचलित कथाका सारांश लेकर कपकनी रचना की गयी है ।

एक रास्तापीर राहमें बलसे-बलसे सिंहाके वनमें पहुँच गया । वहाँ रास्ता भूल जानेसे वह इधर-उधर भटकने लगा । ऐसी ही अवस्थामें उसे सामने एक मह मत्त हाथी आता हुआ दिखाई दिया । उसका कप रौद्र का और वह कोयल

१. पावा बीकन काय रिति परम पीया बूरि ।

रकी न पूरी भीय की मरत बिसूरि बिसूरि ॥४९॥

२. बहुर मुसारी पँचमी अंग जयता दाह ।

हुं तउ बुरी बिरहमह पाठ नाही बाह ॥४९॥

होया अँधीठी मुसि त्रिय मदन सुनार अनंग ।

कोयला बीया देह का मिथ्या सवेह मुहाण ॥४९॥

अपनी पुष्पाङ्गी स्वर-उत्तर हिमा रहा था । पक्षि भयभीत होकर भागने लगा । हाथी भी उनके पीछे-पीछे बन गया ।

जैसे एक भग्ना कुर्वा था । वह नास-कूटने देता था । पत्नी उसे न जान सका और समझे फिर गया । उसने एक सरकरी टहनी पकड़ ली जो दुर्रङ्गी दीवारमें लट्ठा लगी थी । उसके सहारे कटकटा हुआ वह बटिन कुछ भीपने लगा । ऊपर हाथी लड़ा था चार दिशाओंमें चार सर्प ने नीचे भस्मपर मुँह बांधे पना था । टहनीकी जड़को रो चुड़े बाग़ रहे थे ।

उस मुरके पास एक बड़का मूक था । उसमें मधु-मन्त्रियोंका कटा हुआ था । हाथीने उसे हिक्का दिया । अन्धम मन्त्री उसने कर्ण । ठाव ही कलेसे मधु भी नू पछ और उसकी भूँ में पत्नीके मुँहपर फिरने कर्ण । उसकी रसना लज्ज रसास्वादन के लगी । उस ज्ञानधर्म वह अपने चौर दु कर्ण मूक गया

“उद्दिष्टमो मधु कर्णो बहिर ऊपर पकड़त रस रसना कोनी ।

या धर्म के सुख कायि कीमी सम्ये कुछ बीछारि गयी ॥४॥”

यहाँ मधुना भूँ ही सांसारिक सुख है । बीच बन्धक है । ज्ञान भयानक हाथी है । संसार ही कुर्वा है । पक्षि सर्प है । व्याधियाँ ही मन्त्रियाँ हैं । मिथोर भयानक है । वह संसारका व्यवहार है । अन्ध है पैवार । तु केतु था । वो मोक्ष कपी मित्राये लगे हैं वे ज्ञानधर्म ज्ञानवान हैं । धीरे धीरे इन्द्रियोंके रसमें मटककर इसने जिनैन्द्र-बैठे परम इन्द्राको मुखा दिया है । अतः उसका नर-बन्ध धर्म है । ऊँहकरा कर्म है कि भयानक तु नाथा रोम कुर्वाको लान करता रहा है । अब जिनैन्द्रकी बचायी मुक्तिसे तु मुक्तिके परम सुखको प्राप्त कर सज्ज है,

“ससार की लू विचहारी चित केतु है संभारो ।

मोह मित्रा में से सुता से प्राप्ति अति बेगुना ॥

प्राप्ति बेगुना बहुत से मित्र परम मन्त्र विचारिणी ।

अम भूति इति तनीरसि नर जगम बुधा संभारणी ॥

बहु काक नाथा कुल वीरव सहा ‘कीहक’ कहै करि धर्म ।

मित्र नाथि लुगतिस्त्री ली मुक्ति नू कही ॥५॥

उद्दरगीत

मह पीन भी ऊर्ध्वगत मुट्टीमें ही संनलित है । इसमें केवल चार पद हैं । इति मुन्धर है । बीच दस नास धर्ममें रहता है । उसे ज्ञानधर्म वह लहने पड़ते हैं ।

वह सोचना है कि इस बार उबरनेपर जिनमयी भक्ति करूँगा । जन्म छेदा है । संसारकी हवा समझी है, तब वह मूल सब कुछ भूल जाता है ।

‘उत्तर अर्ध में हम आसाह रहीं ।
निह अधामुधि बहु संकटि मझी ।
बहु मझी रोकट उत्तर अंगरि चिन्तै विना बणी ।
उबरी धनकी बार है हु मगनि करिस्सा जिनतणी ।
ऐसोक संकट परिहि बाकै बहुदि जगत आमन कयो ।
मंसार की अब चाहति लागि मूढ सब बीसति गवा ॥१॥

बासम्भका जन्म हुआ । जन्मोपर कोट्टा रहा । जब मूल लम्बी माँका लग रोकर पी लिया । मुँहसे कार चुनी रही । कदम-अकदम और भद्रयामदयमें कोई अन्दर नहीं किया । बासम्भ की दिया जिनवरकी भक्ति नहीं की । फिर जीवन जाया उसके नखेम चारों ओर हुआ परचन और परनिवकी ताकता फिर । ऐसा करनेमें उसे आनन्द जाया । किन्तु वह मूल यह न समझ सका कि यह ‘विपत्त’ है, ‘अमोघक’ तो जिनकी सेवा है । परब्रह्म बिसार केनेम काम माना मोहने उसपर बहिकार कर लिया । आत्मपूर्वक जिनवरकी पूजा नहीं की जीवन व्यर्थ ही बी दिया

“आवन मागौ नर किन्तु दिमि ममै परचन परतिब कपरि मगलै ।
मनलै परचन केनि परतिब चिन झह नरदण ।
छँदै अमीकक सेव जिनको विषय विपहक बापण ।
काम भावा भाह ध्यापनी परब्रह्म बिसारिणी ।
सुजिणी न जिनवर भावमेणी हुआ जीवन हारीणी ॥२॥

बैरी बुझाया जा गया । सुखि-सुखि नष्ट होने लगी । कालाने मुनमा बन्द कर दिया । नैत्रोकी लोनि बुँबकी पत्र मनी । किन्तु जीवनके प्रति मोह और बहिकार बंद गया । झीहकका कथन है कि हे नर ! तु भ्रममें पडकर घटकना मनो छिर रहा है । मुक्तिपूर्वक जिनमयी भक्ति कर । तु मुक्तिमोकाया आनन्द के संकेता

‘जरा बुझाया बैरी भाहयो सुखि-सुखि नाडी अब पछिगाह्यो ।
बछिगाह्यो अब सुधि नाडी अबब सबद न बुझाय ।
जीवन करनि करि काकन नचन मगन न न सूझर ।
अब कई झीहक सुणी है नर, अम मूके कई छिरी ।
करि मगति जिन को उगति एवो एवी मुक्ति जोकह बरी ॥३॥

पथेन्द्रियवेष्टि

यह दृष्टि बि जीव भलि-काम्य पाणीसी जयपुरके गुटका नं १५ पृ १ ७ पर अंकित है। इनमें श्री मनको इन्द्रियोनी संनतिसे हृदयर त्रिनेत्र भक्तिजी और उन्मुक्त किया गया है। जैनीका वैधि-साहित्य विद्याल है। धैति धर संस्तुत-के 'बस्ती और प्रादुर्गके भक्ति' से समुद्रमून हुआ है। बाह्यमनको उद्यान मान कर उसकी प्रवृत्तियोंको ब्रह्म जयवा ब्रह्ममन्त्री नामोमे अनिष्टि किया जाता रहा है। जीव वैधि-साहित्य तीन प्रकारका होता है। ऐतिहासिक ब्रह्ममन्त्री और उपदेशात्मक। प्रस्तुत दृष्टिका स्वर टीकरे प्रकारका है। अन्तमें त्रिनेत्र भक्तिजी और मोड़ देनेके कारण उसकी भलि-परकता भी स्पष्ट हो गई है।

इसमें बार पक्ष हैं। मनको सम्बोधन करके लिखा गया है। मन भवत है घटवनेकी उसरी आरत है। उसे बाधमन्त्री भक्तिजी और मोड़नेका नाम भक्त करि करते रहे हैं। बसोरका 'प्रेमावली की जय' और तुम्हीरासकी 'विनय-भक्ति' इस दिशाकी मूल्यपूर्ण कटियाँ हैं। जीव और जीव भक्तियोंका तो उत्तर परम्परागत भविष्य ही है। यहाँ छीहकन लिखा है कि यदि घट पवित्र नहीं है तो जय तप और तीर्थ सभी कुछ व्यर्थ हैं। पहले घटका पवित्र होना आवश्यक है। उसका उपाय है जिनकरका भिन्नपन। उससे भव-समुद्र निरा का करना है।

“कहि विद-बोधि विद्यामी त्रिनेत्र नाम छु काव ।
 जै कर विरमक नाही का जय-तप तीर्थ कराये ।
 का जय तप तीर्थ कराये जै बछोह न छरी ।
 कपट इन्दी बहू भिण्यानी जम्म करणी धंरी ।
 छीहक कई मुरागी रे नर बावरे सीम सवाली करीपु ।
 विनयन वरम जह्य कीजे ती मध बुह सावर तरोपु ॥३॥”

माम पावनी

इनमें ५ पक्ष हैं। यह एक उत्तम वाक्यका निरर्थक है। इसमें विविध विनयार लक्ष्मी होकर लिखा गया है। अन्तमें त्रिनेत्रके नाम-माहात्म्यका उद्देश्य है। उन कहींही विनयविद्याके पथोंमें तुम्हारा भी का सपनी है। यह दृष्टि भलि-काम्य जयपुरके गुटका नं १३५ में संकलित है। इन गुटकेका लेखन-वाक्य बि नं १०१२ क्वैक मुठी २ विद्या हुआ है। 'नामपावनी का निर्माण बि नं १५८४ में हुआ था।

३० भट्टारक रत्नकीर्ति (वि० सं० १६ १६५६)

रत्नकीर्तिके पिताका नाम सेठ बेबीदास और माताका नाम सहजलदे वा । वे बैनोंकी हुंकर जातिम उत्पन्न हुए थे । बागड प्रदेसका मोचामगर सनका बगम स्थान था । बुद्धि तीव्र थी । बचपनसे ही सिद्ध होने लगा था कि ब्राह्मण होमहार है । एक दिन वहाँ भट्टारक ब्रह्मचर्या आये । ब्राह्मणकी प्रतिभासे उन्हें प्रभावित किया । उन्होंने माँ-बापकी स्वीकृतिसे उसे शिष्यकर्ममें स्वीकार कर लिया ।

भट्टारक ब्रह्मचर्या अपने मुनिके क्वातिप्राप्त व्यक्ति थे । वे एक ओर विद्यासत श्रम्य क्वातिप्राप्त स्वाकरण आयुर्वेद एवं मन्त्र-विद्याम पारंगत थे तो दूसरी ओर व्यवहारकुशल तथा प्रभावशाली भी थे । रत्नकीर्ति उनकी दास रहे, ब्रह्मचर्या किया । कतिपय वर्षोंमें ही वे भी प्रामाणिक विद्वान् मान जाने लगे । अत्यन्त ही वे ही । ब्रह्मचर्याने उन्हें अपना पट्टा-धर्म प्रीणित किया और वि सं १६४६ में भट्टारक-पदपर अभिषिक्त कर दिया । वही वे संवत् १६५६ तक बत रहे । कुछ पढ़केसे उनका रचना-काक माना जा सकता है ।

यदि कोई व्यक्ति विद्वान् हो चरित्रवान् हो सुन्दर हो और ईश्वरी उसके करना तन मूलच्छिन्न होती रहती हो या वह अतिमालव ही बहलावेगा । रत्न कीर्तिमें ये सभी गुण थे । ईश्वरके सेवामें स्थाय्य थे अपने मुनिके सबसे अधिक सुन्दर मुनिक थे । वे बूझते ज्ञानवान् ही थे । लीला संवसमी मुक्तिछन्दमी आदि बगम कुमारियोंके साथ उनका विवाह हुआ था । उनके ईश्वरके पीठ उनके शिष्योंमें पाये हैं । कवि बनेसकी कतिपय पंक्तियाँ हैं

अथ शशिभक्त सोही छूम जाक है ।

बहुन कमक छूम बसव विद्याक ॥

बहुन शक्तिम सम रसना रसाक है ।

अथ विद्याकक मित्रित प्रसाक है ॥

कड कमलमम रत्नाञ्जन राजे ॥

कर किसकक-सम बत कवि काजे ॥

उनका शिष्य-परिवार पर्याप्त बड़ा था । एक शिष्या बीरमतिने वि सं

१ बलात्कारककी सरसरायाकी ही एक जगह में लक्ष्मीकनके शिष्य ब्रह्मचर्यासे प्रारम्भ हुई । उनके शिष्य हैं ब्रह्मचर्या । ब्रह्मचर्याके शिष्य हैं रत्नकीर्ति । भट्टारक ब्रह्मचर्या, जीवणमङ्गलमाला रोचामुद्र २४ २ ।

१९९२ में भयान् महावीरजी मूर्ति प्रतिष्ठित करावी थी।^१ शिष्य बरसापरमे बरसाड नगरमें हुए प्रतिष्ठित-महोत्सवका वषण किया है। उसमें मटारक रत्न कीर्ति अथवा संवसहित साधिका हुए थे। शिष्यायें कुमुदबन्धु सर्वश्रेष्ठ थे। उनकी प्रत्येक रचनामें बुद्ध रत्नकीर्तिका स्मरण किया गया है। उन्हींको बि सं १९५९ में अपने पट्टवर प्रतिष्ठित कर रत्नकीर्ति निवान्त लवावीन हो गये थे।

उनकी रचनायें

मटारक-गरसे बनक उत्तरसाधित सम्बन्ध थे। उनका छोक विवर्द्ध करनेके लिए गठोर हुरदकी आवश्यकता थी। अधिकार मटारक ऐसे ही हो जान थे। किन्तु रत्नकीर्तिका हृदय धरत था। वे कमजोर कवि थे। उनका मर्म सदैव प्रगल्भीक रहता था। उनके रचे ३८ पद हय कवनके लाली हैं। पञ्चुडने बहुत हटका बिलु मिष्टर मेव नहीं माने। हृदय फाटकर बहू बहू उस विरिणी कोर बालेमी सावाका थी जहाँ नयीस्वर रहते थे। नहीं तो फिर बीर का करते। यहाँ तो कुछ भी नज्म नहीं करता। रत्नी कवी समाप्त हो नहीं होती 'बरम्पो न माने वषण मिशोर।

सुमिरि-सुमिरि गुन मय सज्जक बन उर्मणि कळे मति भीर ॥

रत्नक वषण रहत बहिं शके, न मानव छु मिहोर।

मिच उमि चाहत गिरि को मागन सं ही बिधि जम्बूवनीर ॥

उन मय वषण जीवन नहीं सावत रत्नी न सावत भीर।

रत्नकीरति मसु वेग मिळो तुम मेरे मय के भीर ॥

नेमिनाथपागु^२

इसमें ५१ पद हैं। इनकी रचना हामीट नगरमें हुई थी। इसका भी सम्बन्ध नेमीस्वर-पञ्चुडके प्रसिद्ध कथानकसे है। विपम्बर कवियोंने बहुत कम

१. सं १९९२ वर्ष ईशाब्द कवी २. गुम विने श्रीपूज्यसे धरस्वतीनको बकात्कारणने श्रीकुम्भपुम्भाचार्यनिये म कमपचनदेवा तत्पट्टे न कममन्य तच्छिष्य बाचार्य श्रीरत्नकीर्ति तस्य शिष्यामी बाई बीरमती निर्य प्रथमति श्रीमहावीरम्।

करी लेखक १९९, पृष्ठ १९९।

२. नमिबिबस पम्हासस्युं वे वास्य गर-नारि।
रत्नकीरति मूरीवर बहू से कहे छीक्य अपार ॥
हातोड माहि रत्ना रत्नी फाप राय केवार।
बी दिन पुन वन जानीये छारवा वर बाधार ॥

नेमिनाथपागुकी रत्नकीर्ति प्रति वष ५१ जी वरत्नकीर्ति तरत्नी-मन, वषमरेव।

प्रमुखोंकी रचना की है। उनमें भट्टारक ज्ञानभूषणका आशीश्वरप्रभु सबसे बड़ा है। पिछके पृष्ठोंपर इसका संक्षेप हो चुका है। भट्टारक विद्याभूषणके 'नेमिनाथ प्रभु' में भी २५१ पद्य हैं। तीसरा बहुराममल्ल रचित 'नेमिनाथप्रभु' है। यह एक छोटी कृति है। प्रस्तुत रचना चौथा प्रभु है। इसमें रामचन्द्रकी सुन्दरताका एक चित्र इस प्रकार है,

चन्द्रवदनी धृगकोचनी मोचनी लंजम सीत ।
बासग नीत्यो नेगिर्ह, ओगित्य मञ्जुकर दीन ॥
सुगङ्ग गङ्ग दापं छसि उपमा बामा कीर ।
अपर बिह्वल सम उपमा हंतसु विमल नीर ॥
चिबुक कमल पर चरुपद् आचर करे सुधापात्र ।
भीमा सुन्दर सोमती कण्ठ कपोलके बान ॥

नेमिबाहुमासा

यह एक कबु कृति है। इसमें केवल १२ श्लोक छन्द हैं। बिरहवर्णनके कर्तव्य 'बाहुमासा' आवश्यक तत्त्व माना जाता था। बाहु माहीनामें बिरहिनी-की क्या दशा होती थी यह विज्ञाना ही समीह रहता था। जामसीके 'नागमती बिरहमग' में भी बाहुमासा शामिल है। कविन 'कवेच्छमास का जन्म किया है। इस मासमें 'काम अविकाशिक सदा बढता है। वह किसी उपपद्ये उपपन्न नहीं होता। उसकी ऐसी बेबीनी रहती है कि न तो भीमन वज्रका रूपता है और न कामभूषण ही सुझाते हैं

'जा बेह मासे जग जकहरनो बमाहरे ।
काई बाप रे नाम बिरही किम रहे रे ॥
अररत अररत उपजे अंग रे । अरंग रे अरंगत दुल केहे रे ॥
केहन कहे किम रहे कामिनी जारनि जगाक ।
आप अदन नीर बिन माक जाने क्याक ॥
कपूर केसर ककि कुंजम केवड़ा कपाव ।
कमल दूक जक छोरना जन सिधु जाने बाव ॥

१. इसकी भी हस्तलिखित प्रति कलकत्ता में मिली है। इसकी प्रतिलिपि प्रस्तुत है कि संवत् १९१४ वर्षे कात्तिकमासे शुक्ल पक्षे चतुर्थ्या तिथी श्रीम विने किशोरमिश्र पुस्तकालय में। श्रीकाछारामने नवीनतमपण्डे विद्यापते भट्टारक श्रीविद्याभूषण तत्त्व विषय बहुराम जयपाक पटनामें तथा पराशराराम मयपुर में।

२. इसकी हस्तलिखित प्रति, वि. जैनमिश्र, सवाईजी, मयपुरके ज्ञानप्रकाशमें है।

‘हूँ हूँ बँदूब बलिबा बरणी मंशि कपूर मेकि अति बणी ।

त्रिजवर वरण पूजा करी लखर कम्म की भाकी परी ॥

‘राय भोग केतकी सुवास सी माधिपा बँदूक जास :

त्रिजवर जागै बँदै पपाकि जागि मुक्ति सिर बँधि पाकि ॥३१॥ ३२॥

सन्ध्याका समय है । पवनैरारा मिश्रैसहित अपने मन्दिरके ऊपर बैठे हैं । चौदकोकी ओर उड़ते हुए पड़ी आसमानमें घूम कर रहे हैं । सरोवरके किनारे जाते ही सगरा ‘पुष्प और भी मुकटित हो उठ । बहूँके बूझोपर ही उनके मोसके हैं । रियाबोका काल मुख काका पड़ गया है । बकबा-बकबी भी पुष्प-पुष्प हो गये हैं । विषय स्वाभाविकता है और रस भी

“विष गत मभी आनखो पास पंथी राख करै असमान ।

मिथ सहित पचबंजै राख मन्दिर ऊपर बैठी जाण ॥

देखै पली सरोवर सीर, करै कम्म अति गहर गहीर ।

इसी दिसा मुख कळी मभी बकहा बकिही कन्तर कळी ॥

कविने और बाळकका जोकसी विष जोधा है । हुमान् कविनेके पुन ने । पीछा वनका स्वाभाव था । उनके बाळ-तेवते राख-बटाए ऐसे विदीर्ण हो जाती हैं जैसे बाळ-सूयेसे आनखार कट जाता है । सिंह बाड़े छोटा ही हो फिर भी बलिबोको मारनेमें समर्थ होता ही है । सगर बूझैसे व्याप्त वन किटना ही विस्तीर्ण हो जाणिना एक वन ही उसे ‘बकानेमें समर्थ है

‘बाळक मग रमि बहूँ कराय लम्बकार सग जाण पकाव ॥

बाळक सिंह होय अति सूरु दन्तिबाध करे बकपूरो ।

सकल बूझ वन अति बिस्तारो रचो अरिन करे बह छारो ॥

जो बाळक अश्वि को होय सूर स्वभाव न कादे कोय ॥”

प्रद्युम्नचरित्र

इसरी एक हस्तलिखित प्रति आमेरछाएबगडारमें सं १८२ की तिथी हुई बीजूर है । इस काव्यरी रचना हरसोर गढ़के जिलेन्द्र बन्दिरमें हुई थी । बड़ी देन छाएय गढ़के जल भावक कोष रहती थी । प्रद्युम्नमें सन्ध्या रचना-काल दि म १९२८ दिया गया है । प्रारम्भमें ही कपूरके भाव तीर्थकरकी मन्त्रा बरते हुए कविने लिखा है कि वनवा स्मरण करनेसे मग कानाहसे भर जागा है । अद्वय रूप दूर ही जाते हैं और शिवाकील पुन उत्पन्न होते हैं

‘ही जीमकर भंडू खगनाथ ।

योह सुमिरन मन होइ उछाह तो हुआ छ भर होय जी सौ ॥

विह कारण रही बट पुरि गुण छायालीस सोमे भला बी ।

दोष भयारह क्रिया सूर तो रास भणी परधमन बी ओ ॥

सुदर्शन रास

यह रास भाग्येष्ट्यात्मप्रसारमें मौजूद है । काव्यकी रचना बैसाह गुफला गल्लो बि सं १६२९ में हुई थी । यह संज्ञाद अकबरका राज्य-काल था । कविने अकबरके लिए लिखा है कि वह हमारे समान राज्यका उपभोग कर रहा था । उसके हृदयमें भारतके पद दर्जनोंका बहुत अधिक सम्पादन था

साहि अकबर राजहू, ज्योरी भोगये राज अति हम्न समाव ।

और चर्चा उर राही नहीं चाहो छ वरसण बी रासै बी मान ३२॥”

काव्यकी भाषापर मुजराहीका प्रभाव है और उसकी रचना साधारण ही रही जा सकती है । जगनाथ आदिनाथको प्रभाव करते हुए कविने मंगलाचरणमें लिखा है

“प्रथम प्रणमों आदि त्रिभिन् नामि राजा बुक उदपात्री चंद ।

बगर अकोप्या कउन रचामी पूरव काल चौरासी सौ बी जाई,

मरने बी मात हैं उर भरिडं ॥

भाषाधरास

इसकी एक प्रति भाग्येष्ट्यात्मप्रसारमें मौजूद है । इसमें ४ पमे हैं । कुल पद्योंकी संख्या २०७ है । इसका कवि संवत् १६८९ और रचना सं १६३० है । इसमें राजा धीपात्रकी कथा है । वे कोटीभट बहमासि थे । अर्थात् उनमें एक करीब मरौवा बल था । लोचनमें कामदेवके लगन थे । पूर्व जन्मोंके विनाशसे वे बाकी हो गये । एक राजा अपनी बच्ची मैनामुन्दरीसे लाचार होकर उसका विवाह उनके साथ कर गया । मैनामुन्दरी जगनाथ त्रिनेत्रकी भक्त थी । उनसे जगनाथकी भक्ति थी और त्रिनेत्रकी एव भक्ति प्रशान्तित प्रसन्न ही अपने पतिवा पीड़ ठीक कर लिया । धीपात्र फिर बहमे-जीने की सर्वांगमुन्दर हो गये ।

इस प्रकार काव्यमें त्रिनेत्रकी भक्ति ही प्रमुख है । जमीरम बचामन और बसिन्तुर्न आर्षादे काव्यकी छताव कोटिवा बना दिया है । भाषामें विविधता है किन्तु सुन्दरता नहीं । संवत् १८८९ इस प्रकार है

भावे नहीं मीत्रन भूषण कम केरा भाव ।

परी वरा में वान नीका राकि करें कर भाव ।

मध्यकाव्येन कवियोंने 'विरह' का विवेचन करते हुए 'काम' शब्दका बहुत प्रयोग किया है। किन्तु यह 'काम' शब्द कामदेवका नहीं अपितु 'विरह' का पर्यायवाची रहा है। पहले 'विरह' के अर्थमें काम का प्रयोग होता था। कविराजके कामार्त्ता हि प्रहृष्टहृत्पथा चेतनानेननेषु में भी 'काम' 'विरह' का ही प्रतीक है। अतः कोई यह न समझे कि नेमिवाकके विरहमें 'तनुक वान-प्रपीडिता' रही थी।

३१ ब्रह्म रायमल्ल (वि सं १६१२)

ब्रह्म रायमल्ल सतरहवीं शताब्दीके प्रथम पारके समय कवि थे। उन्होंने हिन्दीके अनेकानेक काव्योकी रचना की। इनकी माया सरस और प्रसारबुधसे युक्त है। इनके पूर्व सोऊहरीं शताब्दीके अन्तिम पारमें पाखे राजमल्ल हो चुके हैं। दोनोंमें मेर साह है^१। पाखे राजमल्ल संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंशके विविध विद्वान् थे। उन्होंने हिन्दीमें तो केवल कन्द-शास्त्र लिखा है। कन्द-शास्त्रमें जो अधिकतर दुष्टान्त अपभ्रंशके ही हैं। कविराज बनारसीराजने इसी राजमल्लका उल्लेख किया है। डॉ. बनारसीराजने इनकी राजमल्लके विषयमें लिखा है कि आप बीनामनके बड़े भारी चेता एक अनुसरी विद्वान् थे^२।

ब्रह्म रायमल्ल काव्यसे ही कवि थे। उनमें हृदयवत्ता प्रचाल था। उन्होंने जो कुछ लिखा हिन्दीम लिखा संस्कृत-प्राकृतमें नहीं। उन्होंने सैन नैयामिकी और सैयान्तिकीका भी अध्ययन किया था किन्तु इनकी धृष्टतासे प्रभावित नहीं हुए। उन्होंने सैन वनके मूक वर्त्ताकी मानवकी मूक वृत्तिशेके साथ आवे बढ़ाया। इनके काव्योमें सरसता है।

संस्कृत मन्नामर स्तोत्रवृत्ति^३की इनकी रचना माना जाता है। इसके आधारेपर राजमल्लका काव्य 'हृदय बंधन' हुआ था। उनके पिताका नाम 'मह'।

१ न. दाबूदासजी प्रेमीने दोबोबो एक ही समयका था।

हिन्दी सैन साहित्यका इतिहास ५. ३.

२. ब्रह्म काव्यग्रन्थार सैन, हिन्दी सैन साहित्यका संक्षिप्त इतिहास, ५. ३२.

३. उसके देवा मन्दिर, दिल्लीकी ग्रन्थि सैयान्त नाम सुनि राजमल्ल वरा है, मन्नामर लिखने कोऊकी ज्ञानलक्षण है।

और माताका नाम 'बम्पा' था। इनकी माता अनेक गुणोंसे सम्पन्न थी और ब्रह्मादि कार्य करती हो रही थीं। वे जिनका भी भक्त थी और इसी कारण उनके पुत्र रायमल्ल भी प्रती और 'जिनवाचक'मधुप बन सके थे। माताका प्रभाव पुत्र पर पड़ा है। ब्रह्म रायमल्लके गुरुका नाम मुनि धनस्तकीर्ति था। वे मूलसंघ पारमहन्त्रके आचार्य रत्नकीर्तिके पट्टपर अवस्थित थे।

ब्रह्म रायमल्लके रचे हुए सात हिन्दी काव्य उपलब्ध हुए हैं। इनमें 'नेमी स्वरराज बि सं १६१५ में 'हनुमन्त कथा बि सं १६१६ में प्रद्युम्न चरित्र सं १६२८ में सुखानन्द सं १६२९ में 'धोवाकराज सं १६३ में और 'महोदय कथा' सं १६३३ में रची गयी। निर्योपसप्तमी वक्तका भी इनकी कवि है। उसपर रचना-संकेत नहीं है। इनकी मायामें गुजरातीका पुट है। अपभ्रंशके शब्दोंका भी प्रयोग हुआ है।

नेमीस्वर रास

यह एक भक्तान् नेमीस्वरकी भक्तिमें बना है। उसमें भक्तान् नेमीराज तथा रामकी कथाका आशय लिया गया है। कथानकके चरित्र होते हुए भी काव्य साधारण बोलिया है।

हनुमन्त कथा

जैनोकी प्राचीन कथाओंके अनुसार हनुमान् अंजना-पुत्र थे। अंजना भगवान् शिवेश्वरी परम भक्त थी। पुत्र भी उसनुकस ही बना। जैनोके ब्रह्मराज रामकी भक्ति कर के अमर हो गये। आराम्यके भक्तोंकी भी भक्ति होती रही है। हनुमान्की भक्तिमें भी अनेक काव्य और रासादिकोंका निर्माण हुआ है। 'हनुमन्त कथा' भी उसी परम्पराका एक काव्य है।

चरनरै राम हनुमान्के पिता थे। इनके यही भक्तान् शिवेश्वरीके पूजनकी रीतिरिणी हो रही हैं। बुद्धिमान् और बन्धन भित्त लिया गया है। उसमें वपुर् भित्त दिया है। बैठकीके वृत्त में बना लिया है। उनमें-से गुणगि बिलस रही है। चरनरै न पूजनकी वाली भक्तान् शिवेश्वरीके चरणोंमें समर्पित की। उन्हें बिन्दान है कि ऐसा चरनरै आत्मा मुक्त होगी और एक दिन नीच भी भित्त जायेगा।

१. व. म. पञ्चमस्कन्धिकाया प्रथम भाग, शिखी पृ. १ ।

२. इनकी एक हनुमन्तिका कवि, जो इस कथाके चरित्र शिखी में तथा एक ही वक्त निर्योपसप्तमी वक्त में लिखा है। इसी कथाके चरित्रोंके चरित्र-वर्णन बि. म. १६१६ वक्तका वही भक्तान् दिया है।

‘हूँ हूँ बंदन पसिचा परणी मांसि कपूर मेकि धति घनी ।

त्रिधर चरण पूजा करी जबर जन्म की याकी घरी ॥

‘राज’ योग केतकी सुवास छी माधिका बंदक आस ।

‘जिपचर’ आर्ये भरी पचाकि जाति मुकति सिर बंनि पाकि ॥११ ४१॥

छम्पाका समय है । परगबैराज निर्भोसहित अपने मन्त्रिके ऊपर बैठे हैं । बोंसलोकी ओर उड़ते हुए पक्षी आसमानमें उड़ने कर रहे हैं । सरोवरके किनारे जाते ही बनना ‘पुष्क’ और भी मुकुरित हो उठता । वहाँके वृक्षोंपर ही उनके मोसके हैं । किसानोंका हाक मुक्त काका पक गया है । बकना-बकनी भी पुष्क पुष्क हो बने हैं । विश्वमें स्वाभाविकता है और रस भी

“दिल गत मन्थो जाणयो मान पंथी उड़्य करे बसमान ।

मिष्ट सहित पचनचै राख मन्त्रि कर पैरी बाध ॥

देखै पंथी सरोवर सीर, करे जम्ह अति गहर गहीर ।

इसै दिसा मुख काको मन्थो जम्हा बकिही अन्तर कथी ॥

कविने और शास्त्रका जोकसी विश्व चींथा है । इन्सान् धर्मिके पुत्र थे । नीरठा इनका स्वभाव था । उनके बाक-तैयारे धनु-बटारें ऐसे विदीर्ण हो जाती हैं जैसे बाक-मूर्खि जन्मकार पट जाता है । सिंह चढ़ी छोटा ही हो फिर भी इन्धियोंकी मारनेमें समर्थ होता ही है । सबन वृक्षोंके व्याप्त बन फिटना ही विस्तीर्ण हो अन्धिका एक कम ही बसे बकनेमें समर्थ है,

“बाकक जब रवि उड़्य कराय अन्धकार सय जाय पकाय ॥

बाकक सिंह होय अति सूरौ इन्धियाउ करे जकचूरी ।

सबन वृक्ष बन अति विस्तारी रत्तो अग्नि करे दह करी ॥

ओ बाकक अन्धिका को होय सूर स्वभाव न छाई काय ॥”

प्रद्युम्नचरित्र

इसकी एक हस्तलिखित प्रति आमेरशास्त्रमण्डारमें छं १८९ की किस्मो हुई मौजूद है । इस काव्यकी रचना हरसोर गढ़के जिलेन्द्र मन्त्रिकमें हुई थी । बहुत देर बाद गुरुके भक्त आचक लोग रहते थे । प्रद्युम्नमें प्रथमका रचना बाबू बि स १९२८ दिना गया है । प्रारम्भमें ही अमृतके नाथ तीर्थकरकी बरना करते हुए कविने लिखा है कि इनका स्मरण करनेमें मन बत्ताइते भर बाठा है । अठारह बीघा दूर हो जाते हैं और जिनाबीय पुन उत्पन्न होते हैं

‘हो लीयकर बँटू अगवाय ।

तोह सुमिरण मग होइ उछाह तां पुष्पा छ अह होय भी सी ॥

तिह कारण रही अह पूरि गुण छीपाछीस सोम मछा भी ।

होय अछारह किया दूर सो रास मणी परधमन को को ॥

सुरजन रास

यह रास आभरघास्त्रभण्डारमें मौजूद है । काव्यकी रचना वैद्यान मुख्या मण्डवी हि सं० १६२९ में हुई थी । यह सम्राट् मकवरका राज्य-नाट्य था । कविने मकवरके लिए लिखा है कि वह इन्द्रके समान राज्यका स्वामी बन रहा था । उसके हृदयमें भारतके मंद वर्णोंका बहुत अधिक सम्मान था

साहि अकबर राजहूँ, जहो मंगवे राज जवि इन्द्र समान ।

और चर्चा उर रखी नहीं अही छ’ दरसन को राखी भी मान ॥१॥

काव्यकी भाषापर गुजरातीका प्रभाव है और उसकी रचना साधारण ही रही या सजनी है । भगवान् कारिनाथको प्रशंसा करते हुए कविने मंगसावरणमें किया है

‘प्रथम प्रथमों धानि जिमिदु नामि राजा कुक उछाही अह ।

बगर अयोध्या अगने हजामी बुरख कान औरासी सी भी आई,

मदहूँ भी मात हँ उर परिड ॥

भावाछरास

इसकी एक प्रति आभरघास्त्रभण्डारमें मौजूद है । इसमें ४ पद्य हैं । कुल पद्यांची संख्या १९७ है । इसका तिथि संवत् १९८९ और रचना सं० १९३ है । इसमें राजा भीमलाली कहा है । वे ‘बोटीमट’ कहलाते थे । अर्थात् उनमें एक फटीष्ट मटावा बन था । सौन्दर्यमें कामदेवके समान थे । वृद्धे वयोहि विवाहने से शोड़ी हो गये । एक राजा अगनी बग्या मैनामुन्दरीमें नाराज होकर उनका विवाह उनसे नाथ बन गया । मैनामुन्दरी भगवान् त्रिलोकजी भवन थी । उनमें भगवान् की भक्ति थी और त्रिलोकजी एक मूर्तिके अर्चनार्थ मण्डप ही करने पतिना बोड़ होक बन लिया । जोरान्न फिर पारने-दोहे ही लखीपनुरर ही गये ।

इन सबार काव्यमें त्रिलोकजी भक्ति ही प्रमुख है । अचार्य बचामन और भक्तिपूर्ण कथाने काव्यको उल्लेख बोटिया बना दिया है । भाषा में निविधता है किन्तु सुन्दरवाणी नहीं । संभवतः यह सबार है

“हो स्वामी प्रणमो आदि विमर्द बही अत्रिष्ठ होई आनंद ।
संमो बही सुगति स्त्री ही अमिर्गन का प्रणमो पाई ॥”

भविष्यदत्त कथा

जनपासकी अप्रार्थ ‘भविष्यदत्तहा’ प्रो माधोबी-द्वारा सम्पादित होकर सन् १९१८ में म्यूनिखकी ‘रॉमक एन्ड्रेमी’से प्रकाशित हुई थी। जनपासके बहुरूप जनजातिक भविष्यदत्तकथाका निर्माण होता रहा। प्रस्तुत काव्य भी उसी परम्पराकी एक रचना है। ‘भविष्यदत्तकथा’की पंचमी-व्रत-कथा भी रहते हैं। इसमें पंचमी-व्रतका साहाय्य बतलाया गया है। ग्रन्थका मुख्य आधार धर्म है। मगधान् विनेत्रकी कल्पिते कारण ॥ भविष्यदत्त अपने संतोंके माई बहुरूपक द्वारा दिये बने मोघन बुद्धोत्ता सम्पुष्ट कर सत्ता। उसकी माँ ‘मुदपंचमी’ व्रत रचनी है, और वह स्वयं भवधान् विनेत्री पूजा करता है। जनः ठीक समयपर एक देखने सहायता की और उसकी पत्नी तथा बच-सम्पत्ति दोनों ॥ प्राप्त हो बने।

इसकी एक प्रति वि सं १६९ की लिखी हुई आमेरघास्वमन्दारमें मौजूद है। इसमें १७ पंक्तें हैं। प्रकृतिमें लिखा है ॥ इसका निर्माण सं १६१३ में कानिक मुठी बीरसकी परिवारके दिन हुआ था। उस दिन स्वाति नक्षत्र और सिद्धि योग था।

इस काव्यकी रचना ईसापूर्व इसके सायनेर नामके स्वामिपर हुई थी। सायनेरकी सोचाका वर्णन करते हुए कविने लिखा है कि उसकी बापे दिवागोमें मुन्दर बाजार में विनेत्रे मीठी-हीरीका व्यापार होता ही रहता था। वहाँ मगधान् विनेत्रका एक बहुत ऊँचा मन्दिर भी था। उसमें वेद्यस्त्रीस्तो तोरक टीने वे बहुरूप्य बंदोबा छने थे। वहाँ राजा बचसूरदास राज्य करता था। जनको राज-कुमार उसकी सेवा करते थे। प्रजाकी छत्र प्रकारका सुख था। बुद्धी और बरिष्ठोनी भी आचार्य पुरी होसी रहती थी। वहाँ बड़े-बड़े भवधान् धामक रहते थे। वे बचसूरदास करते हुए मगधान् बरिष्ठोनी पूजा प्रतिष्ठित करते थे

‘देस हंदाहड सोना बनी पुंजे लही अकि मजदारी ।

निमक लके बही बहु धिरे, सुल सं कसी बहु सांगारे ।

१. मौजूद से तैनीया सार कानिक मुठी बीरस परिवार ।
स्वाति नक्षत्र सिद्धि युगयोग पीडा छल व्यापारी योग ॥
कल्पित कल्पित ।

चहुँदिसि बाण्या मका बजार भरे पटोका मोती हार ।
मवन उतुंग बिजेस्वर तजा सीमै चन्दा तोरण घण्टा ॥
राजा रावै माणवतदास राजकुँवर सेवहि बहुत तास ।
परमा कोण सुली सुल नसें सुली इकिरी पुरमे भास ॥
घावक कोम नसें मनबल पुडा करहि जयहि भरहंत ।
उपराउ परी बैरन कास जिहि अहिमिह दुर्ग सुल कास ॥

३२ कुसललाम (वि सं १९१९)

कुसललाम शैवभक्तोंके राजस हरेराजके आश्रित कवि थे । राजस हरेराजका समय सत्तरहवीं सताब्दीका प्रथम पाद माना जाता है । कुसललामका रचनाकाव्य भी यह ही था । उक्त राजसजीक कहनेसे ही उन्होंने राजस्थानीके आदिनाथ्य 'डोका माक प डूहा' के बीच-बीचमें अपनी चौपाइयाँ मिठाकर प्रवचनारमबता उत्पन्न करनेका प्रयास किया था । इसपर डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीका कथन है 'मुझे लगता है कि मावपूर्ण पराके बीच रासलीला आदिके समय कथामुत्रका जोड़नेके लिए ये चौपाई-ब्रह्म पद बाधमें आये गये होंगे । डोकाके दोहोंका कथासूत्र मिठानेमें कुसललामने इसी कौशलका सहारा लिया था ।' यह कहना ठीक नहीं है कि समय-समयपर उसमें बीच-बीच मरी हुई कथाकाकी चिमियाँ लगाकर उसे सुलकते आख्यायक काव्य बना देनेके प्रयत्न हुए हैं ।^१ इन चौपाइयाँसे बिहरसमें कोई व्याघात नहीं पहुँचा है, अपितु कथाके एक सूत्रमें बीच जानसे 'प्रवचकाव्य का आगम आया है तो फिर ये कथामोकी चिमियाँ कैसे हो सरती हैं । इसके अतिरिक्त ये बीच-बीच-मरी' तो तब हो जब उन्होंने मूलकथाकी स्वाभाविकताकी चिन्ता किया हो । किन्तु ऐसा नहीं हुआ है ।

कुसललाम हरहरमन्त्रके समय मुद भी भी लमयदेव कथाप्यामने दिव्य थे ।^२

१ दिव्यी साहित्यका आदिकाल विहार-राजनाथ-परिषद पटना १९२२ ई
पृष्ठ ६७ ।

२ माम्बरसिंह दिव्यीके विकासमें लखनऊका जैन साहित्यकनन भित्तिदत्त
हनादाबाद लखीम नगर १९३४ ई पृष्ठ २४२ ।

३ श्री परतर भक्ति सहि मुदराय मुद श्री लमयदेव कथामुत्र ।
लेखार मल जल १९३० पृष्ठ २१५ ।

ऐसा प्रतीत होता है, जैसे उन्हें नवितन-वसित नगमसे ही मिकी थी। उन्होंने मन्दिर शृंगार और कीर-जैसे प्रमुख रसोपर छलन कविताएँ कीं। उनकी शृंगार परक रचनाएँ नाम माधवानन्द की गई हैं। इसे माधवानन्द-कामकन्दला भी कहते हैं। इसकी रचना भी यादव हरराजकी प्रेरणासे ही कागुन सुनो ११ रविवारदि दिन सं १६१६ में हुई थी।^१ इसमें छाने पाँच ही चौराह्याँ हैं। इसमें माधवानन्द और कामकन्दलाके प्रेमकी कथा है। कहीं कोकममरीना सन्तर्जन गयी हो सखा यही इनकी विशेषता है। आज भी यह ग्रन्थ राजस्थान और गुजरातमें बहुत प्रसिद्ध है।

कुछकालपने मन्दिरसे प्कावित करनेकालेक काव्योंकी रचना की और इनमें कविपद में है : 'श्रीपूज्यवाङ्मयीतम् 'स्वच्छिद्यडकसीसा 'तेजसार राव' सन्मननास्वनाचस्तवनम्' पीडीशास्वनाचस्तवनम् और नवकारकम्'।

श्रीपूज्यवाङ्मयीतम्

यह गीत ऐतिहासिक जैन-काव्यग्रन्थमें संकलित है।^२ काव्य सरस है, भाव सुन्दर और भाषा रम्य। कविन मन्दिपूज माधोसे श्रीपूज्यवाङ्मयके चरनोंमें अपनी पुपायकियाँ बर्णित की हैं।

गुहके प्रवचनोंके कर्षकी बजोने समझा है, और कहींमें सम्भव होकर मनों में झूम बैठे हैं। काविकी योग्यमन्त्र स्वरमें मुख म्हापराके ही गीत गाय रही है। 'पुननी हैसना' से प्रभावित होकर ही माधो बम्पीर यवन बारम्बार बाज रहा है। ममूठेकी विरजन और चकोरकी पुकनपूर्व बाँधोमें कुकरेयका घूम भाव स्पष्ट लटक रहा है।

“प्रवचन बचन विस्तार जगत् सरवर भजा रे।

कोकिक कामिनी मोत गायत्र श्री गुह लप्य रे।

१ रावक माकि तुगाड बरि, कुंवर श्री हरिराज।

विरविपद मिमनारसि तास मुगुहक नाम ॥

सकन् सोक सोडोनरह, जैसकमैर मज्जारि।

कामुच मुदि तेरसि विवसि विरवि आचित्यवार ॥

माधवाडी पाँचमह ए चक्रपद प्रमाण।

माधवानन्द कीर्ती अन्तिम प्रशस्ति, प्रशस्तिर्माधव जयपुर, इ.स. १८७-१८८।

२ ऐतिहासिक जैन-काव्यग्रन्थ अमरकन्द माधव द्वारा सम्पादित कम्पनी दि. न. २६ इ.स. १९११।

गात्रह-गात्रह गगन गम्भीर श्री पूज्यनी वृक्षना रे ।

मविचन मोर चक्रोर चायह छुम चायना रे ॥६३॥

गुरुके ध्यानमें स्नान करते ही शीतल वामु मस्त चाकत चक रही है । सारा संसार मुण्णिवे महक रहा है और वह मुण्णिव गुरुपदेवकी ही है । गुरु प्यारामके कारण ॥ चिरके छातों सेजोमें धम उत्पन्न हो सका है । यदि ऐसे नुस्सा प्रसाद उपकार हो सके तो अवश्य हो सुख निषेवा ऐसा शकतो निरास है,

सदा गुरु प्याल स्नान कहरि शीतल बहह रे ।

कीर्ति सुखस विसाक सकल जग मह महह रे ।

सात क्षेत्र सुखाम सुधर्मह भीषजह रे ।

आ गुरु पाय प्रसाद सदा सुख संपजह रे ॥६४॥

स्वूळमद्र-छत्तीसी

यह काव्य श्रीमानेरकी कमूय संस्कृत छायावेरीके एक गुटवावे पृष्ठ ९१ ९८ पर संकलित है । इसमें रचना-नाक नहीं दिया है । कुल ३७ पद्य है । यह काव्य भाषा स्वूळमद्रकी भक्तिमत्त मिमित हुआ है । इसकी भाषामें सरमता और भाषामें स्वाभाविकता है । प्रारम्भमें हो 'स्वूळमद्र-छत्तीसी' कहनेकी प्रतिज्ञा करते हुए बचिने लिखा है

"सारद सारद चन्द्र कर निमक ताक चरण कमक चितकाहकि ।

सुमण संघोष हाइ भवलय कुं जागर चनुर सुबहु चितचाहकि ॥

सुधककाम सुनि आनन्द मरि सुगुरु प्रसाद वरम सुख पाहकि ।

करिहं पूळमद्र छत्तीसी अगिसुन्दर पदचरण बनाहकि ॥१॥

यह काव्य गुरु-भक्तिके अमूर्तत जाया है । गुरुकी महिमा अपार है । पिण्य विगत ही अनपार करे किन्तु उसे निरास रहता है कि कशर गुरुके सामा मिस हो पायवी

'बैसा बाहक सुजो मवड लज्जित सुनि

माथ करि सुगुरु कइ पास जायह ।

बूळ भव मोहि बरी चरण तदि मिर घरि

आर अनराध आयहं नमायह ॥२॥

१. राजभाषामें दिल्लीके इलमिदिय मन्त्रीकी गेज चतुर्थ भाग अन्तर्गत काव्य
लप्यादिन लादिन मन्त्रायन जयपुर ११२४ ई. १४२२ ई.

जिनवर भोमुपि कपदिसर्ज मयिकछोक मुचकामि ।

जिव मयिमा जिन सारणी मापि श्रीजिनराजि ॥

प्रतिमा जिनवी जिवसूरि आणहि पुरति

पडिमव परमव मुच कहई इम मापई अरिहंत ॥ १३ ॥

स्तम्भनपार्श्वनाथस्तवनम्^१

श्री मुचकामामने इस स्तवनकी रचना खम्मासमें बि सं १६५३ में की थी^२ । स्तम्भन पार्श्वनाथकी साविधय मूर्ति है । संस्कृतमें स्तम्भन पार्श्वनाथको कैकर बनेको स्तुति-स्तोत्रोंकी रचना होती रही है । तत्त्वप्रभाचार्य और जिनसोमसूरिके स्तम्भनपार्श्वनाथस्तवनोका संकलन 'मन्त्राविद्यासंकलन' में हुआ है । हिन्दीमें मुचकामाका 'स्तम्भनपार्श्वनाथस्तवनम्' उसी परम्परामें है । इस स्तवनका भावि और बन्ध निम्न प्रकारसे है,

भावि

ममु मन्त्रमुरे पास जिनैसर बसणी

गुण गावारे मुच मन उकर भति बणी ।

शानी विचारे पढ़नी जाद न को कहै

गोई पनिरे गीतारव गूढ ईम कहै ॥^३

बन्ध

'ईमि स्तव्णो स्तम्भन पास स्वामी नवर श्रीवनापतै

कम सहा मुच भोमुप मुजिव भापि सास्त्र जागक संसरे ।

ए भाव मूरति सकल मूरति सेवया मुच पामीप,

मन्त्रमात्र भापि काम भापि मुचककाम पञ्चपदे ॥^४

गौडीपार्श्वनाथस्तवनम्^५

गौडी पार्श्वनाथकी भी साविधय प्रतिमा है । उसके दर्शन करनेके योग-योग दूर हो जाते हैं । श्री यशोविरयका संस्कृतमें लिखा हुआ गौडीपार्श्वनाथस्तवन कल्पविक प्रसिद्ध है^६ । श्री मुचकामाका गौडीपार्श्वनाथस्तवन हिन्दीकी रचना है । इसमें २३ पद हैं । स्तवनमें गौडीपार्श्वनाथकी भक्ति ही मुख्य है । दबिने

१ इसकी हस्तलिखित प्रति श्री दि. जैन अभिर नवीकन्दवी जयपुरके श्रद्धा में ६२ में मिली है ।

२ यह स्तवन, बटोरदारके श्री रामविरयवतीके मरजारमें योजित है । इसकी दूसरी प्रति जयपुरके श्री लक्ष्मणदासीके अभिरमें श्रद्धा में ६२ में मिली है ।

३ श्री-स्तोत्रमन्दोद १ मुनि जयपुरविरय-द्वारा सम्पादित महाराष्ट्र १ ३१४ ।

४ जैन मन्त्रावधिको पहला भाग १ २१६ ।

प्रारम्भ उस सरस्वतीकी हृत्पुष्प बगवत की है जो सुराभी है स्वामिनी है और बचन-विभागकी बह्याभी है। वह एक ऐसी ज्योति है जो समस्त विश्वमें व्याप्त है।

‘सरसवि सामनी आप सुराभी बचन विकास विमल बह्याभी
सकल ज्योति संसार समानी पाद परमर्षु जोडि धुग पाणि ॥१॥’

मीडोपासनाकालमें बगवत केवल नर ही नहीं किन्तु असुर इन्द्र देव अन्तर और विद्यावर आदि सभी करते हैं। भक्तपाद पार्श्व विनेश समूचे संसारके नाथ है। भक्तपादके दर्शन उस विद्यामणिके समान है जो सभी मनीषाजिनोंको पुरा कर देती है। जिनके दर्शनमें ऐसी शक्ति हो उसकी महिमा बर म्पार है।

‘तेजि बरा बस तुम उदधि सिहां दिप अर्धसित
स्वोम बरनि पावाक जाय सुर बड़े अर्धसित ।
असुर इन्द्र बर अमर विविध अन्तर विद्यावर,
सेवे तुम बाब सब न मात्र धुवये बिरंतर ।
बगवत पास विनवर कबी मनकामित विद्यामण्यो
कवि कुलककाम संपति काल बचकबीना यीशोबानी ॥

अन्तिम ककल ॥

नवकार छन्द

इसमें १७ पद्य हैं। इसकी हस्तलिखित प्रति महम्मदाबादके गुलाबविजयजी के बखारमें मौजूद है। इसमें पद्य परमेष्ठीकी बगवत की बरी है। श्री कुलककामने लिखा है कि उसका मित्य आप संसारकी सुख-सम्पत्तिबोकी प्राप्त कराता है, और छिद्रि भी प्रदान करता है। एकचित्ते पद्यपरमेष्ठीकी आराधना करवैसे जनेको अभिषिक्त आदिषी प्राप्त हो जाती है।

‘विरम कबीई बचकर संसार संपति सुखदायक
सिद्धमेव सादरती इस जये श्री बगवतक ।
नवकर सार संसार है कुलककाम बाबक कहे
एकचित्ते आराभीई विविध आदि बक्षित कहे ॥ अन्तिम ककल ॥’

३३ साधुकीर्ति (वि सं १६१८)

साधुकीर्तिकी मूल-परम्परा इस प्रकार है मतिवर्धन मेरुतिष्ठक इषाकलप और बभरमाभिक्य ।^१ बभरमाभिक्य साधुकीर्तिके मूल थे । ये छरतरमन्त्रके साधु थे उन्होंने स्वाम-स्वामपर त्रिमन्त्रसुरिका स्मरण किया है । एक साधु कीर्ति और हो गये हैं, जो बहुतपमन्त्रके त्रिमन्त्रसुरिके शिष्य थे । दोनोंमें विभक्तता स्पष्ट है ।

साधुकीर्ति भक्त-कवि थे । उन्होंने अनेक स्तुति-स्तोत्रोंकी रचना की । उनमें प्रसिद्ध ये हैं 'पञ्चतंष्ट्र' 'सत्तर भेरी पूजाप्रकरण' चुनड़ी 'उपमासा 'सर्वत्रय स्तवन' 'नमिच्छावर्षि चौपई' । इनकी मायापर गुजरालीका विशेष प्रभाव है ।

सत्तर-भेरी पूजाप्रकरण

इसकी रचना अष्टाद्विंशपुरमें वि सं० १६१८ आषाढ शुक्ला ५ को हुई थी ।^२ इसकी इस्तिक़िस्त प्रति जयपुरके ठोळियोंके वि शैव मन्त्रिरमें गुटका नं० १३ में संकलित है । श्री कस्तूरचन्द कासलीवाकने इसका रचनाकाल वि० सं० १६५८ लिखा है जब कि इसके अन्तिम पद्यमें वि सं० १६१८ लिख है । इसका भावि-भाव इस प्रकार है,

'ज्योति सकल जगि जागती है सरससि समरसु मंद ।

सत्तर मुनिवि पूजाउषी वमणिषु परमार्ज ॥''

चुनड़ी

इसकी प्रति जयपुरके ठोळियोंके शैव मन्त्रिरमें गुटका नं० १२ में मिलता है । इस मुरकेका कैलानकाक सं० १६४८ है, अतः यह सिद्ध है कि रचना सं० १६४८ से पहले ही हुई होगी । इसकी पूरी रचना 'बाउलपुरी लोहाभण्ड मठ मठ मन्त्रिर गार्ई हो' नाममें की गयी है ।

रागमासा

इसकी प्रति भी ठोळियोंके शिवाग्रर शैव मन्त्रिरमें गुटका नं० ३३ में मिलता है ।

१ साधुकीर्ति अष्टाद्विंशपुरमें अष्टाद्विंश काल भाग पत्र १८९-१३ जैनपुराणविश्वको मास १ व १२ ।

२ संवत् १९ अठार आषाढ गुरि । वर्षमि दिवसि अष्टाद्विंश ॥३॥
शैवपुराणविश्वको भाग १ व १९ ।

सर्गस्य स्तवनं

इसकी रचना १७वीं शताब्दीक प्रथम पार्श्वमें हुई। इसकी एक हस्तलिखित प्रति श्री मोहनलाल बुकीचन्द देसाईके पास है। उसका आदि अन्त इस प्रकार है।
आदि

‘एष प्रथमी रं विष्णवरत्ना सुम भाव कई।
सुन्दरिगिरि रं पादु सुख सुपसाक कई ॥

अन्त

“इम कवीय पूजाय आओ गहि संव पूजा आरणी,
साहसिकवच्छक कई अविर्षी, सब समुद्र कीका उरई,
संपदा सोहग वेह मानव रिद्धि वृद्धि बहु कहई,
अमरनाथिक सीत सुपराह, साधु कीरति सुख कहई ॥”

ममिराजपि औपई

इसकी रचना नाथीरत्ने वि सं १९३९ भाव शुक्ल ५ को हुई थी। इसकी प्रति १७वीं शतीकी लिखी हुई ही मौजूद है, जिसमें ५ पदे हैं।^१

अन्य स्तोत्र-स्तवन

‘एनाहसी स्तोत्र’ ‘विमलगिरि स्तवन’ ‘आदिनाथ स्तवन’ ‘सुमतिनाथ स्तवन’ ‘पुष्करीय स्तवन’ ‘विनायक वलित’ ‘नेमिस्तवन’ और ‘नेमिपीठ’ की साधुजीतिनी ही रचनाएँ हैं।

३४ हीरकलस (वि सं १९२७)

हीरकलस कठहरणञ्जै ज्योताम्बर साधु थे। इसी साधुनामै श्री विनयान्न कुरिया अन्न दूधा या विनका नाम सुनतै ही आदि अन्न वचनयन कर आते थे। कहींके पट्टपर नाथै अन्नर श्री वैद्यकिञ्ज कपाध्याय विराजमान हुए। उनमें अगाध शक्तिअ और लज्जतापरा अमृतपुत्र समन्वय था। उनके शिष्य हर्षप्रभु नामके मुनि हुए। हीरकलस कहींके शिष्य थे।^२

१. जैनपुराणविशेषी भाग १ पृष्ठ २ ०-२२१।

२. जैनपुराणविशेषी, भाग २ पृष्ठ २२२।

३. पृष्ठ १३०।

४. जैनपुराणविशेषी भाग १ पृष्ठ २२४-२४ तथा भाग २ पृष्ठ ७२५-५।

हीरकण्ठसका रचनाकाळ वि सं १६२४ से १६७७ तक माना जाता है। हीरकण्ठसकी सात रचनाएँ प्राप्त हैं 'सम्पत्सकौमुदी' 'निहासन बत्तीसी कुमतिविध्वंस चौपाई' 'आराधना चौपाई' 'मुनिपति चरित चौपाई' 'छोम्ह स्वप्नसम्भाष' 'बठारह नातरां सम्बन्धी सप्ताथ'।

सम्पत्सकौमुदीरास

इसकी रचना वि सं १६२४ माह सुवी १५ बुधवार पुष्यनक्षत्रमें हुई थी। कविने रचनास्फुटता क्लेश करतै हुए लिखा है कि मैंने इस रासकी रचना 'सबाळप' नामकी नवरीमें की जहाँकि बामिद-स्नेहने मुझे बाँध दिया था। इसकी सबसे प्राचीन प्रति वि सं १६५२ माह बवी ४ सोमवारकी किन्नी हुई मौजूद है, जिसे बलामुख परीषद् बीरवासेने अपने पढ़नेके लिए लिखा था। इस काव्यमें १५ पद्य हैं और सभी चौताइयोंमें निबद्ध हैं। इस रासमें बनेक भक्तोंके चरित्रोंका सरस वजन है। भाषामें कव्य है और भावोंमें चरित्रकी सरसता।

निहासन बत्तीसी

इस काव्यकी रचना वि सं १६३६ मासोज बवी २ को सबाळप देशके अमरनत मेढता नामके नगरमें हुई थी। इसकी एक प्रति मैवाड़के सरस्वती मण्डारमें वि सं १६४६ कात्तिक सुवी १२ रविवारकी किन्नी हुई मौजूद है। इस प्रतिमें श्लोक-संख्या ३५ है। सभी पद्य चौताई और चौहोमें हैं। ऐसे ही इस काव्यमें विद्वत्तावित्त्व ओंमका चरित्र बर्णित है विष्णु वास्तवमें दानकी महिमा बताना ही अधिक मूल्य कदम था। दानकी महिमाका क्लेश बैन वास्तवोंके अनुसार ही किया गया है।

कुमतिविध्वंस चौपाई

इस काव्यके निर्मात-नामका क्लेश करतै हुए कविने लिखा है। इनकी

- १ संवत् सोमहस्तई चतवीस माही पुनम बुध शरीम पुष्य नरातई केह
देश सबाळप नवरी जेह बर्म तपस शिखा बाध्मुनह, निहा कीई चतपई
जेह ।

कैलामरचविनो भाग १ पृष्ठ २३८-२३९ ।

- २ राजस्थानमें दिल्लीके इरानिखान मण्ठाकी काल माल १ डॉ मोहनलाल मेघारिआ छापाखान, दिल्ली विचारार्थ करकपुर, १९४२ ई। इस १३२-१३३ ।

रचना वि. सं. १९७७ जेठ सुदी १५ बुधवारके दिन कर्कपुटी नामक नगरमें हुई थी। इसकी एक प्रति वि. सं. १७५९ की किन्ही हुई मौजूब है।

इस काव्यमें मूर्ति-शुभाका समर्पण किया गया है। इस समय मुसलमान और हिन्दुओंके कुछ सम्प्रदाय मूर्ति-शुभाको कुमति मानन लगे थे। इसमें उसका निरास किया गया है।

आराधना चौपई

इसकी रचना वि. सं. १६१३ माह सुदी १३ बुधवारको माधौरमें हुई थी। इसकी एक प्रति बीकानेरके मण्डरा चौके पास ॥ जिसमें वेबक ४ पन्ने हैं। कुछी प्रति बाघोज बही १३ वि. सं. १८६९ की किन्ही हुई महार बग्यारमें मौजूब है। इसमें वेबक ७ पन्ने हैं। एक तीसरी प्रति और थी है जो १७वीं या १८वीं सदीकी किन्ही हुई है, जिसमें ६ पन्ने हैं। इस काव्यमें २४ तीर्थकरोंकी आराधना की गयी है।

मुनिपति अरिष चौपई

इस चौपईकी रचना वि. सं. १६१८ माह बही ७ रविवारको बीकानेरमें हुई थी। इसकी प्रति बीकानेरके छत्र मण्डारमें मौजूब है। इसमें कुछ ७३३ पद्य हैं। इसमें मुनिवर मुनिपतिके अरिषकी महिमाका वर्णन है। पूरा काव्य 'मुनि-मन्त्रि से ओगप्रोठ है।

सायब स्वप्न सहाय

इस छन्दे-से काव्यका निर्माण वि. सं. १६९९ माह सुदी ५ को हुआ था। नगरमें आनेके पूर्व तीर्थकरकी यात्रा १६ स्वप्न देखा कण्ठी है। कण्ठीका यहाँ उल्लेख है। इसमें कुछ २ पद्य हैं।

अठारह मातरा सम्बन्धी सहाय

इसकी रचना वि. सं. १६१६ आश्विन शुक्लमें हुई थी। आम्बु स्वामीने जिन १८ मातराओंका उल्लेख किया है, कण्ठीका इसमें वर्णन है। इसमें कुछ ५२ पद्य हैं।

१. अष्टादश मातरासहान नक्षत्रपुटी नवरी-उल्लास ।

अहि पुनिन मे बुधवार की सयगि बीक-अवगार ॥

२. नलनरकदिना नाम १ बुध २४ ।

३५ पाण्डे जिनदास (वि सं १९४२)

'जम्बू चरित्र' में पाण्डे जिनदासने अपना परिचय दिया है। वे मामरेके रहनेवाले थे। उनके पिताका नाम ब्रह्मचारी सन्तोदास था। कुछ विद्वानोंका कथन है कि उन्होंने ब्रह्म सन्तोदासके पास विद्या प्राप्त की थी। हो सकता है कि उन्होंने पिता भी अपने पिताके सन्तोप में ग्रहण की हो। एक ही व्यक्ति गुह और सिद्ध होना हो सकता है। यदि ब्रह्म विरोधना राजा उत्पन्न करता हो तो यह भी असम्भव नहीं है कि श्री सन्तोदासने पुत्रोत्पत्तिके उपरान्त ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया हो।

इनका रचनाकाल आध्यात्मिक अवसरका समय माना जाता है। उन्होंने स्वयं भी ऐसा ही लिखा है।^१ इनके आध्यात्मिक अवसरक प्रसिद्ध मन्त्री टीहरदास थे। उनके पुत्र दीपादासके पत्रके निमित्त ही 'जम्बूस्वामीचरित्र' की रचना हुई थी। टीहरदासके परिवारक रिपमदान मोहनदान रूप मन्त्र और लक्ष्मीदास का उत्पन्न भी उन्होंने किया है। वे सभी धार्मिक व्यक्ति थे और उनकी कथाओं में विषय भी। दीपादासने मन्त्रादि एक निपटिकाका निर्माण करवाया था।^२ हा सकता है उन्होंने मन्त्रादि प्राचीन जैन-स्तुपाका भी कीर्तिधार करवाया हो।^३

पाण्डे जिनदासके लिखे हुए जैन कथाओंका पता जाता है। वे इस प्रकार हैं 'जम्बूस्वामीचरित्र' 'दीपादास' 'ब्रह्मचारी' 'वेदमन्त्र' 'मुनीस्वरोकी जन्मका' 'माधोदास' और 'पत्र'। इनमें अन्तिम चार ही जैनमतम खोजके परिणाम हैं। 'वेदमन्त्र' की हि जैन मन्त्रिक ब्रह्मचर्यकी जन्मपुरके गुहका नं २७ में मुनीस्वरो

१ ब्रह्मचारी मन्त्र सन्तोदास का पुत्र पाण्डे जिनदास।

विषय या कथा नहीं मन्त्रादि पुण्य है विषय तब भर पाणि ॥९५॥

वि जैन मन्त्रिक ब्रह्मचर्यके उत्पन्नकी कथा।

२ ब्रह्मचारी पाण्डेदास का राजा कीर्ति कथा नाम के नाम

भूमि विषयकी ब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्य विषय मुनी सन्तोदास ॥९२॥

३ कोई जैनविधि पाता साह्य टीहरदास पुत्र जिनदास ॥

ताके नाम कथा यह कथा मन्त्रादि में लिखि निरुद्धी की ॥९३॥

आपमदान ब्रह्म मोहनदान रूप मन्त्र ब्रह्म विषयकीदास।

धर्मविधि तो ब्रह्मचर्य विषय राजा करे परचार संजुत ॥९४॥

४ ब्रह्मचारी मन्त्रादि प्राचीन पत्रिकाकी उत्पत्तिकी विधि मन्त्रोकी खोजके परिणाम
५ ब्रह्मचर्यकी पाण्डे जिनदासका निरुद्ध म ९।

को अवमान्य पुटका में ११ में 'मापीरासा' पुटका में ११२ में और 'नव गुटका' में ३२ में संरक्षित है। इनके 'पर-संग्रह' का रचनाकाल वि. सं. १६७१ से ठीक १३ दिया हुआ है।

जम्बूस्वामीचरित्र

'जम्बूस्वामीचरित्र' की रचना वि. सं. १९४२ में हुई।^१ हमने जम्बूस्वामी नामक एक जैन मठका चरित्र है। इसकी मूढ़ प्रति जिसका जलेश्वर दासों नावरी प्रचारिणी परिषद् में वि. सं. १७५१ की मिथी हुई है। हिन्दी के प्रसिद्ध जैन कवि शिवोदीकृतने करने पढ़ने के लिए लिखी थी। जम्बूस्वामी जीर्णोद्विग्न केवली से और इनको जलमें ऐसी अनेकानेक रचनाएँ बनती चली जा रही हैं। हिन्दी में लिखा हुआ यह प्रस्तुत चरित्र चापा और पात्र दोनों ही दृष्टिसे उत्तम नोटिका है।

जब राजा धैर्यिक भवनात् महावीरके समक्षचरमें गया तो मानसम्भके समीपस्थ होते ही उसका मन क्रोधित हुआ गया

'मावसम्भस्य पास जाय गयो, गयो मान क्रोधित मय मयी ।
 तीन प्रवृत्तिना बीबी राहु, राजा हरज्य जगि न माहु ॥८॥
 ममसकार करि नून कनाहु, पुनि मुनि कहे कैये कानु ।
 परमेसुर स्तुति राजा करै, बार-बार मगधि कर्षै ॥९॥

मापीरासा

शोध-वस्तुका नाम है। इसका विवरण मापी नावरी प्रचारिणी परिषद् की १७वीं वार्षिक शोध रिपोर्ट में पृष्ठ ८९ पर उल्लिखित है। बीकानेरके जयजैन पुस्तकालय में 'मापी रासा' की कई प्रतियाँ मौजूद हैं। 'मापीरासा' की एक प्रति अमेरिकास्थ बम्बई और एक प्रति महावीरजी धारणबम्बई में भी है।

'मापीरासा' के दो वच अत्यधिक सुन्दर हैं। इनमें दूसरा तो आध्यात्मिक जीवनका प्रतीक है। कवि कहता है, "मैं मोड़के विद्यालय पर्यटनको छोड़कर बड़ा हूँ। स्मृत इन्द्रियोंको भीति नहीं छोड़ें ना। कल्पवृक्षी विकल्प सर्वके दुखदे दुखदे कर हूँ ना और विषय विपत्ति नरे हुए विषयोंको तो समझ ही नर हूँ ना

१. सदा ही लोका में गए बवालीन ता ऊपर गये ।

मापी कवि पानी मुसलार का दिन कथा लिपी कम्बार ११९१३

२. राजमान्यो हिन्दीके इतिहासिक ग्रन्थोंकी जेन भवन ४ पृष्ठ १९६-७ ।

'ना हो राखी या हाँ बिरखी ना कसु मति न जाना ।
बीज सबै कहूँ केवल ज्ञानी आप्यु समाणा जानइ ॥२१॥
माह महागिरि पौदि बहार्क इमिय चूकि न रापइ ।
कल्प सप्य दिह्य करे बिनु बिचपा बिषम बिच बार्ता ॥२२॥'^१

सम्प्रदायी

यह काव्य 'बृहज्जिनवाणी संग्रह' (पृ. १-९-१२१) में प्रकाशित हो चुका है। इसका रचनाकाल वि. सं. १९७९ ई.। हममें सात पद्य हैं। हममें चौथा पद्य सम्प्रदायीको महिमासे युक्त है।

"देखत गुण बिच जात त्रिके दिन सो दिन बिच-बिच जानि ।
घण्ट सोहि सोही परमिणी भ्रांति न समसाहि जनि ॥
भ्रांति सु मिथ्यारहि कच्छन संशय रहित सुदिही ।
सो जानै दिन गछी गही न रह पावै परमिणी ॥३॥

छावणी

वाक्ये जिनवाणीकी रची हुई हो छावणी थी कि जैन अतिशय सेव महावीर जीके एक अवस्थाके मुटकेमें निबद्ध है।

मैं सब सब माही देव जनेस्वर पाऊँ
हूँ बीरासी कर माहि केरि नहीं आऊँ ॥
वे वे जेवचरम जिनवास छावणी गाई
तेरी लखक जयंतिज ज्योति सदा सुखदाई ॥

चेतनगीत

इस गीतमें ५ पद्य हैं। नविले चेतनको सम्बोधन करके कहा है।

"चेतन हो तेरी परम निष्पन्न काहूँ बन्धिही होइ रह्यो हो ।
निरमोक्षिक हो जग तेरे ज्ञान मुकी जाँधि बीकय रह्यो ॥
कत रह्यो मिथ्या धूँकि जाँधि नि भला जग लछता करो ।
मिहु रत्न बीतरि जगत जाहिरि दिदि कदि केये फुरी न
हमि प्रकट परिते बिहरनु, आगिनी भिजविज निगदि जेननी
तिम परम पंडित दिग्ग दिदिहि कही हूँ ली भतला ॥१॥

मासीरासो

इसमें २६ पद्य हैं। यह एक कवच-नाट्य है। जीव मासी है और प्रत्येक पद्य है। कविता कवच है कि यथार्थके कुछ उद्देश्यके समान है। उन्हें नगी चलाया जाये।

‘मासी बरगची हा मा रई’ कवच कावच की मूल।
 बाबि मुसाही गङ्गाही कूदी कला यथार्थ हो मार्गी ॥१॥
 सुरदाहि चर्चा माखिया हंसि हंसि से कवच कावच।
 अंगि मु राई रे कर्दो अथ माका कुमकाह हा माखी ॥२॥

पद्य

जिनकासके पद्योंमें अनेक कवचों के रूपकी स्वाभाविकता सर्वत्र व्याप्त है। एक पद्यकी कविताय पंक्तिर्वा इस प्रकार है।

“आर्जुनको आनन्द कराता विरह कही अति मारा।
 सुप समूह का दाता भाई महामर्ष कवचारा हो ॥३॥
 ऐस प्रभु की नाम अधिक जान पकड़ न जात निस्तारा हो।
 जिनकास नाम कविहारी करि हो मोहि निस्तारा हो ॥४॥”

३६ त्रिमुवनचन्द्र (१०वीं शताब्दी विजयन कवच)

त्रिमुवनचन्द्र हिन्दीके प्रथम कवि हैं। वे आपरेके रचनेवाले हैं। उन्हें पाण्डे कवच और कवि बनारसीरासका सम्बन्ध प्राप्त हुआ था। उनकी रचनाएँ सभी रचने रची हुई हैं। वे बनारसी-मध्यकाली मुख्य हैं। उनके पारिवारिक जीवन और मुद्र-वस्त्रवाके विषयमें कुछ भी विरहित नहीं है। वे अपनी रचनाओंमें केवल ‘कवच’ का प्रयोग करते हैं।

उनकी हिन्दी-रचनाओंमें अतिरिक्त पद्यासत पद्यरूप वर्णन प्रास्ताविक होते हैं और फुटकर कविता हैं। प्रथम दो संस्कृतकी अनुवाद-भाषा हैं और अन्तिम दो मौखिक इतिहास हैं। भाषा सीधीके आधारपर कवचका भी इन्हींकी इतिहास मालूम होती है। उसमें कवचों के उपनाम कवचों की प्रयोग है। त्रिमुवनचन्द्र १०वीं शताब्दीके प्रथम पाण्डे कवि हैं। उनकी रचनाओंमें कवच की विशेषता साहित्य निबन्ध है।

अनित्य पञ्चाशत

इसकी प्रति आमेरके सास्त्रमण्डारमें मौजूद है। इसमें पद्य-संख्या ५५ तथा छन्द मधिवर्तर छप्पम और सबैसा है। इनकी दूसरी प्रति जयपुरके पण्डित कृष्णकरजीके मन्दिरमें विद्यमान गुटका नं० ३५ वैद्यक सं० ३१९ में निबद्ध है। इस गुटकेपर भिल्लनवास दि० सं० १९५२ पढ़ा हुआ है। इससे सिद्ध है कि 'अनित्य पञ्चाशत' की रचना १९५२ से पूर्व हो चुकी थी। बनारसीदासका कल्याण मन्दिरस्थान भी इसी गुटकेमें निबद्ध है।

प्रारम्भिक संग्रहावरणमें ही कविने अत्यधिक सरस रूपसे उस भगवान्‌की जय-जयकार की है जो संसारमें 'परमात्म' के नाम प्रसिद्ध है,

'सुख स्वल्प अनूपम मूर्ति आसु गिरा कल्याणमय सोई ।
संजमर्बत महासुनि ओष जिन्हों पर धीरज चाप भरी है ।
मारन की रियु मोह तिन्हें यह वीरज सारक पंक्ति हो है ।
सो भगवत सदा जयवर्त नमों जग में परमात्म जो है ॥'

शारीरक सात्त्विक हृष्य और शोकको वास्तविक नहीं मानते। वे इन दोनोंसे ही निरपेक्ष रहते हैं। इस विचारसे सम्बन्धित एक पद्य देखिए,

'जहाँ है संयोग वहाँ होत है वियोग सही
जहाँ है जलम वहाँ मरण की वास है ।
संपति विपति शोक एक ही मयन वासी
जहाँ बसे सुख वहाँ दुःख की बिकास है ।
जगत में बार-बार फिर नामा परकार
करम अवस्था हूँ मैं विरता की वास है ।
मद कैम मेघ और भीर कम होईं तारी
हरण न भोग म्हाता सहज अदास है ॥५१॥

अन्तमें संस्कृत 'अनित्य पञ्चाशत'के रचयिता आचार्य पद्मनभिकी पहचान की है।

चन्द्रसप्तक

इसकी प्रति बीन सिखान्त भवन आरामें मौजूद है। इसमें १ पद्य है। कवित्त और सबैसाका ही प्रयोग निम्न पद्य है। यह एक मोह रचना है। जाया सरस होते हुए भी सरस है और भाव वीर्य-साधे होते हुए भी मधुर है। कवित्तमें न तो प्रकाशनी कमी है और न काव्यिकी। सभी पर आध्यात्मिकतासे ओत मोत है। पदाहरणके लिए,

“गुप्त सदा गुणी मारिं गुप्त गुणी मित्र मारिं
 मित्र तो विद्यावता स्वभाव सदा हेमिन् ।
 सोई है स्वल्प आप आप सो न है मित्राण
 मोह क अभाव में स्वभाव सुख पतिण ॥
 कहों प्रिय मामत जगदि के हो मित्र मित्र
 आपने स्वभाव सदा ऐसी निजि करिण ।
 पाँच जड़ कय भूष चेतन मरुत क
 जानपनी सारा बंद माये रों विखलिण ॥”

३७ कुमुदचन्द (वि सं १९४५ १९४७)

इसका जन्म बीपुर नामके परिवार हुआ था । पिताका नाम सदाशिव और माताका नाम बधाबाई था ।^१ कुछ मोक्षरथके नामसे विख्यात था । बघवाक मोक्षके ‘मोक्षपराजय’ के विद्वान् परिचित हो हैं। मोक्ष मुञ्जराटी कीर्तिवाँ होते थे । जयस्य हो कुमुदचन्दके पूर्वज मुञ्जराटी राजस्थानके बीपुर इलाके जा रहे होंगे । उनकी रचनाओपर राजस्थानी और मुञ्जराटीका प्रभाव है । प्राचीन हिन्दी राजस्थानी और मुञ्जराटीमें विशेष अन्तर नहीं था । अतः कुमुदचन्दकी कविताओं इनमें-से किसी एक जात्याकी बहुत सी बातें नहीं हैं ।

उन्हें लगते ही उदासीन प्रवृत्ति और अध्वयनशील मन्त्रित्व मिश्र था । पञ्चमीका प्रभाव यह हुआ कि वे मुञ्जरास्थासे पूर्व ही उदासीन हो पड़े । अध्वयन शील होनेके कारण उन्होंने सीमा ही स्थावरक नामक और सिद्धान्तपर अधिहार कर लिया । महारक राजकीर्ति अपने मित्रके आचरण देखकर भुग्न हो बैठे । बारहोडीमें गया पट्ट स्थापित किया था । उनपर कुमुदचन्दको वि सं १९५९ में अधिवेशन कर दिया ।^२ इस अवसर से वि सं १९८७ तक प्रतिष्ठित रहे ।

१ मोक्षरथ भृंगार सिरोमणि साहू सदाशिव शास्त्र रे ।
 बापू मन्त्रिक गुप्त अग्रजतो पद्याबाई सीमात रे ॥
 मर्मसाक्षात्कार मीन ।

२ मन्त्र तोष कवने वीर्यासे प्रपट पञ्चोपर जाप्या रे ।
 रत्नकीर्ति दीर बारहोडी बर भूर मय गुप्त आप्या रे ॥
 मारि रे जगमोहन गुनिवर परस्वतो गच्छ संज्ञिन ।
 कुमुदचन्द महारक करया अधिवेशन मन मोहत रे ॥
 अनेक कवि गुप्त ‘गुप्तगुप्ति’ ।

३ नहीं ।

कुमुदचन्द्री क्याति अधिक पैली मुख रत्नकीतिसे भी अधिक । राजा और नवाब भी उनको प्रशंसा करते थे । उनके विद्यालयसे बड़े-बड़े विद्वान् बघवर्ती हो गये थे । वहाँ जाते बनता उनके पीछे हो जाती । इसका कारण था विद्वत्ताके साथ-साथ बाजीकी ममुरता और हृदयकी पवित्रता । उनका छिप्य बर्मसागरमें एक भीतमें लिखा है कि वे वहाँ विहार करते मार्ग कुंकुमसे छिड़क दिये जाते चोक मोठियोंसे पूरे जाते और बचाव पाय जान समते ।

कुमुदचन्द्री विद्वान् ही नहीं अपितु साहित्यकार भी प्रथम काटिके थे । अथवा उनकी २८ रचनाएँ और अनेक पद्य तथा चित्रितियाँ प्राप्त हुई हैं । इनकी रचनाओंमें भी अधिक हैं । उनका सम्बन्ध नमीस्वर और रायबुक्के प्रसिद्ध कथानकसे है । निम्नलिखितमें रायबुक्का सौन्दर्य-वर्णन करते उन्होंने लिखा है

“रूप कृदका मिटे बूझो चोके मीझो बाँधी ।

चिहुम उठही पस्कर गेहरो रसनी कोरही बर्यानी ॥

सारंग बघनी सारंग बघनी सारंग मनी हवामा हरी ।

बंकी करि ममरी बंकी बंकी हरिनी मारि रे ॥

‘निमिमाच बारहमासा’ प्रथमगीत और ‘हिण्डोस्नागीत’में रायबुक्का निरुद्ध मुखर हो गया है । फास्नुनमास ज्ञानम्बका बना होता है । पल्लवी पतिवर्गके साथ फग सेवती है । उनके बचन प्रसन्नतासे सदैव लिखे गये रहते हैं । किन्तु रात्रीमती क्या करे, बचने पतिने वैराग्य के लिया है । वह लौटकर नहीं आवेगा । उसका निरुद्ध पृष्ठ पड़ा

“कागुम केसू कुलीचो नर नारी रमै नर काग जी ।

इस विबोद करे बणा किम बाह चरुचो वैराग जी ॥

‘बनबादागीत’ में २१ पद्य हैं । यह एक लय-काव्य है । इसमें मनुष्य बगवारा है । त्रिष्ठ तच्छ बगवारे इतर डबर भुम्मे-फिरत हैं वसी भाति यह मनुष्य संसारमें भ्रमण करता है । दिन-रात पाप करता है । संसारके बन्धनसे कभी छूटा नहीं

“पाप करुवाँ स अनंत जीवदुखा पाकी नहीं ।

साँचो न कोकिथो बाँक मरम आ सावहु बाजिया ॥”

१ मुखरि रे सहजाचो तहो कुंकुम लहो देवदाचो ।

बाह मोठिये चोक पुराचो बडा ताम्बुद कुमुदचन्द्री न बघाचो ॥

बनतागरुन नील ।

कुमुदचम्पकी विनयिणी भक्तिरसनी पिबकारिणी ही है। जनका संनयन भस्मिर ठीकबान जयपुरके गृह नं १३१ में प्राप्त होता है। इस मुद्रिका केखनकाक वि सं १७७९ दिया हुआ है। एक विनयीकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

“प्रभु पार्थ काशी कहे सब भारी ।
तुम मुन को जयज की जिनराज हमारी ।
बनीं कस्त करिदेन जिनराज पाम्बो
हूँ सदै संसारनी हूँ चाम्बी ।
जय की जिनराजभी कय वरस्वी
कहै कौचका सुप मुचावार वरस्वी ॥
कह्या रतवलिता नयविधि बाई
मारीं घागमें कळपतर आनि आया ।
मनकाछित हल जिनराज पाम्बी
मको रीत अछास मीहि सरव स्वामी ॥”

कुमुदचम्पके पर भस्मिर मूलकरजकी पाण्ड्या जयपुरके गृह नं ११४ में भीषित है। एक कवये प्रभुको मीठा छत्राकम्ब सेते हुए पचत कविने लिखा है

“प्रभु मेरे तुमकु धर्या व चहीन् ।
सबन विचन बैरत कोचक कूँ मीव घरा कभी रहिन् ॥
विचन हरन सुख करन सबनि कूँ चित चितामनि कहिन् ।
जकरन धरन अचानु कृपासिन्नु को विरह बीवहिन् ॥
हम तो हाथ विचनै प्रभु के अथ आ करें सो महिन् ।
तो मनि कुमुदचम्प कहीं सरनागति की सरन लु पहिन् ॥

घनकी कृतिमें ‘भाणवाङ्मुनिचम्प’ एक अष्टकाव्य है। इसका कवलयन मरठ और बाहुबलिके प्रसिद्ध मुद्रकी गया है। दोनों ही मयवान् मयवदेवक चक्रवर्ती पुत्र थे। मरठ बड़े और बाहुबलिक छोटे थे। मरठान् असल चक्रवर्तिको धार्मिक बनानेके लिए बाहुबलिको भी लुकाया जाया। दोनोंमें इन्ध मुद्र हुआ। कीठ बाहुबलिकी हुई किन्तु उन्हें सभारसे विपुष्पा हो पदी और वे वनमें जाकर उप करने लगे।

पूरे नाममें ही रस प्रभुका कपले पल्ल लके हैं। नीर और चन्द्र। बाहुबलिक का कमुपा जीवन एक आदर्शचरित्र है। वे नीरकाके वरेण्य और धार्मिके वरपूत हैं। वे ही दोनों रनोंके गायक हैं। इन्ध मुद्रको बाँटे हुए कलक एक कुरव है,

“बाप्या मस्क भलाहे बकीना
 सुर भर किलर जोरा मकाभा ।
 काछवा काछ कशी कछ ताणी
 पोछे योगद बाकी बाणी ।
 भुजा रूँद मन सुख समाना
 ताबेताबेलाहे माना ।
 हां हां कपर करि त जाया,
 बडो बच्छ पडया क राया ।
 हुकारे पणवार पाठ
 बकगा बकग करी ते प्राद ।
 पग पडया पांहीपो-तछ बाज
 कडकडता तकर स माजे ।
 नाथ बनवर साय कपर
 सुदा मपगळ फूटा नापर ।
 गढ गढता गिरिगर त पहीष्ण
 फुग करेता कलपति बराया ।
 गढ गढगहीमा महरि पहीष्ण
 दिग हंतीस मक्का बळ बकीमा ॥

इस काव्यका निर्माण वि सं १९७७ अष्ट दशका छठको हुमा बा ।
 इत्ये एक हस्तलिखित प्रति आमरसास्त्रमन्त्रार जयपुरक गुटका न ५ में
 ५ ४ ॥ ४८ तक अंकित है ।

‘अपम-विवाहका’ एक महत्त्वपूर्ण कृति है । इसकी रचना वि सं १९७८ में आशानगरमें हुई थी । यह अपर्युक्त गुटकेमें ही पु २२७ स २३४ तक निबद्ध है । इसमें अपमदेवकी माँके १६ स्थान हैकनहे केवर अक्षयदेवके विवाह पमन्तका विवाह बयन है । अन्तमें वैराग्य धारण करण और मोक्ष-प्राप्तिका चर्चन है । यह सब कुछ व्यासक आशाने सम्पन्न हुआ है । अन्तिम शाल मुख्य है । अन्तमें ‘विवाहका’ शब्द सार्थक छिद्र होना है । अन्तिमपरक कृतियोंमें भीष्टिक विवाह ‘विवाहका’ नहीं कहलाता अब आराध्यदेव बीसाभुमारी संयमधी या मुनिवपूक बरग करता है तो वह ‘विवाहका बीवाहका बीवाहको’ माँके समानाते अमिहित होता है । अपम विवाहका’की अन्तिम शालमें मुनिवपूक साय अपमदेवका विवाह हुआ है ।

इस काव्यमें अनेक हृदयग्राही कुरय हैं। श्रवणदेवता कण्ठमण्डकण्ठी जिह्व
पुत्रीके साथ विवाह होना या उसके जीवनरक्षा एक दिन है,

“कछ महाकछ राय है, जेहनुं अग जरा राय है।
तम कुंजरी हमें सीधे र. लोचों जनमन मोहै र।
मुन्दर जेनी बिद्याक रे अरु जसो सम भाक र।
नवन कमकण्ठ काजे रे सुन पूरवचन राज र।
नाके साहे गिकनु छूक रे अवर सुरय लसु नहि भूके रे ॥”

श्रवणदेव माँ मरहोरीके कर्चमें जाये। इसकी बाज्जासे विविध देविनी माँकी
सेवा करने आ गयो। सेवायें उम्मीन देविनीका मणि-भाव देखिए

‘एक नित्य निहवाये एक बचाये पाय।
एक बाज्जक चरकये सरकें बाय ॥
एक जनी समारे, नचये काजक सारे।
एक पीचक काह एक अमरा सिलप्यारे ॥
एक अंसर गूये एक आये लप्योके।
एक वग है पाके हुंकर सुरंग राके ॥

बामक उपरान्त बाज्जक श्रवणदेव बीरे-बीरे बहने लगे

“दिन दिन कय बीपतो कय बीजतन्य जिन बीर है।
पुर बाज्जक साथे हमें सहु सजजन मणि बाज्ज है ॥
मुन्दर बचन सीहामण्ड, लोके बाहुजरो बाक र।
रिम दिन बाज्ज कुंजरी पौ बाके बाक मराक र ॥

उपपुत्र रचनाओंके अतिरिक्त कुमुदचम्पने ‘मेवीरवर हूमवी - ८७ पद्य
‘मन्त्ररत्निनीत - १७ पद्य ‘दण्डकलनचर्मज्ञपीत - ११ पद्य दीकपीत - १ पद्य
‘सप्तप्यतनवीत - ११ पद्य ‘अष्टाईपीत - १४ पद्य अरुतस्वरनीत - ७ पद्य
‘बास्वनाचपीत - १९ पद्य लम्बोक्तपीत - १३ पद्य भारतीयपीत - ७ पद्य
अन्तकम्पाचपीत - ८ पद्य ‘विन्यामविपास्वनाचपीत - १३ पद्य दीपावली
गीत - ९ पद्य ‘नीतमरवागी बीरई - ८ पद्य ‘वास्वनाचपीत विनती - १७ पद्य
‘काष्ठपदार्थनाचपीत - ३ पद्य ‘बादीस्वर विनती - १ पद्य मुनिमुक्तपीत -
७ पद्य ‘नीत - १ पद्य ‘बीरहानीत - १ पद्य ‘बीवीत तीर्थकर देह
प्रभाव बीरई - १७ पद्य और ‘मेवमहिमा विनती - १४ पद्य की निर्मल
विद्या था।

३८ कवि परिमल्ल (वि सं १६५१)

कवि परिमल्लकी कुल-परम्परा इस प्रकार है चौधरी बन्धन रामदास जासकरन । परिमल्ल जासकरनके पुत्र थे । चौधरी बन्धनका व्याक्तिमरके राजा मानके दरबारमें अत्यधिक आदर-सम्मान होता था । रामदास और जासकरनने उस स्थानको सुरक्षित रखा । कवि परिमल्लका जन्म व्याक्तिमरमें ही हुआ था किन्तु वे जागरामें रहते थे । व्याक्तिमरमें मानसिक कष्ट रहनेके कारण उन्होने धानराको अपना निवास-स्थान बनाया था वैसे कि वही जागरमें तबि ससु' थे स्पष्ट ।

‘ता जारी बहल चौधरी कीरति सब जग में विस्तरी ॥
जाति बरहिबा गुन धर्मर । अति प्रताप कुल मंडन कीर ॥
ता सुत रामदास परधीन । नंदहु जासकरनु सुबकीन ॥
ता सुत हुक मंडन ‘परिमल्ल’ । वही जागरें में तबि ससु ॥”

उस समय जागरमें सम्राट् अकबरका शासन था । उसकी प्रशंसा करत हुए कविने लिखा है, ‘बहु हुनरे सूर्यकी साँति तपता है उसके राज्यमें कहीं अनीति नहीं है और उसने समूची पृथ्वीकी जीत किया है

‘बखर पाति साहि होइ गवी । ता सुनु साहि हिमाळ मयी ॥
ता सुनु अकबर साहि सुबागु । सो तप तपी दूसरी भागु ॥
ताके राज न कहूँ अनीति । बसुबा सर करै सब जीति ॥३९॥”

कवि परिमल्ल बरहिबा जातिमें उत्पन्न हुए थे । उस समय बरहिवाके अनेकों घर व्याक्तिमरमें थे । सभी वैजय-सम्पन्न मर्यादापुत्र और यशस्वी थे । उनमें सर्वोत्कृष्ट होनेके कारण ही बन्धन चौधरी कहलाते थे । बहनेका तात्पर्य यह कि कविका जन्म एक उच्च परिवारमें हुआ था ।

जीवास चरित्र

यह काव्य अत्यधिक लोकप्रिय था । इसकी इतनी हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं कि यहाँ सबका उत्प्रेक्ष्य असम्भव ही है । यह प्रतियोंका विवरण बाघी नावरी प्रचारिणी पत्रिकाजी कीसर्वाँ वैवायिक रिवीटम दिया गया है । वे प्रतियाँ क्रमशः वि सं १८ ७ १८५५ १८५६ १८७४ १९११ और

१९२६ की सिन्धी हुई है। एक प्रति आमेरछात्रमण्डार बयपुरमें^१ दूसरी बयपुरके टीम्बियोंके हि बौन मन्दिरमें^२ और तीसरी बयपुरके बशीचम्भरीके मन्दिरमें मौजूद है।^३ दिल्लीके पंचायती मन्दिरमें भी एक प्रति है। इन सबम प्राचीन प्रति आमेरछात्रमण्डारकी है। यद्यपि बाकी नामकी प्रचारिणी पत्रिका को १९वीं शताब्दीके सम्पादकोंने इसका रचनाकाल बि सं १९४९ निर्धारित किया है, किन्तु उसी प्राचीन प्रतियोंमें बि सं १९५१ दिया हुआ है।

यह एक उत्तम कोटिका प्रबन्ध-काव्य है। इसमें महाराजा श्रीपादका चरित्र वर्णित है। उसकी पत्नी मैनासुन्दरीने त्रिलोक-मन्दिरमें ही अपने पति श्रीपादका कोठ छीक दिया था। श्रीपाद की कन्याया त्रिलोकका भजन हो गया था। इस काव्यमें और और कवि रचना सम्मिलित हुआ है।

हमने पढ़ने स्पष्ट ही जाना है कि रचयिता एक ग्रीह कवि थे। उन्होंने आमेर और व्याख्यारका लक्ष्मी चित्र प्रस्तुत किया है। श्रीपाद और मैना सुन्दरीके जीवनकी अनेक घटनाओंको सुन्दरताके साथ चित्रित किया गया है। बर्न और बयन पाप और पुण्य हिमा और अहिमाके बल-प्रतिपादोंको भी सुन्दर ढंगसे दिखाया है। अन्तमें जीवनार्थ और उसके 'यत्किमपरक पीडो' की भी सूझाव्य पूर्व हुआ है।

कवि विन-यातन विन-माता और विन-मुनियोंके चरणोंमें अपनी भद्रा समर्पित की है

“बंदीं विन श्यामल को चम्प अथ साच लसी सचकम्प ।

बंदीं गुन के गुन के मूर, विनके होच श्याम की पुर ।

बंदीं माता सीह बाहिनी जातें सुप्रति होच अति बनी ।

बंदीं सुनिचन के गुन चम्प अचरस मदिना उदधिच चम्प ॥

प्रपत्ति अलिख ॥”

श्रीपाद चरित्र बीड़ी-श्रीपादयोमें किया गया है। कहींपर भी यति-बर्न और कव्य नय नहीं हुआ है। अनुप्रासोंका भजन भी सुन्दर है। यद्यपि उसकी भाषामें उत्कृष्ट शब्दोंका प्रयोग अधिक हुआ है, किन्तु उसकी पठि-शीलता कहीं भी बिगड़ताल नहीं होने पायी है। भाषामें ब्रज अथवा मुन्नेलखड़ी और मारवाड़ीका

१ मन्मथलाल बयपुर, पृष्ठ २७१। एक प्रतिका निविलाल बि सं १७६४ दिया गया है।

राजस्थानके बौन छात्रमण्डारके मन्मथली, भाग ३ पृष्ठ २१६।

३ बर्न, पृष्ठ ७६।

मिथ्य है। नहीं हीनो सीनो नहीं तिमो तिमो भक्तों और नहीं बड़ा है
मुवासिनि सीमाय और मनु आदि सन्दीप प्रयोग है। मिथ्य होते हुए भी
भाषाको 'संपूर्ण' की संज्ञा नहीं दो आ सकनी क्योंकि उसमें साहित्यिकता है।

३९ वादिचन्द्र (वि ॥ १९५१)

ये मूलसंघके छठारक ज्ञानभूषणके प्रसिद्ध और प्रभावशाली विषय थे। इनकी
महा मुद्रणमें कहींपर भी। इनकी मुद्रणरम्भ विद्यानन्दि मल्लिभूषण
सदसीधर औरचन्द्र ज्ञानभूषण प्रभावशाली रूपमें नहीं जाती है। वादिचन्द्र
एक समर्थ साहित्यकार थे। उन्होंने संस्कृत और मुद्राती मिथित हिन्दीमें लिखा।
इनका संस्कृतमें लिखा हुआ 'पार्थिवपुराण १५ स्तोकप्रमाण है। उसकी रचना
वस्तुतः नगरमें वास्तविक मुद्रा ५ वि सं १९४ को हुई थी। 'ज्ञानसुखोदय
नाटककी तो बहुत ही क्वालि है। उसका निर्माण मात्र मुद्रा ८ वि सं १९४८
को मद्रासमें हुआ। 'पवनपुत्र' तो कामिनासके मेघदूतके आधारपर रचा गया
एक सरस खण्ड-काव्य है। इसमें मुद्रा १ १ पद्य है। 'वयोवरचरित्र ब्रह्मेश्वर
त्रैलोक्यके विद्यामणि वास्तविकके मन्दिरमें वि सं १९५७ में पूर्ण किया गया।

१ वादिचन्द्र जीनाथ आश्वान, प्रसिद्ध कथ १-८ केन साहित्य और इतिहास
१४ १८० पारटिपली १।

२ अनुमान्दी रसाङ्गके कर्षे पद्ये समुद्रगङ्गा।

वास्तविकमासि पंचम्या वास्तविकीके नगरे मुद्रा ॥

वास्तविकमासि प्रसिद्ध, १ रसाङ्ग, प्रसिद्धप्रसिद्ध माग १ वीरमेधामन्दिर दिल्ली
मलाफ्ला ५ २४ पारटिपली १।

३ अनु-वेद रसाङ्गके कर्षे मासे सिद्धाष्टमी दिवसे।

धीमाधमभूषणके मिथोऽर्थ बौध्मरम्भ ॥

वास्तविकोदय नाटक, प्रसिद्ध, १ पद्य, केन साहित्य और इतिहास १ १८८, पार
टिपली ४। वर नाटक, केन प्रसिद्धनागर वास्तविक बम्बईमें सन् १९ १ में,
५ माधुर्यम मेरीके अनुवाचसदित प्रकाशित हो चुका है।

४ हम एकादशका रसाङ्ग ५ वरवनामकी काशीनामने सन् १९१४ में
हिन्दी अनुवाद गति केन साहित्य प्रसारक वास्तविक बम्बई द्वारा प्रकाशित
किया था। यह वर अनुवाचक प्रेसकी वास्तविकताके तेरहवें मुद्राके अन्त है।

५ ब्रह्मेश्वरमुद्राम् धीविद्यामणिमन्दिर।

सन् १९१४ रसाङ्गके कर्षे-वादि मुद्राङ्गकम् ॥

वास्तविकप्रसिद्ध प्रसिद्ध १९१४ प्रसिद्धप्रसिद्ध प्रथम माल दिल्ली मलाफ्ला
५ ४ पारटिपली ४५।

‘मुकोचना करि’ की एक इत्यदिति प्रति वि. सं. १९९१ की लिखी हुई मिस्री है।^१ प्रवरचना इसमें कुछ गुप्त हुई होगी।

इसमें मुखराती मिथित हिन्दीमें भी अनक रचनाएँ की। उनमें महत्त्वपूर्ण में है ‘शीपाळ आस्मान’ भरत बाहुबली छन्द आराधना पीठ’ ‘अम्बिका कथा और ‘बाण्डवपुराण’।

शीपाळ आस्मान

इस आस्मान की एक प्रति बम्बई के ऐम्ब पद्माकास सरस्वतीमठमें मौजूद है। श्री मोहनदास दुशीकाव देसाईने जिस प्रतिपा अस्मिन् विद्या है वह वि. सं. १९७९ की वही ३ की लिखी हुई है।^२ आस्मान के विषयमें पण्डित बाबूराव की प्रेमोने लिखा है कि यह एक पीठिकाव्य है और इसकी भाषा मुखराती मिथित हिन्दी है।^३ इसकी रचना संभवतः बनगी लषाके कहनेसे वि. सं. १९५१ में हुई होगी।^४ इसमें आचर्यन की कोई कही नहीं है। जो रसोला प्रयोग हुआ है। भाषामें प्रवाह और सरलता है। शायदमें अविचलर वीही और वीपाईया प्रयोग हुआ है। शारंगिक संवत्सरण देखिए,

‘आदि हैव प्रथमि अमि अंति श्री महावीर।

बाग्यादिनि वसुने ममि गच्छ गुण वीवीर ॥”

“सरसति सुममति न्म अजुंलरि गीर गच्छ ग्नेमम ममि करि।

वोड्ड एक हु सरस आस्माना सुन के सज्जन सहु सावदाव ॥”

इस नाम के कहनेके विनैत्रके प्रति अधिकतम भाषाका उद्योग होता है। संभवतः पितृ स्वर होकर मन्त्रानुकी बलिमें कम जाता है। बाग हैने जिनपूजा करने और सम्बन्ध बारन करनेमें मल कलना है। बरबार मन्त्र के सम्भारणमें और प्रवाहो बारन करनेमें कुछ आनन्दका अनुभव कर कलता है। इस पीठके बानैके मन्त्र-मन्त्रियोंको अनेक प्रकारके संयक्त प्राप्त होते हैं

“मविचल धिर मम करीने सुजन्मो मिठ सम्बन्ध जा ॥१॥

१ इसकी एक इत्यदिति प्रति ईस्टने शास्त्राभ्यासमें मौजूद है और इसकी दोस्त ब्रह्मासत वि. सं. सरस्वतीमठमें है।

२ कैमगुर्बकविनी तीनों भाग ५ ४।

३ कैम सल्लि और वनिहास ५ १००।

४ संभवतः बन की लषा बचन कीको ए प्रयोग की।

कैवली वीपाळ गुप्त सल्लि गुप्त निरूप करो जयहार की ॥१२॥

१. कैमगुर्बकविनी, तीनों भाग, ५०-८०३।

हम हीने जिनपूजा कीने समकित मनै शक्तिही जा ।
सुप्रभ मणिपु पथकार गणिए नसत्त्व व विभाविले की ॥१॥
कोम लकीने मद्य धरीन सान्मपायुं कछ पद की ।
ए गीत व नद नादा सुणस जनेक मंगल तद गेह की ॥११॥

भरत-बाहुबली छन्द

इसका छन्द भी मोहनबाक कुसीबम्ब देसाईने वैद्यनाथकविजी मान ३
पृ ८०४-५ पर किया है । इसका एक पद्य हम प्रकार है

बोकि बाणीचंद गण्यु कुल रत्नाकर
नबनि एक तुं मक अचक महिमा महिमाकर
तुं असकड करदेव जित मयचारन
जाभीतमा न कोक विहनु मरक विचारन
अपमद्वय बलिष्ठ मलो बाहुबल जग जाणीई
भगति पामा माव भुं तुम गुण एक बरानोह ॥३८॥

भाराचना गीत^१

इसकी प्रति छारपुरमें वास्वनाथ वैद्यात्मके छरस्वतीभवनमें धर्मभूषणके
शिष्य ब्रह्म बाबजीकी लिखी हुई मौजूद है । यह एक मुक्तक काव्य है, और इसमें
कुल २८ पद्य हैं । प्रत्येक पद्य अष्टाक्षरी मन्त्रिते सम्मिश्रित है । प्रथम पद्यमें ही
छरस्वती और गणेशकी वन्दना करते हुए कविने कहा है कि जो कोई इस
भाराचनाकी पढ़ेया अथवा सुनेगा उसके पापना तो छेड़-माच भी न रह जावेगा ।

“औं सरस्वती नमो नर नाथ गणेशाय नमो नमः ।

कहु भाराचना सुविशेष सुनें वाप न रहे कबडैस ॥१॥”

अम्बिका-कथा

इस कथाकी रचना वि. सं. १६५१ में हुई थी । इसकी एक हस्तलिखित
प्रति लखनऊके श्री चित्रपतेन और पति रामरामजीके पास है । इसमें देवी
अम्बिकाके प्रति अति भाव प्रदर्शित किया गया है । यह कथा प्रचलित हो
चुकी है ।^२

१ बरी १ २।

२ अन्तर्गत माहट अम्बिका-कथा अनेकाल वन ११ पृष्ठ ३-४।

पाण्डव-पुराण

इसकी इस्तिकसिल प्रति जयपुरके तेरहावली मस्जिदमें मौजूद है। इसकी रचना बि. सं. १९५४ में मोहनमैं हुई थी।^१

४० गणि महानन्द (बि. सं. १९९१)

लगायच्छने प्रसिद्ध धीहीरविजयमुरिनी मिश्रपरम्परामें एक धी विद्याप्य हुए। उनके सिष्य यधि महानन्द थे। मन्त्रवन्दना महानन्द मुजरातके राजाके थे क्योंकि जबकी रचनाकर मुजरातीका अधिक प्रभाव है। ऐसा प्रतीत होता है कि मुजराती उनकी मातृ-भाषा थी। जयन पूर्वाचार्योंका सम्मान करत हुए उन्होंने लिखा है कि धी हीरविजयमुरिने अकबर बादशाहको करवेस दिया था और धीविजयसेन बसिने जयपुरके दरबारमें अष्ट नामके एक विद्वान्को बाद-विवाहमें पचास किया था

‘ओ विजयसेन गणधार दे।

त्रिपि आदि अकबरकी समा मीहि महु मुरि कीर्तन काथा बहुत मग है।

मिथ्यामय देखी कवी र त्रिपि गहलु गहलु विनयासवि रंगरे ॥

महानन्दकी एव-भाव रचना ‘अजमा-मुन्दरी रास’ है जो रामपुरमें बि. सं. १९९१ में रची गयी थी। अजमा इमामानकी माँ थीं। उनपर अनेक आपत्तियाँ आयीं किन्तु वे जिनेन्द्रकी प्रसिद्धिसे विचलित न हुईं। उनका साध बीचन घटित-का ही बीचन है। उनकी तुलना मीरासे नहीं की जा सकती। मीराने कौनिक कसकी मयमय समझा। जमीरिन्दमें ही विमोह गयी रही। अजमाने लोक और बलोक दोनों ही का समान कषसे निर्वाह किया। उसने वृत्तस्थापनके कर्तव्योंका भी पाकन दिया और बीतरापी जगजगत्से प्रेम भी दिया।

१. बदरामपरद्वाराक वर्षे निनेव मासि चत्रे।

मोहनमनगरध्वारि पाण्डवाना प्रवक्ता ॥१७॥

मस्जिदमगद मयम भाव, दिल्ली, मलाकवा गेट २४ पारकिंगकी है।

२. यधि मशकन्द धम्मामुन्दरीरास अन्तिम प्रशस्ति शैल सिद्धान्त मदन बाप-की इस्तिकसिल प्रति।

अजमा मुन्दरी रास अन्तिम प्रशस्ति, पृष्ठ ११।

अञ्जना सुन्दरी रास^१

इस रासमें अञ्जनाक जीवनकी विविधता चित्रित की गयी है। अञ्जनाकी विरहावस्था इन सबमें उल्लेख है। कहीं प्रियसे मिलनकी उत्पत्ति है वहीं प्रिय के दृष्ट बनिएकी चिन्ताम खाना-पीना तक विस्मरण हो गया है। और कहीं प्रिय की स्मृति-जम्प बिभोरताम वस्था तकको बिगुलक कर लिया है। सब कुछ नैसर्गिक है वनावटका आभास भी नहीं। वहीं पतिव्रता जब अनारम ही पति-द्वारा तिर स्तुत पाती है। ता इस बुल्लेको प्रथम मित्रकी स्मृतिसे उपगम कर केती है। उसकी सामग्न भ्रमवशात् अञ्जनाको परसे निकल दिया। उस समय वह पवित्री थी। उस समयका वदनाजनक वृत्त वाक्यका मार्मिक स्वर है। किन्तु अञ्जना ने सबानुका सहारा न छाड़ा। उसका जीवनवा यह मास गहरी भववृत्तसे युक्त है।

जीवन-आश्रमों प्राकृतिक वृत्तोंका चित्रण भी स्वाभाविक रूपसे हुआ है। वसन्त आ गया है। बारा खोर वनमाझा फूल खोले हैं। कक्षियामें बहार आन समी है जैसे बुल्लुनवा रंग आछकर बारा खोर छिटक दिया गया हो। ऐसी योमा-विमध्यम सुन्दरी अञ्जना हाथमें मजरी किम अपनी सन्धियाक पाय झोड़ा कर रही है।

‘पूजिब बनह वनमाझाय बाझाय करई रे टकक ।

करि बुल्लुम रंग शकीम बोकीय झरूम झोक ।

ककहू मक रंढी कखी माकका सहीयर साय ।

अञ्जना सुंदरी सुंदरी मजरा ग्रहा करी हाथ ॥५४॥

मजुर मजुर कर रही है। कामल बीछ रही है और वलमानिष्ठ वह रहा है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि महानुप मरगन विरहिणियाको दृष्ट देनेक निष्ठ ही वह सब आभाजन दिया हो। तभी तो अन्धियाका गुंजारमें मारवा बिहार कायलकी वृत्तमें कस्तने मिश्रमेको हूँ और मन्द-मुपज पवनमें उहीरनकी आग है।

“मजुर करई गुंजार मार बिहार बईति ।

कायक करई परहूकड़ा हूकड़ा मैकवा रंज ।

मकवाचक भी ककड़िड पुल्लिड पवन प्रथेड ।

मजुर महानुप पाझह विरहावि निर रंज ॥५५॥”

१. इसकी दृष्टि-विशेष पति-जैन विद्वान् नवन आश्रमों की ओर है। इनमें वन ॥५४॥ ५५॥

इसी वसन्तमें बेबता गन्दीश्वरको यात्रा करते हैं। वहकि मन्दिरमें बहानके लिए उनके हाथमें सुवर्णित कूक होते हैं

‘एनि समई नदीश्वर धरइ सुरवर बाइ बाब ।

हैमइ गजन बहता कर गृही कुमुमनी पाब ॥५६॥”

बंजनाकी वीम मुनिमोक्षी भक्तिमें आनन्द मिळता था। वह प्रायः उन्हें बाह्यर दिया करती थी। एक बार उसने बाह्यर देनेके लिए ‘गन्धन नामके मुनि का परिपाहन किया किन्तुने अपने बुराव तपसे संसारकी भीत किया था। वे वरम-सरीरी थे। उनके बुधोको पाकर प्रत्येक मनुष्य आनन्दका अनुभव करता है, और उसके सब मनोबंछित पुरे हो जाते हैं

इन्नि परिपासु अजना सुंदरी बंदूध भीर ।

ब्रह्म भाव बेरी प्रकट किन्नि जीत्या का बकुभीर ॥

अस्म अरीरी सुगुल भर गाली होइ आर्जव ।

घइ मगबंछित छेपवा हम बोकइ एनि महावर्ध ॥५६-५७॥”

हां रामसिंह सोमरने महावर्ध द्वारा रचित एक ‘आर्जव स्तोत्र’की बात कही है। इसमें ४३ पद हैं। किन्तु अब वह प्रमाणित हो गया है कि वे महावर्ध एक भिन्न व्यक्ति थे। उनकी रचना आर्जवसिंह सिद्ध है कि उसका निर्माण विक्रम-की चौदहवीं शताब्दीमें हुआ होगा। आनंद का प्रकरण ‘सम्पेक-परिका’में हो चुका है।

४१ मेघराज (वि सं १६९१)

वे पार्श्वकन्नूरिगणके राजा थे। इसकी बुध-परम्परा इस प्रकार थी। पार्श्वकन्नूरिगण राजकन्नूर और अथवन्नि। मेघराज अथवन्नि के शिष्य थे। इसी शताब्दीमें एक दूसरे मेघराज भी हुए हैं वे मेघमण्डल कङ्काट से और जो विपन्नर बह्म-आन्तिके शिष्य थे। उन्होंने ‘आन्तिगाव परिण’ की रचना की थी। किन्तु मेघमण्डल शताब्दी की शताब्दीके पूर्वार्धमें और मेघराज शताब्दीमें हुए थे। एक तीसरे मेघराज और वे जो आनुसन्धिके शिष्य थे और किन्तुने ‘उत्तर मेरी पूजा का निर्माण किया था।

मुनि मेघराज एक प्रीति साहित्यकार थे। भाव भाषा और सीधी सीधी बुद्धियों-

से उनकी रचनाएँ सत्काम्यकी शोधि में जाती हैं। उन्होंने स्नान-स्नानपर रोचक ढंगसे बर्णकारोंका प्रयोग किया है।

सयम प्रवहण

इसकी 'राजचन्द्र प्रवहण' भी कहते हैं। इसमें राजचन्द्रसूरिके साधुजीवनकी महत्ताका अन्वेष है। इसे हम साधु-भक्तिका ग्रन्थ कह सकते हैं। इसमें राजचन्द्र सूरिके पूर्वाचार्य सोमरत्नसूरि, वासुदेवसूरि और समरचन्द्रसूरिके माता-पिता और आचार्य बनने आदिका भी वर्णन किया गया है। इसकी रचना बि. सं. १९९१ में हुई थी। इसकी एक प्रति सं. १९८१ आषाढ सुदी १५ की तिथि हुई। बनपुरके ठोकियोंके मन्दिरमें बेष्टन में ३५९ में बँधी रखी है। उसका मारम्भ और अन्त इस प्रकार है

रिचहु विमिसर जगतिऊँ बामि बरिह मरहार ।
प्रथम बरेसर प्रथम किन विमोचन जब साधार ॥१॥
जमी पंचम जालीह सोऊँनउ विमराय ।
छान्तिवाय जगि छान्तिकर नर सुर प्रथमह पाव ॥२॥

अन्तिम — राय बन्पाछी

“गङ्गपति हरिसनि अति आनंद ।
श्रीराजर्षिह सूरिसर प्रवपठ बा कगि हु रविचन्द्र ३३९०
ईश्वर प्रवहण माकिमगावठ नवर लम्मावठ माहि ।
संवत सोऊँ अमह इकसठई जाली अति उडाह । (गङ्गा)
सरचम जगि गुह साधु शिरीमनि मुनि मेहराज उमु सीस ।
गुल गङ्गपति बा मानह मावह पडुचह आस जगास ॥१५९॥”

अन्य रचनाएँ

इनकी अन्य रचनाओंमें ‘गल-बसवणी रास’ ‘श्रीकृष्ण रास’ ‘पारबचन्द्र स्तुति तथा सत्काम्य-स्तुति’ और हैं। इनमें ‘पारबचन्द्र-स्तुति’ जल पारबचन्द्रकी बन्धना है जिसके नामपर ‘पारबचन्द्रसूरिगणक’ ही चक कहा बा। ‘सत्काम्य-स्तुति’ में मुक्ती स्तुति की गयी है और वह एक मुन्वर पीठि-नाम्य है।

४२ सहजकीर्ति (वि स १९९१ १९९०)

यह सागानेर जयपुरके रहनवास थे। इनकी दृष्टियोगे इनके पारिवारिक जीवनका कुछ भी पता नहीं चलता है। यह खरखरमच्छणी नाम धानाके छात्र थे। इनने मुनि जिनमन्त्रका ध्यापूरुषक स्मरण किया है। इनके मुखा नाम आचार्य हेममन्त्र था। इनकी विधेय रचानि थी। इनकी मुक्त-परम्परा इस प्रकार थी जिनसावर रत्नमार रत्नरत्न जयमन्त्र सहजकीर्ति। इनके 'समुद्रम महात्म्य' रास'के आचार्य जिनमन्त्रमूरि और मन्नाद अक्षररणी भेंटका वृत्त विहित होना है। इनकी रचनाभाषा संक्षिप्त परिचय विम्ब प्रकारसे है।

प्रीति-छत्तासी

इसकी रचना सागानेरमें वि स १९८८ में विश्ववन्द्यमीने दिन हुई थी। इसकी प्रति जयपुरके टोखियोके मन्दिरके गुट्ठा में ९७ में संस्कृत है। इसकी एक प्रति में तिष्ठतविषयके विषय बोधके द्वारा आविष्कृत समयके पढ़नेके लिए लिखी हुई बड़ोदराके शास्त्रमन्त्रारमें मौजूद है।^१ इसका आदि और अन्त देखिए, आदि

“प्रीति न किमिष्टी क्षीती आयाई, इहविषु अरिहंउओ
आयाई कोहि उपाच करत अह, आयाई मंत न संतर्जनी।”

अन्त

“प्रीति क्षीती पृ वयस्यि अधिक मनि हितकारनी
वाचक सहजकीर्ति अह अयाह, श्री संव जयमन्त्रकारनी।

‘पारध-वन्दन’ ‘वन्दनीय’ ‘जिनमन्त्ररत्न’ ‘पास्वविनस्वानन्दन’ और ‘दीर्घ टीपकरस्तुति’ में चार मन्त्रमन्त्रकी काव्य जयपुरके जयचन्द्रजीके शैल-मन्दिरमें पुटका में ११९ में लिख है। जय रचनाकाव्य विषयमें कुछ भी निर्दिष्ट नहीं है। हो सकता है कि खरखरमी सत्ताजीका जन्म पाद ही इनका रचनासमय हो क्योंकि इनकी प्रीति छत्तासी आदिकी रचना उसी समय हुई है।

समुद्रम महात्म्य-नाम

इसकी रचना आसफाईट में स १९८४ में हुई थी। इसकी एक प्रति नि

१ श्री जिनमन्त्र मिह जिन दिग्गज उगु पाटई भित कावई

अरव साहि सवालन रजी जकनिभि मीन मुत्तावर र।

राजमन्त्र मन्त्र रास जय नाम नम ७००, कैलाश-रविमयो, मान १ ५ ५ ५।

कैलाश-रविमयो मान १ ५ ५ ५।

सं १८४५ कार्तिक शुक्ला ५ की तिथी हुई मौजूद है, जिसका उल्लेख श्री बेधार्ई महोदयने किया है।^१

सुवर्णन श्रेष्ठि रास^२

इसकी रचना बगडीपुरमें हि सं १९९१ में हुई थी। इसमें सेठ सुरसतका जीवन परिचय वर्णित है। यह भगवान् जिनैग्रका परम भक्त था। पूरा ग्रन्थ भक्तिसे ही ओतप्रोत है। प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

केवल कमकाकर सुर कोमल बचन विकास
कविपण कमल विद्याकर पञ्चमिष कर्कविविध पाम ।
सुरसर किनर पर भसर सुन चरणकर्मज वास
सरस बचन कर सरसती नमीपद् सोहाग वास ।
वासु पसायद् कवि कहर कविजगमई वासवास
हंसगमणि सा भारती देव मुस बचन विकास ।

बिनराजसूरि गीत^३

यह गीत ऐतिहासिक श्रीन काव्य-संग्रहमें प्रकाशित हो चुका है। इसमें १८ पद्य हैं। बिनराजसूरिकी महिमाका वर्णन करते हुए कविने लिखा है,

'राठक 'भीम' समा मळी रे काक 'शैलकमेर मझार ।
परबात्री जीठा जियह रे काक 'पाम्बड बाब सयकार ॥३॥
श्लोक उग्यव कसया लकी रे काक सूरि कियत महकार ।
माबावह मागह गही रे काक कोम न चित्त किगार ॥८॥

युक्ते होने युक्त है कि कवि सतका वर्णन नहीं कर पाठा —

'बिन माहि बहुत गुण सूरिया इतिवद् प्रकट प्रमाण ।
वरनही हुं नहि सङ्ग, लसु विद्या लखत गान ॥७॥

पुरके दर्शनसे परम आनन्द निकटा है,

'सद्गुण बंदिनह, श्री बिनराज सूरिन्' ।
दरसन अधिक आनंद जंगम सुरदास कह ॥९॥

१ कैलुर्जरकविजी भाग १ पृ ४२४-२५ ।

२ कैलुर्जरकविजी, भाग २ पृ १५ ।

३ ऐतिहासिक श्रीन काव्यमण्ड ५ १७७-१७९ ।

जैसखमेर चैत्य प्रवाही

इसकी रचना वि सं १६७९ में हुई थी। इसमें ७ गीत हैं। जैसखमेरके चैत्याकी लयस्वर विद्या गमा है। उसका आदि पाप देखिए,

‘साधु साधवी आचक आचो श्रीसंन्याई परिवार रे माई
श्री विनयाय धृतिर हरवाई जैसखमर मसारी रे माई।
सैन प्रवाहि करहु बिचि सेठी, बाजई बाजिअ सार रे
गाछई गीत मजुर सर गरी करतर गच्छ जयकार रे माई ॥

अन्य रचनाएँ

सहजवाँतने ‘कळावठी राम’ वि सं १६६७ ‘व्यसन सत्तरी’ १६६८
‘विनयाय वच्छयय चौपाई’ १६७२, ‘सागर सेठिकवा १६७५, ‘धीकपाव’ १६८९
और ‘हरिस्वना चौपाई’ १६९७ की भी रचना की थी।

४३ ब्रह्मगुलाल (वि सं १६६९)

श्री ब्रह्मगुलाल रचरी और बनारस बाँके समीप ‘टापू नामक दाँके
रहनेवाले थे। वह बाब भी आपराधिकमें यमुना नदीके किनारे बसा हुआ है।
इसके तीन ओर नदी बहती है, जग-वह एक छोटा बुरा प्रान्तीय ही है। इस
भौमौलिक परिचायासे जगमित्र होनेके कारण ही उसका नाम टापू बल पडा
होना और उस प्रचलित नामकी ही जगिने लिखा है। श्री बल्लूरामजी
कनकाजीबल्लभ लिखा है कि ब्रह्मगुलालजी आकियरके रहनेवाले थे।^१ किन्तु सत्य
तो यह है कि ब्रह्मने जगमित्रा की रचना ‘गड मोनाचल’ बनौने आनियरमें
की थी^२ किन्तु वे बहकि रहनेवाले नहीं थे।

किन्तुनरकमिथो, भाग १ व २ १२१।

मध्यदेश रचरी बनारस, ता समीप टापू नुबसार।

इपच कयाकमकवा जगिअ मरति, इलाहिदिग मरि, श्री रामिनाय वि
कैल मरिअ जगिअम।

१ मरतिमरिअ कयुअ, मरल १६३ मरलका ५ २१।

४ ब्रह्मगुलाल लिचारि बनाई मड मोनाचल बानी।

उपपनी बहू बल विरारी लाहि सलेम मुनलम।

जगमित्रा जगिअ गड मरतिमरिअ कयुअ, १६३ व २१।

श्री ब्रह्मगुप्ताजीके मुक्तका नाम मट्टारक जगन्मोहन था । वह अपने समयके प्रसिद्ध विद्वान् और सपथ मुक्त थे । उन्होंने ब्रह्मगुप्ताजीसे ज्ञान उपार्जित किया था और उन्होंने प्रेरणासे कृपण जगन्मोहनद्वारा का निर्माण किया ।^१ वह बाबदाह बहामीर का समय था । उसका शासनकाल संवत् १६६२ से १६८४ तक माना जाता है । श्री ब्रह्मगुप्ताजी भी इसी समय हुए हैं । उनकी जेपन-क्रिया^२ सं० १६६५ में^३ और 'कृपण जगन्मोहनद्वारा' सं० १६७१ में बना ।

उस समय टापूका राजा श्रीरत्नसिंह था जो तेज और त्याग दोनोंमें ही समान रूपसे निपुण था । वह अपने भव्य युद्धोंके कारण कुष्ठम बीपकके समान माना जाता था । वह अपने मन्त्रकर्मोंमें गो-रसाके लिए प्रसिद्ध था । भगवान् ने उसे वार्षिक उद्धार बताया था । उसीके राज्यमें बर्मदासबीक भतीजे मधुरामजी रहते थे जो अपने कुक्के शिरमौर और दान देनेमें सेठ सुवर्धनके समान थे ।^४ वे ब्रह्मगुप्ताजीके बलिष्ठ मित्र थे यहाँतक कि ब्रह्मगुप्ताजीके मुनि बननेपर वे स्वयं भी मुत्सुक हो गये थे और ब्रह्मगुप्ताजीके साथ ही रहते थे ।^५

ब्रह्मगुप्ताजी सच्चे कर्मकार थे । एक बार उन्होंने सिंहका बेप बताया तो कुछ ऐसा सन्ना सिंहका भाव था कि उससे एक राजकुमारकी हत्या हो गयी । राजकुमारके पिताको सम्बोधन करनेके लिए जब बौद्ध मुनिका बेप कारण किया तो फिर सच्चे बौद्ध मुनि हो गये ।

मुनि ब्रह्मगुप्ताजीकी छह रत्नार्पण उपकल्प हुई हैं 'जपन-क्रिया कृपण जगन्मोहनद्वारा' बर्मदासबीक समयसरणस्तोत्र जगन्मोहन क्रिया और 'विवेक-बीपई' । इनमें 'विवेक-बीपई' जयपुरके ठोकरियाके मन्दिरमें है ।

१ जगन्मोहन मट्टारक वाह करो ध्यान-जैतरपति जाह ।

ताकी सेवामु ब्रह्म गुप्ताजी श्रीजी कथा कृपण सर-साह ।।

हमब जगन्मोहन कथा अतिम प्रशंसि हस्तलिखित ग्रंथ श्री शम्भुमान दि बौद्ध मन्दिर, भर्तृनिध ।

२ सोरह सै पैंसठि संमज्जर कातिम तीन अधिपारी हो ।

जेपन क्रिया अतिम वाह, प्रशंसितमह जयपुर, इ २९ ।

३ सोरह सै इन्हत्तर जेठ गुणीहि बिमल सुमरि परमेष्ठि ।

कृत्य जगन्मोहन कथा अतिम प्रशंसि, ज्योतिर्मन्त्री हस्तलिखित ग्रंथ ।

४ इष्ट जगन्मोहन कथा अतिम प्रशंसि, भर्तृनिधवासी ग्रंथ ।

५ गये मनाने की मधुरामजी यही बर्म महिमा जानी ।

मुत्सुक होकर साथ हो किसे भोग बासना सब हानी ।।

कवि पुनरति मज्जुपाल मुनिजी कथा ।

६ ठोकरिया मन्दिर, जयपुरका ग्रन्थ ग १२५ ।

अतः उनको वाक्याद्यगामिनी और बन्धमोचिनी विद्याएँ सिख हो गयीं। सेठ जब इनको विद्याक्रमें बन्ध करके बन्धा जाता था तो वे इन विद्यावाक्यों के बन्धपर सहस्र कूट चेत्याक्रमकी व्यवस्था करने जाती थीं। सहस्रकूट चेत्याक्रमके समीप रत्न तो बिखरे ही रहते हैं। एक बार वे पञ्चोत्तमको के गयी तो वह बहुत-से रत्न समेट लयी। सेठको उचीसे वहाँके रत्नाकी बात विदित हुई और एक दिन वह बिमानकी मुचासमें बैठ गया। किन्तु संयोगवशात् बिमानका वह भाग काट गया और सेठकी मृत्यु हो गयी। सोना सेठानियोको कुछ तो हुआ किन्तु सन्तोषपूर्वक जिनेन्द्रपूजा और मुनियोंको दान देनेमें मन लगाया अतः वे इहलोककीका समाप्त कर स्वर्गमें चले हुई।^१

इस प्रकार 'कृपय बगवत कथा'में जिनेन्द्रकी मूर्ति ही प्रमुख है। इसी कथामें एक जैन आचार्यने राजा बभ्रुवर्तिको जिनेन्द्रकी मूर्ति-पूजाकी उपयोमिता बतलाई है। उन्होंने कहा कि प्रतिमा-पूजन पुण्यका निमित्त है, सबसे आत्मा आत्मकर्ममें परिधनित होती है। प्रतिमा-वर्णनसे कथाय गलत जाती है।

‘प्रतिमा कथन्तु पुण्य निमित्तं विभु कारणं कारणं नहिं मिथं।

प्रतिमा रूपं परिणमै वायुं बोधविकं नहिं ध्यायै वायुं।

अथ कोम माया विभु मातं प्रतिमा कारणं परिणमै वायुं।

पूजा करत होइ यह मातं वर्णन पाए गळे कथाइ ॥”

धर्मस्वरूप

इसकी प्रति आमेरछावनमण्डारम मीमूद है। इसमें पद्य-संख्या ९२ है। इसकी रचना आश्रित्य मुक्ता तृतीया सं १७२ में हुई थी। इसमें जैन धर्मका स्वल्प वर्णन है।

कविने प्रारम्भके प्रवक्तृवचनमें सरस्वती और गणपतिके चरणोंकी बान्धना की है किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि सम्भवा सम्भवा जैन धर्मसे नहीं है। क्योंकि “श्रीने वाली श्री जिनवर सार, सतार सन जतरै पार” और ‘मन्दिरे बरी हीरण होइ बीजवर वरम जपे सो हीर’ स्पष्ट रूपसे जैन धर्मकी महिमाको बान्धनेमें समर्थ है। एक नहीं बनेक जैन कवियान सरस्वती और गणपतिकी बान्धनासे जबमें सम्भोका प्रारम्भ किया है। सरस्वतीकी मूर्ति तो जैन-परम्परामें बहुत प्राचीनकालसे जमी आ रही है, किन्तु गणपतिको भी विद्याके अधिष्ठाता देवके रूपमें हिन्दीके जैन कवियोंने स्वीकार किया था।

१. कृपय बगवत कथा पञ्चोल्लासनी प्रति।

२. प्रथम मुमरी सारदा गणपति आगु पाय।

मुच पाई श्री जिप तगा मुनी भय मन लाय ॥

४४ उदयरज जती (वि सं १९९०)

‘मिथबन्धुविमोह के रचयिताओंने इनके आध्यात्मिकता नाम महापद्म पदसिद्ध किया है, जिन्होंने वि सं १९९१ से १९८८ तक राज्य किया’। किन्तु उदयरजकी क्षिपी हुई मज्जनछत्तीसी से स्पष्ट है कि इनके आध्यात्मिकता बोजपुरके राजा उदयसिद्ध से। इसी आधारपर श्री अयरवन्धवी गान्ध्याने ‘मिथबन्धुविमोह’ का निराकरण किया है।^१

उदयरज बोजपुरके पासके रहनेवाले थे।^२ मिथबन्धुजीने उन्हें बीकानेरका रहनेवाला किया है।^३ हो सकता है कि बीकानेरमें उनका जन्म हुआ हो और बोजपुरमें आश्रम लिया हो।

‘मज्जनछत्तीसी मे अपना परिचय मैंने तुम्हें कबिन किया है कि यह ग्रन्थ मैंने १९ वर्षकी उम्रमें बनाया और समस्त निर्मासिकक सं १९९७ है।’^४ जत यह निश्चित है कि उदयरजका जन्म सं १९९१ में हुआ होगा। इनके पिताका नाम भद्रसार, माताका नाम हूरपा आताका नाम सूरचन्द्र पत्नीका नाम पुरबनि पुत्रका नाम सुदन और मित्रका नाम रत्नाकर था।^५ ये अरतराजजीन भद्रसारके शिष्य थे। भद्रसारने जम्बलमकमिहरी बीकानेरकी रचना की थी।

इनकी रचनाओंमें ‘मुचबावनी’ मज्जनछत्तीसी ‘बीबीस बिन सबैया’ और

१ मिथबन्धुविमोह प्रथम भाग, पृष्ठ १९४।

२ राजस्थानमें हिन्दीके इच्छासिद्धि ग्रन्थोंकी प्रथम भाग ९, परिशिष्ट १ पृष्ठ १४९-१५३।

३ साम समये उदयसिद्ध बास समये बोजपुर।

मज्जनछत्तीसी, पृष्ठ १९।

४ मिथबन्धुविमोह, प्रथम भाग पृष्ठ १९९।

५ सोकहरी सनपठे कीच जल मज्जन छत्तीसी।

मोगु बरस छत्तीस हुआ जमि जावह ईसी।

मज्जनछत्तीसी, पृष्ठ १७ वें पन्नी प्रथम दो वक्ताई।

६ समपि पिता भद्रसार जन्म समये हूरपा घर।

समपि आता सूरचन्द्र मित्र समये रमपावर।

समपि बन्धु पुरबनि समपि पुत्र सुदन विद्यावर

रूप जने जलसार जो मी समये आपन रह्य

बदिराज दह कभी रती जलजल समये यह महु महुय ॥

मज्जनछत्तीसी पृष्ठ १९।

'मन प्रसंसा-भोदा' अत्यधिक प्रसिद्ध है। 'मित्रवन्धु-विमोद' में रीतिरक्षण महत्वात् की भी इनको ही रचना माना है। इनके अतिरिक्त वैद्य विरहितो प्रबन्ध भी इसीका रचा हुआ है। मुगलबागनी कहीं सुमापित बागनी और कहीं मुगलमा के नामसे प्रसिद्ध है।

मदनछत्तीसी

इस काव्यकी रचना वि सं १६६७ फास्सुन बरी १३ शुक्रवारके दिन हुई थी। इनका रचनास्थान आपपुर राज्यान्तमन माहाबाह नामका स्थान माना जाता है। उस समय वहाँ अयमाक नामका राजा राज्य करता था। प्रत्यक्ष मन्त्र भयवान् त्रिनेत्रकी अक्षितस मुक्त है। भाषाके प्रवाह और भावोंकी प्रीतिता को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि कविजी काव्य-शक्ति वर्णित रूपसे विकसित थी। एक स्वामपर कविन आरमाको सम्बोधन करते हुए कहा है कि तू भयवान् त्रिनेत्रसे प्रीति कर। यह प्रीति सांसारिक सम्बन्धों और मानापमानोंकी दूर करने में पूर्ण रूपसे समर्थ है।

प्रीति आप परबळे, प्रीति जवरी परबळे।

प्रीति गात्र गाऊं प्रीति सुपर्वरा विराळे ॥

प्रीति काज वर नारी हेतु हे लोक काहु।

प्रीति काज परिहर प्रीति पर खड़े पाड़े ॥

जन मदे हेतु दुरा जेग में असल नशि काजरो जरे।

उद्वेग नई मुनि आतमा हर्मा प्रीति त्रिचक्र करे ॥

इन छत्तीसीको पङ्क्तिकाके दुःख एवं दूर ही भाति है और वाप पलायन कर भाते हैं।

अनुसार अरुण प्रणाम करि मैं अनुकमि मर्या कवित।

कैलाक छत्तीसी कीचना सुख आह नारी दुरनि ॥"

गुण बागनी

इस काव्यकी रचना बरौदमें वि सं १६७६ बीलाय मुक्ता १५ को हुई थी। इसकी नवमे प्राचीन प्रति वि सं १७३६ को लिखी हुई प्राप्त है। इस

१ मित्रवन्धु-विमोद प्रथम भाग पृष्ठ १६४।

२ अति काव्य त्रिचराति अरुण मुगलार मयूरत।

माहाबाह मतादि प्रभु अयमाय पृथी वनि ॥

मदनछत्तीसी पृष्ठ ३०।

३ गुण बागनी, अन्तिम प्रतिलिपि, पृष्ठ १६ त्रिनेत्रवन्दनको पृष्ठ १०६।

प्रतिष्ठा मुनि मक्तिमानिवरने मूर्खपुरके मध्य मुभागक साह्य भाँचिकरी इमकीक
पहनने भिन्न लिखी थी । धूमरी प्रति मुबन विद्याल मलिष द्वारा दि म १८१
माप करी ९ वा गुणलमें लिखी हुई जमय मण्डार बीबानरमें मौजूद है । तीठा
प्रति जयपुरके बड़े मन्दिरमें जयदण्ड मुद्रका म १२४ में लिखत है ।

इस ग्रन्थमें मन्त्र काव्यकी भाँति पावनपदों निराकरण और आत्माकी सम्प
न्न कर अध्यात्मनम्बन्धी वचनों रचना की गयी है । इनमें कुल ५७ पद हैं
प्रारम्भिक संवकाचरणमें श्री प्रणव अक्षर कय परमेश्वरकी सम्कार करते हैं
कविने कहा है

“ऊँकाराव नमो अक्षर अक्षर अक्षरपर

गहिर गुहिर गंभीर प्रणव अक्षर परमेश्वर ।

त्रिपुड वंश त्रिकाक त्रिपुड अक्षर लेखामय

पंचपूत परमेश्वर पंच इन्द्री वराधन ।

पुरिमन्न बंजर बंजरि पुरि मित्र साधक सार्वधि सह

महत्कार पंचवह गुर समस्त उद्दिष्ट अक्षर कहि ३१३

अन्त करवनों निमक वनागते ही सब नाम चलते हैं । बाह्याहम्बर तो न
है । “प्रिय प्रिय ना उन्धारन करनेसे क्या होगा है यदि काम क्रोध और क
को नहीं बीच किया । जटाजाले बजलसे क्या होगा है यदि पावनक न छोडा
सिर मुकलसे क्या होगा है यदि मन न मुक्त । इसी प्रकार घर-बारने छोडने
क्या होगा है यदि वैराग्यकी वास्तविकताकी नहीं समझा

सब छिन्न किन्हीं किन्तु, ओल क्यों नहीं काम प्रणव छक

कति कहनामा किन्तु ओ नहीं मन भाँसि निरमक ।

अन्त कबोका किन्तु, कान पालाह न उद्दिष्ट

मल्लक मुखी किन्तु मन की भाँसि न मुँहबज

छलाह किन्तु मिक बीच ना मनमाहि सहकी रहह

वरपर उन्की सीपह किन्तु अन्तर्मुखी उद्दी कहह १५३३

अपनी इस वाणीकी प्रशंसा करते हुए कविने कहा है “अक्षरक उन्
मुख मेह, पुष्पी बाबाध मुख अन्त और अन्त-विष्णु-वहेय है सब”
यह वाणी रहेगी और अक्षरोंपर अपनी जन्म बहनी ही बाधकी । इस वाणी
के कहने सुनने और लिखनेसे भी जनेकों अन्ति-विष्णुकी प्राप्ति होती है
सम्पत्ति बहने है और मुख पिच्छा है । एक कविताके कहने-भावसे ही मनु
पण्डित हो जाता है

‘एकरोइ कविउ कहई बुचई, तिकी मनिष पंडित कहइ
उर्दाराज सपूरण मुख करइ तिकी अनेक वार्ता कहइ ॥५०॥

बीबीस जिन सवेया

इसको १९वीं शताब्दीकी किसी हुई एक प्रति बीकानेर महाराजभंडार में सुरक्षित है। इस काव्यमें बीबीस तीर्थंकराजी भक्तिमें २ सर्वभोक्ता निर्माण हुआ है। सभी भक्ति-रसक सत्तम बृहस्पति है। रचना प्रौढ़ है। उसका आग्रि मान देखिए,

“प्रथम ही लोभकर कम परमेश्वर का
बंध हा हृदयाकु अचरस ही कहाचौ द ।
हृदय कीउल पग छोरी रहै रोग काचै
सम्य मरुतुन ताकी कुली आधी है ॥
राज जहि कर करि सिद्धाचार भय भय
समया संताप ज्ञान केवल ही पायी है ।
मानिसाव जू को नंद नमै घुमनर हृदय
उदय कहत गिरि शकुन सुहायो है ॥१॥

मनमयसता बोझा

इसको एक प्रति जयपुरके बड़े मन्दिरके मुद्रका नं १२४ में लिखत है। मन-को सम्बोधन करके अनेक दोहोंका निर्माण हुआ है।

बैद्य बिरहहिनि प्रचण्ड

इसकी एक प्रति जि सं १७७२ कात्तिक सुदी १४ की किसी हुई अमय बीनप्रभास्य बीकानेरमें सुरक्षित है। इसमें कुल ७८ दोहे हैं। सभी शृंगारिक भक्तिसे जीतप्रोत है। बिरहजन्यसे प्रपीडित नापी ब्रजराजकपी बैद्यके पास जाती है और उसके सभी रोय ठीक हो जाते हैं।

‘एकल जिन अजलासिनी दिक् में गई उद्वार ।
हो दुलहारी भिन्न पै जाइ दिलाई नारि ॥
को बिरहिन जिन सोच में कर अपनी निज धास ।
रिख पाव क्यों कर हमी गयी बैद्य पै पास ॥५॥

१ राजस्थानमें दिल्लीके इलाक़िद्विज मन्त्रीकी श्रेय भाग ४ अमरकंटक महाराज उदय-पुर, १६४४ ई॰ १९९ ।

२ राजस्थानमें दिल्लीके इलाक़िद्विज मन्त्रीकी श्रेय भाग २ पृष्ठ ६३-६४ ।

कवि

“अपन करने कंत सू रस बस रहिबा ओह ।
उदराज उम गारि रूँ बरै बुहागन हाइ ॥
जाँ कनि गिरि साधर अचक जाँम अचछ मू राम ।
ताँ कनि रंग रागा रहै अचछ ओहि मजराज ॥७८॥”

४५ हीरानन्द मुकीम (वि सं १९९८)

माह हीरानन्द अफतखेठके पुत्र ओसबाक सैन्य थे । वे आगराके छत्रेवाले थे । उनके पास करिमित बल था ।^१ आगराके सर्वोत्तम बीहुरियोंमें उनकी पसना थी । सहजसा उसीमसे बनिष्ठ सम्बन्ध था । उन्होंने सम्मेलनसिद्धरबीची यात्राके लिए सब तैयारी की । इसका उद्देश्य बख्शर बनारसीछत्रबीके ‘अर्चनादानक’में हुआ है । उन्होंने लिखा है कि वि सं १९९१ बीच सुबो २ को हीरानन्द मुकीमने प्रयागपुर नगरसे सम्मेलनसिद्धरबीके सब बकाया । स्वाम-स्वाधर पर पत्र भेजे पत्रे । भारी मोर लुपता फल बनी । बनारसीछत्रबीके पिता छत्रबी के पास भी पत्र आया और वे इस यात्राके निमित्त बोडेपर बहकर बनारसीके ओडर दुरन्त बल पडे और नन्दबीसे का बिके ।^२ उसी वर्ष सब आपस की कीट जाया । बनेको बर पत्रे का बीमार हो गये । छत्रबीन जी बीमार अवस्था में ही बर आये थे ।

इस यात्राका सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत करनेवाला एक हस्तलिखित गुटका भी अगर

- १ साहिब साह उसीम की हीरानन्द मुकीम
जोनवास मुल बाजरी बलिक बिल की सीम ॥२२॥
अफकामक, व गान्ध्याम प्रेमी एनालिस, पन्ना १९३७, पृष्ठ १२ ।
- २ आमी सबसु दुरुच्छा सैन्य मात निग बूध ॥२२॥
निग प्रयागपुर नगर सी कीबी बहम तार ।
सप बकायी सिद्धर की छत्रबी रंग पार ॥२२॥
टीर टीर पनी रई धई बखर निग तित ।
बीटी बाई सैन की आबहु मात निमित्त ॥२२॥
छत्रबीन सब बलि बली रूँ दुरंद अछवार ।
माह नंदबी की बिके तजि बुद्धम बनार ॥२२॥
बरी, पृष्ठ १३-१४ ।

बन्वनी माहटाको मिला है। यह अरतरगच्छके मुनि तेजसारके शिष्य भीरविजय ना सिखा हुआ है। इसका नाम है। भीर विजय सम्मतशिखर चैत्य परिपाटी। इसके अनुसार एक अरतरगच्छीय संघ जापरेसे बछा था। साहू हीरानन्दका संघ जो इसाहूबादसे बछा था बनारसमें इस संघसे जाकर मिला गया था। साहू हीरानन्दके साथ हाथी बोटे रथ पैदल और गुणवार भी थे। वहाँसे बगदपुरी और पावापुरी आदि अनेक तीर्थोंकी कम्बना करता हुआ तथा बटे-बड़ विष्णोको गार करता हुआ संघ छिछरजो पहुँचा। वहाँ २ टुक और बहुत-सी मूर्तियोंकी कम्बना की। लौटते समय संघ राजगृहोके पास पबता तथा बड़नाबमें मोठम बजवरक स्तूप और जनकानक जैन मन्दिराकी पूजा करता हुआ पटना आया। वहाँ सप्त १५ दिन ठहरा और छाह हीरानन्दकी ओरसे सबको पहिरावभी दी गयी। औगुणस संघके व्यक्ति अपने अपने स्थानपर बसे गये।

इससे छाह हीरानन्दका जैन तीर्थोंके प्रति भक्ति भाव स्पष्ट है। यह बहुत कम कामाको विरहित होना कि वे एक अच्छे कवि भी थे। उनकी रचो हुई अध्यात्म भावनी एक सुन्दर काव्य है।

अध्यात्म भावनी

इसकी रचना वि० सं० १९९८ में माघाह सुदी ५के दिन हुई थी। उसी वर्ष सातपुरम भोजिग विद्यानदास साहू बेनीदासके पुत्रके पठनार्थ लिखी गयी इसकी एक प्रति उपलब्ध हुई है।^१ इस काव्यमें ५२ अक्षरार्थ-सै प्रत्येकवा लेकर एक एक पदकी रचना की गयी है। सभी पद अध्यात्मसे ओन्मोहन हैं। सम्प्रदायकी भाँति ही बड़ चेतन को सम्बोधन करके अपना हृदयस्थ भावोंको स्पष्ट किया गया है। भाषाम प्रवाह है।

‘ऊकार सरपुण्य ईह अकल अगोचर
अंतरज्ञान विचारि पार पावई नहि को नर।
स्थान मूक मनि आदि आनि अंतरि दृढरावड
आत्म तनु अमृत रूप तनु मलविन पावड।
इस कहहि हीरानन्द संघपति अमक अण्डहनु प्याय धिरि
सुख सुखति मदिन मनमई धरड सुगति सुगति दावक पवर ॥१॥’

१ श्री कल्याणदास साहू द्वारा हीरानन्द मधेबाबा विद्यानदास की संस्कृत-रचना ५५ वीं पंक्ति, अनेक-म वीं १४ दिनांक १ १९९९-२००० ।

२ गुजरात-वि० प्रथम भाग १९५९-६० ।

अथ

मंगल करत जिन पास आस पूरण ककि सुरतर
 मंगल करत जिन पास आस आंक मय सुरनर ।
 मंगल करत जिन पास आस पथ सबई सुरपनि
 मंगल करत जिन पास आस पथ पूबइ दिनपनि ।
 मुनिराज कहई मंगल करत गवरिचार श्री वाग्द सुय
 वाचय वरन बहु फल करहु मंचरनि हीरानंद तुम ॥५॥

४६ हेमचिन्मय (वि सं १९)

हेमचिन्मय बृहदाचार्य के प्रसिद्ध आचार्य हीरचिन्मयपुरिके प्रशिष्य और चिन्मयसेनपुरिके शिष्य थे। हीरचिन्मयपुरिका व्यापारिक व्यक्तित्व का रूपमें प्रख्यात भी उत्तम वादिकी थे। सम्राट् अकबरन उन्हें वि सं १६१९ में दो बार आमन्त्रित किया था। उनका आनीतिक स्वाध्याय हुआ और उन्हें जयपुर की पदवी दी गयी। श्री चिन्मयसेनपुरिको भी सम्राट् अकबरने वि सं १६५ में निम्नजय देकर बुलाया था। उन्हें सम्राट् हीरचिन्मयकी ज्ञानविषे विमूचित किया गया था।^१

श्री हेमचिन्मयने आचार्य हीरचिन्मयकी महत्तापर वर्णन करनेवाकी अवकाश नेक स्तुतिपंक्ती रचना संस्कृतमें की थी। उनमेंसे एक ही आनीतिक अनुबन्ध पञ्चदशके शिवालेखनमें अंकित है। इसमें १७ पंक्तियाँ हैं। अपने गुरु चिन्मयसेनपुरिको प्रार्थनामें उन्होंने चिन्मय प्रसस्ति का निर्माण किया। यह भी संस्कृतमें ही लिखी गयी है। इसके अनिवार्यन उन्होंने कलापलाकरकी भी रचना की। इसकी प्रसिद्धि स्पष्ट अविक है।

हेमचिन्मय हिन्दीके भी उत्तम कवि थे। उन्होंने हीरचिन्मयपुरिके और चिन्मयसेनपुरिकी स्तुतिमें छोटे-छोटे बहुत-से हिन्दी पद्य बनाये हैं। तीर्थटोकेकी स्तववाक्यों की कुछ पद रचे हुए मिलते हैं।^२ 'मिथबन्धुविनोद' में भी रचना उत्प्रेष्य है। यही इनके वि सं १६६६ में बनाये हुए स्फुट पद्यकी बात कही गयी है।^३

१. Vide P P 265-276 Bhandarkar commemoration V June
 मोक्षमाला दुर्लोक्य वैसाई Jain Priests at the Court of Akbar
 मातृका कवि श्री श्री जैन ग्रन्थमाला कम्पटी, मुम्बई १३६।

२. प. नाथूराम प्रोही हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास, १९१७, पृष्ठ ४५।

३. मिथबन्धुविनोद प्रथम भाग पृष्ठ ६९।

नेवहीन होनेके कारण उनके परोक्ष हृदयका बहरो अनुभूति है । वह हिन्दीके परिचय मायकी ही नहीं अनितु मोड बविरव चक्षितको प्रकट करममें समथ है ।

नमिनाथके पद

मेमीरवर राजकुमर विवाह-द्वारत वापस लौट आये । अग्रसेनके द्वारपर बेंबे पगुवाकी वदन पुकारमे उनके हृदयम बैराग्यमे जगम किया और वे जैन मुनि होकर गिरनारपर तर करने लगे गये । उस समय राजकुमरकी आनुरताका हैम विमलम सफ़ल बिज लीया है । राजकुम बेंबेन होकर गिरनारकी ओर दौड लठी । बबिपेसि कहा कि तुम एक शाय यत्री हो राही रहो किन्तु छत्तियोन उसे पकड़ किया तो वह निहार करक कहन लगी कि तुम 'जबही ठबही कबही जगही' जगान् जब तब वह जग जाहो यदुरायस जाकर वही है नमकी तोरन-द्वारसे वापस गया लौट आये ।" वह पद्य कैपिए,

‘कहि राजमर्ता सुमती सन्निधान कूँ एक लिनक रारी रहुरे ।
सरिरी सगिरा अंगुठा मुहा बाहि करति बहुत हन निहुरे ॥
अबहा तबहा कबही जगही यदुराय कूँ जाय इसी रहुरे ।
सुनि हेम के साहित्य नम की हो अथ तीरव तें तुम्ह क्यूँ रहुरे ॥

राजकुम मानी नहीं । जकेसी ही बस पड़ी । यहाँ लोक-मर्षाका बन्धन उसे बाँध न सका । राजकुमकी दृष्टि वह मेमीरवरकी पत्नी बी । भारतीय कन्या एक बार पति चुनती है बार-बार नहीं । इसी कारण किछोकी परबाह नये बिना वह उस ओर दौड नहीं । उसका मन्तव्य स्थान वृत्तरेका पति वही किन्तु अपना ही पति वा इसलिए कुल-नामिका कोई प्रदल अपस्थित नहीं होता । नवी-नमी घटाएँ कमड़ रही है । उबर-अवरसे बिजली कमक रही है । पिपुरे-पिपुरे बहकर पवीहा बिजला रहा है । ऊपर तो आसमानसे बूँद टपक रही है और खबर अग्रसेनकी की आँखोमे आँसुओकी झरी लय गयी है । वह मुनि हैमविजयके साहच नमीरवरकी बेचनेके लिए अचली ही निकल पड़ी है,

‘अनचार बहा जगधी छ गई हलतें उलतें जमकी बिजली ।
पिपुरे पिपुर् पविहा बिजलाति छ मार किमार करति मिनी ।
बिच बिन्दु परे हय आँसु सरें सुनि बार अपार इसी मिछली ।
सुनि हेम के साहित्य देरान कूँ अग्रसेन ककी ॥ अकेखो ककी ॥

४७ नन्दलाल (वि स १९०)

कवि नन्दलाल बाबरेके पास 'बीसुना' के रहनेवाले थे। उनके पूरब बगाममें रहते थे। इनके पिता भवजदास बीसुनामें जाकर रहने लगे थे। १. नाबूरामभी प्रेमोन इनकी बंश-परम्परा — बमरनी प्रेमलाल भवजदास और नन्दलालके रूपमें स्वीकार की है।^१ किन्तु नन्दलालके 'मयोपर' और 'सुरधन चरित्र' से स्पष्ट है कि उनके पिताका नाम 'मयरी' बरबा 'भैरो' था।^२ संकल्प है कि भवजदासका बचपना नाम मयरी ही। नन्दलालका बंश भवजदास और पो. रामदास था।^३

नन्दलालकी माँका नाम चन्दन था। वे धार्मिक प्रवृत्तिकी महिला थी। नन्दलालका सुकाव भी चर्मकी ओर था। वे विद्वान् थे और कवि भी। उनकी सुजनतापर रोझकर ही प्रसिद्ध पण्डित हैमराजने अपनी विदुषी पुत्री 'बैनी' का उनके साथ विवाह कर दिया था। उनसे कुलाकीदासका जन्म हुआ जिसने अपनी माँकी प्रशंसा करते हुए लिखा है, 'सुशुभ की लालि कीचौं सुकुल की लालि सुम कीरति की लालि अन्कीरति-कृपालि है। स्वारस-विद्यानि पर स्वारस की ललचालि रमाहू की रावि कीचौं बैनी जिनचालि है'^४।

नन्दलालके बुद्धका नाम भट्टारक विभुवनकीर्ति था। उनका दस बतुर्बिर्म्मे विस्तृत था। विभुवनकीर्ति अतके पारंगत विद्वान् थे। उनके भी गुप्त मुनिराज सुबेनकीर्ति इतने पवित्र विद्वान् थे कि उनका नाम केने मानसे ही पाप परमव्यस कर जाते थे। सुबेनकीर्तिके गुप्त भट्टारक ब्रह्मकीर्तिका तो बहुत अधिक नाम था। बारो ओर उनके संयमकी क्याति थी। उन्होंने कामदेवकी वसमें कर दिया था। नन्दलालको ऐसी विद्वान् और पावन परम्परा बुद्धके कल्पे मिली थी और उनमुक्त ही वे स्वयं भी बने।

कहिये अपने समयके बाबरेकी प्रशंसामें बहुत कुछ लिखा है। उस समय वहाँ बाबरेके गुप्त भट्टारका राज्य था। उसके आसनमें सब प्रजा सुखी थी।

१. १. नाबूराम मयी हिन्दी के साहित्यका इतिहास, पृष्ठ २२।

२. भवजदास करबंश बीसुना नाँव का। बीसुना नोट प्रसिद्ध बिन्दू का टंक थी। माताहि चन्दन नाम पिता मयरी मम्बो नन्द लाली मनमोह मुनी बन ता बम्पी ॥ बाटी नन्दकी मन्गारिणी वरिष्ठा इलासिदिन मम्बोनी प्रोबका २ नो नपानिक निररथ, नन्द का नन्दलालका निररथ।

३. कुलाकादास पाण्डुराजराज प्रसति।

४. सुरधनचरित्र, मसलि, पृष्ठ ११-१२ का पृष्ठ ५ २०वाँ पैरामिक निररथ।

कोई धार्मिक प्रतिबन्ध नहीं था। साहित्यकार भी स्वतन्त्र रूपसे लिख रहे थे।

कवि मन्दसालकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं। यशोधरचरित 'सुयशोधरचरित' और 'गूढ विनोद'।

यशोधरचरित

'यशोधरचरित' की एक प्रति नया मन्दिर दिल्लीके सरस्वतीमण्डारमें प्राप्त है। यह बि. सं. १९७२ की लिखी हुई है। दूसरी हस्तलिखित प्रति बि. सं. १८९९ की लिखी हुई जयपुरके बसोबन्धजीके बि. शैल मन्दिरमें है। कासी गावरी प्रचारिणी मण्डिकाकी बीसवीं वार्षिक रिपोर्टमें जिस 'यशोधरचरित' का उल्लेख है उसका कैलनकाक नहीं दिया है। मन्दसाल इन काव्यका निर्माण बि. सं. १९७ धाराब मुक्ता सप्तमीको किया था।^१

इस काव्यमें शैलधर्मके प्रभाव मकर महाराज यशोधरके जीवन-चरित्रका वर्णन है। जयभ्रष्टके प्रसिद्ध कवि पुष्पदन्तसे लेकर मन्दपाल तक अनेक यशोधर चरित्रोंका निर्माण हुआ था। अठ काव्यका कथानक ठो पुराना ही है, किन्तु काव्यत्वकी दृष्टिसे नयापन है। उसमें जोपाई काव्यका प्रयोग दिया गया है। भाषामें प्रभावगुण है और मनिहीलता। काव्यके प्रारम्भमें सरस्वतीकी बन्दना है

है कर जाति नर सरसती बहै बुद्धि उपज सुम मती।

जिन बानी मानी जिन भावि तिनकी बचन बह्यी परबान ॥

विदुष बिहंगम जब बन बारी कवि कुछ कवि सरावर मार।

मनसायर तू तारन माव कुनव कुनव सिबनी भाव ॥

वे नर सुन्दर त नर बली, जिनकी पुत्रुमि कया बहुचली।

जिनका तें सारद नर बीयो सुख सरिता तु अमक नर पीयो ॥^२

आमरेका वर्णन करते हुए कविने लिखा है कि वहाँ भववान् निर्ममके

१ जहाँगीर काना देऊ काति यी मुक्तिगान भूरसो राति।

बाग देश भूमी मति गूढ़ छत्र चमर निवासन मरु ॥

पग बन बुरन लुंग अनासु, बगति निरुक्त घम के शान।

सरस्वतीचरित, अन्तिम प्रमाण, पृष्ठ १, २, ३ वरी।

२ संवत् १०८१ कपिक सत्तरि शासन नाम।

मुकुट साम दिन सत्तमी बड़ी नया मुनु नाम ॥

यशोधरचरित, अन्तिम प्रमाण, पृष्ठ ६।

३ यशोधरचरित, अन्तिम भाग अष्टमके श्री श्रीचन्द्रजी दि. जेठ १८८१ की रत्न निधि में है।

मन्त्राधी कमी नहीं थी। अनेक धर्मग्रन्थान् अर्चक्य रूपमा व्यवहार कैं जिन मन्दिरका निर्माण करवाया था। उनमें जिनमूर्तियोंकी प्रतिष्ठा भी हुई थी। जैन पुराणोंकी प्रतिक्रिया भी रही थी। जैन कवि मन्त्रिग्रन्थ मुक्त कविता रूपमें प्रवृत्त थे

‘होहि प्रतिष्ठा जिणचरणनी धीमहि जगज्जित बहुधनी ।
एक करारहि जिणचरणधाम कामें जहौं जर्मपिय दाम ॥
एक सिखा क परम पुराण एक करहि संतीक प्रयाण ।
राज जन कोक सकनि न हुरैं कविता कविष्ठ लपी लप लपें ॥’

सुरसंनचरित्र

सुरसंनचरित्रकी एक प्रति पंचायती मन्दिर दिल्लीमें मौजूद है। कवि मन्त्रिग्रन्थ इस काव्यको वि सं १६९३ माघ सुक्का पंचमी बुधवारके दिन रचा था। काव्यमें छंद सुरसंनचरित्र चरित्र किया गया है। यह एक वस्तु सिद्ध था। इसलिये इस काव्यमें प्रारम्भमें अन्त तक यत्तिनी बात ही प्रकाशित हो रही है। कथानकपर आरम्भिक ‘सुरसंनचरित्र का पुरा प्रमाण है।’ भाषा और भाव दोनों ही सुन्दर हैं। पुरा काव्य ‘चोपाई’ छन्दमें लिखा गया है।

आगेके निधामी निःशंक होकर अपने-अपने धर्मका पावन करते थे इस कथनको निरूपित करनेवाली एक चोपाई देखिए,

‘जब कन पुरा तुम जगज्जित । बसहिं निरसक धर्म के दास ॥
छन्दबीस हमारु वंश जगज्जित नई बैरि विघ्नस ॥

गूढ़ बिलोद

‘गूढ़-बिलोद की एक हस्तलिखित प्रति जयपुरके पण्डित भूजकरजीके मन्दिरमें रखे मुद्रका नं ९ में लिखत है। इसमें जम्हारम-सम्भन्धी पद और वीर हैं।

१. सुरसंनचरित्र, वर्ष १६९४-१६९५, जमा मन्दिर दिल्लीकी हस्तलिखित प्रति।

२. लवण सोरठ से जपरत नेछठि जालहु करिए महान ॥

माघ उम्मादे पाय सुक नामर दिन पंचमी ।

कवि चोपाई पाय नई करी मनि सारणी ॥

सुरसंनचरित्र अन्तिम प्रमाण एक ६-७ वरी ।

३. मैना नई जाहि जो नई ताहि बिधि बाधो चोपाई ॥

सुरसंनचरित्र अन्तिम प्रमाण एक ॥ नई ।

४८ कवि सुन्दरदास (वि सं १९७५)

जैन कवि सुन्दरदास द्वितीयके सप्त सुन्दरदाससे पृथक् थे। जैन कवि सुन्दर दास बायड़ प्राप्तके रहनेवाले थे। दिल्लीके नास-यामका प्रवेश बामदके नामसे प्रसिद्ध था। कहा जाता है कि ये शाहजहाँ बाबसाहके कृपापात्र कविबोमिने थे। शरणागते इनको पहले कविराय छिर महाकविरायका पद प्रदान किया था। वे औरंगजेबके समय तक जीवित रहे। सप्त सुन्दरदासका जन्म 'धौसा' नामक स्थानपर हुआ था जो जयपुरसे १९ कोस पूर्वमें स्थित है। इनके पिताका नाम पोसा और माताका नाम सती था। इनकी रचनाओंमें सुन्दर विष्णु ही अधिक प्रसिद्ध है। वह अष्टात्मका ग्रन्थ है। जैन कवि सुन्दरदास भी अष्टात्मवादी थे। शोबोकी माया शोबी और भावधारामें बहुत कुछ साम्य है किन्तु दोनोंका अन्तर भी स्पष्ट है।

जैन कवि सुन्दरदासके चार ग्रन्थोंका अनुसन्धान ^१ हुआ है : सुन्दर सतसर्ग सुन्दर विष्णु सुन्दर श्रृंगार और 'पाञ्चण्ड्य रचयिता'। काशी नामटी प्रचारिका पत्रिकाके सम्पादकोने जब सुन्दर श्रृंगार की खोज की तो उसके प्रारम्भमें "श्री विष्णु नमः पुनः गणेशाय नमः देवी पूर्ण चरम्बती हरेक पाव। नमस्कार कर जोर के कई महाकविराय ॥"^२ लिखा हुआ प्राप्त किया। उसपर टिप्पणी लिखते हुए उन्होंने कहा इसके प्रारम्भमें श्री विष्णु नमः क्यों लिखा है यह प्रश्न अपने सभी आश्रमोंके साथ उपस्थित है।^३ किन्तु द्वितीयके जैन कवि प्रायः अपनी रचनाओंके प्रारम्भमें भगवान् विष्णुके साथ-साथ देवेश और उरस्वतीकी भी वन्दना करते रहे हैं। श्री अचलकीर्तने तो अपने 'विष्णुहृदय स्तोत्र'के प्रारम्भमें 'विष्णुनाम विमल गुण हैस। बिहरमान बही जिन थीस ॥ अज्ञा विष्णु गणपति सुन्दरी। वर शोबी मोहि बागेसुरी' तक करता है। कवि सुन्दरदासके पदोंमें अष्टम स्तव-स्थानपर भगवान् विष्णुके गुणोंकी महिमाका वर्णन है। इसके उनका जिन-भक्त होना सिद्ध ही है।

^१ का मा प्र ब्रह्मिका Annual Report Search for Hindi Manuscripts-1901 No 3

^२ डॉ. योन्तान मैनारिया राजस्थानी भाषा और साहित्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रकाश, वि सं १९६१।

^३ का मा प्र ब्रह्मिका Annual Report search for Hindi Manuscripts 1901 No 3

^४ देखिए वही।

^५ का मा प्र ब्रह्मिका १२वीं वार्षिक विमल भक्तकीर्ति मैत्रिका विवरण।

सुन्दर शृंगार

नाथी नागरी प्रचारिणी पत्रिका में सुन्दर शृंगार की सा हस्तलिखित प्रति मौजूदा है। पत्रिका मोक्षपुर के राजकीय पुस्तकालय में मौजूद है। इसमें ९० पृष्ठ हैं। यह कि सं १७१ में लिखी गयी थी। कुशरी की भाग्यतावर पत्रिका दिव्य व रोचकतापूर्ण कामपुर में कि सं १८३५ में लिखी थी। तीसरी हस्तलिखित प्रति मेवाड़ के प्रसिद्ध राजकीय पुस्तकालय सज्जन बागोदिकान में प्रस्तुत है। यह प्रति कि सं १८११ की लिखी हुई है। इसमें ४५९ पृष्ठ हैं। इसके अनुसार समुदा तटपर बसे हुए व्यापारियों ने बैठ चुका छात्रवर्ग वादप्राह राज्य करवा था

“बगर जागरा बसत है समुदा तट सुख बाव ।

तहाँ वाससाहो करें बैठा साहिबिहानि ॥१॥”

कम्पूर के पश्चिम बंधकरबी के मन्दिर में विराजमान मुटना सं १२६५ की भी सुन्दरशृंगार की ‘सुन्दर शृंगार’ लिखी है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति बठिना के महेश्वरजी के छात्रमण्डार में मौजूद है। प्रति सुन्दर है। विषय शृंगार रखे सम्बन्धित है।

पाखण्ड पचासिका

यह रचना कम्पूर के बड़े मन्दिर में विराजमान मुटना सं १२ में लिखी है। इसमें पाखण्ड की मुद्रा बना गया है। इस पाखण्ड प्रमाणित है कि बठिना सुन्दरशृंगार मौजूद, चारुतिह और बेवसेन की परम्परा में थे। कम्पूर ने बाह्य बर्ण कम्परा के परिवारा की बात कही है।

सुन्दर सतसह और सुन्दर चिन्तास

दोनों कृषि की जनकान्तनर के दि जैन मन्दिर के एक मुद्रा में संकलित हैं। यह मुद्रा स्वयं सुन्दरशृंगार में मन्त्रपुर में कि सं १६७८ में लिखी था।

दोनों रचनाओं में भाष्यादिगताये बरे पद्यावा बनाईय हुआ है। कवि अपने ‘जी को सम्बोधन करते हुए कहता है, और शिवा । तु दिव्यरसको छोड़ दे जिससे मुझे सुख प्राप्त होवे । तू सम्पूर्ण विद्यारथी छोड़कर शिवा के सुख ना ।

१. का. मा. प. पत्रिका Annual Report Search for Hindi Manuscripts 1901 No 3

राजस्थान में दिग्दर्शक हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, भाग १, ३, १९५।

२. अन्नापूरण जैन दिग्दर्शक साहित्यिक संशोधन प्रतिष्ठान पृष्ठ १००-१।

तेरी महत्ता इसीमें है कि तुझे फिर इस जलुपतिमें न आना पड़े और ऐसा ठमी हो सनेया जब तू क्षण-क्षणमें भगवान् जिनभूके गुण मायगा । अपनी आत्मामें चित्त समानवासा पुरुष अचक पद प्राप्त करता है,

जिहा मरे जाँझि विषय रस ज्यो सुख पावै ।
सब ही बिकार तजि जिन गुण गावै ॥
घरी-घरी पक-पक जिन गुण गावै ।
तास जलुर गति बहुरि न आवै ॥
ओ मर बिज आत्म सु चित्त कावै ।
मुन्दर कहत अचक पद पावै ॥

पद

मुन्दरबासजीके किये हुए पद मन्दिर ठोसियाल जयपुरके मुठका नं ११ म और दि जैन मन्दिर गडीनके द्वास्तमन्दारके परसंग्रहमें संकलित है । एक पदमें ओबकी मूलता बताते हुए कविने लिखा है कि वह एक ओर ता संसारवा ध्यान चाहता है और दूसरी ओर मोलमुल । बिलु पद तो बैसे ही है बैसे नाई परवरकी नाबपर चढ़कर समुद्रस पार होना चाहै । बय्या बनाय कृपाभागी और चाहै विधान यह असम्भव है । वह पद इस प्रकार है

‘पापर की करि नाब पार-इधि उतरयो चाहै
कग उड़ावनि काज सूख विष्णामनि चाहै ।
बर्म जाँह बाइक लमी रथे जूम के धाम
करि कृपाण सज्जा रमी ते क्यों पावै बिसराम ॥

कवि मुन्दरबासकी अपने आराध्यकी मूर्तिमामें बहुत विस्वास था । उनका आराध्यने बिदुरुपका ध्यान करके संसारसे मुक्ति प्राप्त की थी । उसका समान चिरवमें और कोई नहीं है । उसकी भक्तिसे रोग-विरोध दूर हो जाते हैं

‘इह मय संसार सीं जी हिरई चरि करि ध्यान
रवान चरनी बिदुम्य सीं जो उपग्या है कपक साव ।
राम विरोग न संचार हो मन बजिन चक दाह
कर जाँह मुन्दर भजे रवामी गुम मम और न काह ॥”

१ गरी १४ १२१ ।

२ मन्दिर ठोसियाल जयपुरका मुठका नं ११ १४ १ १५ १५० ।

३ दि जैन मन्दिर, गडीनके द्वास्तमन्दारके परसंग्रहमें संकलित है १४ १२ ।

धर्म सहेली

मुम्बरदासजी यह कृति बीरान मन्वीचन्दजीके मन्दिर कयपुरके गुटका में ५१ में लिख है । रचना सरस है । इसमें केवल ७ पद्य हैं ।

४९ पं० भगवतीदास (वि सं १९८)

पं० भगवतीदास अम्बाका चिकेके बुढिया नामक स्वामनर उत्पन्न हुए थे । उस समय बुढिया जन-मान्यविशेष उत्पन्न एक रिवाज थी । अब ठां वहाँ सम्भार मणि है ।

भगवतीदासका कुछ अग्रदास और गीत संस्र था । उनके पिता किरनरामने बुढावस्थामें मुद्रित करार कर लिया था । भगवतीदास बुढियासे बोपिनीपुर (देहली) जाकर रहने लगे थे । देहलीमें मोतीबाजारके पार्समन्दिरके पास ही पश्चिमकी रा निवास-स्थान था ।^१

कवि भगवतीदासके मुकुटा नाम मट्टारक महेन्द्रसेन वा भी उस समय दिल्ली-की मट्टारकीय महीवर प्रतिष्ठित थे । महेन्द्रसेन वाट्सर्षक माधुरमन्वीय मट्टारक मुनवन्त्र (वि सं १५७९) के प्रशिष्य और लक्ष्मणदेवके शिष्य थे । भगवती दासने अपनी प्रत्येक रचनामें महेन्द्रसेनका श्लेष किया है ।

कवि भगवतीदासकी अविनाश कृतिश्री सम्राट् बहादुरीरके पावनकाव्य (सं १९ ५-९२) में पूर्ण हुई । कतिपय अवधिह रचनाएँ छाहचहके पद्य (सं १९२८-५८) में भी रची गयीं । कविने बहादुरीरकी प्रशंसा की है ।^२ रचनाओं-का निर्माण किसी एक स्वामनर में होकर देहली जाकर हिंदार केकिया संनिधा आदि जनेक स्वामनर हुआ । उनकी २५ कृतियाँ अप्रकृत हैं जिनमें

१ मरालि वृत्तलीपिपत्र सभावा मणि कनेकाल वर्ष ११ इ २ २, बार दिनांक २ ।

२ मट्टारक लक्ष्मण, बोधरापुरकर, बीरान मन्वीचन्द्रा सोलापुर, १९१३ १ १४३ केन लक्षा (१९६-९ १) ।

३ बार राम कवनी जहागीर वा किरिब अगति सिद्ध मानि ही ।

धधि रस वनु बिधा कर ही संनन मुनहु मुमान ही ॥

मुकु मुनि माहेन्द्रसेनजी परपवन्त्र नमु पाव ॥

सहर मुद्राया बुढियै नान भवतीदास जी ॥१५॥

मुनि रिवाजसि मुनका, देहली मही, केन लक्षा १९६ इ २२ ।

‘ज्योतिषसार और वैद्यविमोह’ नामकी दो रचनाएँ भी हैं। अथर्वसिद्धि २३ साहित्यिक कृतियाँ हैं। ये आध्यात्मिकता और भक्तिसे पूर्ण हैं। इनकी भाषा सरस हिन्दी है। भगवद्गीतासमे ‘नवोक्तकेवलो और द्वाविंशद्विम्बरनली’की प्रतिक्रिया भी की थी। रचनाओंका परिचय निम्न प्रकार है।

मुगति रमणी जूनकी

इसकी रचना बुनियाँ पवित्र वि सं० १६८ में हुई थी। उस समय बड़ीगीरवा राज्य था। इसमें १५ पद्य हैं। यह एक कपक-काम्य है। इसमें मुक्ति रमणीको जूनकी बनाया है। यह जूनको जानकरी सखिसम मिषोकर सम्यक्त्व कपी रममें रैनी काटी है। जूनकी विषयोंके ओझसका सत्तीय रबीन बरत है।

छन्दु सीतासतु

कविने पहले वि सं० १६८४ में बुद्धसीतासतु का निर्माण किया था किन्तु रचना बड़ी हो गयी थी और उसमें आकर्म्य भी नहीं रहा था अतः उन्होंने इसे वि सं० १६८७ बीच पुनः जूनकी अन्तर्गतको सखिस करके औरईष्ट कर दिया।^१ अब यह जलम्ब है।

‘छन्दुसीतासतु’ में रावणकी पत्नी मन्तोदरी और सीताका संवाद दिया है। मन्तोदरी सीताको रावणके साथ सम्मेलन करनेके लिए प्रेरित करती है और सीता अपने सतीत्वपर दृढ़ रहती है। ये संवाद १२ मन्त्रोक्त-से प्रत्येकको लेकर लिखे गये हैं। आषाढके संवादकी वृत्तिपत्र पंक्तिग्य देखिए,

मन्तोदरी छल बीकड़ मन्तोदरि दानी रनि अषाढ जलजट बहदानी ।
पीन गपु ठे फिर नर अषाढा पामर नर निव भविर अषाढा ॥
कचहि पपीहे दादुर माता दिवरा जमग भरत नहि मोता ।
बाहर जमहि रही भीपासा विष विष बिजुकिहि जमज जसासा ॥
बन्धी बुर झरत झर काया पावस नल आगसु दरसावा ।
हामिनि दमक्य निधि अंधिपारो, विरहिनि काम-दान बरि मारी ॥
मुगचहि जोग सुनहि सिंग मीरी जानत काह भई मनि भरी ।
मधुन रसाहन हुइ जग साक संजम-मैसु कचन विवहाक ॥

१ ज्योतिषसार और वैद्यविमोहकी मराठीमें ‘नवोक्त सम्मेलन’में लिपिक १ और २ पर निबद्ध है।

२ यही लिपिक ३ व ४ व ५ है।

३ रचनाकी बन्दिर देखनीकी ‘छन्दु सीतासतु’ की इल्लिखित प्रति।

जब कवि इस शीर्ष मर्हि तब कहु कीजहु भागु ।

राज राजर्हि मिथ्या भवर्हि हउं भूका सब कोगु ॥

सोखा : सुक-नासिक मुग-बला पिच-बहरी आबुकि बचन बहह सुनि राखी
 अपना पिच पड् अमृत जानी अबर पुन्य रवि-सुन्दर समावी ॥
 दिव चितवनि बिनु रहह अनन्दा पिच गुन सरत बहुत अस कड़ा ।
 मानस प्रेम रहह अवधारी निनि बाकिमु संगु नहिं हरी ॥
 सुख चाहह ते बाबरी बरपनि सग रहि मानि ।
 जिह कवि शीत बिद्या मरह, तपस गु बा अपनि ॥
 मृत्पा लो न पुझाह, कसु जब लारी पीजिय :
 मिश्रु मरह बनि चाह, एक खोरह बकि रेतकह ॥”

मनकरहा राज

यह एक रूपक-काव्य है। इसमें यवका ‘करहा’ बताया गया है। करहा अटे
 वा कहते हैं। सबसे पहले मुनि राजर्षिहोत्रने अपने ‘पाण्डु बोधा’ में मनके राज करहा
 की उपमा दी है। मुनिजी राजस्वामी ने अठ जनके द्वारा दी गयी इस उपमामें
 मौलिकता और स्वाभाविकता है। यं ययवरीशाल पयासी ब। कहनेने अवस्थ
 ही मनकरहा ‘पाण्डु बोधा’ से किया होता किन्तु देखिए एक पद के अन्तर्गत कोई
 रचना ‘बाधो’ नहीं हो जाती। ‘मनकरहा राज’ एक सरस और मौलिक कृति है।
 पद्य २५ पद्य है। वहाँ छन्दारकपी ऐतिहासिक मनकपी करहाक भवभषी
 करानी नहीं पयी है।

जोगीरास

इसमें ३८ पद्य है। जगम बताया गया है कि यह जीव हम्पिय मुक्तके कारण
 छन्दारमें मटक रहा है। उसे बाह्य कि अपने मनको स्थिर कर करने की
 आन्तरिक चरमें विराजमान विराजमानकी विवनायकता ब्रजल करे। ऐसा करनेसे
 वह बच-समुद्रते पार हो जायेगा—

“पेलहु हो तुम पेलहु माई, जोगी जगमहि सोई ।

बह-बह जगति बसह चित्रागन्धु जगन्धु न कलिह कोई ।

भव-वन मूक राई जमिराचल, सिधपुर-सुख बिलराई

बरम धरीनिहव शिव-सुख-जनि करि विषयनि रहिह सुमार्ग ।

अनंत कनुवप-गुण-गण राजर्हि शिन्धुकी हउं बकिहारी ।

मनिचरि भ्यानु बचहु विवनाचक जिह उतरहु भववारी ॥”

चतुर बनजारा

इसमें ३५ पद्य हैं। यह एक व्यङ्ग्य-काव्य है। इसमें उस जीवको चतुर बनजारा कहा है, जिसने अपने अनुभवों के बल पर संसारको असार समझा है। अनेक जैन कविवरों की इसी उपमा बनजारों से की है।

बीर जिनिन्द गीत और राजमती नेमीसुर डमाल

बीर जिनिन्द गीत में पद्य हैं। उनमें भयवान् महावीर की स्तुति की गयी है। पद्यों में सरसता है। राजमती नेमीसुर डमाल में राजमती और नेमीसुर के प्रसिद्ध वचनों को लेकर २१ पद्यों में लिखा गया है।

टङ्कापारास

एक भाष्यारिक्त रचना है। इसमें बताया गया है कि यह जीव भ्रामी है किन्तु अपने प्रमुख गुणों को छोड़ने के कारण भ्रामी बन गया है। उसका कर्तव्य है कि धुलकाम्य कारण कर केवलज्ञान प्राप्त करे। अन्तिम पद्य है—

‘धर्मे-सुखक धरि ध्यायु अनूपम कहि विठु केवलनाथा वे।

अपति हाम अगवती पावहु सायब-सुहु निष्वाया वे ॥

अनेकार्थ नाममाळा

यह एक कोट-ग्रन्थ है। इसके तीन अध्यायों में क्रमशः ११, १२२ और ७१ श्लोक हैं। अनेकार्थ शब्दाक्षर पद्य-बद्ध ऐसा कोट हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि है। इसकी रचना बनारसीवासी की नाममाळा के १७ वय उपरान्त हुई। किन्तु इस-जैसी सरसता नाममाळों में नहीं है। इसका रचनाकाल बि सं १९८७ आषाढ शुक्ला तृतीया पुरुषार और रचना-स्वक वैशाख-शुक्लारत माना जाता है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति पंचावती जैन मन्दिर देहली के छात्रमण्डार में निबद्ध है।

मृगाक्षि हस्ता श्रित

इसका निर्माण पं प्रणवीरामजी बि सं १७ अथवा मृगाक्षि पंचमी श्रावण के दिन त्रिवार नगर के वर्धमान मन्दिर में किया था। इस ग्रन्थ की भाषा अपभ्रंश है किन्तु उनमें हिन्दी का बहुत बड़ा अंश मिलता है। फिर भी यह अपभ्रंश की अन्तिम दृष्टि मानी जाती है।

इसमें मृगश्रेया और सावरणश्रेया श्रितिका वर्णन है। अनेक विलसितों वाली हिन्तु मृगश्रेया अपने मनीषणर बुद्ध रही। यह एक व्यङ्ग्य-काव्य है। रचाना वर्धमान श्रित है।

आदित्यप्रसारास आवि

५ प्रपरीशमकी अवधिह इतिमां साधारण ॥ किन्तु उनमें नहीं-नहीं
 वाचररुणा भी है। वे रचनाएँ इस प्रकार हैं— 'आदित्यप्रसारास' (२ पद्य)
 'पञ्चशायरास' (२२) 'वसन्तवसारास' (१४) 'विचारीरास' (४) 'साधु
 समाविशम' (१०) 'राष्ट्रवीर्यरास' (४२) 'इत्यस्य अनुप्रेषा' (१२)
 'सुगन्धदयमीशका' (५१) 'आदित्यवाचररुणा' (४६) 'अनयमीशका' (२९)
 'सहानीहमास' 'आदिनाथ स्तवन' 'आमिनाथ स्तवन' ।

५० पाण्डे रूपचन्द्र (वि सं १९८०-१९९७)

५ नाथूराम प्रेमीने 'अर्ध-वचानक' के संशोधित संस्करणमें रूपचन्द्र नामके
 चार व्यक्तियोंका संश्लेष किया है।^१ उनमें प्रथम वे हैं जिनके साथ बैठकर
 कवि बनारसीरास अव्यात्मबर्षा किया करते थे। दूसरे वे हैं जिनसे 'गोमन्तसार
 बीरकाण्ड' पढ़कर बनारसीरासका सम्प्राप्त हुए हुआ था। तीसरे वे हैं जिनमें
 संस्कृतमें 'समवसरण पाठ' की रचना की और चौथे वे हैं जिनमें 'नाटक सम
 सार' की भाषा-टीका लिखी। इनमें दूसरे रूपचन्द्र ही पाण्डे रूपचन्द्र हैं। कवि
 बनारसीरासने उन्हें कुछ अवकाश 'पाण्डे' कहकर अतिरिक्त किया है।^२ प्रेमी-
 ने पाण्डे रूपचन्द्र और समवसरण पाठ के रचयिता ५ रूपचन्द्रको भिन्न
 माना है। किन्तु सत्य यह है कि दोनों एक थे। दोनों संस्कृतके विद्वान् थे
 दोनों बनारसम विद्या पायी और दोनोंका समय भी एक था।

'समवसरण पाठ' की 'निबन्ध ज्ञानकल्याणार्था' भी कहते हैं। इसकी रचना
 वि सं १६२ में हुई थी।^३ इसकी प्रयत्तिसे स्पष्ट है कि पाण्डे रूपचन्द्रका
 जन्म कुछ ईसवी सन्मपुर नामके स्थानपर हुआ था। उनके पितामहका नाम
 माम्भ और पिताका नाम प्रमथानदास था। जनकान्धाराकी दो परियी थीं।
 पहलीसे बड़ायास और दूसरीसे हरिराम भूपति अवधराज श्रीरामचन्द्र और
 रूपचन्द्रका जन्म हुआ। रूपचन्द्रका बंधा अवधका और मोक्ष वर्म था।^४ उन्हें

१ ५ नाथूराम प्रेमी अवधमानक, पृ ८२६ ।

२ पृ ६ ६६ ।

३ समवसरण पाठ, जन्म नाम २४वीं श्लोक अष्टमि नामक अथवा नाम, दिल्ली

४ श्री प्रेमि पृ २६१ ।

५ पृ ८८ नाम, पृ २-३ पृ २३ पृ ४-५, पृ २३६ ।

शिक्षा प्राप्त करनेके लिए बनारस में जा गया। वहीं रहकर सन्ताने व्याकरण और दशम और श्रीनन्द साहित्यमें निपुणता प्राप्त की। उस समय बनारसमें ब्रह्म ही श्रीनन्द शिक्षाका प्रधान होगा।

बनारससे लौटकर पाण्डे कपचन्द दरियापुरम आये। वहाँपर ही उनका परिवार रहने लगा था। वे आगरा भी गये थे जैसा कि बनारसीदासजीके 'ब्रह्म-कथानक' में विहित है। वहाँ उन्होंने त्रिभुवा साहूके मन्दिरमें निवास किया था।^१ इस मन्दिरमें भट्टारक था उनके शिष्य प्रशिष्य ही रहकर वक्त से व्यस्त नहीं। इसी आचारपर वे नाथुरामजी प्रेमीका अनुमान है कि वे किसी भट्टारकके शिष्य थे। उनकी पाण्डे संज्ञा भी हमी अनुमानका समर्थन करती है। उस समय भट्टारकके शिष्य पाण्डे कहलाते थे।^२

पाण्डे कपचन्द त्रिभुवा से और कवि भी। उन्होंने श्रीनन्द ग्रन्थमें विवक्षित ब्रह्मार्थ पक्षको सभी वीति समझा था। उसी आचारपर वे बनारसीदास और उनके ब्रह्मार्थी शिष्योंके उस भ्रमका अनुमान कर सकें जो समयसार की राजमन्त्रीय टीकासे उत्पन्न हुआ था।^३ इसी ओर उन्होंने हिन्दीमें वीति-रचना की जो उत्कृष्ट काटिका साहित्य सभी जाती है। उनके वीति-काव्य इस प्रकार है परमार्थी दोहासतक वीतरमार्थी भ्रमकवीत प्रथम 'नेमिनाथ रामा' कहोचना गीत।

ब्रह्मकथानकके अनुसार पाण्डे कपचन्दजीका देहावसान दि सं १९९४में हुआ था।^४

परमार्थी दोहासतक

यह काव्य बहुत पढ़के 'कपचन्द नामक' नामसे 'श्रीनन्द द्वितीय' में प्रकाशित

१. बतायास इस ही समय मगर आगरे था।

कपचन्द पंडित भुवा आये आर्यम आन।

त्रिभुवा साहू देहरा किया सदा आव तिम देरा किया।

उस ब्रह्मार्थी किया निवार सख बंधायी नाम्बटमार।

मार्कण्डेय, बम्बई जनरल १६५० पृष्ठ २३०-२३१ पृ ७०।

२. श्रीनन्द साहित्य, १९४२ ई. परिशिष्ट ४ पृ ७०।

३. श्रीनन्द साहित्य संस्कृत पृष्ठ १२ २६४ २६५, और २६४ पृ ६२ और ७०।

४. विरि तिम समी बरम है बाध। कपचन्द की आई भोज।

मुनि मुनि कपचन्द के श्रीन। बनारसी भयी निह श्रीन। १९९५।

हो चुका है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति बौद्धविज्ञानमयन आश्रम में भी मौजूद है।

यह काव्य अठारह श्लोकों के मनोरम पद्यों में युक्त है। यदि आरम्भ में नमः-मन्त्रोपसृष्ट हो जाय तो वह ही परमात्मा है। कबीरने भी भावा उचित बीबकी आरम्भ को कहा कहा है। किन्तु यह आत्मा ऐसा सामान्यमान् होते हुए भी कर्मों के कारण संसार में भ्रमण करता है। उसीको सम्बोधन करते हुए कविने कहा है

“अपनी पद व विचार के अहो जगत के राय ।
मनबल कालक हो रहे शिष्टपुर सुखि विसराय ॥
मनबल मरमल ही तुम्हें बीछो कल कलाहि ।
जब किम बरहि मनसरे, कत तुल लेकत बाहि ॥
वरम अतीन्त्रिय सुख सुखी तुमहि धनो सुखसाय ।
किंचित् इन्द्रिय सुख को विचपल रहे तुमस्य ॥
विचपल सेवते जने सुखा तें न सुखाय ।
क्यों कल लारा पीचतें वायु सुवायिकाय ॥

पाँचों कवयन्त्र बुद्धात्मा होनेमें निपुण है। कविने दिग्ग-प्रतिविम्ब मात्र समुक्ति कल्पित प्रतिष्ठित हुआ है। एक स्थानपर उन्होंने लिखा — चेतनसे परिचय बिना जप-तप कर्म हैं ठीक जैसे ही बीछे कपोले बिना तुलको पटकनेसे कुछ हान नहीं आता। यदि चेतनसे परिचय नहीं तो कठोके बारण करनेसे क्या होता है। यह तो बीछे ही है बीछे बागवते रहित खेतकी बाड़ी बनाया बेकार है

‘चेतन चित्तरिक्ल बिना जप तप सबै निरतय ।
कम विम तुल निमि पटकतें जायै कल न हत्य ॥
चेतन सौं परिचय नहीं कहा जने मत बारि ।
साकि बिहूँ खेत की सुखा बजावत बारि ।

यह काव्य एक प्राचीन मुठनेमें बोहरा धतक के नायसे निबद्ध है। यह मुठका बभारसीदासके अनन्य भिन्न कुँवरपालका लिखा हुआ है।^१ इसमें चत्तिरसके युक्त एक सुन्दर पद्य दिया है

“प्रभु तेरी परम विभिन्न मनोहर मूर्ति कय कबी ।
जग जग की अनुपम सीमा बरनि न सकत कबी ॥

१ ‘जिन दिवस’ भाग ४, अंक १-२।

२ पर गुप्ता जी कुँवरपालने वि. स. १९०६-१९०७ में लिख. भा. १, पृ. १२५

३ बाबुरामजी प्रेमानीके पास भी अन्तरकव्यजी नादराने दिया था।

सकल विकार रहित विषु अंबर सुंदर भुम करनी ।
विरामरुण भासुर छवि सौहत कोटि चकन तरनी ॥
बसु रस रहित साँव रस राजत रसि इहि साधुपनी ।
आतिविरोधि अंतु जिहि बैरत तमत प्रकृति अपनी ॥
हरिसनु हरित हरि चिर संचित सुत-वर-अनि सुहनी ।
रूपकन्द कहा कही महिमा विभुवन मुकुट-मनी ॥

गीत परमात्मों

यह काम्य भी आत्माको सम्बोधन करके ही लिखा गया है । सद्गुरु अमृतमय तथा हितकारी बचनोंसे श्रोताको समझाता है, किन्तु वह चेतता नहीं । जब चेतन ज्ञानकर है और समझानेवाला कोई साधारण व्यक्ति नहीं अपितु स्वयं सद्गुरु है तब तो उसे समझना हो आश्चर्य । किन्तु वह नहीं समझता यह ही आश्चर्यकी बात है

“श्रोतन अचरक मारा यह मरं जिय भाई ।
अमृत बचन हितकारी सद्गुरु तुमहि पढ़ाई ।
सद्गुरु तुमहि पढ़ाई चित है, अह तुमहु ही शानी ।
तबहु तुमहि न लगी हूँ आवि चेतन तरव क्यानी ॥

इसके विपरीत यह आत्मा विषयोम एसी चतुर है कि कोई उसकी बराबरी नहीं कर सकता । और यह चतुरता बिना किसी पुर्बके प्राप्त हुई है । कविका आत्मरूप है कि साधारण विषयमें ऐसा तीव्र आकर्षण होता है कि वह चेतन उसमें स्वतः क्लिप्त हो जाता है ।

विचचनि चतुराई कहिय, को सरि कैरे तुम्हारी ।
दिन गुन फुरन बुझिया कैये चेतन अचरक मारी ॥

निर्बुजवाही सन्तोषी भाँति कविने कहा है कि यह चेतन अपनी वस्तुको भूँककर इतर-इतर भटक रहा है । वह आत्मलक्ष्मी कर्मको छोड़कर छिक्का ग्रहण कर रहा है । उसकी वस्तु लक्ष्मी ही अन्तरमें विद्यमान है । यदि चतुर चेतन स्वागुणकी बुद्धिसे उसे देखे तो देख सकता है

१ इसके बाद भीन परमाने लक्ष्मी समझ लैन प्रण रत्नाकर आत्मरूप स्वामी प्रकटित हो चुके हैं । इसके बाद भीन, इतिहासात्मी समझ व पञ्चाक्षर वाक्यलक्षण सन्तोषीन मरनरूप किमल्ल ५ २६९-२७९ सम्राट् मरनरूपमें बन चुके हैं ।

'अनी बसु मैमारी बिमरी कहा हूँ उत मरक ही ।
 बहिरमुख मूखा मया कज ओडि कम तुव मरक ही ॥
 निज बसु भंतरगन चिरागिन चिदार्णव निरैतमा ।
 रसाभुमव बुद्धि प्रवृत्ति हृदि न न अनुरमति अत्रमा ॥

मंगल गान प्रथम

इसे 'पंचमंथ' भी कहते हैं। इसमें तीर्थंकरके पंच अंग छप गान और मोंछको लेकर भक्तिभूषण बनना रचना हुई है। यह वाक्य बहुत अमिष ओदरिय हुआ। उक्तम कुछ ऐसा सीमर्थ है या आज भी प्रत्यक्षों आकर्षित करता है।

मयबान्धो परममें आया हुआ आनकर, हमने कुक्षरको भेजा और हमने मयबान्धो नगरोको कनक और रत्नाय बहुर अष्टितीय बना दिया। मयबान्धु निगके घरमें छह माह पूर्वमें ही रत्नोंकी बर्रा आरम्भ हो गयी। खचितवाकिनी बहिया प्रवृत्त हीनोकर अननीकी सेवा करने लगी

“आके गरम कम्बालक बनपनि साहवा ।
 मयधि शान परवान सु हृन् पदाह्वो ॥
 रचि नव वारह आत्रम मयधि मुहायनी ॥
 कनक रचनि अणि मंडित मयिर अणि बना ॥
 अणि नवी वारि पयारि वरिणा सुवच उपवन साहव ।
 मर वारि मुम्बर अनुर मुन भ रैन नव मन साहव ॥१॥”

मयबान्धु का कम्बोत्सव मनानेके लिए हमने परिवारसहित स्वयंसे बज पड़ा। मार्गमें कम्बोत्सवके मूल हुए। उनकी कमरमें लंबी ननककी किरिबियासे मयुर स्वर निदन्ता था। बहोते बज-बजकी अणि आ रही थी। अत्रा-नयनार्पे पश्य रही थीं। उन्हें देखकर तीनों ओक मोह गये

“दकदहिं घनउर नदहिं नवरस हाव आव मुहायन ॥
 मणि कनक किंकिनि भर बिचिच सु नमर मंचप साहवे ।
 नन नद चंवर हुआ ननका रैलि त्रिभुवन साहव ॥२॥”

वैद्यकज्ञानके उदात्त मयबान्धुके समवधारणकी रचना हुई। उसमें मयबान्धुकी सेवा करनेवाले गारी और नर, वरमान्धुका अनुभव करत हैं। मयन वन मयबान्धुके चारों ओर योग्य प्रमाण पुष्पीको लाकर मुख बना देत हैं। मय

कुमार मन्दोदरी की सुहावनी वृद्धि करते हैं। देव भववान् के पैरोके नीचे कमला-
की रचना करते हैं।

“अनुसरे परमानन्द सब का नारि नर ब सचता ।

आमन प्रमान बरा सुमाजहि बहौ भावन दयता ॥

पुनि कहहि मधकुमार गौबाहुक सुहृदि सुहावनी ।

पद् कमलतर सुर निपहि कमल सु धरणि मयि सोना बना ॥११५॥”

छप्पमगछ

पाँचो रूपचन्दरी लिखी हुई यह कृति श्री श्री मन्दिर बड़ौतेके मुद्रका
नं ५५ बटन नं १७२ पु ४५ ४७ पर अंकित है। इसमें केवल पाँच पद्य
हैं प्रत्येक पद्यमें छह पंक्तियाँ हैं। कविन प्रथम पद्यमें ही अपनी छप्पना प्रवर्णित
करत हुए लिखा है कि हे प्रभु। तुम्हारी अतुल महिमाका ठीक-ठीक विवेचन तो
गणराज भी नहीं कर सकतें मैं तो शक्ति शून्य हूँ किन्तु तुम्हारी कृपासे मुचरित
होकर कुछ बड़ता हूँ

‘जै जै जिन बदन क देखा सुर नर सकल कर तुम सबा
अद्भुत है प्रभु महिमा तरी बरनी न जाय अक्षय मति मेरी ।

मरी अक्षय मति बरनि न जाय अतुल महिमा तुम तर्हि

गणराज बचननि सो अगोचर पुरुष पद् अज्ञानता ।

मैं सकृति रहित निबसराज ईषति विपति काज न निब धरी ।

तुम सकृति बसि बाबाक है प्रभु किमपि बस अपेक्षन करी ॥

मेमिनाय रासा

‘मेमिनाय रासा का प्रति आमेरके मन्दारक महेन्द्रकीर्तिके प्रबन्ध-मन्दारके एक
गुटकेमे निबद्ध है जिसके पं परमानन्दजीने सं १९४४ में देखा था। ‘मेमिनाय
रासा’ एक सुन्दर कृति है। उसका आवि और जल भाव निम्न प्रकारसे है,

आदि

पणविधि पञ्च परमगुरु मण-बच-काच ति-सुद्धि ।

मेमिनाय गुण नावड अपये निर्मल हृदि ॥

आरत द्वा सुहावनी पुष्पमीपुर परमिह ।

रस गोरम परिपूरनु जन-जन कमल समिह ॥”

धन

‘क्यञ्चन् विन विनै हो चरणु को रामु ।
मैं इन लोक मुद्रावला विरप्पी किंचिन् रामु ॥
जा यह मुरचरि पावहिं चित दे मुनहिं जे काम ।
मन बाँधित कक पावहिं ते नर नाहि मुद्राव ॥”

सूटोछना गीत

यह पीठ हैइसीके शास्त्र-मण्डारम मीमूर है । यह जमेकान्त वप १ किरण
२ म प्रकाशित हो चुका है । हमने १३ पक्ष है और सभी ब्रह्मात्म रससे मुक्त
है । हमने काव्य-मन रमनोचता भी है । हमका एक पक्ष देखिए,
सिद्ध सदा कहाँ निवसहीं चरम सरार प्रमाण ।
किंचिन् मराबोझित मूपा पातव समान ॥

अन्य रचनाएँ

अपूर्व रचनाओंके अतिरिक्त साकह स्वप्न कव' और विन स्तुति नाम-
की दो रचनाएँ और प्राप्त हुई हैं । पहली जयपुरके बड़े मन्दिरके गुटक नं १२९
म लिख है, और दूसरी जयपुरके बड़ीकन्दलीके मन्दिरके गुटक नं १२९ में
अंकित है ।

पाछे क्यञ्च हिन्दीके एक सामर्थ्यवान् कवि थे । उनकी वाचाका प्रभाव
गुप्त भावना उत्पन्न करता है, जो सीधे-साधे भाव मर्मको रस-विमोह बना
देते हैं ।

५१ हर्षकीर्ति (वि सं १२८१)

हर्षकीर्ति छोटी-छोटी मुक्तक रचनाओंका निर्माण किया है । उनमें ब्रह्मात्म
और मन्दिर रसको अधिकता है । उनको मायावर राजस्थानीका प्रभाव है । इससे
विद है कि वे राजस्थानके निवासी थे । ही सक्तता है कि वे जयपुर बचवा कठके
आम-नामके राजावाले ही । उस समय जयपुर ऐसे जीवोका केन्द्र हो रहा था
जो राजस्थानी विभिन्न हिन्दीम किन्तु रहें थे । वे हर्षकीर्ति हर्षकीर्तिमूरिसे स्पष्ट-
कोश पुस्तक है । हर्षकीर्तिमूरि तथापण्डके चन्द्रकीर्तिमूरिसे लिख्य थे । उन्होंने
मुद्रावलीम केवल विद्वत् सेठ विद्वत्सेठानी स्वप्न प्रवृत्त की रचना की । हर्ष-
कीर्ति हिन्दीके कवि थे । उनकी रचनाआये रस है और अतिशीलता । रचनाओं-
का विवरण विस्तृत प्रकार है

पञ्चगति बेल

इसकी रचना बि सं १९८३ में ॥ बी। इसकी एक हस्तलिखित प्रति पंचायती मन्दिर बिस्फीमें मौजूद है। दूसरी प्रति जयपुरके ठोसिमोके बि बैन मन्दिरके गुटका नं १३१ में संकलित है। तीसरी प्रति जयपुरके बभीचन्दजीके बि बैन मन्दिरमें गुटका नं ५१ में लिख्य है। इसमें कृपिका रचना-काष्ठ बि सं १९८३ दिया है। यह गुटका बि सं १७५४ का लिखा हुआ है।

इस काव्यमें पाँच इन्द्रियोसे सम्बन्धित विषयोंका ब्यन हुआ है। उन विषयोंमें फेवनेमें बीन निवासन आता है। चौथका कर्ण्य है कि इन्द्रियोका शासन बने और भगवान्में ध्यान लगाये।

नेमिनाथ राजुल गीत

इसकी प्रति जयपुरके बभीचन्दजीके बिम्बर बैन मन्दिरमें स्थित गुटका नं० १९२ में लिख्य है। इसमें कुल ९८ पद्य हैं। सभीमें भयवान् नेमिनाथ और राजुलको लेकर भक्ति विवायी गयी है।

मोरबा

इसकी प्रति जयपुरके बभीचन्दजीके बि बैन मन्दिरके गुटका नं ११८ में लिख्य है। इसमें भी नेमिनाथ और राजुलको लेकर विविध भाषाका प्रदशन हुआ है सभी भयवद्विषयक रसिसे सम्बन्धित हैं। जाहि और धन्य हैसिए।

प्रारम्भ-राज सोरठी

“भ्दारी रे मन ओका दू सो गिरनारका बडि आवरे।

भसिजी ह्यो जु कहियो राजसटी कुल्ल व सौमे ॥ भ्दारी ॥

भक्तिम

‘ओल गवा जिन राजह प्रसु गड गिरनारि मझार है।

राजक ली सुरपनि हुषी स्वामा हर्षकीर्मि सुचारो है ॥ भ्दारी ॥”

नेमीश्वर गीत

इसकी प्रति बभीचन्दजीके बि बैन मन्दिरमें गुटका नं १९२ में लिख्य है। इसमें कुल ९९ पद्य हैं। यह भयवान् नेमीश्वरको भक्तिमें रचा गया एक भीति-नाम्न है।

धाम तीर्थकर जलझी

इसकी प्रति जयपुरके ठोसिमोके बैन मन्दिरमें विराजमान एक पाठ-संग्रहमें संकलित है।

चतुर्गति धर्म

यह प्रति श्री जयपुरके बबीचन्दजीके दिगम्बर जैन मन्दिरमें विराजमान गुटका नं ४३ और १४८ में निबद्ध है। पद्धतिका कैलसकाल वि सं १७८२ और बृषरवा म १७९९ ज्येष्ठ वशी ११ है। जयपुरके श्री पण्डित भवभरजीके मन्दिरमें गुटका नं २ और १८ में श्री इसवी प्रति संरक्षित है।

कर्म विण्ढासना

इसवी प्रति जयपुरके बबीचन्दजीके मन्दिरमें गुटका नं १९२ में लिखी है। इसमें १८१ पद्य हैं। जयपुरके ठाकुराजे जैन मन्दिरमें भी गुटका नं २९ में इसकी एक प्रति संरक्षित है।

अन्य रचनार्थ

‘अहमेवमाकवित्त’ और ‘मज्झिम निपाय-संग्रह’ जयपुरके श्री भवभरजीके मन्दिरमें गुटका नं १८ में निबद्ध है।

५२ जनककीर्ति (१७वीं शताब्दी विष्णु उत्तरार्ध)

जनककीर्ति छरहरमण्डीक्यालाके प्रसिद्ध जिनचन्द्रमूरिकी विष्णु उत्तरार्धमें समयकमकच विष्णु जयमन्दिरके विष्णु से। इनकी समुची अष्टम रचनाएँ मुद्रांगी और हिन्दीमें लिखी हुई हैं। बहुत पढ़ने की भी मोहकताके बुद्धीबन्ध केसाई इनके द्वारा मुद्रांगीमें रची गयी ‘ममिनाथ रास’ और ‘श्रीराम रास’ जैनी रचनाओंका विषय उसकेअ कर चुके हैं।^१ बीना की रचनाएँ १७वीं शताब्दीके अग्रिम पारसी कृतियाँ हैं। इनका निर्माण क्रमशः बीनालेर और जीवनमेरमें हुआ अन्त में अनुमान किया जा सकता है कि ये सभी छरहरक रचनेवाले थे। इनमें ‘छरनाथ मुक्त सावरी टीका’ पर एक विस्तृत हिन्दी टीका लिखी है जो गद्यमें है।^२

इनकी हिन्दी कृतियाँ भीत अविश्व है। सभी धनधान्य का किसी कृषि बुनियादी स्तुतिमें लिखे गये हैं। वाक्यकी बुद्धिमें भी धनधान्य रचना प्रसिद्ध है। भाषा बुद्धारी हिन्दी है जिसमें है के अन्तपर ‘छे’ का प्रयोग किया गया है। उन कृतिपौरा मज्झिम परिचय निम्न प्रकारसे हैं

१ जेजु लक्ष्मिका भाग १ पृष्ठ १६५ है पृष्ठ ३४८-४९२।

२ इसकी मणि जयपुरके ठाकुराजे जैन मन्दिरमें विष्णु म ४ में मौजूद है। इनका लेखनकाल स १७९९ वास्तिव करी ४ है।

मेघकुमार गीत

इस छोटे-से गीत-कव्यमें श्रुति मेघकुमारकी स्तुति की गयी है। इसमें कुल ४९ पद्य हैं। इसकी प्रति जयपुरके ठोक्रियोंके विम्वर श्रीन मन्दिरमें बेष्टन सं ४४० में निबद्ध है। इसमें केवल दो पद्य हैं। इसका अन्तिम भाग इस प्रकार है

‘जी कीर जिगंद् पसाह, जे मेघकुमार रिधि गाह।
छाही जगकी बीनस बीआह, बसी संपति सगकी पाह ॥
जे मुनीवर मेघकुमार जीनी चारित पाकउसार।
गुनैरु की माजीक सीस हन कनक मणन बीन हीस ॥

विनराज-स्तुति

इसकी प्रति जयपुरके ज्योत्स्नबीके हि श्रीन मन्दिरमें गुटका नं० १२५ में लिखी है। इसकी श्रुति छांगानेर में सं १७५९ अक्षगुन गुरी ६ को हुई थी। छापा में मुबरादीका पयाप्त सम्मिलन है।

विमती

इसकी प्रति भी जयपुरके ज्योत्स्नबीके हि श्रीन मन्दिरके गुटका नं ५१ बेष्टन नं १ १७ और गुटका नं १ ८ और बेष्टन नं १११८ में निबद्ध है। यह ‘बंदू की जिनशई’ से प्रारम्भ होती है। यह जनमान् विनेन्द्रकी भक्तिसे सम्बन्धित एक गीत है।

जीपाळ-स्तुति

इसकी प्रति भी उपर्युक्त मन्दिरके ही गुटका नं १ १ में निबद्ध है। इसमें जीपाळकी स्तुति है। बीछा कि इसके दीर्घकसे विरित है। जीपाळ मन्वान् विनेन्द्रका परम भक्त था। यह भक्तकी भक्ति है।

पद्य

कनककोटिके पद्य हि श्रीन मन्दिर बड़ौतके पद्य-संग्रहमें संकलित है। कतिपय पद्य जयपुरके ठोक्रियोंके श्रीन मन्दिरमें विराजमान गुटका नं १११ में भी निबद्ध हैं। जयपुरके छात्रोंके मन्दिरके गुटका नं ६४ और ज्योत्स्नबीके मन्दिरके बेष्टन नं १ २३ में भी उनके पद्याका संकलन है। एक पद्यमें उन्होंने लिखा है कि जयमान्का नाम केनेसे निरुपय ही सिवपद मिलता है,

“नर चारी जो गावै रे भाई

निहकरी सिवपुर जावही।

कनककीरति तुम पावै रे माई
अरिहत नाथ हिमै धरी ।
अब कीपो बाब लो कीम्यो रे माई
जिन को नाथ सदा मखो ॥^१

एक झुनरे पक्षमें अपने देवको अनुपम कहते हुए कविन सिखा है,
‘तुम माता तुम चात तुमही परम बन्धी जी ।
तुम अप संघा देव तुम सम और नहीं जी ॥
तुम मस्त दीनदशास्त मुझ दुप दूरि क्यो जी ।
कीही मोहि विचारि में तुम सरण पही जी ॥
संसार अर्बुतन ही तुम प्याव जये जी ।
तुम दस्तन बिच देव दुरगति माहि दियो जी ॥’^२

कर्म घटाबलि

इसकी प्रति अबपुरके कबीरदासीके दि शैव मन्त्रिमें पुटका नं १८ में सुरक्षित है। इसमें शैव धर्मानुसार बाठ बयोंकर बुरा प्रभाव दिखाया गया है। एक पक्षमें कविने लिखा है कि अपने आराध्यमें प्रेम-सिद्ध होनेसे यह बीष भव समुद्रके पार प्युँच जाता है

“अस्त्री संसार अमृत न तुम मेह कह्यो जी ।
तुम स्त्री मेह विचारि परस्त्री नेह कीये जी ॥
पहला नरक मझारि अब उपारि कये जी ।
तुम स्त्री प्रेम करेते ते संसार तरे जी ॥
कनककीरति करि माव जी जिन जगति रये जी ।
पद झुन नर नारि दुरगा तुम कहो जी ॥”

५३ कवि बनारसीदास (जन्म वि सं १६७३ मृत्यु वि सं १७)

पारिवारिक जीवन

बनारसीदासका लिखा हुआ ‘अर्द्धकथानक’ है,^३ जिसके आधारपर यहाँ उनका जीवनवृत्त प्रस्तुत किया जा रहा है। प्राचीन और मध्यराष्ट्रीय साहित्यमें ‘अर्द्धकथानक’ पहला आत्मचरित माना जाता है।

१ मन्त्रि कबीरदासीयासी प्रति ।

२ मन्त्रि बान्सेवासी प्रति ।

३ अर्द्धकथानक, १ भागद्वय प्रेमी द्वारा सम्पादित होकर, नैरोटिग साहित्यमण्डल कम्पनी से मद्रास १९५० में पुनः प्रकाशित हो चुका है ।

कवि बनारसीदासजीके पितामह धो मूलदासजी हिन्दी और फ़ारसीके विद्वान् थे। मरहारे नवाबने उन्हें अपना मोदी नियुक्त किया था। वि सं १९०८ सावन सुदी ५ रविवारके दिन मूलदासके घर पुन-जन्म हुआ। उसका नाम लक्ष्मसेन रखा गया। वि सं १९१३ में मूलदासका स्वर्गवास हो गया। उनकी धन-सम्पत्ति नवाबने के ली। माँ-बाँते जीनपुरमें आकर रहने लगे। वहाँ लक्ष्मसेनकी मनसास थी। नामा मयनसिंह बिनाहिया जीनपुरके प्रसिद्ध बौद्धी थे। उस समयका जीनपुर अधिक समृद्धिवासी था। वहाँ हीरे-जवाहरातका बहुत ठेका व्यापार होता था। वह चार कोसमें बसा हुआ था। उसमें ५२ बाजार थे। इस मगरको पठान जीनसाहने बसाया था। बनारसीदासके समयमें जीनपुरका नवाब कुलीचरण था जिसके अस्वाचारसे प्रपीडित होकर बौद्धी इधर-उधर भाग पड़े थे।

लक्ष्मसेनजी बड़े होकर आचर्य आश और सुन्दरदासजीके साथ व्यापार करने लगे। इसके पूर्व वे कुछ समय तक बंगालके मुक़्तान लोदीछाँके पोतदार भी रहे थे। सुन्दरदासके साथमें व्यापार शुरू पड़ा। उसी समय इनका विवाह मरठके सुरदास भीमास्त्री पुत्रीसे हो गया। प्रथम पुत्रके स्वर्गवासी होनेपर उन्होंने 'दोहठके पासकी सही माता' की बात की। दो बार बात करनेपर उनके सं १९४३ माघ सुदी एकादशी रविवारके दिन एक पुत्रका जन्म हुआ जिसका नाम बिक्रमाजीठ रखा गया। कुछ मासके बादकको लेकर वे मयबान् पार्स नाबकी पुत्रा करनेके लिए बनारस पड़े। वहाँ उनकी प्रार्थनापर पुत्राटीने माँकी बाँध दिया मयबान् पार्सप्रभुके यज्ञ भुक्तसे प्रत्यक्ष होकर कहा है कि इस बादककी कोई चिन्ता नहीं रहेगी यदि पार्स-प्रभुके जन्म-स्नानके नामपर इसका नाम रखा जायेगा। उसके निर्देशानुसार बिक्रमाजीठ बनारसीदास हो पड़े।

धाराई वर्षकी उम्रमें वर्षात् वि सं १९५४ माघ सुदी १२ को बीर-दासके कन्याचमसकी पुत्रीके साथ उनकी विवाह हुआ। जिस दिन पुन-जन्म परमें आयी उसी दिन लक्ष्मसेनकी दूसरी पुत्रीका जन्म और नाबीदा परल हुआ। सोना नाम एक साथ क्रिये गये। बनारसीदासजीके तीन विवाह हुए जिनमें-से प्रथम दो कर्मण स्वर्गवासीनी हो गयीं। बनारसीदासजीके भी बादक बनने समी नाल-बबडित हो गये। उनमें दो लड़कियाँ और सात लड़के थे। उसपर बनारसी दामजीने यह कहकर संतोष बाराय दिया

‘तत्त्व दृष्टि जो हैनिप, सत्पारय की मँद्रि।

उबो जा की परिगद बड़े, त्यौं ता भी उपसति ॥”

वनारसीदासजी शिक्षा-बीषा

बाठ बर्यकी अवस्थामें वनारसीदास षट्पातामैं विद्या ग्रहण करने लगे। वहाँ मुन्हे पास वे एक बर्यमें ही शिक्षा-पत्रना सीख गये। इसके परचात् १४ बर्यके हुनेपर वहाँमें पण्डित देवराजके पास विद्याभ्यास किया और नाम-माका अनेकान्न ज्योतिष मल्लवार, बीनद्यास और चार ही कुठरर स्त्रोड गये। इसी समय बीनपुरमें कपाभ्यास अययबर्मजी आये उनके साथ मानुचन्द्र और रामचन्द्र नामके दो शिष्य भी थे। मुनि मानुचन्द्रसे वनारसीदासना स्नेह हो गया और वे उनके पास विद्याभ्यास करने लगे। मुनिजीस वहाँमें पंचमस्त्रि हस्त बीन स्तवन सामयिक तथा प्रतिहस्त्यादि पाठ सीखे। इनके प्रति वनारसीदासजीकी अद्यावत् प्रशंसा थी। वहाँमें जतनी ग्रन्थक रचनामें यहाँतक कि 'माटक समवसार'में भी उनके स्मरण किया है। वनारसीदासजी कवि-महिमा जन्मवात थी। वहाँमें १५ बर्यकी अवस्थामें एक 'बनारस रचना बिही विद्यमें 'मासिबीका विद्येय बरनन' का। उसमें एक इबार बोझा बीनाई थे। येष्ट हान हुनेपर वहाँमें यह रचना मेमरीमें प्रचलित कर दी। इससे उनकी कवित्व शक्तिका परिचय हो निकला हो है।

वनारसीदासका ब्रह्म और मोक्ष

वनारसीदासना बंध बीमाक और बीन बिहोकिमा का। इनकी ब्रह्मसिद्धि विषयमें वनारसीदासने लिखा है, "रोहतरके पास बिहोकी नावका बंध का जिसमें राजबंसी राजपूत रहते थे। वे सब एक बीन मुन्हे अपनेपछे बीन हो गये। समीपार मन्वकी मन्व पहातके कारण उनके मुन्हेका नाम बीमाक पडा। वहकि राजाने उनके बीनका नाम 'बिहोकिमा' रख दिया।" इसपर टिप्पणी करते हुए वे मानुचन्द्र प्रेमीने लिखा है "इसमें इतना तो ठीक मन्वम होता है कि बिहोकी नावके कारण इनका पोत बिहोकिमा हुआ बीनके अविनाश बीनके नाम स्वाधीके कारण ही रखे गये हैं परन्तु समय बीमाक नावके उत्पत्ति-स्थलके विषयमें वे कुछ नहीं कहते।" अधिक प्रेमीकी दृष्टिमें बीमाक नावकी उत्पत्ति बीमाक स्वाधी हुई थी यह सिद्धमाक नहकाता है।" इसके अग्रह अग्रह-वारके अग्रह अग्रहकी रेलने काइतर पाकनपुर और मानु स्तैधमसे अग्रम

१ अनेकपाल, रोहतर ८-१ ५ ५।

२ अनेकपाल, परिधि, ५ ११।

३ बीन, ५५ ११८।

५ मीछ दूर गुजरगठनी और अवस्थित है। हुएनसांगके समयमें यह नगर पुर्ब रैसकी राजधानी था।

बनारसीदास और उनके सम्प्रदाय

बनारसीदासजीका जन्म स्वेताम्बर सम्प्रदायमें हुआ था किन्तु म वे स्वेताम्बर से मोर न विभक्त। उस समय जापरमें अध्यात्ममोक्षी एक सैदी या पोष्ठी थी जिसमें धर्म अध्यात्म बर्णों हुआ करती थी। बनारसीदास उसीके सदस्य थे।

‘समयसार की राजमहली’ कृत बाळ-बोब टीका पढ़कर, बनारसीदासको अध्यात्म बर्णमें जो रुचि उत्पन्न हुई थी वह वि सं० १६९२ में पाण्डे रूप बालजीसे ‘चौमट्टसार’ पढ़नेके उपरान्त परिष्कृत हुई। परिचामस्वरूप वे अध्यात्म मतके उनके समर्थक बन सके। यद्यपि बनारसीदाससे पहले ही जापरमें अध्यात्मिमाकी सैदी थी किन्तु उनके जानेके बाद उसमें स्वामित्व आया।

बनारसीदासके पाँच साधो थे १ कपलज अनुभूत समयनीदास कुँवरपाळ और बर्मदास।^१ ये सब दिन और रात वैष्णव अध्यात्म बर्णों ही नहीं करते थे किन्तु सबकुछ साहित्य-सूक्त भी करते थे। बनारसीदास और उनके इस साहित्यिक रुचिने अध्यात्मवादकी अनुभूतिमय काव्यका रूप दिया। विमल उसमें स्वामित्व तो आया ही आकर्षण भी उत्पन्न हुआ। बनारसीदासके बादका समुदा बैन-हिन्दी साहित्य उनके काव्योंकी अन्तर्भावनासे प्रभावित है।

बनारसीदासका दो सन्धोंसे मिश्रण

कहा जाना है कि बनारसीदासजीकी महारत्ना तुलसीदाससे मेल हुई थी। तुलसीदासजीने रामायणकी एक प्रति बनारसीदासजीको दी थी और उन्होंने निराले रामायण मठ माँई^२ घर^३ की रचना कर रामायणके प्रति धन्य प्रदर्शित की थी। तुलसीदासजीका स्वर्गवास वि सं १६८ में हुआ था उस समय बनारसीदासजी अवस्था १० वर्षकी थी। दोनोंकी मेल होना असम्भव ही नहीं है। ४ नाबुरामजी प्रेमीका कथन है ‘अदि पोस्वामी तुलसीदाससे छात्ता^४ होनेकी बात सब हीरी तो समझ सकेका बर्जकनामक’ में अवश्य होता। हो सकता है कि इस बर्णाको वीर समझकर ही उन्होंने अपने जीवनवृत्तमें कोई स्थान म

१ पृष्ठ १००।

२ नाटक समयसार, पुष्पिलास बाळकी हिन्दी-टीकासहित, बैन प्रकाशनालय, काशी, वि सं १९०८, पृष्ठ १५-१६, १७ १८।

३ यह घर बनारसी-निवास बरपुर, १९५४ ई ४ २४२२ संकलित है।

४ बर्जकनामक, पृष्ठ १४ २५।

दिया हो। यह सच है कि तुलसीका यद्यपि उनके जीवनकालमें नहीं था। इसके अतिरिक्त व तुलसीकी रामायणकी प्रशंसा पहले ही कर चुके थे।

दुसरे सप्त मुन्वरबादमी है जिससे बनारसीबादमी भेंट हुई थी। मुन्वर बादमीका काल वि सं १६५३ और मृत्यु वि सं १७४६ में हुई।^१ उनका रचनाकाल वि सं १६६४ से आरम्भ हुआ था। दोनों समयकाहीन है। मुन्वर प्रन्वाबकी^२ के सम्पादन पं हरनारायण घमसि रोगाकी भेंट होनेकी बात किमी है। उन्होंने यह भी लिखा है कि रोगासे आपसमें पछोका आशान-प्रदान भी हुआ था। पं माधुरामको प्रेमीने इस चैटकी सम्मन माना है।^३ अर्थकथानक में इस घटनाका भी उल्लेख नहीं है। बनारसीबाद स्वयं सप्त से और उनमें सप्त-समायमकी इच्छा स्वाभाविक थी।

बनारसीबादका साहित्य

बनारसीबादने 'नवरस रचना' 'नाममाळा' नाटक समबनार, बनारसी विद्यास अथकथानक' 'मोह विवेक मुठ माँसा और कुछ फुटकर वचन' निर्माण किया था। बनारसीबाद उत्तम कौटिके कवि थे। उनकी रचनाकालमें रस-प्रवाह है और कविजीकता भी। जीवनत आधा और स्वाभाविक आयोग्यैव उनका मुख्य पुन है।

नवरस रचना

बनारसीबादने इसकी रचना वि सं १६५० में की थी। इस समय उनकी अवस्था १४ वर्षकी थी। रचनाका मुख्य विषय था 'रस'। बनारसीबादने वि सं १६६९ में इस कृतिकी बीमतीमें बढ़ा दिया था। इस रचनामें एक हजार दोहा-बीचाईं हैं।

नाम-माळा

इसकी रचना वि सं १६७० आश्विन शुदी १ की बीनपुरमें हुई थी। यह एक छोटा-सा सप्त-बीम है। इसमें १७५ बीहैं हैं। यद्यपि इसका मुख्य आधार 'नरकय नाममाळा' की हिन्दु उद्यमें हिन्दो बीसहत्त और प्राहत्त टीनों

१ मोतीराम मेनारिवा रामकल्याणी भाषा और साहित्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन काल वि सं २००० दिल्ली संस्करण, पृ २३६-२३७।

२ अर्थकथानक, नृसिंह पृष्ठ १४।

३ बनारसी नाममाळा और देवा मन्दिर, दिल्ली, पृ १७१-१७२।

मापाओके घन्टोंका समावेश हुआ है।^१ यह एक मौखिक कृति है।

नाटक समयसार

‘नाटक समयसार’ बनारसीबासपी सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसका निर्माण बापरेमें जि सं १९९३ आश्विन सुदी १३ रविवारके दिन हुआ था। उस समय बाबसाह साहूबाईका राज्य था।^२

‘नाटक समयसार’में ३१ सोरठा-गोई २४९ सबैया-इकसीसा ८९ बीगाई १७ तेईसा-सबैया २ छप्पस १८ कवित्त ७ अठिअ और ४ कुण्डसिया है। कुल मिळकर ७२७ पद्य होते हैं।^३

‘नाटक समयसार’का मुख्य आधार है आचार्य अमृतचन्द्र (१९वीं सताब्दी विक्रम) की ‘आत्मस्फाति’ टीका जो आचार्य कुम्भकुम्भके शास्त्रमें लिखे गये ‘समयसारपाहुड़ पर, संस्कृत कवियोंमें लिखी गयी थी और राजमन्त्री पाण्डे (१९वीं सताब्दी विक्रम) की ‘वाकचोबिनी’ टीका जो दिल्ली-नगरमें रची गयी थी। किन्तु ‘नाटक समयसार’ केवल अनुवाद-साध नहीं है। इसमें पर्याप्त मौखिकता है। ‘आत्मस्फाति’ टीकामें केवल २७७ कवित्त हैं। जबकि ‘नाटक समयसार’में ७२७ पद्य हैं। अन्तका ‘बोवहुवा गुनस्वान अठिकार’ का विषय स्वतन्त्र रूपसे लिखा गया है। प्रारम्भ और अन्तके १ पद्योंका भी ‘आत्मस्फाति’ टीकासे कोई सम्बन्ध नहीं है। जिनका सम्बन्ध है वे भी गवीन है। कवय का अतिप्राम्य तो अवश्य किता गया है किन्तु विविध दृष्टान्तों अप्पा और अष्टोखाभासे ऐसा रस उत्पन्न हुआ है जिसके समस्त कलत्र कीका बँबसा है। ‘नाटक समयसार’ साहित्यका सग्न है जब कि समयसारपाहुड़ और उसकी टीकाएँ बसन्तसे सम्बन्धित हैं। ‘नाटक समयसार’में कविकी मानुषता प्रमुख है, जब कि ‘समयसारपाहुड़’में बाधनिकता प्राथम्य है।

‘समयसार’ और ‘नाटक’

अपने स्वभाव व गुण-गणोंमें स्थिर रहनेकी ‘समय’ कहते हैं। उहाँ द्रव्य — जीव अजीव धर्म अधर्म आकाश और काक — अपने गुण-गणोंमें स्थिर रहते हैं। अतः वे सब ‘समय’ कहाते हैं। उन सबमें ‘आत्म-द्रव्य’ (जीव) नायक

१ ‘मापा शास्त्र संस्कृत विविध गुणवर समेत’

२ बनारसी नाममाता दिल्ली, टीकटा कव।

३ नाटक समयसार, कवय प्रारम्भ, पद्य १९-२७ व ३४।

४ गरी मरगिन पद्य ३३वीं, व ३४।

होनेके कारण सारभूत है और उसका ही मुख्यतया कथन करनेके कारण इसका नाम 'समयसार' है।^१

आचार्य ब्रह्मबुद्धने 'समयसार' को नाटक नहीं कहा था किन्तु बभ्रुवर्मा-काव्यने अपने संस्कृत कव्यार्थमें इसे नाटकही संज्ञा प्रदान की। बनारसीबासने भी इसे नाटक कहा है। इसमें जीव ज्ञानी ज्ञानन बन्ध संहर निर्जरा और मोक्ष सात तत्त्व अभिनय करते हैं। इनमें प्रधान होनेके कारण जीव नामक है और ज्ञानी प्रणिनामक। दोनोंके प्रतिस्पर्धी-अभिनय विभिन्न कवयोंके हाथ प्रदर्शित किये गये हैं। आत्मा (जीव) के स्वभाव और विज्ञातको नाटकके ईश्वर कृष्णोंके कारण इसको 'नाटक समयसार' कहते हैं।

मानक समयसारमें रूपकत्व

आत्माकपी नष्ट सत्ताकपी रत्नभूषितर ज्ञानका स्वाध बन्धकर सर्वत्र नृत्य करता है। पृथ बन्धका नाश उपकी भावत विद्या है, नवीन बन्धका संहर ताक घोषना है, निःप्रकृत आदि बाठ बंध डकके लहनाही है। समताका जाकार स्वर्ण-का कम्पारण है, और निर्जराकी ज्यति ध्यानका मूर्धन है। इस भांति बहु धामन और नृत्यमें जीव होकर ज्ञानत्वमें डपवीर है।

‘पूर्व बंध नाशे सो वा र्जात कदा प्रकटते

नव बंध बंधि ताक वीरत उडरि कै।

निर्जरा आदि नष्ट बंध संम सत्ता वीरि

समता अकम्पकारी कै सुर भरि कै।

निर्जरा वाक् नाई ज्ञान निरर्ग्य नाई

जन्मो महार्णव में समाधि रीति करि कै।

सत्ता रत्नभूमि में मुकत जन्मो विहू काक

नाई सुखदिशि नष्ट ज्ञान स्थाय चरि कै॥^२

ए-बुनरै स्वाधपर आत्माको 'पातुरी' कहाया गया है। एक मटी बरन और आभूषणोंसे सजकर रातके समय नाट्यपाकार्ये 'पद' भाषा करके जाती है ठी वीठीको बिछाई नहीं देती। किन्तु नव दोनों ओरके धाराधन दीक करके

१ आचार्य ब्रह्मबुद्ध समयसार, पृथ्वी वि ज्ञान प्रकाशना वाटेल, प्रकाश करवरी १९५४ दूसरी भाषा अष्टावक्राचार्यकी संस्कृत टीका पृ-२।

२ बनारसीबास नाटक समयसार, श्री मुद्रिकाक ज्ञानकपी दीपा हरिद, जैन प्रकाशक-कार्यलय कनई, वि सं १९५९, अ०१ पृ २१३-२१५।

‘पट’ हटाया जाता है तो समाके सब लोग उसको महीमांति कहते हैं। ठीक ऐसे ही आत्मा जो विषयात्मके परदेमें डूबा हुआ था जब ज्ञानके समानामके समयेमें प्रकट होता है तो सभी लोग उसे देख सकते हैं। आत्माको इस रूपमें देखनेवाले भीर संसारके शायक बनते हैं

“शेन कोऊ पातुर बनाय बरन प्रामरण
 भावनि अजारे निशि भाषी पट करि कै
 हुई भीर भीरहि संवारी पट पुरि कीसी
 सकल समा क लोग हूँ दृष्टि धरि कै ॥
 तिसैं ज्ञान सागर निष्पाति प्रीति भेदि करि
 उमग्यौ प्रगट रही निहूँ कोक मरि कै ।
 ऐसी उपदेश सुनि चाहिपु कगल कोल
 सुखता सोपारै जा जाक सी बिसरि कै ॥१३५०

शेन अचेतनकी संगतिमें अचेत हो रहा है, उसीको कहिने निशाना करके देकर प्रस्तुत किया है। शेन कायाकी विनियोगमें मायाकी शय्यापर सो रहा है। मोहके झरोखेमें उसके नेत्रके पकड़ कर पड़े हैं। क्योंकि बलवान् उत्पन्न ही स्वासका शय्य है। विषय-मुक्तके किए शकना स्वप्न है। इस भूद स्थानमें आत्मा हीनो बाध मग्न रहता है,

“काया विनियोगी में करम परबक भापि
 माया की संवारी सेन आहर कमपना ।
 शैब करे शेन अचेतनता बीरु निव
 मोह की मरीर बहै कोचन को उपना ॥
 उदे बक भीर बहै वसास को शय्य भीर
 विप्रे सुपकारि का की भीर बहै सपना ।
 ऐसी मूढ़ ब्रह्मा में मगन रही तिहुँ नाथ
 धाये अम-जाक में न पावै रूप अपना ॥ १३५१”

माटक समयसारमें अभित

जनि बनारसोबासने नबया मल्लिका निरूपण किया है भीर बहू इन प्रकार है

‘अनत कीरधन विरजित लेखन बंधन पदान ।
 धनुषा समता ब्रह्मा गीता धरित प्रदान ॥१५८१”

कविनी यह भक्ति नहीं अछिन्त नहीं अछिन्त-विम्ब नहीं सिद्ध नहीं भुवनेषी नहीं धानु और कड़ी सम्पत्तिहिमेंके बरमानें समर्पित हुई है। अर्थात् कविने बरि एक ओर सगुणकी वन्दना की है तो दूसरी ओर निर्गुणकी आराधना। बतारमीशवक्ता आत्मा' ज्ञानका नहीं किन्तु भाव-श्रेयका विषय है। उन्होंने आत्मासम्बन्धी सिद्धान्तको नहीं अपितु आत्मानुभवको अपने इस गाइकका मुख्य विषय माना है। उन्होंने कहा 'युद्ध आत्मके अनुभवके अन्त्याससे ही मोक्ष मिल सकता है अथवा नहीं।' ^१ उनका यह भी कथन है कि आत्माके अनेक गुण पर्याप्तके विरहसे न पकड़ कर युद्ध आत्मके अनुभवका रस पीना चाहिए। अपने स्वप्नमें लीन होना और युद्ध आत्माका अनुभव करना ही श्रेयस्कर है। ^२ इस भाँति बनकर आत्मा श्रेय कम और कष्टास्य अधिक है। मयबान् सिद्ध युद्ध आत्मके प्रतीक है। उनको वन्दना करते हुए कवि कहता है

'भविष्यी अविकार परम रस नाम है। समाधान सरबंघ सहज भविराम है ॥
युद्ध युद्ध अविरुद्ध बनाहि धर्मत है। कथत सिरीमनि सिद्ध सदा अवर्धत है ॥'

त्रिपदाय यह ही है, जिसने युद्ध आत्माके वर्णन कर किये हैं। यह युद्ध आत्मरूप त्रिपदाय बट-अभिरमें विद्यमानता है। कविने उसके बरानोंमें अपनी भक्ति समर्पित करते हुए कहा है,

'जामें कौन्कचौड के भुमाव भविष्य से सब
अगी ग्वाव छकति विमल सैतो आस्ती ।
हमंज डचौठ लीपी अंतराव अंत कीपी
गपी महामोह मनी परम महारसी ॥
तोहै बट-अभिर में जेतव प्रगट रूप
धूमो त्रिपदाय चाहि बँदत बमारसी ॥' ^४

१ युद्ध परमात्मा को अनुमी अन्त्यास कीजै
यहै मोक्ष रस परमात्म है इतनी ॥
आत्म सम्पत्ति १।१९५, १ १९५५।

२ गुण परती में द्विष्ट न दीजै ।
त्रिपदाय अनुमी रस पीजै ॥
आप समझ आप में लीजै ।
इतनी भक्ति आनुपी कीजै ॥

यही १।१९५ प १८९।

३ यही भवभावरण पृ ५-६।

४ यही १।१९५, पृ ५९।

बनारसीदासने आत्माको विशालम्बके नामसे भी अभिहित किया है। विदा-
नम्बकी स्तुति करते हुए उन्होंने कहा

“शोभित मित्र अनुसूति ज्ञान विशालम्ब भगवान् ।

सार पदार्थ ज्ञातमा सकल पदार्थ ज्ञान ॥”

बनारसीदासजीने समुण ईश्वरकी शक्तियों की अनेकानेक परीक्षा निर्मात्र
किया है। भगवान् पार्श्वनाथकी स्तुति करते हुए उन्होंने कहा कि भगवान्का
स्मरण करने-मानने ही मनुष्योंके सब भय दूर हो जाते हैं।

‘मह्य-कर्म-विश्व परम धर्म-हित सुमिरण भगति भगति सब करसी ।

सकल-सकल तन सुकुट सपत्त-कर्म कर्मठ ब्रह्म विव भगवत बचरसी ॥”

भगवान् विनेश्व पापकी धूलको हथालेके छिपे बाणके समान हैं। वे
भक्तोंके भयको दूर करते हैं। उसे कभी नरकमें नहीं जाने देते और उसे सब
समुद्रोंसे पार कर देते हैं। वे भगवान् कायदेबदे बलकी अग्निकी ज्वालके छिपे
आग्नि के समान हैं

पर-मह्य-ब्रह्मद्वार सकल ज्ञान-गत सब-भय दूर ।

कर्मद्वार नरक-पद-उपकरण भगवत जगद भय जल धरन ।

नर-सकल-मह्य-मह्य-द्वारद्वार ज्ञान ज्ञान परम भगवत करन ॥”

जिन-विश्व भी विनेश्व-जैसा ही है। उसका यद्य अपनते हृदयमें प्रकाश
करना होता है। अस्मिन् बुद्धि पवित्र हो जाती है।

‘जा की जल जपत प्रकाश जनी हिरदै में

छोड़ सुखमति होइ झुपी तु मक्षि-सी ।

कहत बचरसी सुमहिमा प्रगट जाकी

सोई जिन की छवि सुविद्यमान जिन-की ॥”

बनारसीने साधुकी शक्ति करते हुए कहा है कि साधु, वर्मना प्रथम और
अयोध्या उन्मूलन करता है। वह परम ध्यात होकर नमोति करता है और मोक्ष
कर संसारमें विराजता है।

“वर्म की मह्य भय को विह्वल है

परम परम है के कर्म सों कर्यो है ।

ऐसी सुविद्या सुखदाक में विराजमान

विरति बनारसी नमसकार कर्यो है ।

जिनवाणी भगवान्के हृदयरूप साक्षात्से निरूपकर दाख्यकर समुद्रमें

प्रसिद्ध हुई है। इसे सम्प्रवृत्ति कीज जाग सजते हैं। मिथ्यावृत्ति नहीं। ऐसी मित्र
बानी ससारमें सदा अवलम्ब हो।

‘जानु हरे दूध सीं बिकली सरिता बस है मुल-सिन्धु समानी ॥

पार्यं जगत नपातम कच्छम सरल स्वल्प मिथ्य बगानी ॥

सुख छपी न कपी कुरपुत्र, सदा जग मीहि जमी विपबानी ॥

बनारसी बिकास

यह बनारसोद्यानकी फुलकर रचनाओंका संग्रह है। आरम्भके टीका
अवलीबलने बि. सं. १७ ई. बी. सुदी ९ को जनरी बिनरी रचनाओंको एक
स्वानपर संकलित कर दिया था। और उन संकलनका नाम रखा था ‘बनारसी
बिकास’।^१

बनारसी बिकास में बनारसीबासकी ५ रचनाएँ संवृत्ति को बनी हैं।
उनमें ‘कर्मप्रवृत्तिविधान’ नामकी कविता वृत्ति भी है, जो फागुन सुदी ७
बि. सं. १७ को समाप्त हुई थी। सुकत मुन्नाबकी संस्कृतके सिन्धु
प्रकरणका पद्यानुवाद है। इसमें कुछ पद बनारसीबासके बिज कुँवरपालके रचे
हुए हैं।^२ ‘जान-बाबनी’ बीरामार नायके किसी कविकी रचना है। इसमें
बनारसीबासका कुछ-बीरल दिया गया है। अवशिष्ट रचनाओंमें ‘विनयहसनान’
‘सिद्धमन्दिर’ ‘विजयवीरी’ ‘अवयिन्नु जगुर्वीरी’ ‘छारबाष्टक’ ‘नवदुर्गा’
विधान अष्टप्रकाशविनपूजा वसुधैव कुटुम्बकम् अवितलारके छन्द ‘छानिनाम’
‘स्तुति’ ‘छानु बन्धना’ और फुलकर पद्य पंचपरमेष्ठी और बेरिबोनी बलिषे
सम्बन्धित हैं। ‘जान बलासी’ अष्टावली काव्य ‘अष्टावली पीठ अष्टारम
पदपत्ति और ‘परमार्थ द्विदोषना’ आत्मा ब्रह्म अवका विद्वशी बन्धनामें रची
गयी वृत्तिर्मा है।

अपर्युक्त ५ रचनाओंमें केवल आरम्भके निर्माणका वाक दिया है। ‘जान-
बाबनी’ बि. सं. १९८९ में ‘विनयहसनान’ बि. सं. १९९९ में सुकत मुन्नाबकी
बि. सं. १९९९ में और ‘कर्मप्रवृत्ति विधान’ बि. सं. १७ में रची गयी थी।
बनी हुई वृत्तियोंका रचनाका अर्थक्यापनकसे विहित हो जाता है।

बनारसी बिकास की फुलकर रचनाएँ छतम नाम्यकी निरर्धन हैं। उनमें
बलि और बाष्पातिपदा दो हैं जो माधोप्येय की कम गयी हैं। इसके छान-छाव

१ बनारसी बिकास अष्टपुर, ५ २४२।

२ इसमें ४४ पद हैं, जिनमें २१ छन्दों को बनारसीबासका नाम है, और बचके बार

१. २४ २७ ३०, ३ और २, बर ज्योति ‘भीरा’ या कुँवरपालका।

अर्थकारणका प्रयोग भी वैज्ञानिक रूपसे ही हुआ है। भाव और कला दोनों ही परस्परमें सौम्य हैं और मर्यादा भी।

एक स्थानपर कविता प्रकट की है कि न जाने कब इस मनकी दुखिया जायेगी और यह अपन निरवधानके स्मरणमें कौ लगायेगा। न जाने कब हमारे मन-बातक आरमाकपी बनसे टपकनेवाली अमृत-मूर्च्छिका स्वाद सेगे तथा न जाने कब हम उनकी समता त्याग कर आत्माका शुभ ध्यान लयायेंगे

‘दुखिया कब है या मन की।

कब दिनरात निरवधान सुमिरी तबि सदा जन जन की।

कब तबि सां पार्से हम बातक, हृद अघट्य पद बन की।

कब शुभध्यान ज्यों समता गहि, कर्म न समता तन की॥

दुखिया कब है या मन की॥”^१

सन्त वक्तव्योकी भाँति बनारसीबासन कहा कि यह जीव मूर्ख है क्योंकि यह उस ईश्वरको सकारण हँसता फिरता है जो उसके घटमें ही विराजमान है। उसका यह हँसना बस्तुरी भूमके अवयवकी भाँति ही व्यर्थ है

ज्यों धुनबासि सुवास सों हृदय बन होरै।

त्यों तुझमें सेरा बनी तू सोजत होरै॥

करता भरता भोगता बर सदा बर माहीं।

जान बिना सबगुन बिना तू समुलत बाहीं॥

बनारसीबास ईश्वरको देवाना देव मानते हैं। उसके चरणाना स्पर्श करने मानसे ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है। अतएव दोषोपे रहित उस प्रभुकी सेवा करना परम वर्तव्य है

“अगन में जो देवन का देव।

आहु चरन परसे हृत्प्राप्तिक होन मुक्ति स्वयमेव॥अगत॥

नहि मनरोग न अम नहि बिषा होय अमरद भेन।

मिटे सबद जाइ ता प्रभु की करति बनारसि सेव॥अगत॥”^२

धारवा देवीकी स्तुतिमें भाव-विमोछा है तो अनुशासकी छटा भी। उसमें संकीर्त-सा मानव्य प्रतिहित है,

अर्चना अर्पणा सदा निर्विकारा। विषै कायिका लंछिनी रंग धारा॥

पुराणात विद्येय कनकुरार्णा। जया देवि जागोदरी शैव बानी॥

१ अमृतमन्दर वंशिन वन १३ बनारसी विनास अस्तुर, पृ २३२-२३३।

२ वरी, पृ १३, पृ २३२।

कपोका मुद्रका विवेका विधानी । जगज्जन्तुमित्रा विचित्रावसानी ॥
समस्यावकोका निरस्ता विधानी । नमो देवि भागीश्वरी जगन्मात्री ॥^१

अर्थकथानक

अर्थकथानककी रचना वि. सं. १९९८ में हुई थी।^१ इसमें बनारसीरासके जीवनके ५५ वर्षकी 'आत्म-कथा' है।^२ यह नाम स्वयं बनारसीरासका दिया हुआ है। उन्होंने अपनी १ वर्षकी आयु मानकर ५५ वर्षोंको बाकी आयुमें सामिल किया और इसका नाम 'अर्थकथानक' रखा। किन्तु इस रचनाके दो वर्ष उपरान्त ही उनका स्वयंवास हो गया। अतः 'बनारसी-प्यति' में आपेक्षा जीवन होमा एक अनुमान-मात्र है।

इस कथानकमें ५७५ दोहे-बीपादवाँ है। उनमें बनारसीरासके जीवनकी धर्मस्वर्णों बटनाओंके साथ-साथ उत्कृष्ट जीवन मारतकी सांसारिक अवस्थाका भी बचार्थ परिचय दक्षिण है।^३ आगे १ वर्ष बहूँके साधारण भारतीय जीवनका दृश्य व्योका-रयो उपस्थित किया गया है।^४

यह एक सफ़ा आत्म-कथा है। इसमें जो कुछ कहा गया है, संक्षेपमें और निष्पक्षताके साथ। बनारसीरास चतुर्वेदीने लिखा है अपनेको उत्कृष्ट रखकर अपने उत्कृष्टों तथा बुद्धिमत्तोंपर बुद्धि हाकना उनको विवेकनी ठरावपर बाधन छोड़ पाव रती ठीकना उचित एक महान् कथापूर्ण कार्य है।^५ डॉ. मत्तामसाह पुस्तका कथन है, 'कभी-कभी यह देखा जाता है कि आत्म-कथा लिखनेवाले अपने चरित्रके वाक्पिमापूर्ण अंशोंपर एक आवरण-सा हाक देते हैं—यदि उन्हें सर्वथा बहिष्कृत नहीं करते—किन्तु यह शेष प्रस्तुत केवलकर्म निकलता नहीं है।'^६ डॉ. नाचुराम प्रेमीने भी लिखा है इसमें कविने अपने युवकोंके साथ-साथ शोषका भी उद्घाटन किया है और सर्वत्र ही सहासि काम किया है।

१. आत्म-कथा कथ. ७, १ बनारसी विज्ञान ५ (१९९-१९७)।

२. अर्थकथानक, कथ. १७० ५ ७४।

३. वही, पृ. १११ ५ ७५।

४. अर्थकथा डॉ. मत्तामसाह पुस्तक द्वारा सम्पादित हिन्दी साहित्य चरित्र, प्रकाश विद्याविद्यालय, भूमिका पृ. १५।

५. बनारसीरास चतुर्वेदी, हिन्दी का जीवन आत्मचरित्र" जनेद्वारा वर्ष १, चित्र १ पृ. ११।

६. वही, पृ. १४।

७. अर्थकथा प्रकाश भूमिका पृ. १४।

अर्थकथानक, वर्ष १ भूमिका पृ. १२।

इसकी भाषाके विषयमें स्वयं बनारसीदासजीने कहा है कि बहु मध्यदेशकी बोलीमें लिखा जायगा।^१ मध्यदेशकी सीमाएँ बरसठो रहो हैं किन्तु प्रत्यक्ष परिवर्तनमें ब्रजभाषा और यही बोलीके प्रदेश घामिन्त रहै ही है।^२ बनारसी दासजीकी भाषा ब्रज भाषा है किन्तु उसमें पश्चिमिन्त यही बोलीका भी सम्मिश्रण है। डॉ. श्रीरामानुज वर्मन लिखते हैं मध्यकालक में उर्दू-अरबीक शब्द बाङ्गी शास्त्रमें जाये हैं और अनेक मुहावरें तो आधुनिक यही बोलीके ही रहै जा सकने हैं। इसपर-से यह निष्कर्ष निकलता जा सकता है कि बनारसीदासजीने मध्यकालक की भाषामें ब्रजभाषाकी भूमिका केन्द्र, उसपर मुसलमानोंमें बढ़ते हुए प्रभाववाली यही बोलीकी पुट दी है और इसे ही उन्होंने मध्यदेशकी बोली कहा है।^३

‘मध्यकालक’के शब्द है कि बनारसीदासके जीवनमें सबसे बड़ी विरोधता यह थी कि वे अष्टाद्वी और बुधार्थन सिद्धयेन करते हुए अपने जीवनको अष्टाद्वीकी ओर ही बढ़ाते गये। वे किसी एक रीति रिवाज या परम्परासे चिपने न रह सके। एक समय या जब आधिपत्यो ही उन्हेंनि आना धर्म समझ रहा था। परिवर्तन हुआ और वे श्रीमद् भगवद् गीता में गये।

“कई शाय कोऊ न लखै लखै अबरमा बाह ।

श्रीमद् भगवद् गीता छन्द भए मित्रि बाह ॥

कई होत सुम करम के गई अनुम की दाहि ।

छानै छुलि बनारसी गहा करम को बानि ॥”

निष्ठ अस्ति प्राज्ञ बाह जिम भीम । हरसम बिनु न करै इनीम ।

शौर्य नेम बिगिठि लखरे । सामाधिक पदिकीवा करै ॥

हरी आनि रातो परावी न । आन जोष बैगन-नचनान ।

पूजा बिधि माझे दिन बाह । बड़े बीमारी पद सुख-बाह ॥^४

बनारसीदासजी यह श्रीमद् भगवद् गीता प्रतीति बहनी हैं गयीं। अब श्रीराधादेवे शास्त्र करते साथ ही श्रीमद् भगवद् गीता ही-प्राधान्यको गये। अष्टाद्वीकी पूजा करनेके उपायों से दृष्टिमात्र रहैवे। बहाँ घामिन्त-बुधार्थ और अष्टाद्वीकी चरित्रमें एक चरित्र बनाया जिसका वे निम्न प्रति बाह करते थे।^५ उन चरित्रको देखिए,

१. अष्टाद्वी की बोली दाहि । नहिना बाह नही द्विज घोनि ॥

अष्टाद्वीक १०७, ११२ ।

२. अष्टाद्वीक १०७, ११२ ।

३. डॉ. श्रीरामानुज वर्मन ‘मध्यकालक’की भाषा ‘मध्यकालक’, पृष्ठ ११ ।

४. अष्टाद्वीक १०७ - ११२ पृष्ठ १११ ।

५. अष्टाद्वीक १०७ - ११२ पृष्ठ ११२ ।

“श्री विसरीन बरस सूर रूप राय सुवसन ।
 अशिरा सिरिआ बैधि करहि शिव देव प्रससन ॥
 लसु बंदन सारंग छान नंदनत कंदन ।
 आकीस पैतिस तीस आप काया कवि कंदन ॥
 सुखरासि बनारसिदास मनि निरखत मय भागदई ।
 हमिनापुर गङ्गपुर बाणपुर सात ढंढु घर बंदई ।”

मोह बिबेक मुड

इसमें ११ पद्य हैं । मोह-बीगई छन्दोका प्रयोग किया गया है । इसकी बनेकलेक हस्तलिखित प्रतिमाँ बीन-बग़ारोंमें पायी जाती हैं । बीनानेरके करतर बग़रीय भग़ारके एक पुटकेमें ‘बनारसी बिबेक’के साथ यह भी लिखा हुआ है । इसकी पाँच प्रतिमाँ बग़पुरके सास्र भग़ारोंमें भी सुरक्षित हैं । बीनानेरवाली प्रतिके भनिसे सम्बन्धित दो पद्य इस प्रकार हैं

“श्री शिव भक्ति सुदई जहाँ सदैव मुनिवर संग ।
 कई ओज तहाँ में बही कम्पी सु आवन रंग ॥१५८॥
 अविमध्यरिणी विवयगति आवन नय सहाय ।
 कई काम पैसी जहाँ, मेरी वहाँ न बसाय ॥१६॥”

बीन बरस बीतरायी है । रागक बरस है मोह । मोहनो बीतवेमें हो बीनकरी सारंगदा है । जान बड़ी है जो मोहनो बीत के । अत मोह और बिबेकक यह मुड बीन-गरनराके अनुकूल ही है । बनारसीदासके पूर्व इस विषयपर बनेक कृतिमाँ रची गयी थी । उनमें यह पाठ मोहनो ‘मोहपराजय’ बारिषत्सुरिक ‘जानसुपौरय’ हरदेवका ‘मनपराजय करि’ बागदेवका ‘मनपराजयकरि’ और पाहकक ‘मनकछापा’ प्रसिद्ध हैं । समीमें मोह और बिबेकका मुड है । बनारसीदासने अपने पूर्ववर्ती तीनों कवियों — अथवा अन्तर्गत और बोपाके ‘मोह बिबेक-मुड’ का सम्बेध किया है । वे उनसे प्रभावित थे । तीनों हिन्दीमें लिखी गयी थीं । प्रस्तुत कृतिके लिए वे मूकामार कपी ।

बनारसीदासने ‘मोह-बिबेक-मुड’ का निर्माण नवरत्न रचनाके बोझीमें प्रमाणित करनेके अनुराग ही किया हुआ । ‘राम’ की प्रतिक्रियासे यह स्पष्ट हो है ।

१ कपी १५८५९ पृष्ठ ५५ ।

२ बीन बाकी वर्ष ६, संक १६-२४ में भी अन्तर्गतकी गारदा-रता प्रचारित हो चुका है । बीन-मुलक-अधवार, अशिरादीना राधा बग़पुर से मुलकामार बनें भी बिबेक मुड है ।

हमस मिय है कि यह उनकी प्रारम्भिक कृति है। अब उनकी तीसरी बनारसीजी अन्य प्रौढ़ कृतियों में नहीं मिलनी। आज द्वितीयक जनेट अग्रिमप्राप्त कवि है जिसकी प्रथम रचनाएँ उनकी प्रथम नहीं होती।

इन कृतियों के अन्तर्गत तीन पद्यों बनारसीजी नाम भी दिया हुआ है। फिर भी प्रामाणिक निष्कर्ष के लिए ठोस विचारकी आवश्यकता है।

माँझा

यह रचना जयपुरके बपीचन्द्रबाबू मन्त्रिक के गुटका नं० ७ में निबद्ध है। इसमें ११ पद्य हैं। इसका छंद पंचि केनिए,

‘माधुपत्रमम अमोक्षक हीरा हार गंगाको गामा

मये पद

१ माधुराज प्रेमीके द्वारा सम्पादित ‘बनारसी विद्याम’ में तीन नये पदाका संग्रह दिया गया था। अब जयपुरके प्रकाशित बनारसी-विद्याम में दो और नये पदाका प्रकाशन हुआ है। पाठ्यो मन्त्रिक जयपुरके गुटका नं० २२ पृ० ११६ पर मैने बनारसीराजका एक नया पद देखा है—तू बस भूको तू बस भूको अहानी है प्राणी।

५४ मनराज (१०वीं शती क्रिस्तम उपाधय)

उनकी रचनाओं में यह सिद्ध है कि मनराज सदासी अज्ञानीके कवि थे। वे बनारसीराजजीके समकालीन थे। उन्होंने अपने मनराज-विद्याम में भी बनारसी रामजीका लार लरल दिया है। उनकी रचनाएँ भी बनारसीराजकी भाँति ही आध्यात्मिक-रसमें ओगड़ी हैं। उन्होंने नहीं सोचीका प्रयोग किया है। जो सदा है कि वे केवल आत्म-नाम किसी प्रदेसके रहनवाले हों। जैसे उनकी कृतियों में यह विदित नहीं होता कि वे कहांके निवासी थे और उनके माता-पिता का क्या नाम था ? जो बरपुरचन्दजी कामजीबानम कहें मनुष्यका प्रौढ़ विद्वान् बता है क्योंकि उनकी रचनाओं में लक्षण आशोक प्रयोग किया गया है। किन्तु यह आपार बहुत निर्दल है। केवल संस्कृतके लक्षणका प्रयोग करने-मानके कोई संस्कृतका उद्भूत विद्वान् नहीं बता या सकता। उसकी रचनाओं का सौन्दर्य विवेक विमल प्रकाश है।

१ भा. कामन्दक-रत्न-संग्रह में १० वीं शती क्रिस्तम उपाधय में १४ दिग्गज १० पृष्ठ १११।

मनराम-बिछास

इसकी प्रति बयपुरके ठोकेवाले विषम्बर जैन मन्दिरके बेहम नं १९५ में निबद्ध है। इसमें कुछ १ पृष्ठ और ९९ पद्य हैं। इनका संज्ञा किन्हीं किष्कि-वास नामके व्यक्तिने किया था। उसने लिखा है "मेरे बित्तमें ऊपर की नुबमनराम प्रकाश। सोचि कीनए एठे दिये बिहारीराम ॥ अर्थात् बिहारीरामने देवक संज्ञा की नहीं किन्तु सम्पारण भी किया था तभी तो वह मूक पद्योंको मुख कर सके। यह काव्य सुभाषितोंसे सम्बन्धित है। इसमें दोहा सबैसा और कवित्त आदि विविध छन्दोंका प्रयोग किया गया है। प्रारम्भमें ही ईश-परमेश्वरी की वन्दना-में मग्न है, और सरलता भी

'करमादिक परित की हौ अर्द्धत नाम सिद्ध की काज सब सिद्ध को मजब है।
कसम सुगुण गुन आचरत आकी संग आचारज मपति बसत जाके मज है ॥
कपाळाच आच है कपाति सम हात साच परि पुरन की सुमिरन है।
ईश परमेश्वरी की नमस्कार मंत्रराज चाहे मनराम जाई पावै निज जन है ॥

मदवान् के स्वरूपका विवेचन करते हुए मनरामने किया है कि - वह वदवान् निर्विकार, निवृत्त निष्कल निर्मल क्योति प्यानगम्य और शान्त है, बतला वर्जन कदांतक किया जाये। जिस किमीने मदवान् के इस करवी मान किया है, छिद्र कडे विरहमें कुछ और करनेकी नहीं रह जाता

"निर्विकार निवृत्त निष्कल निर्मल क्योति—
प्यानगम्य प्यानक कदा की पादि बरनी।
निहचे सकल मदराम जिन जाकी ऐसी
छाकी और करिज रहपी न कहु करवी ॥१५॥"

मोहकर्मकी छामर्ष तभीको विहित है। इसने जबके तभी प्राचिर्बन्तो प्रमये तान रखा है। प्रमव्यात् ही वह जीव अदेवोंकी देव मानकर इनकी सेवा करता है। तबसा देव तो ऊपर की देवने भीतर ही रहता है, जिसे मूकपर वह इधर-उधर भटकता फिरता है

"देवो अतुराई मोह करम की जग ते
प्राची सब राखे जन सागि कै।
देवनि की देव सी सी बसै निज देह आँख
छाकी मूक सबत अदेव देव सागि कै ॥१६॥

मनरामने अंशानी तार्क्यता इसीमें मानी है कि वे आराध्यकी ओर कबे रहे,

और उनके बनाये मागपर बचनेमें ही अपनेकी कृतकृत्य मार्गें । यह पद्य इस प्रकार है

जैन सफ़ल निरपे लु निरंजय
सोस सफ़ल बमि ईसर झाबहि ।
अथन सफ़ल त्रिहि सुवत सिद्धांतहि
सुपन्न सफ़ल अपिए जिन बाबहि ।
दिशों सफ़ल त्रिहि धर्म वसी सुव,
करन सुफ़ल दुम्बहि प्रसु पाबहि ।
जाल सफ़ल मवराम बहै गवि
ज परमारथ के पय बाबहि ॥१०॥

मयवान् के नामकी महिमाका उत्प्रेष करतें हुए कवि मनरामने लिखा है कि यदि शुद्ध मनसे चौबीस जिनेश्वरके नाममात्रका उच्चारण किया जाय तो बचकी सप बीड़े छहर सकता है

‘मय शुद्ध मनराम चौबीसी जिनैव नाम—
मन्त्र अपे अथ व्याख कैसे छहराति है ॥१॥

यह संसार बहुत ही विभिन्न है । इसमें अनिष्टतर पूर्ण रहते हैं । वे चलका मोयी कहते हैं जिसकी बेबक बेप-भूषा योगकी है किन्तु सबके मनको नहीं देखते जो मोयीसे मरा है । जो मनको बेबककर चौबीसी वरदा करते हैं वे ही जानी हैं । ऐसे व्यक्ति सम्पत्तिसे भी अधिक मोबीक्ष सम्मान करते हैं,

‘मन भोगी तन भोग कलि भोगी कहत विद्वान् ।
मन भोगी तन भोग समु भोगो जानत जान ॥१॥
समै जगद सुत चाह पर पुद्गल भोग समभाव ।
ए समझै मवराम जो भोक्त सौ जग जान ॥२॥

रोगापहार-स्तोत्र

इसकी प्रति जयपुरके बबीलमन्त्रीके दिगम्बर जैन मन्दिरमें पण्डितमान मुटका नं १७ में लिख है । इसमें रोगीको दूर करनेके लिए मयवान् जिनेश्वरसे प्रार्थना की गयी है । भक्त-कविकी विश्वास है कि मयवान् जिनेश्वरकी प्रार्थनासे आत्मानमें ऐसे विभुज भावोका संचार होगी जिससे शारीरिक और मानसिक सभी रोग स्वतः विभोग हो जायेंगे ।

चत्तीसी

इसकी प्रति जयपुरके छोटियोकें दिगम्बर जैन मन्दिरमें मुटका नं ११ में

निबद्ध है। इनमें १४ पक्ष हैं और सभी मयवान् जिनेश्वर की धर्मिण्डे सम्बन्धित हैं।

बड़ाठकका

इसकी एक प्रति जयपुरके बबीचम्बजीके दिगम्बर जैन मन्दिरमें विद्यमान गुटका नं० १२९ में मौजूद है। गुटकेका केवलकाल ही १७ ४ मासाड सुदी ५ दिना हुआ है।

बलरमाका

इसकी प्रति जयपुरके बबीचम्बजीके दिगम्बर जैन मन्दिरमें गुटका नं० ४२ में संकलित है। ५२ बलरामे-ले प्रत्येकपर एक-एक पक्षका निर्माण किया गया है।

धर्मसहेली

इसकी भी प्रति जयपुरके बबीचम्बजीके दिगम्बर जैन मन्दिरमें गुटका नं० १६२ में निबद्ध है। यह गुटकेके पृष्ठ १६३ पर किया हुआ है। इसमें कुल २ पक्ष हैं। इसमें जैन धर्म की महिमाका बल्लेख है।

पद्म

इसके अनेक पक्ष प्राप्त हैं जिनमें मयवान् जिनेश्वरके मन्दिर रचना ही आधिक्य है। इनके ही पक्ष जयपुरके बबीचम्बजीके मन्दिरमें विद्यमान गुटका नं० १७ में संकलित हैं। उनके शीर्षक अथवा 'वेतन यो घर माही ठेरो और 'जिन हैं नरमवि यो भी ओयो' हैं। इनका हीसरा पक्ष इसी मन्दिरके गुटकानं० २९ चौका पर इसी मन्दिरके गुटका नं० ९९ में निबद्ध है। चौथेका शीर्षक बलिनी आज पवित्र भई मेरी से प्रारम्भ हुआ है। यह पक्ष ओकिमाक जैन मन्दिरके गुटकानं० १११ में भी किया हुआ है। मल्लामके अनेक घर पक्ष हैं जिन मन्दिर बबीचके 'पवनहृद्' की एक हस्तलिखित प्रतिमें संकलित है। अतिथय जैन महावीरजी के शास्त्रमन्त्रारकी एक बबबकी हस्तलिखित 'पञ्चसूत्र' की प्रतिमें भी मैंने मल्लामके कतिपय पक्ष देखे हैं।

गुप्ताक्षरमाका

इसकी एक हस्तलिखित प्रति जयपुरके ठोकिमोके दिगम्बर जैन मन्दिरमें गुटका नं० १३१ में संकलित है। यह गुटका वि० सं० १७७९ मन्दिर बबीचका किया हुआ है। इस कागजमें ४ पक्ष हैं। सभीमें मयवान् जिनेश्वरके गुर्वाका वर्णन है। 'हे माई तुने नरमवि प्राप्त किया है, इसलिए मयवान् जिनेश्वरकी मन्दिर घर ऐसे मावले मुक्त पक्ष भेगिए,

“मग बबब नर का ओकि फीरे वीर सारह मावरे।

गुप्त अक्षरमाका गुप्त गुणा अक्षर गुण पाई रे।

पहम पुरष प्रणमौ प्रथम र भी गुर गुन घाराभी रे ।

म्हान म्हाय मारिणि कई होई सिधि सन साधा रे ।

भाई नर मन पायो मिनल को ॥”

इत जोवन हीरा-लसे बग्यको यों ही मैना बिया भगवान्का मजन नहीं

रिया

हा हा हायो जिन कीर करि करि हासी धापी र ।

हारा जमय बिचारिया बिना मजन भगवाभी रे ॥

पहै गुन भर सरदई रे मन बच काव आ पाहारे ।

भीति गई अति सुन कहै, सुन न स्थापै लाही र ॥

भाई नर भव पायो मिनल हा ॥

५५ कुँवरपाल (वि सं १९८४)

कुँवरपाल कवि बनारसीछासके जनम्य विर भे । जिन पाँच साचिबानें बैठ-
कर बनारसीछास परमार्थ-बर्णन किया करते थे उनमें कुँवरपालका भी नाम है ।^१
बनारसीछासके उपराज कुँवरपाल सचमाय्य हो गए थे । पाण्डे इमराजने उन्हें
कौरपाल ग्याता-अधिकारी कहा है ।^२ मद्रोशाम्याय मेधविजयने ‘पुष्पि प्रबोध’ में
इसकी सर्वमायगा स्वीकार की है ।^३ बहिनै स्वयं समर्पित बत्तीसी न पुरि पुरि
कुँवरपाल जस प्रगटपी लिखा है ।^४

१ अथर्ववृत्त वृत्त प्रथम कविषु बहुमुख नाम ।

तनिय मदी-राजान नर कौरपाल मुखवान ॥

पमदान ये वंश जन निधि बैठे इक छोर ।

वरमारव बरवा करें इनके कथा न और ॥

नाटकमन्त्रमार, मद्रासि वष २२ २० २ २३७ ।

२ काव बोध यह जीनी भोगे मो लुम मुखहु बहूँ मैं लीने ।

नमर आनरे मे हिनकारी कौरपाल ग्याता अधिकारी ॥

बाबू देवराज प्रथमनारायणी बाणवच टीका वष बीस ।

३ मद्रोशाम्याय मेधविजय, बुधिशमय अचनदेव-नेमरीजय रोगाभर लम्बा लम्बाम

वष २-२ के बीचपी टीका ।

४ पुरि वु कुँवरपाल जस प्रगटपी बहु बिय ताव बन बरनिउरह ।

परमदाव जस बरह मया पानि बडनामा दिननर जिम बीरह ॥

कुँवरपाल लमईक वर्तनी अन्धकारमें कुँवरपालदे, जिन निम्न कथा गुणा

१/१/१५ ।

कुंभरपाळका जन्म बीसवाळ बंधके चौरडिया मोचमें हुआ था । पौढी दासके दो पुत्र थे — अमरसिंह और जमु । कुंभरपाळ अमरसिंहके पुत्र थे ।^१ जमुके पुत्रका नाम बरमरास था बरमसी था जिसके सख्खेम बनारसीदासने बषाहपाठका व्यापार किया था ।^२ वं नाबुरामजी प्रेमीने जन्मका जन्मस्थान ब्रैसकमेर माना है । वि सं १७ ४४में राजकुसुममणिन लनके पदमेके किए संहत्ती सून ब्रैसकमेरमें ॥ लिखा था ।^३

एक गुटका वि सं १९८४ १९८५ में स्वयं कुंभरपाळके हाथका लिखा हुआ जपकर है ।^४ इसमें आनन्दपणके पद 'इत्यसंहत्ती माया टीका' 'कुंभर सईया' और वसुविपति स्वयंमात्र रचवाएँ संश्लिष्ट है । इसमें कविकी स्वयंकी कृतियाँ भी हैं । इनके अन्तमें 'चेतन कंधर' उपनाम दिया गया है । एक पदमें कविने लिखा है कि जिन प्रतिमा' मयवान् जिनके-इके समान ॥ होती है । इनके निमित्तको पाकर हृदयमें राम द्वेष नहीं रहता । जिन-प्रतिमाका रचन जिसको मन्ता नहीं करता ॥ मिथ्यावृष्टि है । अनिमेष नवीसे जिन-प्रतिमाको देखनेसे सब कर्म नष्ट पाते हैं ।

जिन प्रतिमा जिन सम केसीचह,
तन्को निमित्त बाध कर अंतर राम होय बहि देखीचह ॥
सम्बन्धिष्टी होइ बीच से जिन मन प मति देखीचह ।
बहु दरसन आहूँ न मुदाचह, मिन्नामल मेरीचह ॥
चितचत जिन चेतना अमुर नर नवन मेच म देखीचह ।
अवसन कृपा करी अनुपम कम करह के देखीचह ॥
बीतयाग कारण जिन भावन दण्ड्य तिम ही देखीचह ।
चेतन कंधर मये जिन बरिगति बाध जुग दुह देखीचह ॥^५

१. चित्तमणि बीसवाळ भक्ति उत्तम चौरडिया बिरद बहु सीजइ ।
पौढीराम अंत बरमरास अमरसीह तनु नर नहीजइ ॥
नरी, २१में पण्डी प्रथम दो वक्तियाँ ।

२. अष्टवक्त्रात्मक पण १८९ १८४ व १८४ ।

३. नरी वरिगति, प २ २ ।

४. गुटका बी अष्टवक्त्रात्मकी नादवासे व नाबुरामजी मदीके नाम मेमा था और अष्टवक्त्र नाम रहा ।

५. अष्टवक्त्रात्मक वरिगति प २ २ ।

एक दूसरा गुटका और है जो कुँवरपाकक पहलेके किए जग्य किसी केबाने सिखा था। इसमें कुँवरपाककी लिखी हुई 'समकित बत्तीसी' नामकी रचना भी संकलित है।^१ इसमें ३३ पद्य हैं। ३१ ३३ तकके पद्योंमें कविका अपना परिचय है। अवशिष्ट पद्य 'क' से 'ह' तकके अक्षरोंसे आरम्भ हुए हैं। इसका विषय 'भानम-रस' से सम्बन्धित है। इनका अन्तिम पद्य है—

'हुर्धा उजाह सुजस घातम मुनि उत्तम जिके परम रस भिन्ने ।
स्वर्ग सुरही निज बरहि दूख दूख, ग्याता खेह प्रम गुन गिन्ने ॥
मिजबुकि सार बिचारि अन्धालम कवित बत्तीस मेंट कवि किन्ने ।
कँवरपाक अमरेस समुजब अतिहित चित आदर कर किन्ने ॥

५६ यशोविक्रयजी उपाध्याय (वि सं १९८ १७३१)

'सुजसबेलीमान' के आचारपर यशोविक्रयजीका जीवन-परिचय बोझा बहुत प्राप्त होता है। यदि यह कृति न होती तो हम उनके विषयमें जो सिखा अनुमान रचनेके और कुछ न कर पाते। सङ्ग्रहमें स्वयं अपने विपुल साहित्यमें बहीबर अपने विषयमें एक शब्द भी नहीं लिखा। यह भारतीय परम्पराके अनुस्यू ही था। 'सुजसबेलीभात' के रचयिता मुनिवर कान्तिविक्रयजी उनके सज्जनातीन थे। अतः कृतिकी प्रामाणिकता अतिस्थिर ही मानी जानी चाहिए।

उपयुक्त रचनामें यशोविक्रयजीके जन्म-स्थानके विषयमें कुछ नहीं लिखा है। अजीवक इस विषयपर मयनेब या किन्नुअब महाराजा कर्ष देवके वि सं १९४ के शासनसे लिखे हो गया है कि उनका जन्म मुजरातके कनोडा^२ बाँवमें हुआ था। यह उत्पत्तीन पञ्चमूलाक्षेत्रमें शामिल था। नाम भी वह था 'कपेचनरी' के विनादे बना है। उठमें कनीडिया ब्राह्मण और पटेलीकी आकाशी है। किसी समय वहाँ बहिष् भी अक्की संख्यामें रहते थे। मध्यकालमें यह बाँव 'कायोरा' के नामसे प्रसिद्ध था।

यशोविक्रयजीके पिताका नाम गारायन और माताका सीमापदेवी था। दोनों बर्मरामन राजमीक और सधार बृत्तिके व्यक्तित्व थे। उनका प्रयास

१ पर पुराणा भी श्री कन्नकन्दजी बाह्यमे ५ नाभुराय मेरीके बाद मेजा या कर्षिके पास है।

२ अजयनाक, पृ १११।

३ बर्मरामन राज्य बानेबानी रैमने सारनपर दूसरा ग्रेहन बीपीव है समने बार तीन परिक्रमे कनोडा बाँव है।

यद्यप्यन्तर भी पडा । यत्र ब्रह्मोदियमने ब्रह्मपनवा नाम वा । तत्रा एक छोटा भाई और वा जिसका नाम वर्धनिहू वा । बीनानी राम भद्रमण-सी जोड़ी थी । एक बार वे माँके साथ ब्रह्मपन गये वही गुरुवरण मुँहसे ब्रह्मपन सुना । यद्य ब्रह्मको उठी लज पाव हो गया । उस समय संसृज ती दूर उन्होंने मुखपत्ती भी पहना मुख नहीं थी थी । बाह्यकी इस अनुभूत स्मरण-शक्तिवा परिचय सबने पहुँचे माँकी प्राप्त हुआ । उन्होंने तीन दिनसे ब्रह्म ब्रह्म नहीं किया वा । तीनों बरफि कारण वे भक्त्यामर नहीं सुन लगी थीं अन भोजन करने करतीं । बाह्यक ब्रह्मपनको अब यह विदित हुआ ती उसने गुरुज ही माँकी भक्त्यामर सुना दिया । उन्हाराय पुत्र वा । माँ उस बाह्यकमें ब्रह्मोदिक श्रवणितका आशय वा लगी । बरफि ब्रह्मपन उन्होंने वह सब गुरुवरणो लुप्तवा और बात हवाकी तरह बहते-बहते ब्रह्मपनवाव पहुँची । वही प्रसिद्ध द्वितीयवरणको बहुर्य पट्टवर ५ गवविजयजीने सुनी । उन्होंने प्रयास किया । सफल हुए । परिणामस्वरूप वे पि सं १६८८ में बाह्यक ब्रह्मपनको उसके माँ-बापकी स्वीकृतिसे साथ लीला दे सके । अब वे ब्रह्मोदियम हो गये ।

५ गवविजयजी प्राकृत संसृज मुखपत्ती व्याकरण कोष ज्योतिष आदि विद्याभोग्य परचन थे । उनके साहित्यमें ब्रह्मोदियमवा विद्याभ्यसन प्रारम्भ हुआ । वे प्रतिबन्धवासी ती वे ही धीम ही व्युत्पन्न होल गये । एक बार ब्रह्मपनवावमें उन्होंने ब्रह्मपनवाव लिये । उनकी अनुभूत स्मरण शक्ति और प्रखर बुद्धिसे प्रभा पित होकर छेठ बरफि गुराने वो उद्गम बाँधीनी बीनार उनके उच्च अध्ययनके लिए प्रदान की । वे वाचपत्ती गये और वहाँके सर्वोत्कृष्ट विद्वान् धर्मपार्षदजीसे पद्वर्धनका वाचपन किया । तीन वर्ष उपरान्त वहाँसे लगे लगे । फिर पि सं १७ १ १७ ७ तक बार वर्ष बादमें किनी न्यायाचार्यके पास वर्षभर वर्ष गये ।

यह समयमें वही था वाता कि उन्होंने तीन वर्ष उपरान्त ही बनारस गयी छोड़ दिया और बादमें वह श्रीन-आ न्यायाचार्य वा जिससे उन्होंने वर्ष-गम्य गये । क्या वह विद्वान् बनारसने विद्वानोंसे अधिक जानी वा ? ब्रह्म ही ब्रह्मो-दियम-वैसे प्रतिभावासी बनने तीन वर्षमें 'पद्वर्धन' का मुख्य अध्ययन कर लिया होवा । किन्तु तीन वर्षके उच्च-स्पर्धी विवेचनकी श्रुति उन्हीं वाचप के भावी होनी । उस समय वहाँ दिवम्बर सम्प्रदायके लगेक पण्डित रहते थे । तीन वर्षके लेखने उनकी विद्वता अत्यन्त थी । उनसे प्रयास होकर ही ५ बनारसीछात्र दिवम्बर

इन मन्द से । पाण्डु कृष्णलक्ष्मी तिहुना साहुके मन्दिरमें ठहरे ही रहत थ । मष्ट सहस्री शैल दिगम्बर श्यामका कुल्ह पम्प है । यशोविजयजी समपर एक उत्तम टीका सिद्धनेम समर्थ हो सके । हो सज्जना है कि उन्होंने हमरा अभ्यसम बाबरेमें किया हो । अगाध विद्वत्ताक साध कौन यशोविजयजी । पुत्रराज तो इसी प्रतीक्षा में था । अहमदाबादके सूबेदार मल्लवत्तल्लि अपने दरबारमें उनका शानदार सम्मान किया । वहाँ उन्होंने अपनी विद्वत्ता और स्मरणशक्तिके परिचायक अठारह लक्षभाज प्रस्तुत किये । सब प्रभावित हुए और मुवासाफुके यौन बाये जान लगे । अहमदाबादमें ॥ कि स १७१८ में उन्हें उपाध्याय पदमें विमूषित किया गया ।

कि सं १७१९ से १७४१ तकका समय उनके साहित्य-सृजनका कास था । उन्होंने तीन सौ ग्रन्थोंका निर्माण किया । संस्कृत प्राकृत पुत्रराज और हिन्दीपर उनका समानाधिकार था । उन्होंने इन्हीं चार भाषाओंमें किन्ना बमकर किन्ना । इससे भारतीय ब्रह्म और साहित्यके विद्यार्थी सबैव अनुप्रासित रह्ये ।

यशोविजयजीका स्वर्णवाच कि सं १७४१में 'हमोई' नामके नगरमें हुआ । आज भी वहाँ छह शैल मन्दिर और दो पाठशालाएँ हैं । उन सम्म इसका नाम बर्मावती था । यह छाट डेसकी प्रमुख नगरियामें गिनी जाती थी । प्रसिद्ध श्यामवेष्टा श्री देवसूरिजी और श्री मुनिपन्थ सूरेश्वरजीका जन्म इसी नगरेमें हुआ था । प्रसिद्ध मन्त्री बस्तुपाळने यहाँ एक सीमाशुर्व भी बनवाया था । पं नाबूरामजी प्रेमो हमोईकी यशोविजयजीका जन्म-स्थल मानते रहे । अब यह मायना अष्टित ॥ बुकी है । यशोविजयजी पूज इत्याचर्म सज्जी माधुना अनाज पाण्डित्य और औरके साध लक्ष्य १५ वष ओवित रहे । श्रीमद् हेमचन्द्राचार्यके उपगत मारदीय बरा एक बार फिर प्रकाश विद्वत्ताके नैजसे औरवान्निन हू उटी थी ।

साहित्य सृजन

उनके द्वारा रचित तीन सौ ग्रन्थोंका परिचय बना न तो सम्भव है और न प्रसंगानुमोदित । उन्होंने मुष्ट कपडे तक और जागमपर किता । नि-नु श्यावरण छत्र अलङ्कार और काष्णके क्षेत्रमें भी उनकी गति अप्रतिहत थी । उन्होंने टीकाएँ और भाष्य लिखे । अनेक मौलिक हनिमोका भी निर्माण किया । उनमें 'पञ्चम खण्डवाच -नैमे छत्र उनकी पैनी विद्वत्ताक मानस्तम्भ है ।

१ आज भी वह दक्षिण-पूर्व रेलवे स्टेशनपर, वहीदामे ११ मील दूर रिक्ता पक्ष खेरत है । हमको आशा है कि ठीक ठीक है ।

२ पं नाबूराम प्रेमो शिन्दी नैव साहित्यका इतिहास पन्थी सन् १९१७ ई १ पृ १९ ।

क्षेत्र मन्त्रि-कार्यकी पृष्ठभूमि की भूमिबार्मि लिखा जा चुका है कि क्षेत्र मन्त्रि-कार्य केवल साहित्यिक ही नहीं होते वे वे कुछ-त-कुछ भक्तिसम्बन्धी साहित्य भी रचने अवश्य वे । श्री यशोविक्रमजीने मुम्बईमें बनेरु स्तरग सम्प्रदाय पीठ और बन्धनाबाका निर्माण किया है । बनारस और जानरमें रहनेके कारण हिन्दी पर भी उनका अच्छा अधिकार था । उनका बसविकास हिन्दीका प्रसिद्ध नाम है । इसके अतिरिक्त आनन्दचन अष्टपदी' विगपट ८४ बोख' और साम्ब अटक भी उनकी हिन्दीकी ही कृतियाँ हैं ।

असबिकास

बहु काव्य सज्जाय पर बने स्तवन संग्रह नामके मुद्रित संकलने बना है । इसमें ७५ मुक्तक पर हैं । सभी जिनकाही मन्त्रिसे सम्बन्धित हैं । एवमें लिखा है कि मन्त्रि-क्योंही प्रभुके ध्यानमें मान हुआ कि उसकी समूची बुद्धि पक्ष-मात्रम तट हो गयी । मन्त्रि-को आराध्यकी विष्टाय हरि-हर और ब्रह्माकी निविद्यां भी तुम्ह विद्याई देती है । मन्त्रि तो अब अपने प्रभुकी बसय निविदा स्वामी है । उसके रखे जाने उसे और कोई रस मारा ही नहीं

‘हम मन्त्रि जने प्रभु भजन में ।

विस्तार पाई बुद्धिवा तब-मन की अधिरा सुत गुन गान में ॥

हरि-हर-मन्त्र-पुराण की रिधि आवत बहि कोड मान में ।

विद्यामन्त्र की मील मन्त्री है समया रस के पान में ॥

इतक दिन तुं पाई विद्यामन्त्रा जन्म गीताको अज्ञान में ।

अब तो अधिपति है कैरे, प्रभु गुन भरतक अज्ञान में ॥

पाई दीवता सभी हमारी प्रभु तुल्य समकित दास में ।

प्रभु गुन प्रभुमन्त्र के रस जाये आवत नहि कोड भजन में ॥

आनन्दचन अष्टपदी

इसमें हिन्दीके क्षेत्र सन्त आनन्दचनकी स्तुति की गयी है । कहा जाता है कि यथाध्याय यशोविक्रम और आनन्दचनकीकी भेंट हुई थी । आनन्दचन तबसे अन्धकारमरसमें मग्न रहते थे । वे कभी अगलमें नुमते और कभी मुन्नाबोम बोध साधना करते । मन सम्पर्कमें घायल ही कभी जाते । अब जाते तो मुन्नाब और मुन्नाबपुत्र पीसीमें उपवेश देते । अबबूत-से इस साधुकी बात यीमद् यशोविक्रमजीने भी सुनी थी । वे उनसे मिलना चाहते थे । एक बार अर्जुन क्षेत्रके समीपस्थ बाँधमें

१ आनन्दचन वरसंग्रहमें पृ १६४ पर छप चुकी है । वह समय यशोविक्रम-मन्त्रि-कार्य मन्त्रिसे वि ५ १८४६ में प्रकाशित हुआ था ।

मद्योविजयजी व्याख्यात कर रहे थे । उस सभाय एक बार जहासीन-सा बड़ साधु
 बैठ था । वे जानम्बपन थे । उनसे भेंट हुई । यथाविजयजी इस भाँति प्रभावित
 हुए कि अपनेको रोक न सके । अष्टपदी उनका भावोच्चारणका सही प्रतीक है ।
 मद्योविजय जिस व्याख्यानरसके पण्डित थे बड़ ही जानम्बपनका अनुभूतिमय
 महसूस करता था । जानम्बपन व्याख्यानरस ही थे । यह ही तो कारण था कि
 मद्योविजय-जैसा विद्वान् हमें देख भाव-विमुक्त हो जाता । उनकी संपत्ति मद्यो
 विजय भी व्याख्यानरसकी महूरें उठने लगी थी । इसीको उन्होंने लिखा है कि
 'पारस की संपत्ति लोहा था स्वर्ण' हो जाता है

'जानम्बपन के संग मुजस हाँ मिळै जब तब जानम्बसम भवा मुजस ।

पारस भग कोहा जा करसत कचन हात हाँ ठाक कस ॥

पीर बार जाँ मिळ रहै जानम्ब जय मुमनिसली के भग मयाँ ह एक रस ।

मय तपाइ, मुजस बिकास भय सिद्धरसक्य काव धममय ॥

जानम्बपन मार्गमें चलते-चलते या उठने थे । उनके मुनारर आँकड़े स्यारा
 रूप सदैव बरमदा रहता था । वे कभी मुमति सर्वाँस दूर नहीं होत । उनसे मिल-
 कर मद्योविजयकी गौरवका अनुभव हुआ

'मारग चलत-चलत गात जानम्बपन प्यार रहन जानम्ब भरपूर ॥

ठाकै सकस भूष त्रिहुँ कोक भे स्यारा बरखत मुन पर नूर ॥

मुमति सली के संग निचमिष पारत कबहुँ न होत ही दूर ॥

यथाविजय कइ मुना जानम्बपन हम तुम मिळै हुनूर ॥

जानम्बपनको पहचानन लिए अपने निरुध भीतर भी उसी जानम्बकी अनु-
 भूति होनी चाहिए । जानम्बपन जानम्बके ही बन है । वे जानम्बके सराय खजान
 हैं । उन्होंने 'सुख अलखारब' के मुनका अनुभव किया है । जानम्बपनके सही
 दर्शनके लिए इसी भावभूमि तक उठना हीना

"जानम्ब की गग जानम्बपन जायै ॥

बाइ सुख सहज जचन अकल पद था सुख मुजस जगान ॥

मुजस बिलाम जब प्रगटे जानम्बरम जानम्ब अगव पत्राव ।

जमी दसा जब प्रगटे चित्त भंगर मोहि जानम्बपन पिछान ॥"

द्विपट बीगसा बास'

यह रचना वे हेमराजभाके निरुध बीरामी भाव का अंगन करने

कर मरमी-मनकी चारण करते थे। बेध-भूषा दोनों ही हैं और मेरी बुद्धिमें उन्होंने दोनों की ही शिक्षाफल की। एक यही ज्ञानमागर हुए हैं जिनकी टोकासे यह स्पष्ट है कि वे जीन साधुके बसमें ही रहते थे।

उत्तरमध्यकालमें ज्ञानम्बधन घनानन्द और ज्ञानम्ब नामके कई कवि हुए हैं। उनमेंसे मुजानबाके घनानन्द और जीन ज्ञानम्बधनको आचार्य विनिमोहन सेनने 'जीन मर्मी ज्ञानम्बधन' वाले लेखमें एक ही प्रमाणित किया है। सायब आचार्यजी का यह अनुमान सिध्दिसिंह सेनरके 'सरोज' में घनानन्दके लिए निर्धारित सँ १७१५ पर आधारित है जो अब नष्ट प्रमाणित हो चुका है। आचार्य प विश्वनाथप्रसाद मिश्रने उनका समय अठारहवीं सताब्दीका अन्तिम पाद अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध किया है।^१ यद्यपि दोनोंके विचारोंमें बड़ी-बड़ी बहुत साम्य है किन्तु फिर भी घनानन्दने मुजान को कभी नहीं छोड़ा जब कि ज्ञानम्बधन इस छन्द उक्तका प्रयोग साम्य हीं कही किया हो। एक तीसरे ज्ञानम्बधन नम्बर्गके थे जिनका सम्पादकार श्री वैद्यसेवकोसे हुआ था। अतः उनका समय सोलहवीं सताब्दीका उत्तरार्ध ठहरता है और न सर्वमुक्त दोनोंसे पूर्वक थ।^२ एक चौथे ज्ञानम्ब और हुए हैं जिनकोने काम-विज्ञानपर 'कोठ मंथरी का निर्माण किया था। बहुत दिनों तक इनको और घनानन्दको एक ॥ माना जाता रहा^३ किन्तु अब इनका पृथक्त्व स्पष्ट हो गया है।

ज्ञानम्बधनकी रचनाएँ

इनकी दो रचनाएँ हैं एक छोटी 'बीबीसी' और दूसरी ज्ञानम्बधन बहत्तरी। बीबीसी मुजानसीमें है और 'बहत्तरी' हिन्दीमें। बीबीसीमें 'बीबीस स्तोत्र' है जो बीबीस तीर्थंकरोंकी स्तुतिमें रचे गये थे। इनके रचना-कालपर विचार करते हुए पण्डित विश्वनाथप्रसाद मिश्रने अध्यात्मवादी ज्ञानम्बधन अने श्री दसोमित्रय' नामके लेखका आधार लेकर लिखा है कि इनकी बीबीसोवी कई पंक्तिमें सर्वदी समयमुन्दर। सँ १५७२। विराजसूरि। सँ १५७८। सकलचन्द्र। सँ १५४ और प्रीति विमल। सँ १५७१। के जिन स्तवनामि प्रन्नीम जाये चरबासे निच्छरी

१ 'आत्मकल जल सन् १४०० ई में प विश्वनाथप्रसाद मिश्रका लेख 'ज्ञानम्बधन का जीवन सन् ५ १२ और ज्ञानम्बधनके प्रस्तावना पृ १।

२ का था प्र पण्डित वर्ष १९ अंक २ में प विश्वनाथप्रसाद मिश्रका लेख नम्बर्गके ज्ञानम्बधन पृष्ठ ४३।

३ डॉक्टर मिर्कनका दि मॉडर्न इन्डियन लिटरेचर ऑन हिन्दुस्तान पृष्ठ १२, संख्या ३००।

है हमारे बीबीसीरा समग्र सं १९७८ के अनन्तर ॥ छहटा है । किन्तु हममें कोई निश्चिन्त तिवि विविध नहीं ॥ छठी । भी ने एम सावेरीने अपन 'माइन स्टोन्स इन बुद्धराणी फिटररर में एरर रूपसे हमका रचना सबत् १९८७ बिना है । हमपर भी मसाविजयवी अपाप्याम आनविमळनूरि और आननारने पुनर पुनर बाबावबीर टवाकी रचना भी थी । मपोविजयवीन मिम मूळ प्रणिची मिवा छसमें केरर २२ स्तवन थे किन्तु आनविमळनूरि और आननारकी प्रनिचामें २४ स्तवन थे और अन्हांन उन नभार टवाकी रचना भी । यह बीबीसी पिछले टवा-छलि बीबीम स्तवन आनन्वचन बीबीसी नायमे बावळ मोर्रासिअ बाविनने मइसि प्रकाशित हो चुकी है ।

आनन्वचन बहुतरा

यह हिन्दीकी प्रसिद्ध रचना है । मसपि बुद्धराठी प्रकाशनीने छठकी मापावी बुद्धराठीमें हाछनका प्रयास किया है किन्तु छठका मूळ रूप छिन नहीं रका और बाव यह बड़े-बड़े विद्वानाकी बहिनें भी हिन्दीकी ही छनि है । इसके बनेका प्रकाशन हो चुके है । सबत् १९७४ में यह बम्बईके पावळ भी भीमनिह माचिकके मइसि प्रकाशित हुई । इसमें १ ९ पद हैं और कोई मूमिका अथवा टीका-छिपनी नहीं है । हमरा प्रकाशन भीमुत् मोतीचन पिरवरररर नापडिमा सोमोनिटरके सम्पादनमें आनन्वचन पञ्जरलावकी प्रथम घाम के नामसे जैन धर्म प्रचारन ममा बावनपर' से हुआ । इसमें बहुतराके केवल ५ पद्यापर विदेवन किया है । भी बुद्धिसावरजीर मइ विवेचनके साथ आनन्वचनपञ्ज-संघर अप्यात्म आन प्रमारर मइरर बम्बईसे प्रकाशित हुआ है । यह एक सुन्दर रन्य है । और आनन्वचनकी के परोवा बाबाव विस्तारमें समझाना गया है । बहुत दिन पूर्व रामचन बावमाकामे भी एक 'आनन्वचन अन्तरा छी थी । हममें १ ७ पद हैं । रचनाके दीर्घरसे एरर है कि हम छतिम ७९ या कुछ अधिक पद होन चाहिये, किन्तु हमका यह बर्ष नहीं है कि वे १ से भी अधिक हो जावें । फिर तो हमका राम छठक यह बायेका । आनन्वचन बहुतरा' के १ ७ परोपर आरति छठठे रूप प नाचुरामवी प्रेमीने किया है आन पडना है, हममें बहुत से पद औरने मिका विवे मये हैं । बीडा ही परिधम करवेसे हमे माकम हुआ ॥ कि हमका ४२ वां पद 'अब हम अवर मय न मरेंगे और अन्तना पद 'युम आन विमी फूली बर्रत मे सोमो आनतरापवीके है । इसी तरर आंच करवेसे औरोना

१ का ना ५० पमिवा वर्ष २१ अर १ में ५ मिलनावप्लार मिलना सेर अन्वचनके आनन्वचन' पृ १०० ।

भी पता चल सकता है।^१ हमकी बड़ी हुई सख्याको आचार्य श्रुतिमोहन सेनान भी सग्रेहकी दृष्टिसे देखा है।^२ मेरी दृष्टिमें श्री महाराज बुद्धिसागरजीका 'आत्मस्वप्न पत्र-संग्रह' लघुयुक्त रचना है। इसका रचना सं १७०५ स्वीकार किया गया है। 'मिश्रकण्ठु विमोद' में भी यह ही रचनाकाक विमा गया है।^३ यह अठारहवीं शताब्दीक प्रथम पाषकी कृति है।

भक्तिके विषयमें आत्मस्वप्नजीके जने हुए विचार थे। जो उठना बिछिड़ चुक माना है, मन कही भी जाये किन्तु उसकी जो भयवान्के चरणोंमें ही लगी रहे तभी वह भक्ति है अन्यथा नहीं। कविने उसीको विविध और सुन्दर दृष्टान्तोंसे पुष्ट किया है।^४

ऐसे जिन चरण किन्तु पद काळ रे मना

ऐसे अविहत के गुण गाळ रे मना ।

बदर मार के कारने रे गडवा बन में जाव

बाटी और बहुत दिसि फिरे, बाकी सुरत बछड़ना मर्न ॥

अर्थात् जिस प्रकार सहर-मारके लिए धीरे-धीरे बनमें जाती है वाघ चरती है और चारों ओर फिरती है परन्तु बनका मन अपने बछड़ामें लगा रहता है। ठीक इसी प्रकार मंजारके सब काम करते हुए भी इमारत मन भयवान्के चरणोंमें लगा रहे और बाकिरके गुण भला रहे, तभी वह भक्त है।

“साव पाँच सहस्रिणी रे दिक मिळ पार्याये कार्ये ।

ताकी दिव लळ एक हँसि बाकी सुरत गगदवा मर्न ॥

सहस्रिणी विल-मिलकर पानी धरनेके लिए तालाब या कुईपर जाती है। घास्तेमें ताकी बजाती है और हँसती-खेळती भी है किन्तु उनका ध्यान तिरके बड़ेपर ही लगा रहता है। ठीक इसी भाँति मंजारके अन्य काम करते हुए भी इमारत मन भयवान्में लगा रहना चाहिए।

‘बटवा नाथी नीक में रे कोक करे करत सोर ।

बसि मर्ही चरते नथै बाकी चित न लळे कहुँ ओर ॥

मट बाँस छेकर रस्तीपर चढ़ता है और उसपर अपना उत्तम मृत्यु दिखाता है जिसकी कुछछता देखकर कोक घोर गुल यचाने है। इधर-उधर देखते हुए भी

१ दिग्वी जैन साहित्यका इतिहास पाण्डिपथी पृ ५१ ।

२ आचार्य श्रुतिमोहन सेनान कण्ठु का कैव, पृ ४ ।

३ मिश्रकण्ठु विमोद भाग ५ सख्या १७७१ पृ ४७५-४८५ ।

४ आत्मस्वप्न पत्र संग्रह श्रीमन् बुद्धिसागरजी गुजराती भाषावर्णित आत्मस्वप्न मंजारक मण्डल कम्प्रे मि म ११५ पृ १३, पृ ४१३-४१४ ।

उमका ध्यान रस्मीपर ही रहता है। वैसे ही संसारके बीच बस-अर्पण सुनते हुए भी हमारा मन सबैष प्रभुमें ही लब्धीन रहना चाहिए।

‘मन्त्रि-नाशिरथमें कपुता-प्रवर्तन’ मन्त्रकय मुख्य गुण धाना जाय है। आत्मन्यनकी कपुतामें हृष्य रमा है और इसी कारण उसमें दूसराको विधोर बना देनेकी शक्ति है। मन्त्र एक प्रेमिकाकी भाँति अपने आराध्यके आनकी प्रतीक्षा करता है और बेचैन होकर पुनार उठता है, “मे रात-दिन तुम्हारी प्रतीक्षा करता हूँ पता नहीं तुम घर कर कम आओगे। तुम्हारे किए मेरे समय लान्छो है किन्तु मेरे किए तो तुम बनेके ही हो। बीहरी काकल जोर कर उभरता है, किन्तु मेरा काक तो अमृष्य है। जिसके समय कोई नहीं पता उसका क्या मूल्य है उठता है ? इन भावके दो पद रचित,

“मिथुनिय भाँते लाली बाइकी बरे लालो रे डोका।

मुन सरिला तुम काक है मेरे तुही अमोका ॥ विस ॥१॥

बन्हरी मोर करे काक का मेरा काक अमोका।

ज्या के उठतार को नहीं उसका क्या मोका ॥ विस ॥२॥”

आत्मन्यनका उधार भाव था। वे एक अक्षर उठते पुनारी थे। उसको कोई राम छोड़ मन्त्रादेश और पारसनाम कुछ भी नहीं, आत्मन्यनकी इसमें कोई भावति नहीं थी। लाला कथन था कि मन्त्र प्रकार किन्ती एक होकर भी पाद-मेरसे अनेक नामी-नाम होती जाती है उसी प्रकार एक अक्षर-वप नामाने विभिन्न रूपनामों कारण अनेक नामोंकी रूपवा कर की जाती है। उन्हने अपने इस कथनकी राम छोड़ हृष्य मन्त्रादेश बड़ा और पारसनामके नामोंकी व्युत्पत्तिमें सार्क्य बनाया है। वह पद इस प्रकार है,

‘राम कहो रहमान कहो कीर, कान कहो महारथ री।

पारसनाम कहो कोई जहा सकल जहा स्वयमेव रा ॥

आत्मन्यन कहो कदाचित नामा एक श्रुतिकर कय री।

सैध लज्ज करुणा रोपित धार अक्षर सकल रो ॥ राम ॥

मित्रपद हमी राम सो कहिन्, रहिम कर रहिमल री।

कर्म करम कान सो कहिन्, महामैव विर्जल री ॥ राम ॥

वरसे कय पारस सो कहिन्, जहा चिह्ने ली जहा री।

इहचिहि मापी आप आत्मन्यन्यन चेतनमय मिथुन री ॥ राम ॥”

आत्मना कपुतय एक पृथकी तरहसे है, जिसमें-से बात तो उठती है किन्तु हमे नाम बह्य नहीं कर पाती। नाक हृष्य है और वह गुणविन रिम्य तथा

बकौकिक है अतः उसे सूर्यमन्त्री सामर्थ्य नाकमें नहीं है । और यदि कोई मुक्त-
धोनी उसका वजन करे तो उसपर कान विरवास नहीं करते ।

“आत्म अमुमम फूक की कंठ नबेछो रीति ।

नाक न एकरे वासना कान गई न प्रतीति ॥

अस्त नहीं वो भगवान्का होकर रहे । यही भाग्यवत भी अपने आराध्यदेव
ब्रह्मानन्द द्वारा बिक नय है । उनको ब्रह्मानन्द अतिरिक्त और कोई ऐसा देव
दृष्टिगोचर नहीं हुआ जिसकी धारणमें वे जा सकें

“ब्रह्माय से मुनाबबिण हाथी हाथ बिकायो ।

जिबको कोट सब कृपाक सरन बहर न आथी ॥ अ. ३१॥

भक्त प्रसिद्ध बनकर भगवान्की धारणमें आया है । उसे इस प्रकार आत्म
किरीका कोई भय नहीं है । वह भगवान्से प्रार्थना करता है कि हे भगवन् ! यह
निराश्रम जानो कि यद्यपि मैंने करोड़ों अपराध किये हैं किन्तु यह जन आपका ही
है, अतः उसपर कृपा करो

‘मैं आथी प्रभु सरन तुम्हारी कागत नाहि चखे ।

मुमन उठन कहुँ भीरन नु, करहुँन कर ही सके ॥

अपराधि बिच खान बगत जन कोरिह मोति चकी ।

आनन्दधनप्रभु निहथी मतो इह जन राखरीष की ॥

५८ अगजोवन (वि० पृ० १०१)

अजोवनके पिताका नाम सम्मन्त्री अमरराज था । वे आनन्दके प्रसिद्ध धनी
व्यक्ति थे । बहूवार नाम-जात्राकी भी न था । शान्ति होता ही रहता था ।
कोई भी शत्रु-सम्पत्ती किसी भी सम्प्रदायका हो उनके द्वारेसे जाकी शान नहीं
कौटा । उनके पास वैभव था और बखारता थी । उनकी अनेक स्त्रियोंमें ‘मोहन
दे संवहन’ अधिक प्रसिद्ध थी उसको वैसा रूप मिठा था वैसे ही पुत्र भी ।
भगवान् शिवजीके मार्गमें उसकी अष्टा बहुत अधिक थी । उसीके पर्समें अजोवन

१ नगर आनन्द में आरनाथ नामसे

गरमदीत आनन्द में मानर नववसा ।

उपही प्रसिद्ध अमरराज रामपाल नीके

पंच भाका गतिनि में भयो है नंदन सा ॥

उनका रचनाकाळ अठारहवीं शताब्दीका प्रथम पाद मानना चाहिए । उन्होंने संवत् १७०१ में बनारसी विकास' का संघु किया था । अमजीवनका व्यक्तिगत समाचार था । उनकी प्रेरणासे ही अनेकानेक कवियोंने अनुपम साहित्य का सूचन किया । उनकी प्रेरणामें एक आधु-सा होता था । पण्डित हीरानन्दजी केवल दो माहमें पंचास्तिकायका अनुवाद कर सके वह केवल इन्हींकी प्रेरणाका फल था । उस समय भी अमजीवन जानरेकी साहित्यिक गतिविधियोंके क्षेत्रसे हो रहे थे । वे रूपवान्, पवित्र और अम-आत्म्य युक्त थे । समय पाकर उनके हृदयमें यथावत समका पाव उचित हुआ । फिर तो उन्हें रात और दिन ज्ञान-मण्डलीमें ही बैठ मिलने लगा । इस मण्डलीका प्रधान उन्हींको कहना चाहिए ।

एकीभाव स्थापनमें अमजीवनकी भक्तिका स्वर ही प्रबल है । कवि एक पद्यम लिखा है कि जिनेश्वर सऊल लोकके भगवान् हैं और बिना प्रयोजनके बन्धु हैं । उनमें सब पदार्थ आमासित होने रहते हैं और बिनाप अलग्ग कपसे बाध करते हैं

सऊल लोक का तू आचल बिना प्रयोजन बन्धु समाज ।

सऊल पदार्थ मायक मास तो मैं बसै अवस्थ बिकास ४

कविता बचन है कि जिनके हृदयमें अमजीवन जिनेश्वर के विराजमान हैं उनमें लिए अब किसी अवधारकी आवश्यकता नहीं है । उसने आत्मात्म्या निधि प्राप्त कर ली है जिसकी तुलनामें अन्य कोई निधि आ ही नहीं सकती । वह अनुपम और अनुज है

‘जाके द्विज कमल त्रिबन्ध प्यावाहृत चिराञ्जित पद ।

छाके कीन लखो उपगार निज आत्म निधि पाई सार ॥

पद

अमजीवनके पद अनेक शास्त्र-मण्डारोंकी हस्तलिखित प्रतियोंमें बिखरे पड़े हैं । अमपुरके तिरहुन्दी मन्दिरमें सबसे अधिक है । मीन गहवारजी (अतिष्ठत क्षेत्र) अमनेर और बड़ीतके शास्त्र-मण्डारोंमें भी उनके पद देखे हैं । उनके पदोंमें भक्ति और आध्यात्मिकताका समन्वय हुआ है । भक्तके लीनोंमें अनेक भगवान् क उनकी एक सऊल देखिए,

१ सुन्दर भुजय का अमिराम परम पुनीत परम धन धाम ॥

बाल-कवि वारण रम पाइ अम्बी बचरण अनुमी बाइ ।

ध्यान मण्डली कहिए कीन आमी ध्यानी अम परमीन ॥

एकीभाव स्थाप, पद ४१-४२ ।

‘मूर्ति भी त्रिलोक की मेरी भेंटन मोह बसी जा ।

अद्भुत रूप अनापम है छवि राग रीति न तनक सा ॥१॥

कोटि मन्त्र बालू का छवि पर निरखि निरखि आनन्द सर बारी ।

अगतीजन प्रगुकी सुनि बाणी सुरति मुक्ति मगधरसी ॥२॥^१

मयबागुकी समतारस भीनी छवि’ देखकर मन्त्रको परम आनन्द मित्र ।

उसके मन मन्त्रे पाप कट धरे और ज्ञान भागुका प्रकाश प्राप्त हो गया । यह पर
हस भीति है,

‘प्रभु जो छात्रि में मुक्त पायो ॥

अनवासन छवि समतारस भीनीसा कवि में हरपाया ॥प्रभुजी॥१॥

मन्त्र-मन्त्रे मुक्ति पाप कटे हैं ज्ञान मान हरपाया ॥प्रभुजी ॥२॥

अगतीजन के नाम जगे हैं तुम पर सीस बचायो ॥प्रभुजी ॥३॥^२

मयबागुका विरह है बीनबन्धु’ और बीनबन्धु भी बिना प्रबोधनके । मन्त्रका
विवेचन है कि उस विरहका निर्वह करो

आमस मरण मित्राणी जी महमात्र ग्हाटी आमस मरण ॥देव॥

अमर किरण कर्तुगति बुक पाया सा हा बाक बुझाया जी ॥आमस॥१॥

विमहा प्रकाश बीनबन्धु तुम सी ही विरह निवाहा जी ॥आमस ॥२॥

अगतीजन प्रभु तुम मुक्तदायक मोहूँ सिधसुख बाणीजी ॥आमस ॥३॥

मन्त्र ऐसे सतनुसरी बकिहारी बागा है, जो व्यापक होकर मन्त्रों की
ज्वाले रहता है ।

‘पैसा मछगुह की बकिहारी ॥देव॥

बड़ उगाह ॥ देवक शिखी पकक न बूक बिहारी ।

मोह महा बरि जीत बक में छाणी अकल सू ठारी ॥देव॥ ॥१॥

५९ पाण्ड हेमराज (वि सं ३ २ १०३)

पाण्ड हेमराज जयपुर राज्यान्वर्तन सायानरम पल्लव हुए थे किन्तु किसी
कारणसे वामाङ्ग आकर रहने लगे थे । वही नीतिनिष्ठ नामका राजा राज्य

१ तारकला मन्दिर, जयपुर परगमन ६४९ पन् ९२ ।

२ मन्दिर तारकला, जयपुर परगमन ६४९ पन् ९३-९४ ।

३ वही पन् ९ ।

४ वही पन् ९२ ।

करता था। उसके चरित्रकी पैनी धारसे दुर्जनोके सिर कट-कटकर मिर जाते थे।^१ पाण्डे हेमराज पण्डित कृष्णचन्द्रजीके शिष्य थे वैसे कि उनकी 'पञ्चास्तिकाय भाषा वचनिका'के अन्तिम अंशसे स्पष्ट है।^२ उन्होंने अपने मुक्तके पास रहकर जैन सिद्धान्त-शास्त्राका सूक्ष्म अध्ययन किया और चोड़े ही समयमें अगाध विद्वत्ता प्राप्त कर ली।

संस्कृत और प्राकृतके विद्वान् होते हुए भी उन्होंने जो कुछ किया हिन्दीमें ही किया। हिन्दी पद्य-लेखक और कवि होना ही उनकी प्रतिष्ठित थी। उन्होंने प्रबचनसार को भाषा टीका बि. सं. १७९८ में 'परमात्म प्रकाश' की बि. सं. १७१६ में 'गोष्मन्सार कमकाण' की बि. सं. १७१७ में 'पञ्चास्तिकाय की १७२१ में और 'नवचक्र' की भाषा टीका बि. सं. १७२६ में लिखी। इन सभीमें हेमराजके स्वस्थ मस्तिष्कके दर्शन होते हैं।

पाण्डे हेमराज कवि भी उत्तम कोटिके थे। उन्होंने 'प्रबचनसार' का पद्यानुवाद भी किया है।^३ इसके अतिरिक्त उन्होंने सिलहट औरासी भोज की रचना कुंजरपालजीकी प्रेरणाके की थी। इसीके उत्तरमें यद्योद्विजयजीने 'विजय औरासी भोज' लिखा था।^४ माधवगुणके 'मन्नामर स्तोत्र' का सुन्दर पद्यानुवाद इन्हींका किया हुआ है। अनुवाद होते हुए भी उसमें मौलिक काव्य की छरसरा है। 'हितोपदेश बाबरी' उपदेश दीक्षा घटक और गुरु-पूजा भी उनकी कृतियाँ हैं। इससे प्रमाणित है कि वे अपने समयमें विद्वान् और कवि होना ही कर्णोंमें प्रसिद्ध थे। उनकी कविताभाषा स्पष्ट कविसे बाणारसिका सम्प्रदाय का प्रभाव था।

- १ उपजी सावानेरि की सब कामायह बास ।
बड़ा हिम छोड़ा रचे स्व-पर बुद्धि परकाय ॥
कामायह मुकल बड़ा कीरतिचिह्न नरेस ।
अपनी चरित्र सब बलि दिये दुर्जन विनके जैन ॥
उद्वेग होहा शम्भु, होहा ६८-६९ हीमचन्द्रजीका मन्दिर, प्रच्छा न १७ मेहन न १९३।
- २ 'बह की कृष्णचन्द्र गुणके प्रसाद की पाण्ड की हेमराजके अपनी बुद्धि माण्डि किमल कीया ।
पञ्चास्तिकाय भाषा टीका अन्तिम प्रारम्भ ।
- ३ हमने पद्य टीका ४६८ है। इसकी हस्तलिखित प्रति कलकत्तेके श्रीपद्मजीके मन्दिर में मेहन न ७१ में लिख है।
- ४ हेमराज पाण्डे किये भोज औरासी फेर ।
या बिच हम भाषा वचन लाकी मत बिच जेर ॥
अयोद्विजयजी, विजय औरासी भोज १५६वाँ पद्य।

शिव मुखाकीरासके पाण्डव पुराण वि ॥ १७५४ से स्पष्ट है कि मुखाकीरासकी यात्रा 'बैजुद्धे' अथवा 'बैजो' पाण्डे हेमराजकी पुत्री थी। पण्डोके बभ्रुधर पाण्डे हेमराजका शीघ्र वर्ग और जाति ब्रह्मचारी थी।^१

सितपट औरासी बोझ

मह बनीलक अथवाधित है। इसकी एक प्रमाणिकिण ग्रन्थ बभ्रुपुरे पं भूषकरजीके मन्दिरके विद्याभण्डान्त गृहका नं १५ में लिखत है। इस मुक्तिका केसनकाल वि० सं १७८४ है। इसकी एक अन्य ग्रन्थ इसी मन्दिरके बेहन नं ४४१ में पृथक्में बँधी रखी है। इन ग्रन्थों केसन काल पीप सुरी ५ वि सं १७२३ दिया है।

'सितपट औरासी बोझ' से निर्दिष्ट है कि इसकी कविता अरुण कोटिरी थी। एक पद्य देखिए

“सुबचरोव हवशीव जीवमुक्त सिवचरुत्तक
गुप्तमन्त्रिकेव सुबोव रोपहर उत्तविवाधक।
एक अनन्त सकल सन्तुष्टमिद्वत् अन्विष्टमिद्वत्
मित्र सुभाष पर माध जाति मासेइ कमरिन
अविष्टितचरित विकसित अमिद्वत् सर्व मिष्टित अविष्टित तव
अविष्टितवर्तित मित्ररस ककित अथ मित्र इष्टित सु वक्तिव वव ॥”

चपदेझ बोझा दसक

चपदेझ बोझा दसककी रचना वि सं० १७२५ में कालिक सुरी पंचमीकी हुई थी।^२ इस नामकी हस्तलिखित ग्रन्थ बीमान बनीचन्द्रजीके मन्दिर बभ्रुपुरके गृहका नं १७ और बेहन नं ६३६में लिखत है। इसकी भाषाबाध सन्तुष्टविद्योति मिलनी-मुकती है।

बाह्य संसारमें ईश्वरको बुझनेवाले जीवको छटारारते हुए बकिने एक स्वामनपर लिखा है कि मरे को बीच। तू अपनेकी जानि सबको स्वाम-स्वामनपर ववा चोत्रत-फिरता है। वह निरंजन देव तो तू है। घटमें ही वमा है। वहाँ क्यों नहीं योगना

१ हेमराज पण्डित वने निनी आनरे ठाँइ।

गमन बोध नून आगरी तब पूजें जिन वीह ॥

मुखाकीरास वाचस्पतिपुराण भाषा अन्विष्ट मरदिन।

२ अर्धचन्द्रक १ १००।

‘और और सीधत फिरत काह अंध अपेक्ष ।

तेरे ही बट में जमो सदा विरजान नृप ॥

कविने सत्य कविर्योकी धाँठि ही कहा कि - सुझानमके अनुमनके बिना तीर्थ
जेभोमें स्नान करना भूँक मुँडाना और तप तपना सभी कुछ व्यर्थ है ।

मिच साधन की जानियै अनुमो बड़ो इकाज ।

मूढ सखिक अंजन करत सरत न प्यो काम ॥ ५ ॥

कोटि बत्स की बोहव अठसठ तीरथ बीर ।

सदा जपावन ही रहै मरिदा कुम्भ सरीर ॥ ६ ॥

तन्मो न परिगाह सी ममत्त मिच्छी न बिदै चिकान्म ।

अरे मूढ सिर मूँचि कै क्यो न जाक्यो बरवास ॥ ७ ॥

कोटि अक्षम की तप तपै मय नच कच समत ।

सुझाउम अनुमो बिना क्यो पावै सिखयेत ॥ १४ ॥

हिंदोपदेश बाबनी

इसे बसर बाबनी भी कहते हैं । इसमें हिन्दी बषमाकाये ५२ बसरोंमें-से
प्रत्येकपर एक-एक पद्यको रचना की गयी है । इसकी एक इस्तकवित्त प्रति
जयपुरके बड़े मन्दिरके बेहन नं० २२२२ में मिल गई है । इसपर बेहनकाक सं
१७५७ पड़ा है । यह प्रति दिनबवारर गणिके शिष्य वं विनोदसापरने
मद्यम्य देवीके पढ़नेके लिए कल्पनवरमें लिखी थी । बाबनीका मकित-भावते बरा
एक सवैया देखिए

‘मन मेरो कमन्गी जिन गुण गावयो डाकत है गमबास सिखपुर कीवै

बास कीं बिदे विर्यदुन और कहा ज्वाबनो । तन मन कागो रोव कजु न सुहावै

मोय सब भुँह बुरि करि लोभुं चित जायच । सकल साहित मेरो

प्रगट प्रताप तेरी होव को बचाक पावो सब सुख पावयो । हेमराज मचई

सुनि सुरासैं सजग जग मन भरो कमन्गी है जिन गुण गावयो ॥ ३ ॥

हिन्दी-मच्छामर

बाबसे २५ वष पूर्व यह स्तोत्र वं पद्माकाकजी बाकबीपाक-डाप सम्पादित
‘बृद्धिजनबाबी संग्रह में छपा था । जमी ‘बागवीठपूजावक्ति में भी प्रकाशित हुआ

१ कवी २५९० होवा ।

२ तन्त्र १७८७ मिला बेराप्य हारी ११ दिने गुप्तासरे लेखनेल्लः ॥ श्री विष्णुपामर
यधि शिष्य व विनेवसागरेव लेखनेल्लः कल्पनाग्यने बहूजी बरामरवेवी
बाचनार्थ - लेखयति ॥ प्रतलि ५ १२ ।

है। हम भक्त्यामरकी प्रशंसा करते हुए ये भावपूर्ण श्लोके प्रेमिले लिखे हैं अनुसार सुन्दर हैं और हमका खुश हो प्रचार है। हमसे मात्तम होता है कि हेमराजकी कवि भी अच्छे थे।”

मूल संस्कृतका भक्त्यामर सार्वकविकीर्तिन कण्ठम लिखा गया है किन्तु पाण्डे हेमराजने जोशई कण्ठम नारायण और बोद्धका प्रयोग किया है। चौपाईमें कुछ लिखना तो है, किन्तु उससे सुन्दरताम कोई बिनात नहीं आ पाया है।

एक स्थानपर कविने लिखा है कि भक्त्यामरके नामम असीम बर है। जिस शब्दको प्रकट करनेको बोलकर धर्म विस्तृत हो जाता है, वे भक्त्यामरका नाम केने माधवे ही ऐसे नाम बताते हैं। जैसे दिनकरन उदयसे अन्धकार विस्तृत हो जाता है।

“राजन को बरचंड देल बर घोरज डीसै ॥

नाथ सिद्धारे नाम से सी छिनमाहि पकान् ॥

क्या दिनकर परकान् से अंधकार विवसान् ॥

भारतमेंके सम्मुख अपनी अनुपम प्रशंसा कवितका प्रकट कर है। एक स्थानपर भक्त्यामर का नाम लेकर कहता है कि हे भक्त्यामर ! राक्षस-हीन होते हुए भी मलिन-भावसे कारण आपकी स्तुति कर रहा हूँ। ठीक वैसा ही जैसे कोई मृगी बग-हीन होते हुए भी अपने पुत्रकी रक्षाके लिए भक्त्यामरके सम्मुख बकी जाती है।

‘सा र्थ शक्ति हीन भुक्ति वर्यै मक्ति साध बर कहु नहिं वर्यै।

क्यो भुक्ति निज-मुक्त पावन हउ भुक्त्यामि सम्मुख जाव अचेत ॥”

भक्त्यामर यह पूरा विश्वास है कि भक्त्यामरकी शरणम आनेसे कर्म-अन्धके बाध सब माधमें नष्ट हो जात हैं।

“तुम जम अरत जब छिनमाहि जमम जलम के बाप बरमाहि।

ज्यो रवि उगी कटै लखका अकि लख नीक निधा-लम-आठ ॥

शुद्ध-पूजा

पाण्डे हेमराजकी श्रिणी हुई ‘शुद्ध पूजा जैन-शरण्यरके अनुसार ही रची गयी है। अर्थात् पहले ब्रह्म इष्टपूजा है और फिर भगवान्। यह ये ब्रह्मसत्त्व वाचनीयवाक द्वारा सम्पादित ‘बुद्धिजनवाणी संग्रह’ में संकलित है।

धीनस्थ पूजा करते हुए भक्त्यामर कहता है कि मैं भक्त्यामरकी शरणम आनेसे मुझको बरचंडी सबैय पूजा करना है। हमने अज्ञानकपी अन्धकार नष्ट हो पायेगा और

१ हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास पृ. १२।

२ पाण्डे हेमराज भक्त्यामर आका ४२वीं पृष्ठ, बुद्धिजनवाणी संग्रह भक्त्यामर विभाग पृष्ठ १३३ पृ. २२।

ज्ञानकमी जबाका पैस पायेया । इस भाँति मुझे कभी भी मोह मोहित न कर सकेगा । हमारे गुह संभारके भांगोले बिरुप होकर मोयके लिए तपस्या कर रहे हैं । वे भी भयवान् बिनश्रम गुणधरा निरप प्रति आप करते हैं

‘दीरक उद्योग सखात जगमग सुगुणपद पूजों सदा ।

तमनास ज्ञान जबास स्वामी मोहि माह न हा कदा ॥

मय भया तन पैतृग्वधार निहार सिध पद उपत ह ।

तिहुँ जगनबाध भवार साधु सु पूज मिल गुह उपन ह ॥’

‘पंचपरमेष्ठी का साधु ही गुह है । मुनि भी जयोका नाम है । वे राम-शेपका दूर कर दयाका पावन करते हैं । टीना लोक उनके सामन प्रकट रहते हैं । वे चारों आराधनाओंके समूह हैं । वे दुर्द्वेष पंच महावर्तोंका चारण करते हैं और कहीं कर्मोंको भागते हैं । जनका मन सात भयोके पावनम जपा रहता है और उन्हें बाठा कृतियाँ प्राप्त हो जाती हैं

दूक दवा पाकेँ मुनिराजा राग शेष है हरनपर ।

ठीनों काक प्रगट सन हरेँ खातो आराधन निकर ॥

पंच महावत दुखर चारेँ कहीं दूख भावेँ सुदिर ।

सात भंगवामी मन कारेँ पावेँ भाद कादु बधिर ॥’

नमि राजमसि जखड़ी

इनकी एक हस्तलिखित प्रति जबपुरके बबीचन्वजीके मन्दिरम गुटका में १२४ में अंकित है । इनका अन्तिम भाग इस प्रकार है

‘तीस दिन अरु विराधार बी ।

इम मये बीन जानिय । ते पारि भय पार बी ॥

रोहिणी अत कथा

इसकी हस्तलिखित प्रति मसजिद मजूर रोहणीके बीन मन्दिरम मौजूर है ।

६० पं० मनोहरदास (वि सं १० ५ १०९८)

इनका दूसरा नाम मनोहरनाथ भी है । इन्हीं कथितामे प्राय ‘मनोहर’ का प्रयोग किया है । वे कच्छेकबाक आदि सौनी बीनमें उत्तम हुए थे । कभी इनके पूर्वजोने बीन-सँघ निकाला होता इस कारण उनको मूक-सँघी भी कहा जाता है ।

१ गुह-पूजा कव २ ।

२ गुह-पूजाकी वषमाला कव ३ ।

मे सामान्यरके रहनेवाले थे किन्तु कर्मके लक्ष्य थे। ग्रामपुरमे जाकर रहने लगे थे।^१ ग्रामपुर एक रमणीक स्थान था जिसके चारों ओर बान-बगीचाकी प्राकृतिक छटा बिखरी हुई थी। उसमें कोयल पंचमरामसे कूकती ही रहती थी। कुब बाबकी और पोखरी निर्मल बलसे मरी हुई थी। नमस्मिन् निरक्षित थीं जिनपर प्रमर गुंजार करते थे।^२ वहाँ मनोहरवास सेठ आसुं न आश्रममें रहते थे। वह नगर-सेठ कहलाता था। अठ्ठीकी वसपर अपार कृपा थी बैठा ही उसे बान देनेका उत्तर हृदय भी मिका था।^३ एक बार बनारसका प्रसिद्ध सेठ प्रतिषापर पापके लक्ष्मसे शरित हो गया। वह अयोध्या आया किन्तु अयोध्याके सेठने उसे आसुं के पास भेज दिया। उसने विपुल धान लेकर प्रतिषापरको अपनी बराबरी-का करके पुन बनारस वापस भेज दिया।^४ ऐसे शाली और उत्तार सेठको पावर मनोहरवास भी कुतुहल्य थे। किन्तु उनकी रचनाओपर सेठजीकी इच्छाकी कोई छाप नहीं है। वे सब स्वान्तःमुखाय ही लिखी गयी है। मनोहरवासमें जिन प्रताका माध मुक्त्य का कन्होने अपनी विद्या बुद्धि और कवि-प्रतिभाका कबी अङ्कार नहीं किया। उनकी कृतियोसे प्रकट है कि वे उत्तम कौटिके स्थित और अच्छे कवि थे। किन्तु उन्होंने उदैव यह ही कहा मैं व्याकरण कृत्य और अलंकार आदि कुछ भी नहीं जानता। मेरी बुद्धि तुच्छ है और मुझे बड़े-बुरेका भी ज्ञान नहीं है। जिनकी बुद्धि देवर कहता है कि मुझे तो केवल भयान्

- १ कविना मनोहर अच्छेकनाथ सोनी बाति
मूल छंदी मूल बागी सागानेर बास है।
कर्म के लक्ष्य थे ग्रामपुर में अमल भयी
सबसा मिलन पुनि सज्जन की बास है ॥
हिन्दी केन साहित्यका इतिहास, पृष्ठ २७।

२. वर्मररीका प्रसिद्ध प्रसिद्ध भयान् अमल पृष्ठ २९२।

३. श्री ५ २९२।

४. बाराबकी सेठ प्रतिषापर पूष्पी प्रसिद्ध
कौटिक को अपनी ताँटी पाप छई आयो थी।
सबसा ही निधि अयोध्या की वसन कीनी
अयोध्या के सेठ वह उत्तम करारों को ॥
जानी बराबर को कवि नागा मति सेती
देकर बड़ाई निज बाल की पठायी थी।
बैठे हम आसुं साह रासी निज बाह देक
रई मनोहर हम पुनि आश्रम पायी थी ॥
श्री ५ २९२-२९।

जिनकी ही भास है।^१ 'जिनकी बुझाई जाके जिन ही की भास है में कवित्व है और कविता भी।

धम-नरीसा

इसकी रचना सं १७ ५में बामपुरमें हुई थी।^२ कविने आमरेके राजत साहिबाद्वय हिसारके जनपद भिय और बामपुरके ही पण्डित वेगुरामसे प्रेरणा पाकर इसकी रचना की।^३ यह आचार्य जमिनगणि की धमनरीसा का भाषानुवाद है। इस ग्रन्थमें ३ पद्य हैं। उनमें पहिला पद्य ही मुख्य है। आचार्य जमिनगणिके मूल ग्रन्थमें भी मणि ही प्रधान है। इसकी जनक प्रतिमा विविध मन्थाराम सुरमिष है।

उन्हाल 'धम-नरीसा'में दोहा सोरठा सवैया और छण्डिका विसेप रूपसे प्रयोग किया है। आरम्भिक मंगलाचरण देखिए,

‘ममजु भरिहृत्पथेय गुह निरग्रंथ रचा धरम।

भवद्विषि तारन धुव अवर सञ्ज मिच्छाय मणि ॥”

‘धम-नरीसा की एक हस्तलिखित मणि रि बैन मन्दिर बहीनक बेहल नं २७२ पृष्ठका नं ५७ में संकलित है। यह प्रतिविषि प्रेमचन्दने वि सं १८१२ में की थी। कविने एक पद्यमें लिखा है कि परम ब्रह्मका छोड़कर अन्य भाष अपमाना न्यर्थ है। यह पद्य इस प्रकार है।

“सबै देव मिष नवै सबै मिछक गुह मार्यै।

सबै सासवरि पई कर्म ते चर्म न चार्नै।

सबै तीरथ किन आवै परम ब्रह्म को कहि ध्यान मारण की चार्नै।

इह मन्मर जो नर रहै हूमी माँचि सौसा कह्यै।

अचरित गुन बेहवा लगी कही बाप कसौ कह्यै ॥१॥

१ आकरण छंद अलंकार बहू पद्यपी नाहि,

भाषा मै निपुन गुणक बुझि कौ प्रवास है।

बाई बाहिनो बहू समी संतोष लीयै

जिनकी बुझाई जाके जिन ही की भास है ॥

हिन्दी बैन साहित्यका इतिहास छ ६०।

२ वही, छ ६०।

३ मरप्रलम्भक अवधुर ६ २२६।

४ मुमुनि जमिनगणि ज्ञान सङ्गमचोति पूर्व कही।

या मै बुधि प्रमाण भाषा कोनी जोरि कै ॥

वही छ २५३।

इसी भाँति कविन एक दूसरे परसे लिखा है कि—यदि कोई दुर्जन इन मन्दिर-समुहसे पार उतरना चाहता है, तो जगज्जिह्व तिसा त्रिनेत्ररा पुष्करिणी जल कोई आक्रमण नहीं है।

‘वारिधि के तटिष की बाहिल त्रिधाग किया
सरता उतरने की नीम बनाई है।
तम के नसाने की शायरस्य भार घरा
दीग के नसाने का ऊपर बनाई है ॥
भारतपर धूमने का मंदिर भराही गीम
अमुम यो राधन की कवि मुम पाई है।
ऐमि विधि सुरजवक उत बिहरन का
उदयगत भवा जिनकी दुबाई है ॥२॥

ज्ञान चिन्तामणि

इस कव्यकी रचना संवत् १७२८ माई सुदी ७ भृगुवारको बुध्दानपुरमें हुई थी। इनकी एक प्रति सं १८२४ कापाड बरी १ की छिनी हुई अम्ब जीन जम्बानम बीकानेरम मौजूद है। इसकी प्रति गुटकाशर है और इनमें कुछ बीज फल है। उसपर १२९ पद्य ललित हैं।^१ दूसरी प्रति पञ्चावनी मन्दिर ईडलीके धारुमण्डारमें रखी हुई है। इसमें कुछ ८ पद्य हैं। उत्तरर रचना सम्व १७२८ पद्य हुआ है।^२ इसकी एक हस्तलिखित प्रति बीकान बबीकनके मन्दिर, बबपुरके वैद्यन सं १ १७ गुटका सं ५१ में निबड है। उसमें १८ खण्ड ५२ पाचार्य और ५८ बीनार्थ हैं।

इसका विषय अम्बानम से सम्बन्धित है, किन्तु सावककी मूळवृत्तिवैशिष्ट्य साहचर्यसे इसकी मूल्यनाका परिहार हुआ है। ज्ञानकी प्रशानता होते हुए भी यह स्पष्ट कहा गया है कि ज्ञान भक्तिसे ही आक्रमण हो सकता है। यह बोध इस प्रकार है

- १ ऐसी ज्ञान ज्ञान मन करो विरलक मन परमार्थ करो।
संवत् १७२८ माई सुदी मध्यमी भृगुवार बहार्थ ॥१२३॥
नगर बुध्दानपुर जल देख मागी सुमारख गुग जैसे बुनवाइ।
मैं य वरु बने निरुवाग सदा वरम करें दिन रात ॥१२४॥
बीकानेरवासी प्रसिद्ध जल, राजस्थानमें दिल्लीके इलाक़िद्विज मन्त्रोंकी जीव,
कटुने भाव १७२१।
- २ अनेकाल का विरल १ पद्य १२२।

‘ओ आदि जिन समरतां हिरदै आधो ज्ञान ।

महा सुधाभिक्त में कह्यो लिख्यो धरम यह ज्ञान ॥१२१॥

बीरवी मूर्खताका बचन करते हुए कविन लिखा है कि यह बीर गुणके बचनारी तो मुनता नहीं दिन और रात पाप करता है विषय विषम में मग्न है । भक्तका मर्म भी नहीं जानता ।

‘गुरु का बचन सुने नहीं काब बिधि दिन पाप करै भजान ।

विषया विष सुं रवि पवि रह्यो रवान धर्म को भरम न कह्यो ॥२५॥

पीनके जानेपर यह बीर मरमत्त शक्तीको भानि मूम छटा है भक्तान्ताका भजन नहीं करता । मस्तोमें ही उसका जीवन बीतता रहता है ।

सरि आवन हुआ मैमेत भयो नहीं केवक मगधेत ।

केवलक दिन ह बिधि गया तीस धरम का जिन नर मया ॥३६॥

चिन्तामणिमान बाबनी

इसकी एक स्तुतिविधि प्रति बीराम बबीचनबीका मन्दिर जयपुरके गुटवा नं ८में लिख है । यह गुटका वि नं १७२७ आनीज मुबी १४ का लिखा हुआ है । इस प्रतिम कुल २ पद्य है । इसकी एक दूसरी प्रति इसी मन्दिरके गुटवा नं २७ में संरक्षित है । इसमें ५३ पद्य है और यह एक पूर्ण प्रति है ।

चिन्तामणिमान बाबनी एक मगधपुर्ण रचना है । इनके कतिपय पद्योंमें खूबसूतीकी रूपकाका निर्माण किया गया है । यकिनवा स्वर निर्गुणवादी सन्तोसि मिष्टता युक्ता है । उनके मध्यमें खनेबाते अलख निरंजनके ध्यानकी बात उन्डोल भी बड़ी है

‘बम्मु धम्मु सब सुग कई मर्म न कोह कहत

धकपु निरंजमु ज्ञानमय हृदि तनु मध्य रहैत ।

धम्मु धम्मु जग कई मर्म नर धोका पुमह,

महा बने तनु मध्य मोहपटक हजनि सुप मय ।

महु गुरु करा बचन पदु कज्ज करि मंजन

हिरन कमल अ नय मुमति अंगुकि किन अंजन ।

जिम मोह परक कहइ सबक ह्रिदि प्रकास कुरंत अति

धीमानु कह अनि आगधी हो मर्म रिछान न पदु गति ॥३५॥

सुगुणसीप

इसकी एक प्रति उगी मन्दिरके गुटवा नं १६१में लिख है । इस प्रति लिखी जाह हरीदासन लिखा था । इसकी एक दूसरी प्रति वि नं १८१२

की लिखी हुई कि जैन मन्दिर बड़ीगके गुटका नं ५४ बंटेन नं २७२ में
संरक्षित है। इसमें केवल ११ पद्य हैं। हममें जीवकी संसारसे विरक्त करनेकी
प्रेरणा दी गयी है। जनिपम पद्य देखिए

“जिन जिन धाम बड़े हैं रे काक
ज्यों ब्रह्मर्षी की नीर मन माहि का रे ।
कीन्ही जाय होकर जे रे काक
भिरठा वहीं समाय मन माहि का रे ॥
सोच सुगुह की भावि कै रे काक ॥१॥
बाक पनी बीबो प्याक मै रे काक
ज्वांन पनी कबमान मन माहि का रे ।
बुज पनी सकलि कयी रे काक
करि करि बाधा रंजि मन माहि का रे ॥भीष ॥२॥
समकित्त हवी परध्वी करो रे काक
मिष्ठा खंजि मिचारि मन माहि का रे ।
ज्यों सुख पावै जति कथी रे काक
मनीहर कहीच मिचारि मन माहि का रे ॥सीष ॥३॥

गुण ठाप्पा गीत

यह गीत बीबान बबीचन्द्रजीके मन्दिर जयपुरके गुटका नं २७ में पृ २१४
पर लिखा है। इसमें १७ पद्य हैं जो परम विद्यामन्त्रकी चम्पितमें लिखे गये हैं।
चतुर्थे-से एक इस प्रकार है,

वरम विद्यामन्त्र सत्यम् वद वरा
अनन्त गुणाकर संकर विचकरा ।
विचकराय श्री सिद्ध सुम्बर पाई गुण गण दानम्,
विम मोक्ष मीकने मुक्ति साधु केवल जाय प्रभाव प ।
धूमकम्त्र धुरि वद कमल गुणकई, मञ्जुपत्रत मनीहर धरप,
अमृत श्री वर्चमान मया पद बाधि मनीचन सुखकर व ॥

सासबन्द लब्धोदय (वि र्ध १ ०)

इन्होंने अपनी रचनाओंमें प्रायः ‘सखीदय’का प्रयोग किया है। यह शब्द
कथनाम प्रणीत होता है। जैसे सासबन्द नामके कई जैन कवि हो गये हैं त्रिचये-से

कासबन्द बिगोटी और कासबन्द सामवर्धन ती बहुत ही प्रसिद्ध हैं। इनमें-से प्रथमका संस्करण हो चुका है। दूसरे अंतरराष्ट्रीय शैव मठि से मिली गमना छत्रप्रतिष्ठ विज्ञानोपे की बापी है। उसको आठ प्रसिद्ध रचनाओंका विवेचन भी कसबन्दको पाठ्यक्रम किया है।^१ इनका रचनाकाल स. १७२३ से १७७० तक माना जाता है। कासबन्द कसबोदय मंत्रांक राजा जयसिंहके आश्रयमें रहते थे। जगन्निष्ठका राज्यकाल स. १६८५ से स. १७९९ तक स्वीकार किया गया है।^२ कासबन्दकी प्रसिद्ध रचना 'पद्मिनी चरित का निर्माण स. १७७७ में हुआ था। यह भी जगन्निष्ठकी है। इनकी पुत्र-परम्परा जिनमालिदयसूरि विनयसमुद्र हर्षविद्याल आनयसुद्ध और आनयसुद्धमणिके रूपमें स्वीकार की गयी है।^३ इन्होंने अपने पुत्र आनयसुद्धमणिके अवधिक अठावृत्तक स्मरण किया है। उसको साधुमिरोमणि और सकल विद्या भूषित कहा है।^४ कसबोदयकी विद्वत्ताके विषयमें तो कुछ नहीं कहा जा सकता किन्तु इतना स्पष्ट है कि प्रबन्धकार्योंकी रचनामें वे निपुण थे। यद्यपि मन्त्रयन्त्रकी चौपई के अन्तमें इनको 'स्वाकरक-तक साहित्य अन्वकोविद जसंकार रस बाण भी' कहा गया है, किन्तु एतद् सम्बन्धी इनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं होती।

'पद्मिनी चरित' 'मन्त्रयन्त्रकी चौपई' और 'पुष्पावली चौपई' नामने इनकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं। इनमें-से 'पद्मिनी चरित प्रबन्ध-काम्य 'मन्त्रयन्त्रकी चौपई' सङ्ग-नाम्य और 'पुष्पावली चौपई' एक छोट-ना कवि-नाम्य कहा जा सकता है। तीनोंमें सरसता है। अलंकार और कसोका भी समुचित प्रयोग हुआ है।

पद्मिनी चरित

अंतरराष्ट्रीय सूरिस्वर त्रिदरबके प्रसिद्ध बाणक हंसराजकी प्रेरणासे इन रचनाका निर्माण वि. सं. १७७७ ई.स. १५ सितम्बरके दिन हुआ था।^५ इनकी बार प्रतिभावा संस्करण 'शैव गुर्जर कविओ में हुआ है।^६ वे क्रमसः स

१ राजन्नाथमें दिग्दीप्ति दस्तविष्टिद घण्टाकी छाय मिली पाण, १ १३१।

२ का मा प्र कनिष्ठका पञ्चमी प्रामिक विवरण सख्या १३१।

३ शैव गुर्जर कविओ नाम २ पृष्ठ १३४।

४ मापु श्रीरोमणी सजक विद्यागुण मोमगारे बाचन भीज्ञानराज
ताम प्रमाई सोमतथा गुण मधुसूदारी भी कसबोदय जिनराज।
वरी पृष्ठ १३७ १३८ वी।

५ वरी १ १३४।

६ वरी १ १३।

१७६१ १७७१ १७७३ और १८१७ की तिथी हुई हैं। एक वह प्रति है जिसका संक्षिप्त परिचय काजी नाथरी प्रचारिणी पत्रिका के पन्नाहमें वार्षिक विवरणमें संख्या १११ पर अंकित है। यह प्रति मौकूसा बिदा मधुपके पण्डित ममाधरकर जयिकारीके पास है। इसका लिपिकाक सं १७५७ दिया हुआ है। इनमें राजा रतनसेन और पद्मावतीकी कथा है। कुछ घटनाक्रमके अतिरिक्त यह समुची कथा बादगीके पद्मावतीसे निम्नी-मुत्ती है। इसकी भी 'वास्तविक' और ऐतिहासिक देने से आनाम बाँटा जा सकता है। 'वास्तविक' कथानकमें हीरावन सोतेका प्रयोग नहीं हुआ है। रतनसेनमें अन्य उपारोहि पक्षिनीके सीम्बरबनो मुना है। रतनसेनकी राजीका नाम भी नाथमती न होकर प्रमावती है। उसे कपमें रत्नाके समान कहा गया है।^१ एक बार राजासे सम्मेलन होकर न बननेकी बिदा बन की जिसपर प्रमावतीने क्रोधित होकर पक्षिनी नारीके साथ विवाह करनेकी बात कही जो स्वादिष्ट भोजन बनानेमें निपुण हुआ करती है।^२ राजासे भी ऐसी नारीको प्राप्त कर प्रमावतीके गुमानको नष्ट करनेकी प्रवृत्ति की।^३ वह बीचमध्य सिद्धकी हृपासे जवानक समुद्रको पार करता हुआ सिद्धकमें पहुँचा और यहाँ राजाको अपनी बीरतासे प्रसन्न कर उसकी पुत्री पद्मावतीके साथ विवाह कर, कई माह बाद बिछोड़वधमें बापन जा गया। इस कथानकमें वस्त्रनाएँ भी हैं, किन्तु इनमें वही अस्मयवनीमत्ता नहीं जा पायी है वही कि 'पद्मावती' में कही जाती है। यह कथानक मानव जीवनके अधिक विवृत है।

ऐतिहासिक बात वही है, किन्तु यहाँ राजा और रतन नामों से पक्षित हैं जो रतनसेनसे अप्रसन्न होकर बकाइलीके दरबारमें पहुँचे कने। उन्होंने स्वयं पद्मावतीके कपका वर्णन वादप्राहृत नहीं किया अपितु एक सोतेके मुँहसे बरबाद

१ पदपत्री पद्मावती कप रत्न समान ।

देखत मुरी न बिछरी अतो बारि न जान ॥

का मा न १ पन्नाहों जैवार्मिक निरख संख्या १११ ।

२ तब लडकी बोली पिछे की राजी मनहरि रास ।

नारी आयी कान धीजी कपी मठ झूठो बीर ॥

इने केरकी आवा नहीं की किन्तु कपीजी बाव ।

पद्माकी का परचरे लकीजी बिम भोजन है स्वाद ॥

३ राजे तो हैं रतनसी परधु पदमनि नारि

मो साठो कोक मुन्हीं जे से रापो माव

परधु तुरकी बहमिनी बाजुं तुल गुमान ।

है। कंकण विद्याकर कंकणवालीकी अवाध रूप-राशिका अनुमान करवानेमें अधिक स्वाभाविकता नहीं है। अन्तमें अकाउन्टीनका आक्रमण युद्ध और रतनसेनका बन्दी होना आदि सब कुछ वैसा ही वर्णन है।

इस कथाके प्रारम्भमें ही दिया हुआ मंगलाचरण है जिसमें भगवान् विनम्रकी भक्ति प्रवर्ध है।

‘जी आदीसर प्रथम जिन जगपति ज्योनि सकल ।
निरमल पद्मासी नखुं अकल अमल अमल ॥
चरन कमल चित्तुं नखुं बीबीस मो जिन अमल ।
सुचदाइक सबक मणी सोबी सुरतरु अमल ॥
सुप्रसन्न सारव सामिथी होम्पो मात हजूरि ।
हुधि बीजां सु जन बहोत प्रगट बचन पहर ॥

कविने इस कथाको नौ रसोंमें लिखा है किन्तु उसमें बार और म्बार ही प्रधान हैं। इसीकी औपमा करते हुए कविन कथा

‘सरस कथा नवरस सखित बीर म्गार विद्योप ।

कवित्तु कवित कमलोकसु पूरव कथा सखर ॥

उन रसोंमेंसे बीर-रसका एक दृष्टान्त देखिए,

सूर कहाँ सुम्ह सहू अपने अपने मल

बाँट पड़े हुए जहर तेह कहिई बच पच ।

सामिबरन बाइक समी, हुया न कीई दोइ,

हुधि बीजा दिक्की यणी कुछ जियास्या दाव ।

राणोबी छोटाविधा राणो पद्मिनि राणी

बीइइ बड़ो बाळो बसु सुम्ह राणि साधि ।

बहन राज बिछोइको कीयो बाइक बीर

नचटंठे बस बिस्तरिबी स्वामी बरमी रजबीर ॥

युद्ध-प्रवृत्तिका एक बोझा निम्न प्रकारसे है,

‘बाटा बाटा ग्रामवन जावरान गुद राज

पास प्रसाद बकी कहु सती अरि सिरपाव ।”

मलयमुन्दरी औपई’

इसका लक्ष्य भी देगाईजीने ‘शैल गुर्जरकविजो’में दिया है। इसका निर्माण ॥ १७४३ बनतेरसके दिन हुआ था।

गुणामली चौपई

इसमें आनंदबनोकी बसा है। इसका निर्माण सं १७४५ वास्तिक पुस्तक १ की उदवपुरमें हुआ था। इसका उल्लेख लाहटाबोहूत 'किमबन्ध सूरि' के पृ १९४ पर हुआ है।

सीमम्बर स्तवन

इसकी प्रति जयपुरके ठोसिमोके दिगम्बर जैन मन्दिरके गुटका नं ५७ में संकलित है। इस स्तवनकी रचना सीमम्बर जयबान्सी मन्त्रिमें की गयी है।

६२ प० हीरानन्द (वि सं १०११)

ये परिचित तो वे हैं बनि भी अच्छे से। इसका रचनाकाळ अठारहवीं सताब्दीका प्रथम पाद माना जाता है। परिचित जयजीवनक समयमें ये अठारहवीं-सातवीं सताब्दी के हैं। विद्याभोगमें समझी गयाना भी। जयजीवनके बहानपर सन्देशोंमें 'पञ्चास्तिकाय का पद्यनुवाच बहक हो माहुरी दिया था।' 'पञ्चास्तिकाय आचार्य मु-बनुन्दका रची हुई प्राकृत भाषाकी रचना है। इसमें अष्टादशके साधनिक विद्याभोगा विवेचन है। उसका इतनी सीमम्बरके हिन्दी-पद्यमें यह ही अनुवाद कर सकता है, जो एक ओर तो प्राकृत और हिन्दीका समन्वय जानकार हो और दूसरी ओर रचना उच्च कवित्वमें भी निष्णात हो। हीरानन्द साधनिक से और बनि भी।

इस समय आगरामें आताबोली एक मण्डली थी जिसमें संघकी जयजीवन प हैमराज रामचन्द्र, संघी मधुरादास मवाकदास और भववतीदास साधनिक थे। इसी मण्डलीमें पं हीरानन्दना भी नाम आता है।

उनकी रची हुई चार कृतिषाका परिचय निम्न प्रकारसे है

पञ्चास्तिकाय भाषा

इसकी रचना वि सं १७११ में थी जयजीवनकी प्रेरणासे की गयी थी। यह पद्य बहुत पढ़के ज्ञाता का और सं १९७२ में जैनमित्रके लाहुरीको उपहार

१ दिग्दा जैन साहित्यका इतिहास पृष्ठ ६ ।

२ पं हीरानन्द सम्प्रदायकी स्त्री, जलिया बन्ध, २ १-७४, लखनऊकी राजस्थान मन्दिर जयपुरकी इतिहासिका मणि, पृष्ठका नं १७४ पृष्ठ २११ ।

स्वयं नेट दिया गया था। इसमें काल-त्रयको छोड़कर बसिष्ट जीव — जीव पुद्गल धर्म ब्रह्म और जायायका निदय मयसे बचन हुआ है। जहाँ तक हिन्दी कविता का सम्बन्ध है वह मध्यम कोटि की है। श्री गायत्रीमयी प्रेमोत्तम लिखा है कि कविता बनारसी भगवतीदान बाबिके समान ठा मही है पर कुरी भी नहीं है।^१ उम्हूल धरने इस समयक समयमें था पद्य प्रस्तुत किया है जो निम्न प्रकार है

सुख सुख दीसि भागवा सुख सुख कम न ओर ।

सुख सुख जाननहार है ज्ञान सुधारन पीव ॥ ३२१ ॥

संसार संसार में करनी कर अमार ।

सार कर कार्य नहीं मिथ्यापन का डार ॥ ३२४ ॥

इसमें इनका तो स्पष्ट ही है कि कवितामें सारही है सरलता है और प्रवाह है।

द्रव्य सप्तह माया

यह प्राकृत मायाके 'द्रव्य सप्तह' का हिन्दी पद्यानुवाद है। भूय पञ्चका निर्माण की तैमिराशाचार्यने किया था जो वैज्ञानिक प्रसिद्ध ग्रन्थ ओषकाण्ड और कर्मकाण्डक रचविठा है। 'द्रव्य सप्तह'में छत्र द्रव्याका वर्णन है। यह अनुवाद अप्रकाशित है। इनकी हस्तलिखित प्रति जयपुरके बड़ मन्त्रिरके मुद्रका नं ३२ म निबद्ध है। इस मुद्रकका लिखनकाल सं १७१८ माय वर्षी ९ है। हमसे स्पष्ट है कि यह कृति इसक पूर्व ही रची गयी होगी।

समवेदारण स्तोत्र

इसकी रचना वि सं १७११ सावन सुदी ७ बुधवारके दिन हुई थी।^२ इसकी बनबीबनने संस्कृतका आदिपुराण ५ ईशानम्बको पढ़नेके लिए दिया था उसकी सहायतासे अर्जुन हिन्दोके समवेदारण-स्तोत्र की रचना की। इस आदि यह स्तोत्र 'मिश्रक' और पुराण-सम्भन है।^३

१ हिन्दी में साहित्यका इतिहास पृ ९ ।

२ एक प्रसिद्ध सनद की सम सावन मुद्रि सातमि पुष मम ।

ना निन लव संपुन भया समसमन बहवन परितवा ॥

३ होराकण्ड नामरागण स्तोत्र ४ वापय गृहस्थाधी पादवा अदिर बनपुरकी हस्तलिखित प्रति मुद्रका म १४४ पृ ३२१ ।

४ इसकी मुद्रि अगर्भचन मई आदिपूजन भवाया लगे ।

इस हेतु पुष नहीं निर्मव इस जानै ही है निरर्जन ॥२०॥

इसमें ३ १ पद्य हैं। इसकी प्रतिकृति कायपुर नामके नगरमें श्री विष्णु मूर्तिसे वि सं १७ ४ में करवायी थी। यह प्रति कायपुरके बड़े मन्दिरमें सेप्टन नं १८९९ में निबट है। एक कुसरी प्रति सुयकरनजी पाण्ड्याके मन्दिर, कायपुरके गुटका नं १४४ में वर्ष २९३ से ३११ तक संश्लिष्ट है। इसमें सम्भवतः इसकी प्रोमाका रचना करत हुए लिखा है।

‘एतव सिद्धर नम मं छवि हन ईव दृष्टि उपमावत इत ।

रंगमूमि विनि साका मार्हि पृथी सोम बीर कर्तु नार्हि ॥१७॥

विनमं वसत अमरीगणा हाव भाव विधि नारक बवा ।

चंचक चरक सोम बाहुका अशु सामा वन विधि कम्पका ॥१८॥

किंनर मुरकर बीणा किच गावन मधुर मधुर हक हिने ।

मुनि मुनि मोहि कैरुदही सावा जिव सुमर भूदकी ॥ १९॥

एकीमाव-स्तोत्र

यह बाहिराममूर्तिसे संस्कृत ‘एकीमाव स्तोत्र’ का आद्यमन्त्र केकर लिखा गया है। इसकी प्रतियां कायपुरके बड़े मन्दिरके गुटका नं ९५, २१५ और ३२ में निबट है। नं ९५ का गुटकाकी प्रतिकृति वि सं १८१ की को हुई है। हमसे स्पष्ट है कि इसकी रचना वि सं १८१ से पूर्व ही हुई होगी। भूवरवासन की एक ‘एकीमाव स्तोत्र’ बनाया या लिखी हीरामन्त्रका यह स्तोत्र सबसे अधिक सरल सरल और प्रभावशाली है।

६३ रायचन्द (वि सं १ १६)

रायचन्द नामके जनेका कवि हुए हैं। मिमल्लनुमाने एक रायचन्द नामका कवि लिखा है, जिन्होंने ‘वीरवीरिकावली’ और श्रीकान्ता की रचना की थी। इनका रचनाकाल १७ के आसपास था। गुजरातीमें तीन रायचन्द हुए हैं। मितम-से ‘रायचन्द पक्षेका मुचलावरक धिय्य मे। इन्होंने ‘विजय ठेक विजयलक्ष्मी राव’ नामका ग्रन्थ वि सं १९८२ में लिखा था।^१ हमारे रायचन्द १९वीं शताब्दीके

इनका कारण कहि करि होर मगम पहिय बरी बड़ीर ।

समोमरत हन रचना मेह अथा पुरान समस्त निबट ॥२९१॥

वरी ३ ३११ ।

१ मिमल्लनु विमोह, भाग २, पृ ४५३ ।

२ गुर्जरविजा प्रथम भाग, पृ ५१४ ।

पूर्वार्धमें हुए थे। उन्होंने 'समाधिपत्रकीसी 'गीतमस्वागी रास' 'कछाबती चौपई' मृगसेजनी चौपई' 'अपम चरित' आदि अनेक सुन्दर गुजरगोती काव्यों-की रचना की। तीसरे रायचन्द्र ने वे याग्वीजी जिन्हें अपने नुरुक समान पूज्य समझते थे। उन्होंने 'अध्यात्मसिद्धि की रचना की थी।' इनमें-से दूसरे रायचन्द्रका चरनेका अथराचन्द्रकी नाट्यम 'रासस्वागमें हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज द्वितीय भागमें भी किया है। उसकी दृष्टिमें इसी रायचन्द्रनं कल्पसूत्रका हिन्दी पद्यानुवाद किया था। प्रकृत रायचन्द्र इन सभीमें मिश्र हैं। वे हिन्दीके एक सम्पन्नशैलीके कवि थे। उन्होंने 'सोनाचरित'की रचना वि सं १७१३ में की थी।^१ मद्यपि इस ग्रन्थका आचार आचार्य रविदेवका पद्यपुराण था किन्तु फिर भी उसमें अनेकों स्वतः ऐसे हैं जो मौलिक हैं। भाषामें जीवन है। शीतलके चरितकी प्रमुखता की कमी है, और उसमें गरीबत भाषाका चित्रण उत्तम शैलीमें अंकित हुआ है। वैसे भी कवियें बुधबोधो उपस्थित करनेकी सामर्थ्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि कविको बाह्य और अन्त दोनों ही प्रकृतियोंका सूक्ष्म ज्ञान था। उसने एक ओर तो मानवके मर्मको पहचाना है और दूसरी ओर प्रकृतिकी रमणीयताको अंकित किया है। मद्यपि इसमें कुछसी-बैसी बाधकता तो नहीं की किन्तु यन्त्रीयता वैसी ही थी।

इन महाकाव्योंमें ३५ ० पद्य हैं। इनकी एक प्रति बी नया मन्दिरकी धर्मपुरा विश्वीके सार्वभारतमें अ ३२ न पर मौजूब है। एक दूसरी प्रति जयपुरके बड़ मन्दिरकीके वेदन नं २ ९५ में लिखत है। यह प्रति सं १७०८ की सिद्धी हुई है। उपर्युक्त प्रतिवामें सबसे अधिक प्राचीन है। इसमें १९५ पद्य हैं। इसकी बराबरी पूर्ण एवं मुक्त है। एक तीसरी प्रति इसी मन्दिरके युद्धका नं २१९ में संकलित है। इसका रचनाकाल संवत् १७१३ दिया हुआ है। इसमें कुल २५५९ पद्य हैं। एक चौथी प्रति यह है जिसका अन्तेका 'मिमन्तु चितोच' नाम २ की संख्या ३८९/२ पर हुआ।^२ इसमें भी रचनाकाल यह ही दिया हुआ है। इस

१. पूर्वार्धकवि, भाग १ पृ १७२।

यह दृष्टि 'मिमन्तु रायचन्द्र' नामके ग्रन्थमें अप्रुनी है।

३. सचत सतराज तरोतर, मयिसर ग्रंथ समापति नर।
नया मन्दिर, वैसीवासी प्रति।

४. बीनो ग्रन्थ रविदेव नै रघुपुराण मिय बाण।

यह अर्थ इन म कहाँ रायचन्द्र उर आय ॥२७॥

५. मिमन्तु चितोच नाम १ पृ ४९१।

प्रतिष्ठा यह स्पष्ट है कि कविता उपमाय 'बन्धु' वा । इनमें विवरणोंमें कविता रचनाका मठारहको संतापीरा प्रथम पाद प्रमाणित होता है । इनमें एक-दो स्वक हेतिए

राम और बालकौर्म जारिमित गुण है मन्त्रा इनकी सामर्थ्य किछ कविमें है, जो अपनी बाकीले इनका वर्णन कर सके । किन्तु कवि 'बन्धु' ने अपन देव गुण और वर्मनों मिर भुषावर वर्णित कर्तुनेका प्रमाण दिया है

“राम कावकी गुण विस्तार कई कान कवि बचन विचार ।

देव चरम गुण तु मिर नाच कहँ चंद कविम जग मान ॥

रावणको भीतरर राम सीताको निकर अयोध्या पुरीय जा गये हैं । रामा रामके दासनी सभी सुखी है मित्राह है । स्वर्गमें समान भोगमाने सुखोंका उपभोग करते हैं किन्तु कोई उच्छ्वसक और पापी नहीं है । रामरा राम स्वाम-पर आधारित है । कामिकजन सब रामके गुणोंकी पाठी हैं ।

“रावण की जाग राम सीता विनोवा जाये

पाठी सुनीत राज पक्षक सुहावनी ।

सुप में विनीत काक सुख की विनोवा हाक

मन हो मित्राह पाप पंथ में न आचली ॥

बाही बचमान बन्नी मन ही सुख की

सुख समान सुख भोग मनमयनी ।

बोक सुपहार नहि सज्जन मित्राहो माहि

मन ही सुखनी बोक राम गुण पावनी ॥”

एक महत्त्वपूर्ण प्रतिक्रिया लालेका काशी नामके प्रचारिकों-प्रतिष्ठाके बाहरों कोय विवरणमें हुआ है । यह प्रति बाधवरीके लैन धर्म-काव्य उपलब्ध हुई थी । इनका विनि-काक सं १८९२ दिया हुआ है । इसपर भी रचना संस् १०११ ही पडा है । इस प्रतिमें कुछ ३ पृष्ठ हैं । इस प्रतिमें रिसे हुए कुछ प्राप्तिभक्त होते और बीमाहवां देखिए,

बोहरा

“प्रमती परम पुनीत नर बरचमान विनोव ।

कोकाकोक प्रकाश तम कर ममकिली सेव ॥ १ ॥

तस वा नर गीतम प्रमुग बर्मचन्द्र बमपाव ।

विबमचन भवि जन मन्त्रा विदे मोहवम राति ॥ २ ॥

चौपाई

‘कवि बासक कह कीन्हो कमाऊ । हसी माठी बुधिर्वच बिताऊ ॥
 राम जानकी गुन बिस्तार । कहै कीन कवि बचन बिचार ॥३॥
 देव बर्म गुन कह सिरसाह । कहै चंद उचम जग माह ॥
 पर उपकारी परम पवित्र । मज्जव भाव भगत के चित ॥४॥
 पंचपरमगुरु प्रधान । प सुमिरौ उर कछन जान ॥
 जिन के भव जगि ही गुच्छ रहै गुन के सैन दिव जिव प्रहै ॥ ॥”

दोहा

“पंच परमगुरु की बनी भंगकीक सिबकीक ।
 भाव समान भगत की करै सुराज्य लहकीक ॥

अन्तिम दोहा

‘जो बाघी निज जानछो कहै जात परचाय ।
 जान पजछो जायिषै जान पनी परबाज ॥

६४ जिनहर्ष (वि स १०१३-१०१८)

बोहराबोबोय जिनहर्षसुरि और बाघपक्षीय जिनहर्षसुरिसे कविबर जिनहर्ष पुक्त हैं । वे छरठरगणके प्रसिद्ध आचार्य जिनबन्धसुरिकी परम्परामें हुए थे । इनके मुक्ता नाम बाघक धान्तिहर्य या जो एक भजे हुए बिहान् थे ।^१ जिनहर्षने उन्हीसे शिक्षा प्राप्त की थी । जिनहर्षने ब्रह्मसे ही कविप्र हृदय पाया था । उन्हीने पचासो स्तुति-स्तवन रास और छन्दोंकी रचना की है । इनकी कृतिबोमें रास है । साम्ब इसी कारण इनको अपने सम्मम ही कविबर कहा जाने लगा था । इनकी ‘बनराज’ भी कहते हैं । उन्हीने इस नामके आधारपर ही ‘बसराय-बावनी’ की रचना की थी । इनका पुत्रराठी और हिन्दी दोनों भाषाओंपर समानाधिकार था । आज इनकी इनकी हिन्दी रचनाएँ भी उपलब्ध हैं । वे साधु थे और धूमते

- १ जो गच्छ छरठर बीपगो पञ्चराज की जिनबन्ध
 सुरिस सुरि सिरौमधी बई तास गरिह ।
 बाघनाकारिब बदन बारिब आर्य बचन बिचार
 भी धान्तिहर्य बाघक ठेब जिनहर्षे बीयो रास ॥
 रत्नरोज्य राजनी रास प्रशति सैन पुत्रराठिबो, कण्ड २ भाग ३
 पृ ११०० ।

रहना ही उनका काम था किन्तु फिर भी वे पाठशाला में अधिक रहे। उनका अन्तिम वास तो विदेश कपड़े बहाँपर ही था।

कविवरका व्यक्तिगत मोहक और आकर्षक था। उनमें अनेकों ऐसे तत्त्व थे जिनके कारण उनका लोक-प्रियता बहुत अधिक बढ़ गयी थी। जैनधर्म-सम्बन्धी घुसट्टियाँ और नियम-उपनियमों ने कठोरतासे पाकन करते थे। अन्धे तो उन्हें अपने जीवनमें कभी नहीं देख पाये। सरकटा ही उनका जीवन था। उनके हृदयमें किसीने प्रति-पक्ष-द्वेषका भाव नहीं था। धर्म और धर्म-संस्थाओं के साथ उन्होंने पंच महावर्तों का पाकन किया था। तानु बही है जिसके हृदयमें समता-रस उत्पन्न हो गया हो। जिसके समता-भावकी अभिव्यक्ति वह युवमें ही करने लगे थे। उनका सबसे बड़ा काम पञ्च मन्त्रका रचन था जिसके आधार कपमें उन्होंने 'सत्यधर्मसम्पाद पाठ' की रचना की थी वह प्रकाशित हो चुका है। उनके इस सन्तुष्टि-उपायकीय बुद्धिबिम्बकी बहुत अधिक प्रशंसा है। अन्तिम समयमें जब कि कविवरकी व्याधि उत्पन्न हुई तो बुद्धिबिम्बमें ही उनकी अधिकसे अधिक सेवा की थी। अन्तिम आशयों की उन्होंने करवायी। कविवरके मन्त्रों में भी उनकी अन्तिम शिवा (मायावी रचनादि) मन्त्र-पूर्वक ही सम्पादनी थी। कविता की अन्तिम रचना पंचपरमेष्ठिका रचनी करके हुए ही निकली।

जिनके रचनाओं का संक्षिप्त परिचय 'जैन पुस्तकालय' में प्रकाशित हो चुका है।^१ इसके अनुरोध और भी कई कृतियाँ थी नाट्यकीयों में प्रत्यक्ष हैं।^२ राजस्वामके जैन धर्मग्रन्थकारों की ग्रन्थ-सूचियों में भी इनकी कृतियों हिन्दी रचनाओं का पत्र मिला है। 'राजस्वामके हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची' नाम ४ में भी इनकी कुछ कृतियाँ विवरण में हैं। कविवर जिनके रचने की हस्त-लिपि का एक किताब 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह' में प्रकाशित हुआ है।^३

असराज बाबनी

इनकी रचना में १७७८ अक्षरों की ७ मुक्तारके रचनी हैं।^४ इनकी

१. कविवरके इन कृतियों में विभिन्न 'करीब' के 'कविवर जिनके रचने की' में है। उनके दो ही ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह हैं १९११-१९१२ में हैं।

२. जैन पुस्तकालय संग्रह २ भाग ३ पृष्ठ ११२४-११२५ और भाग २, पृष्ठ १-१११।

३. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृष्ठ २२।

४. पृष्ठ १९ और २१ के बीच में।

५. अन्तिम रचना का नाम 'असराज', राजस्वामके हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची नाम ४ पृष्ठ २२।

एक प्रति संवत् १८५९ की लिखी हुई समय जैनग्रन्थाध्यय श्रीकान्तिरत्न मीनूर है। यह प्रति श्री प्रणारसामरके पत्रनेके लिए कोटड़ीमें लिखी गयी थी। इसमें १९ पन्ने हैं। किन्तु बावनी केवल अन्तिम तीन पन्नोंपर ही अंकित है। इसमें कुल ५७ श्लोका हैं। एक दूसरी प्रतिका उल्लेख श्री गुरुवरकविश्वो में हुआ है। यह प्रति पण्डित जीवविजयके शिष्य अश्वविजयजी लिखी हुई है।^१ प्रारम्भमें ही 'ऊँकार' का माहात्म्य बताते हुए कवि कहता है

“ऊँकार जगत् काय आचार सबै नर नारी संसार जप है।

बाचन अक्षर मन्त्रि उपहार ज्योति प्रदीपन कोटि उपे है।

सिद्ध विरजय भक्त मछेल सकल न क्य जीर्णोद्भूत पपे है।

ऐसा महाउप है ऊँकार की वाप जसा जाके नाम लप है ॥ १ ॥

कविकी बदले समयमें बैठक मझा है। वह वर्मको छोड़कर अवर्मको स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं है। वर्मको त्याग कर अवर्मको लेना ऐसे ही है जैसे बिन्तामणिकी छोड़कर पत्थर ग्रहण करना और वामनेनुकी छोड़कर बकरी स्वीकार करना।

“नग किन्तामणि कारिक नगर जाड ग्रहें नर मूरख सार्हें।

मुहर पात्र पट्टवर जंवर जोरिहीं ज्योडन फल है कोई ॥

कामदूबा घावें न बिछार के केरि गहैं मतिमद बि कोई।

धर्म के कोर जगधर्म की असराज सबे बिज बुद्धि बिगोई ॥ २ ॥”

सन्त-परम्पराकी मौलि कवि श्री बाह्याहमरोप विरोधमें है। उसकी दृष्टिमें शिर मुझमा बडा भारव करना ह्वाजे केबलाव करना हिमजर रहता घरीर पर बरम रमना और पंचांगि लप लपना सब कुछ व्यर्थ है। ऐसा करने-मानसे मोक्ष प्राप्य नहीं हो सकता। मोक्षके लिए ज्ञान अनिवार्य है

‘कोर सुनीस हँहावत हैं केहू जंम जडा मिर केई रहानें।

लंघन हाय लू केई करे रहै मूख दिगम्बर केहू कदावें ॥

राजलू कइ करेट रहें केहू जग पंचांगि भाहें लपावें।

कप करे असराज बहुन पे ज्ञान बिना सिद्ध बंध न पावें ॥ ५१ ॥”

उपदेस-छत्तीसी

इसकी रचना अथवा १७१९ में हुई थी। इसकी एक प्रति अमर जैन ग्रन्थालय श्रीकान्तिरत्न मीनूर है।^२ एक दूसरी प्रति यह है जिनका उल्लेख जैन गुरु

१ जैन गुरुकविता, भाग २ पृष्ठ ११९।

२ राजस्थानमें दिल्लीके इन्फान्टिन प्रिन्सेपी गज भाग ४ पृष्ठ ११।

नविमो'म हुआ है।^१ इनमें केवल १५ पद्य हैं। इसका प्रारम्भ ही नवमान् विमल
की स्तुतिसे किया गया है। संसारके नाया-मोहमें मगल होकर घनमान् विमल
के घरबामें समर्पित कर देनेका उपदेश इस काव्यमें दिया गया है। ऐसा अनेक
वक्त कविबाने किया है। स्पष्ट रूपसे ही यह उपदेश दयन और सिद्धान्तमय
उपदेशसे पुनर्द् माला जावेगा। इसका आरम्भिक पद्य देखिए

‘सकल सख्य नामें प्रमुखा भव्य भूष
रूप छाया साया है न केन उपवास न।
पुष्प है न पाष है न शीत है न तार है
काय के प्रता प्रगटें करम अनीस न॥
ज्ञान के अंगन पुंन सुख दुख का मिश्र
अविनाश कीर्तन अह वचन ऐसीस न॥
देनो मिमरात्र मिमहरम प्रजमि
उपदस की उनीसी कहुं सबद्वय उनीस न॥

बाबारी

इसमें बीबीस टीककराही स्तुति है। कुल २५ पद्य हैं। पद्य पाँचों जिने
बने हैं। अर्थात् इनका स्वर उनीसारम है। इसकी एक प्रति सं १७९९ माघ
बही १ की बिही हुई अमम केन सम्बालमय मीमूर है। इस प्रतिमें पण्डित
भुवनविद्याल भुनिने मारीटमें लिखा था।^२ प्रारम्भमें ॥ नवमान् आदिमाकी
मक्तिन किया गया एक यह देखिए जो कि ‘राय कवि’में निबट हुआ है

‘देखा अचम किमं नु तब तेरे पात्रिक दुरि पयो,
प्रथम किमं नु कवि सुर-तट कंद। तेरे सुर नर हृद आर्षद भयी ॥३३॥
आके महिमा कीरनि सार असिद्ध बनी संसार अके न कहत पार अपन भयी।
पंचम अरिमें धाम बारी लोचि मिमरात्र अम सिंधुकी मिहारा आनि है हबी ॥३४॥
बन्वा अनुत कय मोहिनी कवि अप्य घरम की छापी भूर प्रभु की भयी।
कई तिन हरित वचन आर विरमिन सुख अम वरमात इति उदधी ॥३५॥

कविता यह कुछ विरसाय है कि जो भक्ति-भावपूर्वक बीबीसी टीककराही की
कीर्तिना पान करता है। छोटे भी प्रकारकी निबियाँ उपलब्ध हो जाती हैं। नवमान्
करतुतक समान है। एक छात्रने भी यही प्रत्यक्ष मानना कभीमूठ होती है।
बीबीसा नवमान् गुण प्रदान करनेवाले हैं

१ केन गुर्जरकविने काल ५, भाग ३ पृ ११७७।

२ राजस्थानमें दिन्दीके हन्दीविद्या प्रबोधि लोग भाग ४ पृ १२३।

जिनपर चन्द्रबीस मुकुटवाई

भाब मयति धरि निज मनि बिरछरि कीरति मन सुख गवाई ॥१॥ मि ॥

जाक नाम कछपुवप समबर प्रणमति नब निधि पाई ।

चौबीस पद चतुर गवाईयो राग बंध चतुराई ॥२॥ मि ॥

धी सोमगनि सुपसाठ पाइके, निरमक मति डर जाई,

छान्ति हरप जिन हरप नाम तैं होवत प्रसुबर दवाई ॥३॥ मि ॥”

नेमि-राखीमदा बारहमास सचेया

इसके सभी पद्योंमें ‘विनहर्ष’के स्थानपर ‘जगराज’का प्रयोग किया गया है । इसमें प्रपञ्चान् लमिनाब और राजोमडीचा प्रसिद्ध कथानक है ।

यह एक छोटा-सा बिछु काव्य है । इसमें छीरिक रामके सहारे अकौफिक रामका विवेचन हुआ है । इसे हय रामानुजा मल्लिका हो बुद्धान्त कह सकते हैं । इसमें कुल १३ पद्य हैं । इसकी एक प्रति जयप जीन ग्रन्थालय बीकानेरमें मौजूद है ।^१ दूसरी प्रति यह है जिसका सम्बन्ध बैसाईजीने किया है । उस किन्हीं पण्डित विनवचन्वने छ १७१३ आषाढ़ सुदी १ की बैठकमेरमें लिखा था ।^२ इसका भारि और अन्त देखिए,

“सावन मास जग जग वास आवास में कैकि कर नर नारी ।

घादुर मार पयोहा रहे कहा कैस करे विधि बीर जमारी ॥

बीज ठिकामक होई रही कैम जात सही समसेर समारी ।

आइ मिकनी असराज कह नेम राखक छँ रति कागें दुखारो ॥१॥

अन्त

“राखक राजकुमारी विचारि के संयम नाब के हाव गछी है ।

बंध समिति चीन गुबति चरा निज बिल में कम समूह दखो है ॥

राग द्वेज नीह मावा नई अरभक केवक आन कछी है ।

दम्पति जाइ नसैं शिव गौह में भेद लरो असराज कछो है ॥२॥”

नेमि-बारहमासा

यह एक दूमरा बारहमासा है जिसका नियम भी बही है । इसकी एक प्रति जिनवत सरस्वतीमन्दार कम्बईने मौजूद है । इसकी किन्हीं मुनि वरदसूरिने

१ पृ ४ १६१ ।

२ कैम गुर्जरविजा, पृष्ठ २, पद्य १ ५ ११ ।

लिखा था ।^१ दूसरी प्रति जयन वीरगुणाध्यायमें है । दोनों ही १२ पदोंवा है ।^२ पद्योंमें कोष है और आत्मपथ । इसके दो पद्योंको देखिए

‘बन की बनघोर बरत डवहीं बिठुरी भमरंति सकाहकि-सी ।
बिधि पात्र अपात्र अपात्र करत सु कागत मो विवहेकि तिसी ॥
परीबा पीठ पीठ रहत रमण सु, बाहुर मोर नई ककिसी ।
देसे आदम में बनु बेमि भिकै सुख होत कही कसरत रिसी ॥१३॥’

अन्त

‘मगटे भम बाहुर बाहुर होत बवा बन आदम आकी जयो है ।
काम की बेदम मोहि सतावै आबाहुर में बेमि विचोय दयो है ।
राहुक संवस के के सुपति गई निज कन्त मवाच कयो है ।
बोरि के हाथ कई कमराज बेगीसर साहिब निज अपी है ॥१४॥

सिद्धचक्र स्तवन

इसकी एक हस्तलिखित प्रति जयपुरके बबीलम्बरीके मन्दिरमें विराजमान
मुद्रा नं ११९ पेट्रॉल नं ११५५ में बिबद्ध है । प्रति सिद्धचक्रकी अष्टादश
श्लोकित है । कठिपद पद्य देखिए

सुरम्बहारा वस तिमर देव देवाभुर चोवर बिहिब सेव ।
सेवामयन मय राव पाव पावसिब पन्नामहकव पताव ॥२॥
सावर धन समवा मय निवास बासव गुण पोवर गुण बिकाव ।
काहुजक संजक सीक कोक कीकाव बिहिब मोहावहीक ॥३॥

बार्धनाय नीसाणी

यह स्तुति महावीरकी अष्टिछत्र लेखके घासबग्नारमें एक प्राचीन मुद्रा-
में पृ १३४ पर लिखी हुई है । इसमें २९ पद्य हैं । पद्यार्थ सरसदा और पवि-
ष्टीकता है । प्रारम्भके दो पद्य इस प्रकार हैं,

‘सुख अपति दावक सुरवरमावक वरतण पाव निरंदा है ।
आकी कवि अंति अनोपम अपम दीपत आनि निरंदा है ॥
सुख कोति सिगामग सिगामग भूमि वरण चंदा है ।
अप कन सकन वचनै भूव सो तू ही तिसुवन महा है ॥१॥

१ पृ १ १९०६ ।

२. रामलालने दिल्लीके हस्तलिखित ग्रन्थोंका कोष, भाग ४ पृ १६२ ।

कहमा हम सागर मागर काक सबै मिलि कस्य पुर्नदा है
 छोरी पित्रमति करै इकबिल सुसैवक ती भरजिदा है ।
 है बकटी भागि निकस्यो माग किया बम्माग सुरदा है
 सो बरबां भाव रखा कपटी इकका भवि केकि करदा है ॥२॥”

शैलिक चरित्र

महापद्म शैलिक भगवान् महावीरके परम भक्त थे । जीनेके अनेकों ग्रन्थ शैलिकके घरसे बारम्ब हुए हैं । उनकीका चरित्र इस काव्यमें अंकित है । इसकी सूचना हिन्दी जीन साहित्यके इतिहासमें अंकित है । इसकी रचना सं० १७२४ में हुई थी ।

अपिदा चौपई

यह चौपई बाबू बामठाप्रसादजी चौबके संग्रहमें मौजूद है ।^१ इसमें कुल ३२ पद्य हैं । इसका भावि और अन्त देखिए

“अथापद् श्री आदि त्रिनद नंदा बाधुपुत्र त्रिनद ।

पादा सुमति यथा महावीर अवर नेमि पिरवार सपीर ॥३॥

अन्त

‘उत्तम बमला कहीच पार गुल सुहर्षा कहीए बिस्तार ।

बाहनें दूर कर्मबी कीड़ करै त्रिनद नंदा बसुं बन ओर ॥३२॥

संगठ गीत

इसकी एक प्रति बयपुरके भूषकरजीके घरमें विराजमान गुटका नं० ८१ में संरक्षित है । यह गुटका सं० १८ का लिखा हुआ है ।

६५ अचलकीर्ति (वि० सं० १ १५)

अचलकीर्तिके पारिवारिक जीवन और भुव-वरम्बरा आदिके विषयमें कुछ भी विहित नहीं है । उनकी अठारहवाले नामक पुस्तकमें देखना ही मान्य हो सता है कि ये डिरोडावाले रहनेवाले थे । ये महारक थे और महारजीव

१ हिन्दी जीन साहित्यका संक्षिप्त इतिहास, पृ० १५ ।

२ लहर टिरोडावाच में ॥ नाम की चौपाई ।

बार बार सबली बहो हो लीची धर्म विचार ॥

परम्परामें ही उनकी शिक्षा-सीसा हुई थी। उनका 'विषाणहार स्तोत्र' सैन समाज-में बहुत ही प्रसिद्ध है। अभी उनकी एक और 'रचना कर्मबत्तीसी' भी प्राप्त हुई है। इसके अनिरिक्त उनकी रची हुई रचिबलकवा विन्हीके पंचायती मन्दिरमें भण्डारमें सुरक्षित है। यह सुनिश्चित है कि अलकनूपति अछारण्णी अठासीके कवि थे। उनकी एक-दो रचनाओंके काव्य-संघर्षसे ऐसा स्पष्ट भी है। वे एक अच्छे कवि थे। उनकी कविता उनके अलहदात्मक निदर्शन है। मायामें सरलता और प्रवाह है। 'विषाणहार स्तोत्र' तो भक्ति-रसका प्रधान काव्य माना जाता है। 'कर्मघण्टी' भी उनकी कृति है।

विषाणहार स्तोत्र

इस स्तोत्रकी रचना नारनौकमें हि. सं. १७१५ में हुई थी। वैकुण्ठ कव्य मैनपुरीकी एक प्रतिमें इनका निर्वाच-संस्कृत 'अन्नासि नन्ना धुम बाग। बरनी प्यनुन सुखी नीचल बाग। दिया हुआ है जो कि अणुह है। कासी नापटी प्रचारिणी पत्रिकाके सन् १९ के विवरणमें इनके रचना संकल्प अन्ते 'तमहो पन्ना धुमबाग। नारनौक तिथि नीचल बाग' कर्ममें हुआ है। मैनपुरीके डेढ़ बत्तीसवींकी दिनांक सैन मन्दिरमें स्थित इसकी एक प्रतिपर भी रचना-संस्कृत १७१५ ही दिया हुआ है। हि. सैन मन्दिर बत्तीसके विष्टन नं. १७२ गुटन नं. ५७ में भी पृ. ३२ पर एक हस्तलिखित प्रति निबद्ध है। इसमें रचना सं. १७१५ दिया हुआ है।

संस्कृतमें मद्रासके वर्तमानमें 'विषाणहार स्तोत्र' की रचना की थी। यह एक प्रौढ रचना थी और आज भी उसकी क्याति है। हिन्दीमें इसके अनुकरणपर अनेकालेक विषाणहारकी रचना हुई किन्तु किसी सरलता कोई न था था। कवि शान्तिदान और अलीगढ़के विषाणहार स्तोत्र' तो बूढ़न-बाठन-से प्रणीत होते हैं। उनमें कविता हृदय नहीं रम पाया है। यह हृदय रमे तो पुराना घाव भी बसन्तकी भाँति नये रूपमें कहकहा खलना है। परम्परा-नाकनके लिए दिया गया कोई भी काम स्वाभाविक नहीं ही बनना।

अलकनूपति का 'विषाणहार स्तोत्र' भी वर्तमानमें अनुप्रासित है किन्तु इन बातों 'नान-भर' नहीं कर सकते। मकनकी नाव-मन्त्रता और अतिशयमानकी

काम मद्रासकी भी धुम पिय नुनुर मुमान ॥५८॥

विष्टन सैन बत्तीसकी मन्दिर विन्हीकी हस्तलिखित प्रति।

१. डेढ़ बत्तीसवींकी हि. सैन मन्दिर, मैनपुरीके गुटन नं. ३ और विष्टन नं.

१. २। इस गुटनेवा विष्टनघट सं. १८०४ दिया हुआ है।

गवीगाने हमे सरस और मौलिक बना दिया है। आराध्यकी महिमासे सम्बन्धित कतिपय पद्य देखिए^१

‘प्रमुखा पतित बचरण जाड भाई गहै की धाव निवाहु ।

जहां सेपो तहां तुमही जाव बट कर जोति रहो कहराय ॥१३॥

मसम ब्याध ममन्तया की भई, संमी स्तुत जिन अस्तुति छई ।

गई व्याधि विमक मति भई तहां मान्यत तुम सुख छई ॥१४॥’

कर्म-बत्तीसी^२

इसकी रचना पावानगरमें संवत् १७७७ में हुई थी। इसमें पावानगर और बीरसंनका भी बतल है। इनमें बड़े ही सरस रूपसे कर्मोंके प्रभावकी बात कही गयी है। कुल ३५ पद्य हैं। भाषामें प्रवाह और सरसता है।

अठारह नावे

इसका निर्माण किरोवाबायमें किया गया था। इसका यह कि महारकीय क्लर प्रतिष्ठित होनेके पूर्व ही अचलकीतिने इसकी रचना की। इसमें बहु प्रीति नहीं है जो जनकी अन्य रचनाओंमें पायी जाती है। इसकी एक प्रति श्री बीन पंचायती मन्दिर बिक्रमीमें सुरक्षित है। बीन-गरम्परमें अठारह नाचोकी कथाका प्रचलन बहुत पुराना है। अचलकीतिने भी किसी संस्कृत कथासे ही इसका कथानक किया था।

रवि-व्रत कथा

इसकी रचना हुई ‘रवि-व्रतकथा जी उपसृक्त मन्दिरके शास्त्रमण्डारमें ही सुरक्षित है। उसपर रचना-संवत् १७१७ दिया हुआ है।

धर्म रासो

इसकी रचना वि सं १७२३ में हुई थी। वि सं १७२९ की किसी हुई एक प्रति महाबीरजी अतिथय क्षेत्रके शास्त्रमण्डारमें मौजूद है।

पद

अचलकीतिने अनेक भक्ति-परक पदोंका निर्माण किया था। एक सरस पद कृष्णरजजी पाण्ड्या मन्दिर जयपुरके गुटका न ११४ पन्ना १७२-७३ पर अंकित है। कतिपय पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

१ वि. बीन मन्दिर, बलौली इत्यादि स्थित प्रति।

२ गुटका नं १ गेट नं ३२७ कृष्णरजजीका मन्दिर, जयपुर।

काहा कई कैय तिहँ मयसागर मारी ॥ केह ॥

साया मोह मगन भयो महा बिकक बिकारी ॥ काहा ॥१॥

मय हस्ती मय जाड सुमन-सा मंजारी ।

बिन बीटा मित्र सौं प्यु अनिपक कईकारी ॥ काहा ॥२॥

बाया लन पकन गयो, सुनि सुनि न बिचारी ।

बेतन बिनि नहि बेतना सुनि नहीं तु बिचारी ॥३॥

अब क्या गति या बीच की तीन्हीं पन डारी ।

अबकबीरति आहार है प्रभु सत्य तुम्हारी ॥४॥

अबकबीरति एक 'पायु' दि कैय मन्दिर बगैरने एक परमपहमें बी
बेहम नं ४ ५ में लिखत है पृ. ३२ पर अंकित है ।

'उक्त वाक्य कागै हो हो होरी सब मित्रि आग मुहावरी

॥ केहत है नर नारि ॥ अंक ॥

कौटि गयो महा सौंघरी प्यारी आप बखो मिर नारि ॥ अंक ॥१॥

हौं बिन नाहिर नीनरि बडी हो बिछ सम है गृह बान ।

पिच कुल कहे न बीसक हो अब मय भयो है उदास ॥ अंक ॥२॥

हौं सुमन सुगल मित्रि पक ही हो लीर गुलाक उदास ।

बेमिर्दर दरसन करि प्यारी बाबीने उलम बास ॥ अंक ॥३॥

हौं सची सहित राजमली बाकी छोडि भकक सिंगार ।

बमि कंदर चिन कानके हो लिखो है संजम पार ॥ अंक ॥४॥

अनम मरन मय बीति कै हो केहत सुकति मंजारी ।

अबककारि बी बी कई ही मेरी आवागमन निवारि ॥ अंक ॥५॥

६६ रामचन्द्र (वि. सं. १७९०-१७५)

ये अठ्ठराग्यके प्रधान श्री त्रिनितानुरागकी शिष्य-परम्परामें थे । श्री त्रिनितानुरागे शिष्य पद्यकीर्ति औरहु विचारोंमें पारंगत और चारों बेरोमें लिखात थे । उनके श्री शिष्य पद्यरचनी विद्वत्ता और सुमनसाया चारों ओर बख फैला हुआ था । लोग उनकी महिमाके पीत नासे फिरते थे । उनकी शिष्य श्री रामचन्द्र थे ।

१. श्री त्रिनितानुराग मुनि मुनिवाणी नाम जय नम नुर नर नारी ।

बाकी शिष्य त्रिनितानुराग बहिन पद्यकीर्ति सुन्दर अनु सहित ॥२२॥

‘मिथबन्धुविनोद’में इनका अस्मैक ‘रामचन्द्र साकी बनारसबाके’ कहकर बुझा है^१ किन्तु न तो ये बनारसके रहनेवाले थे और न इनका उपनाम ही ‘साकी’ था। ये साधु थे जब भूमते ही रहते थे। हो सकता है कि कभी बनारस भी गये हों। ‘साकी’ सम्झी का विषय हुआ स्पष्ट है। इन्होंने रामविनोद की अन्तिम प्रशस्तिये लिखा है, ‘उत्तर दिशि सुरसाग में बाबु देस प्रथम। सखक भूमि है सखदा सखकी सहर सुभ बाब।’^२ इनका अर्थ है कि उत्तर दिशाम कुपसाग देसके अन्तर्गत बाबू नामका प्रदेश था जिसका सखी^३ प्रसिद्ध नगर था। वहाँ पानीकी कोई कमी नहीं थी भूमि हरी थरी थी। स्थान सुभ माना जाता था। कविने लिखा है कि उस समय वहाँ बीरसेनदेवका राज्य था। उसने शासनकी प्रशंसा की है। वहाँ सुख और शान्ति थी। रामचन्द्रने उही नगरमें ‘रामविनोद’ का निर्माण किया था। वहाँ भी ये भूमते-भूमते ही पहुँचे होंगे। इनके मूल निवास स्थानके विषयमें निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। रामकृष्णदुर बाबू हीरासाह भी ए नटनीने इसकी मायापर राजस्वानीके विशेष प्रभावकी देवकर इनकी राजपूतानवा रहनेवाला घोषित किया है।^४ श्री अबरचन्दकी गारुडाने भी इनके पत्न्यापर राजस्वानीके प्रभावकी बात स्वीकार की है।^५

ये जिस साकाके साधु थे वह विद्वत्ता साधुता और कविता दोनों ही ने किए प्रसिद्ध रही है। जिनानिहुरिक तो अकबर और सखीम शेना ही न सम्मान किया

विद्या व्याप हस कंठ बछायेँ देह व्याप को अरब विद्यानै
पदरंग मुनिवर मुखबाई महिमा बाकी जती न आई ॥९३॥
रामचन्द्र मुनि इन परिघाखी सामुद्रिक माया करि दाखी।
बा लपि रहिज्यो सूरि भी बंदा पदहु पंडित सहु बाणंद ॥९४॥
सामुद्रिक माया, प्रशस्ति, राजस्थानमें दिग्दर्शके इत्यतिथि प्रमाणों योग भाल
१, ५ १९४-२३।

१ मिथबन्धु विनोद भाग २ पृ ४६९, सख्या ४९३।

२ कैत गुर्जरकविता खण्ड १ भाग ३ सख्या १०४ पर रामविनोदकी प्रशस्ति पृ १९६७।

३ मरदानो जब महाबनी अबरंग साहि नरद
साध राजमी हृष्यं रज्ज्वी घासत जानव ॥ ३ ७ ॥
वरी।

४ का मा प्र पत्रिका ज्योतिष सत्प्रसन्न, भाग ८, पृ ४६७।

५. राजस्थानमें दिग्दर्शके इत्यतिथि प्रमाणों योग भाग १, पृ १३३।

वा । रामचन्द्र भी एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे । वैद्यक और ज्योतिषपर तो इनका एकाधिकार था । उनके द्वारा रचे गये स्तवनाम स्तव हैं कि कवितायें भी उनका असाधारण प्रवेश था । वार्षनिक विद्वत्तासे सम्बन्धित उनका कोई ग्रन्थ देखनेकी मंजूरि मिलता । इन साधुजीका सम्मान वैद्यक और ज्योतिषक अपाव सावध ही किया था । बड़े-बड़े सम्राट् भी इनकी भविष्य-वाग्निषां सुननेके लिए तरसा करते थे । अद्वैतक कविताका सम्बन्ध है भक्तिपूर्ण ही होती थी । उनके द्वारा किये गये संस्कृत स्तुति-श्लोक प्राप्त होते हैं ।

बाघी नाथजी प्रचारिका परिभाषा १९९ और १९११ के जोर विवरणके सम्बन्धमें रामचन्द्रजी जैन नहीं माना है ।^१ इनका दायन है कि 'रामचन्द्र' नाम किसी जैनका नहीं हो सकता । यादव इनकी दृष्टिमें हिन्दू ही रामचन्द्रजी वचन मानते हैं, जैनोके मन्वान् तो मन्वावीर हैं । हिन्दु 'रामचन्द्रजी' के आदर्श कविता केकर विपुल जैन साहित्यकी रचना हुई है ।

विवरण-लेखकका दूसरा लक्ष्य है कि भी 'रामचन्द्रके रामचन्द्र' के प्रारम्भ में मनेशजी बन्ना की गयी है जो कि हिन्दुजीका है, जैनोका नहीं । हिन्दु मन्त्र तो विद्याका अभिप्रेत है, और उसकी आराधना हिन्दु तथा जैनोने ही नहीं अपितु मुसलमानों तकने की है । जैनोके तों अनेक महत्त्वपूर्ण कविताके साहित्यका प्रारम्भ मनेश-बन्नासे ही हुआ है । अतः इस आधारपर रामचन्द्रजी जैन होनेसे इनकार नहीं किया जा सकता ।

तीसरा लक्ष्य यह है कि ग्रन्थमें जहाँपर भी जैन मतका उल्लेख नहीं है । हिन्दु वैद्यकग्रन्थकी ग्रन्थमें ऐश्वर्यात्मिक विषयके निरूपणको अक्षर ही नहीं था । इनके अतिरिक्त रामचन्द्रने स्वयं अपन पुत्रपुत्रोंके वैद्यक ज्ञानको स्वीकार किया है । ये बात जैन थे । जैन होते हुए भी वैद्यकके ग्रन्थमें जैन-उल्लेखोंमें बात न करना अजीबत्वकी निशानी नहीं है ।

जैन अथवा अजीनके बात मिलनेसे किसी भी ग्रन्थके रचयिताकी कविता अनुमान कहाला भी ठीक नहीं है ।

१ 'नाथचन्द्र गतिचरित्रकी भूमिकामें लिख, Jam priests at the court of Akbar' और "Jain Teachers at the Court of Jahangir" १९११ ।

२ ग्रन्थमें ईश्वरचन्द्रसे अपना भविष्य ज्ञानकेकी माधवा की थी, हिन्दु ग्रन्थमें यह कहने उल्लेख नर दिया था । नहीं १० ।

३ का का प्र कविता मनीष लल्लु, भाग १ ४४५ ।

रचनाएँ

सन्धान वैद्यकपर 'रामविनोद' और 'वैद्यविनोद' तथा व्योमिपपर 'सामुद्रिक-माया' का निर्माण किया था। 'रामविनोद' की रचना वि सं १७२ मय-सिर सुदी १३ बुधवारको समकीनगरमें हुई थी। यह ग्रन्थ कञ्चनग्रन्थे लप बुका है। 'वैद्यविनोद' का निर्माण वि सं १७२६ वैशाख शुक्ला १५ को भारोठम हुआ था। यह सारंगधरका भावानुसार है। इस ग्रन्थके अन्तमें कविकुल वर्धन जीपारि' की हुई है।^१ किन्तु उससे पारिवारिक जीवनका कुछ भी पता नहीं चलता उसका सम्बन्ध पुन पुनकोकी प्रशस्तिस है। 'सामुद्रिक-माया' की रचना वि सं १७२२ माघ शुक्ल पक्ष ९ को मेहरारमें हुई थी। मेहरार पंचावस विद्यस्या नदीके किनारे बसा हुआ सुन्दर स्थान था। उसमें नारायण वर्ध सुखपूर्वक रहने थे। वहाँ उस औरपनेवका राज्य था जिसकी बड़े-बड़े नहराह सेवा किया करते थे।^२ इसकी प्रति जिगहर्षसुरिमण्डारमें मौजूद है, जिसका अस्तेय भी अक्षरचन्द्राजी माहटान किया है।^३

रामचन्द्रने काव्यसम्बन्धी चार ग्रन्थोंकी रचना की थी जिनमें तीन स्तवन और एक अरिभगम्बन्धी चौथाई है। कतिपय पद भी प्राप्त होते हैं। सम्मोदसिद्धर स्तवन सं १७५ में बना था। इसमें चौकोके प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र सम्मोदसिद्धरकी स्तुति की गयी है। सम्मोदसिद्धरसे चौकोके २ तीर्थक्षेत्रका निर्माण हुआ है। उसकी पवित्रताको समीप मुक्त-कण्ठसे स्तुतिवार किया है।

'वीरानन्द आदिनाथ स्तवन' की रचना वि सं १७३ अठ सुदी १३ को हुई थी। इसमें वीरानन्दरथ आदिनाथ प्रभुकी मूर्तिको कदम लगाकर हृदयवर्ध कतिपय सद्गुणाना स्तुतीकरण हुआ है। आदिनाथ जीनाके प्रथम तीर्थक्षेत्र नृपमदेवको कहते हैं।

वद्यपचन्द्राव ना निर्माण वि सं १७२१ पौष सुदी १ को हुआ था।

१ रामस्याम्ने शिन्धीके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी श्रेष्ठ भाग २ पृ ३१ ३२।

२ बनचारी बहुत काय प्रयास वहे विद्यस्या नदी सुवान।

ज्यार वर्ध तहाँ जगुर मुजान नगर मेहरा की मुग प्रयाग ॥

बड़े बड़े पानिमाह गरिबा ज्यारी सेव करे जग बन्धा।

पानिमाह की नाराय नानी वय गनीम बसी दिस भास जो ॥८९॥

साहसिकभाषा प्रशस्ति, पेरियर वी ५० १९४।

३ बरी, पृ १९३।

इससे एक प्रतिका लक्ष्मीन 'जैन पुनरुत्थिनी' में भी हुआ है।^१ यह प्रति आदिश मन्त्राके पङ्क्तिके लिए ली गयी थी। इसमें कुल ३३ पद्य हैं।

'मूलदेव चौगई' की रचना सं १७११ फाल्गुनमें गणपटमें हुई थी। यह एक ऐतिहासिक काव्य है। इसमें किन्हीं मूलदेवका वर्णन है। इसकी एक प्रतिका लक्ष्मण्य दी देसाईजीन निभा है।^२ 'मिमन्त्रु-विमोह' नाम होने द्वारा उचिन मन्त्र-परिण की भी बात कही गयी है।^३

रामचन्द्रके प्रतिपद पर वि जैन मन्दिर बहोनेके पदार्थ ५८ में निबद्ध हैं। इसमें भक्त हृदयका प्रस्तुतन ता है ही। साक्षर्य और कल्पना भी है। यदि कोई भक्त आराध्यके चरण-वन्दनके प्रतापसे स्वयंकी भाव लके अपूर्व ज्ञान तथा परम मुक्त प्राप्त कर के तों वापुसित गया है। जबतक उक्तका दृष्टदेव भिन्न नहीं था वह भव भवमें भटकता फिरा अब भटारनेकी क्या आवश्यकता है,

‘अब जिनराज भिक्षिया गुणगणनार सुन्दर अनूप।
जबकी मङ्ग कछी नदि प्रभु की गति गति में जति रुकिया।
बिना मोह गई अब ही मम स्वाय अपूर्य पुकिया ॥
हरसन करि निज हरसन पावो सुख सत्तादिक भिडिया।
चरण कमल पूज्य विराठा कहि एक कई भुवि सिद्धिया।
रामचन्द्र गुण बल्लभ ही सकल पाप ठकि चकिया।’^४

आदि प्रभु ज्ञानमय वनन लके होकर लय साध रहे हैं। उनका एकत्र भव प्राप्त दृष्टि बलौकिक मुक्तकाल अपूर्व लय विखेर रही है। यह भक्त ही बना जो ऐसे लयके वर्णन और वर्णनमें लय न लके

“कहि जिन आदि देरै, सुर गण आग बंदि सभूय।
लक्ष्म लीग लजि ज्ञानवरु बन में जगन किदातम देरै।
नासा ज्ञान लड़े कर कहे ज्ञानसम देन विस्तरे ॥
जानत ज्ञानम भास यह भोजन पीर जगत भू केरै।
धर्म तीर्थकर लय कर कगरि दासी की कर परै।
रामचन्द्र भवि दासी कई सुररतन बुद्धि करि देरै।”^५

१ जैन पुनरुत्थिनी नाम ५ १ ७-८।

२ कही, कथ २, नाम ५ ५ १५१५।

३ मिमन्त्रु विमोह नाम ९, ५ ४९५।

४ पदनाम ५ पद २३, वि जैन मन्दिर, बहोत।

५ कही।

रामचन्द्रने सतगुरुकी भक्तिमें भी अनेक पदोंका निर्माण किया। वे सभी सरस हैं। उनमें प्रसार गुण है। उपयुक्त 'पर लिंगह'में उनका भी संकलन है।

६७ जोधराज गोधीका (वि० सं० १०२१)

गोधीका ईसापूर्व दोहाके मुख्य नगर सापानेरके निवासी थे। उन्होंने लिखा है कि मैंने सहासों नहरोंको देखा है। किन्तु उसके समान और कोई नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि सापानेर वास्तवमें एक प्रसिद्ध स्थान था। वहाँपर ही अनेकों जीवन-कवि उत्पन्न हुए थे। वह एक साहित्यिक केन्द्र था। जोधराजके पिताका नाम जमरराज अथवा जमरसिंह था। वे काठिसे बनिया थे। जीवन-कर्ममें उनकी बहुत सहा थी। पिताका प्रभाव नृपपर भी पड़ा और जोधराज अपमान् विनेन्द्रके सक्त बने। उनकी सब साहित्यिक रचनाएँ विनेन्द्रकी भक्तिसे ही सम्बन्धित हैं।

जोधराजकी शिक्षा एक प्रसिद्ध ब्राह्मण विद्वान्के द्वारा सम्पन्न हुई। उनका नाम हरिनाम मिश्र था। मिश्रजी अनको विद्याओंमें पारंगत थे। जोधराजने उन्होंने छन्द व्याकरण और ज्योतिष आदि ग्रन्थाका पाठ्यपत्र किया। संस्कृतमें व्युत्पन्न हो जानेपर उन्होंने हिन्दी काव्याका निर्माण किया। जोधराजके कथनसे ऐसा प्रतीत होता है कि मिश्रजीने उनकी जीवन-राश्व भी मूल भाषामें पढ़ाया था।

उस समय सापानेरमें राजा जमरसिंहका राज्य था। उनकी प्रशंसा करते

- १ सापानेर मुजान में बैठ ईसापूर्व सार ।
तामस गडि की और पुर बेले सहर हजार ॥
जमरपुत जिनकर मगत जोधराज कविनाम ।
बासी सापानेर की करी कथा मुजनाम ॥
सम्बन्धकीमुही, सापानेर नहराकी मनि जनिम प्रशस्ति ।
- २ मिश्र एक हरिनाम मुनी पढ़पी छन्द व्याकरण प्रशानि ।
ज्योतिष ग्रन्थ पढ़पी बहुत धाय मिश्र जोध नही मुजनाम ॥
निर्दिष्ट पढ़ापी जोध की मूल ग्रन्थ बरवान ।
ठापर भाषा मुन बीबी जोधराज मुजनाम ॥
पंडित बनुर मुजान है इह जोध हरनाम है ।
ठाकी मंथनि जोध को मयी नासनर नाम ॥
बरी, जनिम प्रशस्ति ।

हुए कविने लिखा है वह मृगों सिरमीर है, और प्रजापति सुष्ठु प्रकारसे वस्त्र पोषण करता है। उसके समान और कोई राजा नहीं है। सब वपह जैन हाथ हुआ है।^१ शांति और सुखवस्थाके होनेके कारण ही जोधराज अनेक इच्छाओं का निर्माण कर सके।

बाबू ज्ञानचन्द्रजीने अपनी 'शिवम्बर जैन भाषा ग्रन्थनाम मूची' के पृष्ठ ४-५ पर जोधराजकी सात रचनाओंका संक्षेप किया है। उनमें केवल 'अध-वीरिका' हिन्दी पद्यका ग्रन्थ है, बाकि सब इणियाँ पद्यमें लिखी गयी हैं। इनके अतिरिक्त कुछ पद्य भी मिले हैं। उनमें मयवान् विनेन्द्रजी भक्ति प्रधान हैं। बाबू कृतम हैं और भाषा प्रौढ़। 'विचक्षण बोधा' और 'अधमन्त्रिपंचविंशतिना-भाषा भी इन्हींकी इणियाँ हैं। ये सभीकी ओरामें सम्मिल्य हुई हैं। उनकी रचनाओंका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकारसे है :

सम्यक्त्व कौमुदी

इसकी रचना वि सं १७२४ क्रिस्तुन बरी १३ बुधवारको पूर्ण हुई थी।^२ सम्वत् १७८४ की लिखी हुई एक प्रति नया मन्दिर दिल्लीके शास्त्रमण्डारमें मौजूद है। इसमें १८ पृष्ठ हैं। दूसरी प्रति संवत् १७९३ की लिखी हुई आमेरके शास्त्रमण्डारमें रखी हुई है। इसमें कुछ १९ पृष्ठ हैं। तीसरी प्रति बयपुरके ही बबीचम्बरजीके मन्दिरके शास्त्रमण्डारके बेल्ल सं ५८२ में लिख्य है। यह प्रति सं १८३ कात्तिक बरी १३ की लिखी हुई है। इसमें कुछ ५९ पन्ने हैं। रचनादास सं १७२४ क्रिस्तुन बरी १३ दिना हुआ है। यह प्रति कवि इरीतिह टोम्बामै चम्पावतीके रामपुरामें की थी।

कविने यह रचना अपने माया बम्बाणके लिए की थी। बम्बाण लम्बाही

१ परम प्रजा वाली सदा नव मूर्ति सिरमीर ।

उमंगित राजा प्रवट ता सज नहीं और ॥

ताई राज मुनीन सबो बियो राज यह जाय ।

बरी ।

२ मयन् मजहमी बीईम क्रिस्तुन बरि तेरस बुधवार ।

बुधवार नवम बरि बई कथा समजित मुन बई ॥

सम्यक्त्व कौमुदी, हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास कम्पे १९१७, पृ २७।

३ नया मन्दि, दिल्लीके शास्त्रमण्डारकी अ ३२ (ग) प्रति ।

जातिके धर्मशास्त्रका छोटा पुत्र था। कुहाड़ी बनिमोंकी एक जगजाति है, जो राजस्थानकी तरफ अब भी पायी जाती है।

यह रचना मौलिक कृति नहीं है। कविने उसको मूल संस्कृतमें पढ़ा था। हमका यह भाषानुवाद है। इसमें जैन भक्तोंकी कहानियाँ हैं जो ११७८ बोड़े बीपाइयामे निबन्ध की गयी हैं।^१ अनुवाद होने हुए भी भाषा और टीकाकी दृष्टिसे नवीन कृति है। जाति और वस्तु वैशिष्ट्य,^२

‘परम पुष्प आर्जवमय चेतन रूप मुखाय ।
मम छन्द परमात्मा जग परमसक मान प्र
परम जोति धार्मिकमय सुमति होइ आनन्द ।
नामिराज सुख जाति जिन नही परम चन्द ॥

अन्त

नही सिध जगजाहना कर बंदी सिध पंच ।
असह देव बंदी बिमल बंदी गुण निरर्णव ॥
जिनबांसी पूजी सही ताते सख सुख होय ।
कविता सुखन नही कगी सुख स परम होय ॥
चंद्र सूर पानी जगजि पवन जग आकास ।
मेराविक जग जग अटक तब कग जैन प्रभाव ॥

धर्म सरोवर

हमकी रचना कि सं १७२४ आषाढ तुषी पुचिमाको हुई थी।^३ अर्थात् सम्मत्तर कीमुरी से आठ माह पूर्व। इसकी एक प्रति ‘जैन मन्दिर सेठका कूँबा

१ धर्मशास्त्र का पुत्र जगु, जाति कुहाड़पी जोग ।

नाम बस्याय मुजामिये कवि की मामी सोय ॥

नवा मन्दिर दिल्लीकी इलमिदिय प्रति प्रशस्ति ।

२ ग्याराठे अठहत्तरि इहैं छंय बीरई जग ।

कह्यी कीमुदी धम्म की जाय मुमति अनुमान ॥

थी ।

३ नही १ १६१ २६२ ।

४ संवत् सप्त से मज्जि है बीरई मुजानि ।

मुदि पुण्यी आषाढ की जियो पंच मुपशानि ॥

बीरराम गार्ग्य धर्मसरोवर पृ ३-४, सेठ कूँबा दिल्लीकी प्रति पृ ३६३ पर लिख्य ।

बिस्ती' में मौजूद है। इसमें कुल २३ पत्र हैं। इसपर रचना संवत् १७२४ दिया हुआ है। यह प्रति नवीन है और सं १९८४ की छिपी हुई है।

यह एक मौखिक कृति है। इसमें विविध सुभाषित और स्तुतिपत्रों के साथ जैन धर्मका निरूपण किया गया है। एक स्तुति देखिए,

सीतलनाथ भगो परमेश्वर अमृत मूर्ति भोति बरी।

भोग संशोभ सुखाग सब सुखदायक संजम काम करी ॥

श्रेष्ठ नहीं कहाँ श्रेष्ठ नहीं कहाँ श्रेष्ठ मान नहीं नहीं है कृपिकाई।

हरि ध्यान समहारि शत्रु सुख केवल शोध करै यह बात बरी ॥

प्रीतकर चरित्र

इसकी रचना संवत् १७२१ में हुई थी। इसकी एक प्रति बयपुरके श्री मन्दिरके गुटका नं ११२ में निबद्ध है। यह गुटका सं १७२४ फागुन सुदी १ का लिखा हुआ है। इसका अन्तर्गत आनन्दश्रीकी सुचीमें भी किया गया है। इसमें म्हात्मा प्रीतकरका चरित्र है, जो भवभानु विनेश्वरके परम भक्त थे।

कथा-कोश

इसकी रचना सं १७२२ में की गयी थी। इसका अन्तर्गत पण्डित नानुपामजी प्रेमी और श्री वामनाथदाजी 'वीर' किया है। इसका आचार श्री आनन्दश्रीकी सुची में है।

ज्ञान समुद्र

इसका निर्माण सं १७२२ ईश्वर सुदी १ को हुआ था। इसकी एक प्रति इसी संवत्की छिपी हुई बयपुरके बड़े मन्दिरमें बेहल नं ५३३ में निबद्ध है। इस प्रतिको स्वयं भोवराज मोदीश्वरने छापानेमें लिखा था। इसमें ३३ पृष्ठ हैं। इसकी एक प्रतिवा अन्तर्गत बाबू आनन्दश्रीकी सुचीमें भी हुआ है।

प्रवचन सार

इसकी रचना संवत् १७२६ में हुई थी। इसकी एक प्रति बयपुरके बड़े मन्दिरके बेहल नं ११९४ में बँधी रखी है। इसपर रचनाका सं १७२६ पत्रा हुआ है। यह प्रति सं १७२९ वास्तिक बरी १ जगुवारकी छिपी हुई है। इसमें ९४ पन्ने हैं। यह व्याख्यान कुम्हटुम्हके प्रवचनसारका भाषानुबाध है।

१ हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास पन्ने १२१७, दृ. ४ ।

२ हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास पृ. १५९ ।

चित्रपञ्च-बोहा

इसका रचनाकाल तो मात्तम नहीं है, किन्तु इसकी प्रति जिस मुठकेमें संरक्षित है वह सँ १७२६ का किस्सा हुआ है। जग यह स्पष्ट है कि इसकी रचना ब्रजसे पूर्व ही हुई होगी। यह एक नयी रचना है। इसकी प्रति जयपुरके छप्पकरजीके मन्दिरमें स्थित मुठका नं० १७६ में निबद्ध है। जैनोमें चित्रपञ्च काव्यकी परम्परा बहुत पुरानी है।

पद्मनन्दि पञ्चविंशतिका भाषा

इसका निर्माण सँ १७२४ में हुआ था। यह भी एक नयी कृति है। इसकी प्रति जयपुरके बड़े मन्दिरके बेहल नं० ९७१ में बँधी रखी है। यह प्रति सँ १७२४ की ही लिखी हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह जोधराजक द्वारा की गयी होगी। इसमें १५७ पदों हैं। अन्तिम २९ पद गहो हैं। यह भी पद्मनन्दि पञ्चविंशतिकाका भाषानुबाध है।

जोधराजके पद

जोधराजके रचे हुए पद नयी कौजाम उपलब्ध हुए हैं। जयपुरके बड़ीचमल जीके मन्दिरमें स्थित मुठका नं० ८ और १२८ में इनके कल्पित पद संरक्षित हैं। बड़ोतके हि० श्रीमन्मन्दिरके मुठका नं० ५५ बेष्टन नं० १७२ में जोधराजकी एक बिनती पृ० ९० १ ५ पर अंकित है। इसमें २४ पद हैं। बिनतीमें पर्याप्त सरसता है,^१

‘श्री श्री येन अनेक सकल श्री श्री धर्म प्रकाशक कर ।

धर्म रहित रत रहित सुभाष श्री श्री सुख व्याप्त दरसाव ॥१२॥

श्री श्री देव जगत गुह राज श्री श्री देव सकल संसारक काज ।

श्री श्री केवल ग्वाल सरूप मोह तिमिर ध्वज रवा कर ॥१३॥

जय जग जीव जमी संसार पाप सकल कथा अधिहार ।

अथ जग मन अथ काय करेव जिवहर भगति हीय न धरेव ॥१५॥

६८ जगतराम (वि सँ १०९२-१०३)

इनके विरामरूपा नाम माईदास या श्री आषकामें उत्तम और धार्मिक भावों

१ राजस्थानके श्रीमन्मन्दिरके मन्त्र गुरुजी जयपुर भा ५ १२१।

२ गग न न २ पृष्ठ क्रमांक: १३७, १३८।

के निष्पन्न करने कीर करवायेमें प्रसिद्ध थे। वैसी ही उनकी पत्नी भी। वह कमलाकी माँति सुन्दरी और गुणवती भी। उसके गर्भसे ही पुत्र उत्पन्न हुए, एवं का नाम था रामचन्द्र और ब्रह्मदेव नामका। दोनों ही माँ-बापके अनुग्रह स्वस्व रूपवान् और गुण-सम्पन्न थे। जगन्नाथ इन नाम-से किसी एकके पुत्र थे। कवि काशीदासने अपनी सम्प्रदाय-कौमुदीमें इनको रामचन्द्रका पुत्र कहा है। परन्तु पंचविशतिका की प्रसक्तिमें इनको स्पष्ट रूपसे लम्बाका पुत्र स्वीकार किया गया है।^१ श्री जयरामजी नाहटाने इनको रामचन्द्रका पुत्र माना है।

इनने जिसमह सहर मुहानाके रहनेवाले थे जिन्से इनके नामों पुत्र पाणीपत्न्य आकर रहने लाये। अथवा रामकी रचनाका और इनके आधिप कविमें के वक्तासे

१. माईदास महा म आनिध ता तिय कमल सम मानिय ।
ता पुन अति सुन्दर बरधोर रूपमे बोक गुण सावर धीर ॥
बापा भुक्ता बोनधायक था जिनबन सदा प्रतिपाद ।
रामचन्द्र लम्बाका प्रीति मन्त्र पुन व्यापक समकित कीन ॥
कवि काशीदास सम्प्रदाय कौमुदी, टी. कान्तिप्रसाद, सिन्धी नव साहित्यके इन्द्र व्यास कवि, अनेकान्त वर्ष १ विरच १ ।

तथा

माईदास व्यापक परसिद्ध ज्ञान करधी कर बन चित्त ।
लम्बन होइ मय तनु कीर रामचन्द्र लम्बाका सुवार ॥
साकिभक्त कविपुन में एवं मायबन्ध सब गुण को धीर ।
इससे कल्पमन्त्रि पंचविशतिका प्रसक्ति संज्ञा अवतार भवता १११
१ १११ ।

२. रामचन्द्र भूत भवत अनुर भवतराय भुन व्यापक भूत ।
कान्तिप्रसाद सम्प्रदायकौमुदी, प्रसक्ति अनेकान्त वर्ष १ विरच १ ।
३. सुमानसिध लम्बाका सुलभ भवतराय पुन है देवदार ।
औ की मानर सति दिनकार ता की अधिपत ए वरिधार ॥
इससे कल्पमन्त्रि पंचविशतिका प्रसक्ति, प्रसक्ति संज्ञा १ ११४ ।
४. लम्बाका बाहय 'अध्यात्मिक नास्तिक प्रेमी जगन्नाथ और कल्प दन्त रत्नकोटि
प्रकाश भारतीय साहित्य वर्ष २, अंक २, अप्रैल १९३०, भाषा विद्वत्सिवालय,
सिन्धी विचारिक, भाषा ३ १ १ ।
५. सहर मुहानावासी कीर पाणीपत्न्य माई है मोह ।
रामचन्द्र पुन भवत अनुर भवतराय भुन व्यापकभूत ॥
सम्प्रदाय-कौमुदी प्रसक्ति अनेकान्त वर्ष १ विरच १ ।

ऐसा प्रतीत होता है कि जगताराम स्वयं अपने परिवारसहित जानरेमें भाकर बस गये थे ।^१ वे औरंगजेबके दरबारमें किसी उच्च पदपर प्रतिष्ठित थे । उन्हें राजाकी पदवी मिली हुई थी । सामय इसी कारण लोग उन्हें जगतारामके स्थानपर जगताराम कहन लगे थे । काशीवासमें उन्हें 'मृग' और 'महागज'—जैसे विशेषणसे मुक्त किया है ।^२ उनकी जाति अथवास और भोज सिंचल था ।

वे स्वयं राजा थे किन्तु महंकार नाम-मात्रका भी नहीं था । उन्होंने अनेक कवियोंको उत्तरेतापूवक आशय दिया जिनमें एक काशीवास भी थे । डॉ० व्यास-प्रसाद जैनक कबितानुसार यह सम्भव है कि वे जगताराम पुत्र टेकचन्दके शिक्षक भी हों । श्री अवरकन्ध नाट्यम लिखा है, जगताराम एक प्रभावशाली धर्म-प्रेमी और कवि भाष्यप्रज्ञा तथा ज्ञानवीर सिद्ध होत हैं ।^३

रचनाएँ

जगतारामकी रचनायाँ विषयमें विविध हैं । पं० नाथूरामजी प्रभात 'द्विपञ्चरत्न ग्रन्थकर्ता और उनके श्रम' में जगतारामकी तीन छप्पाकृत रचनाएँ जिनमें उल्लेख किया है : 'आत्म विमोक्ष' सम्भवतः 'जीमूषी' और 'पद्मनाभ की पञ्चविपतिना' । अनेकान्त पृष्ठ ४ अंक ६ ७ ८ में प्रकाशित रिम्बीके नये मन्दिर और सेठके कुँचेके मन्दिरकी ग्रन्थ सूचीके अनुसार जगताराम 'छन्द रत्नावली' और 'आत्मनाम धारकाचार'के भी रचयिता थे । इनमें धारकाचार गद्यका ग्रन्थ है ।

दिल्लीकी ग्रन्थ सूचीके अनुसार 'आत्मविमोक्ष' एक सप्तह-नाम्य है । यह सप्तह वि सं १७८४ भाष सुदी १४ को मैनपुरीमें किया गया था । उसकी प्रपत्तिमें लिखा है कि जगतारामके सं १७१३ में स्वयंवास हो जानेपर उनके

१ सङ्कर जायसी हैं मृग ज्ञान परतपि कीसै स्वयं विमान ।

जारी बरन रहै मृग पाह सखी बहु दास्य रच्यो मुखदाह ।

पद्मनाभ चरितार्थिका प्रपत्ति सप्तह पृ २३४ ।

२ अनेकान्त पृष्ठ १ किरण १ पृ ३७२ ।

३ काशीवास नामकग्रन्थ-कौमुदी प्रपत्ति और पुष्पिणी अनेकान्त पृष्ठ १ किरण १ ।

४ अथवात है समग्रानि विमल नील जगुषा विमल १ ।

पुष्पिणी पद्मनाभ चरितार्थिका प्रपत्ति सप्तह पृ २३३ ।

५ आत्मविमोक्ष वि सं २, अ. ६ भाषणा पृ १११ ।

६ पं० नाथूराम प्रभात रिम्ब-४८ अ. ६ पञ्चकरी और उनके ग्रन्थ ऐम-विनी, १९११ ई पृ ४२३ ।

पुन लसबीने आत्ममर्त्यके साधुको यह समझ दे दिया । अमररायने उससे मर टंकनकर नाम आत्म विलस' रख दिया ।

सम्यक्त्व-कौमुदीको पं. नाथूराम प्रेमीने अमररायकी कृति कहा है । उन्होंने उसका रचनाकाल वि. सं. १७२१ माना है ।^१ श्री अमररायजी गाइटाका कवय है "प्रेमीजी और कामताप्रसादजीने तो इस ध्वनिको अमररायका ही माना है क्योंकि उन्होंने प्रति व प्रचलित गरी देखी ।^२ प्रचलित स्पष्ट है कि इसकी रचना वि. सं. १७२२ वैशाख सुदी १६ को हुई थी ।^३ इसमें ४३३३ पद्य हैं । इसके रचयिता कवि काशीबाबू थे । किन्तु इस प्रचलित अन्तमें लिखा है "इति श्रीमन् महाशय श्री अमररायजी विरचितस्या सम्यक्त्व कौमुदी-कवया अष्टम् कवामकम् सम्पूर्णम् । इसका अर्थ है कि अमररायके द्वारा विरचित सम्यक्त्व-कौमुदीम आठवीं कवामक पुरा हुआ । डॉ. ज्योतिप्रसादने विरचित अष्टमे सूचपत्रके द्वारा रचयानेके अर्थमें किया है,^४ किन्तु विरचित अष्टम स्वयं रचने अर्थमें ही आता है । इसके अतिरिक्त प्रचलितम यह भी लिखा हुआ है,

'रामचन्द्र सुख अमर अमर अमरराय गुण आधिक भूप ।

तिन यह कथा छान क काज करनी कायें समकित साज ॥

ऐसा प्रतीत होता है कि अमररायने वि. सं. १७२१ में इसकी रचना की और काशीबाबूने वि. सं. १७२२ में उसकी प्रतिकृति उनके पुन टंकनके पढ़नेके लिए की । इस कथामें अनेकानेक विगल पद्योंकी कवार्थ है ।

'पद्यमयी पञ्चविष्टिका' ज्ञानचन्द जीनीकी 'दिव्यरत्न जैन भाषा ज्ञान भाषा-कली के अनुसार अमररायकी कृति है ।^५ किन्तु उसकी प्रचलितसे स्पष्ट है कि

१ श्री, पृ. ४९ ।

२ माधवी साहित्य, वर्ष २ पृष्ठ आगत पृ. १ ।

३ विक्रम संवत् १९५६ कादि अमर है माईस जमान ।

माधवभास सविवादी छड़ी तिमि तेरस भुगुल ही छड़ी ॥

ता दिन रस सम्पूर्ण मयी समकित ज्ञान एकज तर बयो ।

कारावास सम्पूर्ण कौमुदी प्रणीत माधवी साहित्य, पृ. १ ।

४ बुकिङ्गमें श्री अमररायने प्रगये 'विश्लेष' परका मनेन करवा शत पद्यो विमिश्रित रचि करवा है कि अमररायके इस ध्वनिको रचा बरी या रचवाया वा । डॉ. ज्योतिप्रसाद, हिन्दी जैन साहित्यके कुछ ज्ञात कवि ज्ञानचन्द जी १ निरख १ पृ. १७५ ।

५ काय काव्यमत्त, सम्यक्त्वकौमुदी, माधवी साहित्य, पृ. १ ।

६ नाथूरामचन्द जीनी दिव्यरत्न जैन भाषा ज्ञान भाषाकली, लाहौर संवत् १२११ पृ. ४ पृष्ठ ।

पुष्पहृत्प और उनके विषय अध्ययन के इसकी रचना बि. सं. १७२२ परत्पुन मुनी १। मंगलवारको आगरमें जगनरायके लिए की थी। प्रस्तावित 'नीनी माया एव जगनराय मिहि बिधि भायो' से विद्य है कि जगनरायन जैसे कहा जैसे हो इसका निर्माण हुआ।

आगरक महाकवि हिम्मतशालक कहनसे जगनरायने छन्द रत्नावली की रचना बि. सं. १७३१ नागिक मुद्रामें आगरमें की थी। यह हिन्दी साहित्यका एक प्रत्पुन एव है। इसमें विविध प्रकारके छन्दोंका विवेचन हुआ है। इसमें भाव अध्ययन है। छन्दे अध्ययन के प्रारम्भिक छन्दोना और सातवेंमें तुकाट भेड़ोंका विचार रचना है। जगत्पवन उस समयके उत्कृष्ट सभी छन्द-शास्त्रका अध्ययन करके और उनका सार केन्द्र इन छन्दोंकी रचना की थी।^१ इस ग्रन्थकी एक हस्त लिखित प्रति नया मन्दिर बमपुराके दिग्गज जैन मरत्पुनी मण्डारमें मौजूद है इस प्रतिमें पद्यसंख्या १ श्लोकसंख्या २८ और निर्माणका १७३७ दिया हुआ है। उसके प्रारम्भिक दो पद्यामें हिम्मतशालक का पद्योत्प्रेरक है।^२ वही जैन पारिभाषिक शब्द भी आये हैं।

नवीन श्रोत्रोंमें जगत्पवनक बनावे हुए कुछ पर भी प्राप्त हुए हैं। जगनराय की जैन पदावली का उल्लेख बाघी भागरी प्रचारिणी पत्रिकाके एक खोज-विचारकमें हुआ है। इसके अनिरुद्ध उनकी रचो हुई विनयिणी भी प्राप्त हुई है।

जैन-पदावली

इसकी सूचना बाघी भागरी प्रचारिणी पत्रिकाके पत्रकमें वैचारिक विवरणमें मस्या ४ पर अधिन है। मस्याशर्माके इसकी प्रति विरचनी विज्ञा आगराके

१ कर्मभिरुचिरातिना प्राम्नि, भारती साहित्य, ५ १ १।

२ सुवर्णार्द्र मा. यो बहो हिम्मतशालक सुवर्ण।

विगत प्राज्ञ कवि है भाषा साहि बगई ॥३॥

उरी दण्ड विनक है करि दूक डीरे भावि।

मनुष्य सबको मार के रत्नावली बगानि ॥४॥

दण्ड रत्नावली, नया मन्दिर, बमपुरा दिग्गजकी प्रति, मध्य २१।

३ उद्यम उग अवर बगो दण्ड दिग्गजशालक।

सुवर्ण साहि गुण सुन्दरिज अध्ययन विधो वान।

हिम्मतशालक गी अदि बगान भाजन के ली जीव।

अदि रि दण्ड है योग के आचन निगडी मोद ॥

पृ. ५ १ ३।

जैन मन्त्रिये उपन्यास की थी। इसमें भी जयनरामके रचे हुए २३३ पर हैं। उनपर आभोजनात्मक टिप्पणी मिलती है मन्त्रादर्शन कहा है। हमने अष्टम कवियोंकी सूचीपर पद्याकी रचनाएँ भी मिली एक संज्ञा प्रथम छंदमें प्रथम बार उपन्यास हुआ है। इसमें तीर्थंकरोंकी स्तुतियाँ सुन्दर पद्यमें वर्णन की गयी हैं।^१ जयनरामके पद्य छोटी छोटी रसकी विचित्रात्मिकासे माझूम होते हैं। उनके पद्योंमें कविका उद्गम भावों के पूरा हैं। पद्य रहा है।

एक स्थानपर कवि जनो मूलको स्वीकार करते हुए कहता है "हे प्रभु। हमने विपन्नपाशोंका सुख खोजन किया और तुम्हारी सुख बिसर दी। हमने मुझे विपन्न मानकी भाँति देस दिया। जब मैं मोहकपी बहुरही बहुरने आश्रय हो गया हूँ। जब उसके उपममनका एकमात्र उपाय मन्त्रिणी काय बड़ी है। अब हे भगवन्। हम जानके चरणाकी सरभमें बसे हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि आपकी उपायपूर्ण कृपा उपकम्य होगी। आपके बिना हमार कोई सहायक नहीं। और अब सेवा स्वार्थके साथी है।

‘प्रभु तिम कीज हमारी सहाई।

जैन सबै स्वारथ के साथी, तुम परमारथ भाई ॥

भूक हमारी हो हमसे रह सयी महा दुष्टराई।

विपन्न कष्टान सब संग सखी तुम्हरी सुख भिमराई ॥

इन कवियों विपन्न और भवो सब मोह कहति यदि जाई।

मन्त्रिणी बड़ी ठाके हरिने नृ, सुर गारुड बराई ॥

बाँते भरन सरन भाव है मन परवीणि बराई।

जय जगराम सहाय की बेही साहिब संभगवाई ॥

जयनरामके पद्योंमें आध्यात्मिक आयुजाही जयोभी छटा विद्यमान है। वे आयु छोटे छोटे रसकारों निबद्ध हैं। एक आयु इस प्रकार है^२

‘सुख क्षुधि मारी संग खेव कर

सुरभि शुकाक कगा र तेरे।

समता जक विचकार

कहना ~सर गुण किरकान है तेरे ॥

जनुमन पावि सुपारी चरणावि

भरम रस कगाव है तेरे।

१. शारी नामका पद्यालिखी पत्रिकाका जून १९३१ में प्रकाशित, संख्या ३४।

२. मन्त्रिणी कविता-जका एक प्रतीयन गुटका संख्या ४४ इ १४।

राम कह जे इह विधि पनै
मोक्ष महाक में जाय रे ॥ सु ॥

पद-समूह

सैन पदावलीके अतिरिक्त और भी अनेक पदोंका निर्माण जयतरामने किया था। बड़ौतके हि सैन मन्त्रिकके शास्त्र भण्डारके एक पद संग्रहमें जयतरामके पद्य पर अंकित हैं। उनके पद जयपुरके बशीरखानजीके शास्त्र भण्डारके मुद्रका नं० ११४ में भी लिखे हैं। जयतरामने अपने नामके स्थानपर नही 'राम और नही जयराम' भी लिखा है। उनके पद अम्बारममुखा भक्तिके प्रतीक हैं। एक पदमें कविके 'आनन्दजन वरदान' की 'चाहना और 'सिवा पद परसन की 'आकक्षा देखिए'

'मोहि जगनि जागो हो जिन की तुम वरसन की ॥ टेक ॥

सुमति चतुर्धी की प्यारी जो पावस जातु सन धर्मद्वन्द्व वरसन की ॥

बार बार तुमको कहा कहिये तुम सब कायक हो मैरी बिधा वरसन की ।

त्रिभुवनपति जगराम प्रभु सब सेवक की छी सेवा पद वरसन की ॥

भक्त कविको प्रभुकी छवि अनुपम जयती है। उसे पूर्ण विश्वास है कि यदि ऐसे प्रभुका 'सुमरन' किया जाये तो अवश्य ही मोक्ष प्राप्त होया।

जयप्रभु रूप जयपम महिमा तीन लोक में जाये ।

जाकी छवि जयत इन्द्रादिक जगत् सब गन जाये ॥

जरी जयुराम निरमेकत जाकी जगुन करम तबि भाये ।

जो जगराम जने सुमरन ती जगदद जाया जाये ॥"

कथुमंगल

इसमें केवल ११ पद हैं। इनकी अस्तित्ववित्त प्रति हि सैन मन्त्रिक बड़ौतके मुद्रका नं० ५४ पन् ९९ १ २ पर अंकित हैं। तीर्थकरकी माँके गर्भवती होनेपर इनने बुधेरकी गजरकी गयी रचना करनेके लिए भेजा। उसने उसे भी योजनमें विस्तृत बनाया। उसे स्वयं और रत्नसे जड़ दिया। देवकुमारिका माताकी सेवाके लिए रख दी गयी। कुछ माह तक रत्नोकी नर्पा होती रही

"सुरपति यद्विष्णु पद्महो जगर रण्यी विसतारी श्री ।

बी नारा जोजन तपीं कनक रत्न माई सारी की ॥

१ मन्त्रिक बशीरखानजी जयपुर, पद-संग्रह नं० ४४५, पन् ९९५४ ।

२ बड़ौतके हि सैन मन्त्रिकका परामर्श इ १ ।

रघुमारी मात से भवा काम रवाई थी।
तली गई पर गांव की रजनादृष्टि बरपाई थी॥”

६९ विश्वभूषण (वि सं १७२९)

विश्वभूषण एक प्रसिद्ध मठारक थे। उनका सम्बन्ध बन्धुवाराधनजी मठार
माझासे था। उनकी बुढ़-वरपर एक प्रकार की शीतभूषण आभूषण और
जवहभूषण।^१ विश्वभूषणने वि सं १७२२ काय हुज्ज ५ को एक सम्मार्पण
मन्त्र स्थापित किया था।^२ उन्होंने श्रीरूपुरम वि सं १७२४ बैशाख कृष्ण ११
को एक मन्दिरका भी निर्माण करवाया था।^३ ज्योतिष प्रकाश नामके ग्रन्थमें
उनकी और उनके काबोकी प्रशंसा की गयी है।^४ उनके ऊपरसे ही वं हैनराजने
पहर गहेलीम सुमन्तपमीषका लिखी थी।^५ इस घटकरको विश्वभूषणका सम्-
स्वान मान्यता कोई आचार नहीं है।^६

उनकी मठारकीय यही इतिहासमें थी। एक समय यह बिदा बापरेटा
प्रसिद्ध नगर था। वहाँ बड़े-बड़े सामिक आम्क रहत थे।^७ उनमें विश्वभूषण

१ मठारक सम्मन्त, विवाकर भोहरापुरवर नन्दादिन खेलापुर, पृ ११२।

२ ‘सं १७२२ काय माघवदि गोवे श्रीमन्मन्त्रे न जवहभूषण ठाण्डे य
श्री विश्वभूषण तवाभावे बहुषणे सर्ववृक्ष वचोत्तमे गोत्रे ता वासु
हीराजयि।

केनसिद्धान्तमास्त्र प्रसिद्धिमेव संमन्त पृ १ मठारक सम्मन्त, पृ १२५।

३ श्रीमन्मन्त्रे वक्रावाराधने नरस्वतीपण्डे बुधबुधाराधनय श्रीरघुभूषण
श्री न विश्वभूषणदेवा स्वरीपुरमें त्रिमन्त्रिर प्रविष्ट सं १७२४ बैशाख
वदि ११ को कायफिला।

केनसिद्धान्तमास्त्र कृष्ण १६ वृ ३४ मठारक सम्मन्त, पृ १२५।

४ ‘आभूषण जगदिभूषण विश्वभूषण नन्दाधनी नवी चामनी स्वकिरी
हिताधनी स्नायु यनी भवति मे विविर्जयी।

की पृ १३ की पृ १२८।

५ सुमन्तरमीषका चित्ती, सं १६२२ पृ ३०-३६।

६ का का म कीलाके २५ तेषां निरुक्त निरुक्तों को उपर कोलीका लिखी
लिख है।

७ “नगर बड़ी इतिहास जहाँ इतिहास प्रसिद्ध सर्वमान्य मान्य ता है।

किन्तुमन्त्रिका, हिन्दी केन साहित्यका लक्षण वन्निता पृ १४९।

बहुत सम्मान था। वे बिड़ानू से और कामिक भी। उनके बनेका सिध्द से जिनमें मठारक सक्तिकीतिका विशेष नाम है। बिब्वभूपयके बलौकिङ्क व्यक्तित्व और बसाधारण मुनोसे केवल बनसाधारण ही नहीं अपितु बिड़ानू भी बाते थे। वे हिन्दीके बड़े कवि थे। उन्होंने पूमारों कथाको और बनेकानेक पदोको रचना की। 'जिनदत्तचरित' जिनमठखिचरी' और निर्वाण मंगल' इन्हींकी कृतियाँ हैं। इन्होंने एक 'काँठिप भी रचा था जिसकी कई बरमाकाएँ हिन्दीमें हैं। बिब्वभूपयका रचना संक्षु भठारक्षी धरास्थीका पूर्वार्ध छहरता है। ऐसा इनकी कई कृतियोंके रचनाकाष्ठसे स्पष्ट है।

निर्वाण मंगल

इसका सम्बन्ध निर्वाण-मण्डिते है। यह हिन्दी-मन्त्रमें लिखा गया है। इसकी एक प्रति बरपुरके ब्रुपकरकीके मन्दिरमें स्थित गुटका नं० १९१में निबद्ध है। इसकी रचना वि सं १७२९में हुई थी। यह एक छोटा-सा बीठि-काम्य है, जिसमें निर्वाण-सम्बन्धी भावाको व्यक्त किया गया है।

अष्टाङ्गिका-कथा

इस कथाका निर्माण वि सं १७१८में हुआ। इसका सम्बन्ध भी कामता-प्रसादकी बीनसे अपने हिन्दी शैव साहित्यके संक्षिप्त इतिहास' पृ १६९ पर किया है। इसमें गन्धीस्वरकी मन्त्रिकी प्रकट करनेवाकी कथा है। आपाठ कार्तिक और फल्गुनके मन्त्रिम बाठ दिनोमें अष्टाङ्गिका-पर्व मनाया जाता है। इन दिनो गन्धीस्वर हीपकी पूजा मणि की जाती है। एतद्बुद्धन्धी भाव ही इस कथामें प्रकट हुए हैं।

भारती

इसकी हस्तलिखित प्रति मन्दिर छेबियाण बरपुरके गुटका नं १३१में निबद्ध है। यह गुटका वि सं १७०९ मण्डितर बरी रका लिखा हुआ है। इस कृतिमें ९ पत्र हैं। कतिपय पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

“पहकी भारति मस्तुमी की पूजा ।

देवभिरंजन और य पूजा ॥

दुसरी भारति सिबदेवी मन्त्र ।

मन्त्रि उधारण कश्मनि अर्चन ॥

धार्ष्ट्य आरति विज सुख वार्ध ।

नेमजी के गुण विश्वमूखन वार्ध ॥”

नेमिजाका मंगल

इसकी हस्तलिखित प्रति दि. धर्म मन्दिर पाटीली बरपुरके मुद्रका नं. ११ में पद्या १६-१७ पर निबद्ध है। कविने इसकी रचना सितम्बरवारके ‘अर्ध दिन बेहुर में की थी। इसका रचनाकाल दि. सं. ११९८ आवन मुक्क ८ दिया हुआ है। अवश्य ही उस समय विश्वमूखन केचन मुनि द्वारा मन्दारक नहीं। उस समयके सितम्बरवारमें धार्मिक आचर रहन थे। उसी समय प्रवृत्ति थी। प्राचीनक वीरियों है

“प्रथम कपी परमेष्ठि ती हीनो चो

सखरा काहुं प्रथम कजिच भिन बखो ।

सोरसि हम प्रमिद्ध हारिक भति कपी

रचा इन्द्र नि आह सुरभि मधि बहुरुपी ॥”

पादार्चनायका अंगित

इसकी हस्तलिखित प्रति भी उपमुक्त मुद्रकेमें ही संरक्षित है। इसका रचना-काल नहीं दिया है। कविने अंगित पद्यमें स्वीकार किया है कि इसकी रचना आचार्य पुष्यवर्धके उत्तरपुत्रपदों आचार मानकर की गयी है। रचनामें प्रथम है। प्राचीनक पद्य देखिए,

‘प्रबळ सारवा माई भत्री गववर बिनु काई ।

पारस कथा सम्पन्न कही भया सुपरदाई ॥

कम्बू दलित भरव ॥ बगर पोदवा मीस ।

राजा की करविन्दू सुगरी सुख अवास ॥

विप्र छड़ी पङ्क वसी सुख ही राज सुधार ।

कम्बू कही चिपरीत बिसम सेरी छु अपारा ॥

कबु मैवा मधमूनि सी बसुधरि बई ला बरम ।

रति मीठा सेखा रच्यो हो कम्ब माव के घाम ॥”

पंचमेक-पूजा

इस पूजाकी प्रति बहीचम्बडीके मन्दिर बरपुरमें स्थित मुद्रका नं. १२५में निबद्ध है। तीर्थकठेवि अभिवेक-अन्धके पंचमेक तीर्थधेन बई जाते हैं। गुरार्धन विजय अचळ मन्दिर की विष्णुप्याकी पंचमेकको नाम है। इसपर अरसी जिन-

वैष्णव बनने हुए हैं। गुरु-गण भी इनकी प्रशंसा किया करते हैं।

मिनमत्त-चरित

इसका निर्माण वि. सं. १७३८में हुआ था। सबसे पहले इसका उल्लेख पण्डित नाबूरायजी प्रेमीने किया।^१ 'मिश्रबन्धु-विनोद'^२ में इसकी सूचना मिलती है। बाबू कमलाप्रसादजीने श्री प्रेमीजीके आचारपर ही इसका उल्लेख किया है।^३ बिनबत्तकी मूर्तिमें इस चरितकी रचना हुई थी।

बिनमत्त-स्त्रिचरी^४

यह एक छोट्टा-सा मुक्तक काव्य है। इसमें १४ पद्य हैं। जीवार्त्माको परमात्माके दर्शनकी व्यास छप्प रची है। क्यों न क्यों परमात्मा उसका पति है। पति बनीतक नहीं आया। अचक्षु ही वह मोहमहामर पीकर किसी भ्रम-आत्ममें फँस गया है।

‘लग्न रहा मो हिय हा बरसन की रिधा वरसन का आस

वरसजु कहि न हीजिये ॥१॥

काह हो झूठे जम पीया झूठे जम आक मोह महामर

पीबिये ॥२॥

अन्तमें कविने बिछा है कि इसके पढ़नेसे भयंकर होता है। भयंकर इसीलिए होता है कि इसमें नगफनू बिनोदकी छरनमे जानेका भाव ही प्रधान है। यह पद्य वैशिष्ट्य,

‘सुनिचो हो मनि मनु दे अहो मनि मनु दे पाहि

भयंकर होहि छरना तबै।

जीनी हौं परमारन अहो परमारन हैत

विश्वभूषण सुनिराजमे ॥३॥

पद

इसके द्वारा रचा हुआ एक पद अमपुरके बनीभगवतीके मन्दिरमें विराजमान गुटका नं. ५१में संकलित है। यह गुटका स. १८२३ कार्तिक वरी उका लिखा हुआ है। इस पद्यकी आरम्भिक पंक्ति ‘जिन जपि जिन जपि जीयका है। उसमें

१ दिन्दी शैल साहित्यका इतिहास पृष्ठ ७।

२ मिश्रबन्धु विनोद भाग २, पृष्ठ ५६।

३ दिन्दी शैल साहित्यका इतिहास पृष्ठ १५९।

४ वरी पृष्ठ १५९।

भगवान् जिन्हें अपने हाथों से धातु प्रदान है। एक कुम्हरे पर धर्म अपना कर
 यह बनाया गया है कि मैं स्वयं अपने हाथों से धातु बनाऊँ। फिर मैं उसको तोड़ कर
 सज्जन हूँ। मैंने देव-दास्य गुणों को अपना कर भिक्षुत्वको स्वीकार किया है।
 रात-दिन विषय-वर्षा करके संन्यासको चुना लिया है। उस ही ईश-ईश्वर के हाथों से
 भोज किया अब सज्जन भुज्जन हुए पंगु धातु है। अब तो समस्त सत्ते धर्म
 करने से ही कर्म दूर हो सज्जन हैं। देखिए,

“कर्म सेवु कर्मणि पोरि।

आप ही मैं कर्म नहीं करूँ कर्मों करि सारी छोरि ॥१॥

देव गुह भुज करी भिक्षा गही भिक्षा छोरि।

का भिक्षु दिन विष करवा रखा संन्यास पोरि ॥२॥

होसी करि करि कर्म नहीं सज्जन ज्ञानी पोरि।

सज्जन भुज्जन करुण आर्य जैस बन बन सीरि ॥३॥

बनुर रवि सज्जन सी करि, तरव सी रवि आरि।

विश्वभूषण^१ ज्ञानि का ज्ञान सकल कर्मभु करि ॥४॥”

विश्वभूषण के अनेक ‘पद वि जैन मन्दिर बहीतक पद-संग्रह १६ में संक्षिप्त
 है। वे उत्तम काव्यिक निबन्धन हैं। विश्वभूषण भक्त के और कवि भी यह उनके
 पद्यों से स्पष्ट ही हैं। उनकी कविता में इस ‘बीरे’ बीरको सर्वत्र विवेक का नाम देना
 चाहिए। यदि यह परम उत्तम प्राप्त करना चाहना है तो उनकी ओर से उत्तरीय
 हो जाये। यदि ऐसा नहीं करेगा तो सब-समूहों में फिर आयेगा और बहुतों में
 भ्रमना होगा। विश्वभूषण भक्तान्ते ‘पद-संग्रह’ में इस भाँति पद्य पद्य हैं वे
 कर्मको नहीं छोड़ें

“जिन नाम जेरे बीरा तू जिन नाम जेरे बीरा।

जे तू परम उत्तम की आई तो तब की करी न बीरा ॥

मातर के भक्तनि में परिई भर्षा अङ्गुलि होरा।

विश्वभूषण कर्णकज राधा की कर्मकर्म विधि सीरा ॥

अनेकान्तरीय कहरने आधुन होते ही ममता भाग जानी है। कविने उसे
 नापिन कहा है। यह वह नापिन है जिसके कद नहीं देखा जायँ बरस नहीं
 छोमा नहीं। यह अमृत-रस में पपी रहनी है। इसके अन्तर्गत अमरपद मिश्रण
 है। इनके पदांश में ऐसी बनाया करता होती है, जो जोय-रसायन का नाम

१ काव्याभ्यास जैन भिक्षा साहित्यका ललित विज्ञान, ३ २६२।

२ पदसंग्रह ३ २६२ वि जैन मन्दिर, बहीत, पन्ना ४८।

करती है । जो इसकी समझ देता है, उसे धनदय ही मोक्ष-मुक्त उपलब्ध होता है^१

‘साधो बागनि जागी ।

आके जागत समस्त मार्गी, साधो बागनि जागा ॥

स्याव सुखान मांमिकावासी बसै तहाँ अजुरागी ।

रूप न रंग बरन नहिं सोमा जसूत रस सौं पागी ॥

आके इसें कई जगतापरु भई अबस्था नागी ।

कमलपद्ममें ज्वाका जागी जोग रमावय छागी ॥

बाद बिबाद शीप सब छोड़े कोक विमाधा हागी ।

विमलपुष्प जो बाकीं समझे हाथ मुकति मुख भागी ।

कवि ब्रह्म योगीमें निष्ठ सनाता चाहता है जिसने सम्मन्त्रकी डोरी बसके पीछका कछोटा पहना है । ज्ञानरूपी गुरुजी पकेमें छपेट रखी है । योगरूपी आसनपर बैठा है । वह आदिपुरुरा चेला है । उसने मोहरूपी नाग फड़बाये है जन्में सुकलध्यानकी कनी मुद्रा पहनी है, उसकी सोमा कहते नहीं बनती । मायक-रूपी सिंघी उसके पास है जिसमें-से करणानुयोगका नाव निकलता है । वह उत्तम मुद्रामें बैठकर शीपक बजाता है और चेतनरूपी रत्नको प्राप्त कर देता है । वह अष्टकर्मके नन्दोन्नी धनी रमाता है, ज्ञानकी अग्नि बलता है । उपलब्धके छन्देसे ज्ञानकर सम्मन्त्ररूपी अकल मन्त्र-मन्त्रकर गहराता है । इस प्रकार वह योगरूपी सिंहासनपर बैठकर मोक्षपुरी जाता है । उसने ऐसे गुरुकी सेवा की है, जिससे उसे फिर कलियुगमें नहीं जाना होता^२

‘ता जोगी किठ काहैं ।

सम्पद डोरी लीक कछोटा बुकि भुकि पादि कगाहैं ।

स्याव गुरुजी गक में मैकीं जोग आसन द्याराहैं ॥

आदि गुरु का चेला होके मोह का काग कराहैं ।

सुलकध्यान मुद्रा पीड सोई पाकी सीमा कहत न पाहैं ॥

प्यावक सीमी गकमें मैकीं करणा नाव सुनाहैं ।

उभगुफा में शीपक जोहैं चेतन रत्नहिं पाहैं ॥

अह करम कागडे की धूनी गवावा अगनि बराहैं ।

उपसम छम नाम सम जानिकै मकि मकि जंग कगाहैं ॥

इह विधि जोग सिंहासन बैसो मुकतिपुरी कां जाहैं ।

विसमूचय ऐमे गुरु सवै बहुरि न ककि में जाहैं ।

१ गरी, पद्या ४६ ।

२ गरी, पद्या ४६ ।

डाईद्वीप-पाठ

जै तो इनकी रचना ससहस्रमें की गयी है किन्तु हमको कई बरमाछरें हिन्दीमें हैं। उनमें अग्रतम है बीर भक्ति भी।

७० जिनराममूरि (वि. सं. १०३१)

बारहा कम बीमाक आनिके निगुह' अथम हुआ था। उनके पिताका नाम सांकर्यविह और माता नाम 'जिन्दुरे' था।^१ उन्होंने अनुपम रूप पाया था। प्रशिया भी असाधारण थी। बीससहस्रमें ही १९७८ आम्सुन हुआ ७ को उन्होंने भी जिनराममूरिसे सीखा ली थी।^२ श्री मूरिजी अष्टारणक पात्राके पदद्वार मूरि थे। उनमें पूर्वाचार्य जिनबन्ध और जिनमिह मूरि थे जिनकी सभाद्वार और बह्मगीरने कनेहों बार सम्मानित किया था।^३ श्री जिनराममूरि भी एक प्रसिद्ध आचार्य थे। उनकी विशेष क्वालि थी। उन्होंने अष्टारणकके बरमाचको बुद्धिमें रखकर ही जिनरामको बरमाच बरसे विद्वत्पित किया।^४ उनमें बरमाचके योग्य योग्यता थी और अविद्वत् भी।

१ बरमाचसहस्र कैल, हिन्दी कैल साहित्यसहस्र संविषय इतिहास, १ १६९।

२ निगुह बर विनेनक सांकर्यविह मल्लार न रे।

'जिन्दुरे' अर इंसकड अष्टारणक विषयार न ॥

मनमोहन मल्लिक बीरबधिरय उरबान न रे।

मनम मूरिह मन बरह सवहि ॥३३३॥ अति भाव न रे ॥६॥

राजसहस्र, जिनराममूरि की ऐतिहासिक कैल काव्य सम, ४ १११।

३ मन् पात्र अठारह बीरबधिर मल्लारि तरे।

आम्सुन बरि सप्तमि दिनह अंशमन्ध धुम बार न रे ॥ मनमोहन ॥२०

की, ४ १११।

४ मानुष्य बरि गरिबकी बुद्धिमें भी मोहनमान पुनीचन्द्र देनारिह Jain Promote t the court of Akaba और Jain Teachers at the court of Jahangir इह कम्प: १ २।

५ निर बरह सप्तमि बारह श्री जिनराम मूरिह न रे।

पाठक पर बोधक दिनह प्रथमह मुनि ना बुद्ध न रे ॥

मनमोहन ॥२०॥

राजसहस्र जिनराममूरि की ऐतिहासिक कैल काव्य सम, ४ १११।

उनकी सरस और सुकोमल बेसना से ममूषा संसार बिमोहित हो जाता था। उनका हृदय भी छत्र-कण्ठग रहित था।^१ वे चौदह विद्याओंमें पारंगत थे।^२ शीखा-समयका उनका नाम रंगविजय था। शान्तपुराणके जिनरंगमूरि गीत^३ में और सुमतिविजयके जिनराज मूरिगीत में^४ ९ में उनको मुबारक पदस मन्त्रों जिन दिया गया है। यह उनकी महत्ताका ही सूचक है।

रंगविजयकी रसतिथी सम्राट् शाहजहाँने भी सुनी। आत्मगण देकर मुल्काया और इनाम अधिक प्रभावित हुआ कि सात सुबोंमें उनके बचन-प्रमाण करनेका आदेश क़रमानके द्वारा दिया। शाहजहाँके पुत्र शारान उनको 'मुबप्रधान' के पदमें नियुक्ति किया था। सँ १७१ म मासपुरेमें उनको मुबप्रधान का पद दिया गया। इस अवसरपर मेमिदास सिक्खुने एक धानदार महोरसब मनाया जिसमें अन्य आयोगशोके शाह-शाह महामन सबको नाकेरणी प्रभावना भी दी गयी। नाम भी 'रंगविजय' से 'जिनरंगमूरि' हो गया।^५ और वह अन्य तक इसी नामसे प्रतिष्ठित रहे। जिनरंगमूरि की मशिमारा बख़ान करनेवाके तीन बीडोंका संकलन 'ऐतिहासिक जीवन-गाथ्य संग्रह'में हुआ है।^६ लोगके निर्माणा क़मय राजहंस जालकृष्ण और कमलरस है।

१ सरस सुकोमल बेसना मोहह ममूष संसार न रे।

कूट कण्ठ हीमह नहीं महु को नह हितकार न रे ॥१॥

भविष्य बाहउ मावस्युं जिन पायउ मुल सार न रे।

कण कला मुल आनकउ निमक मुकम मबार न रे ॥२॥

शान्तपुराण जिनरंगमूरि गीत ऐतिहासिक जलकृष्ण संग्रह पृ २३।

२ जिनराजमूरि पाटोयक बस क्यार बिद्या जान।

बचन मुबारक बरमती माँ सहु को जान ॥१॥

कमलरसकृष्ण मुक्यबाब परगीण्ट् पृ १४ २३२।

३ शरतरमन्त्र मुबारजिबउ बाप्यउ थी जिनराज न रे।

पाठक रंगविजय जयउ सख बन्धननि शिरताउ न रे ॥१॥

शान्तपुराण गीत पृ १३२।

४ लोग प्रदियय तुं बेह करीरे, थी भी रे तुं लामे पाय रे।

बलि मुबारका 'रंगविजय मनीरे, शररउ बजिजे बीर यमाय रे ॥२॥

जा ॥

सुमतिविजयक जिनराजमूरि गीत पृ १००।

५ कमलरसकृष्ण मुक्यबाब परगीण्ट् पृ १-५ ऐतिहासिक जीवन-गाथ्य संग्रह पृ २३२-३३।

जिनमें मूर्ति विद्राग तो वे ही काव्यरचनामें भी निपुण थे। उन्होंने अनेक स्तवनाम्ना निर्माण किया जिनमें-वे कुछका प्रकाशन हिन्दीके पत्र रामगाम्भीर्ये किया है। उनकी रचनाओंमें 'सौभाग्यपञ्चमी चौपई' प्रबोध बाबनी 'रंजकरी' 'चतुर्विंशतिजिनस्तोत्र' 'चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तवन' प्रास्ताविक बोझा और नवतत्त्वबालास्तवन मुख्य हैं। उनका परिचय निम्न प्रकारसे है

सौभाग्यपञ्चमी चौपई

इसकी रचना सं १७४१ में हुई थी। इसकी सूचना मिश्रबन्धुविरोध^१ हिन्दी जैन साहित्यका 'इतिहास' और 'ऐतिहासिक जैनकाव्य संग्रह' की सूचिकाओं की बनी है।^२ इसके अतिरिक्त इसका और कुछ परिचय आदि वहाँ जम्मा नहीं है। जैन पुर्वरक्षकों^३ में भी इसकी सूचना-अर दी गयी है।^४ जब यह चौपई हिन्दीमें प्रकाशित हो चुकी है।

प्रबोध-बाबनी

इसकी अन्वय बाबनी भी कहने हैं। इसमें आत्माको सम्बोधन कर-करके प्रमादुन्निष्ठ संसारसे उन्मुक्त होनेकी बात कही गयी है। इसकी रचना संवत् १७११ मघसिर सुदी २ बुधवारको हुई थी। इसकी एक प्रति संवत् १८ आषाढ़ सुदी २ की किसी हुई जगम जैन ग्रन्थालय बीजानेरमें मौजूद है।^५ इसकी प्रति जयपुरके बौध्दधर्मजीके मन्दिरमें विराजमान घुटका नं ९९ में लिख है। इस रचनाके आगे निर्माण संवत् १७३१ दिया हुआ है। इसमें ५४ पद हैं।

प्रबोध बाबनी उत्तम काव्यका निर्वर्णन है। उसका प्रत्येक पद एक मुख्यस्तेकी भाँति है। एक पद्यम ऊकार मन्त्रकी महिमाका बखान है

१ मिश्रबन्धु विरोध भाग २ पृ ५१६।

२ हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास पृ ७१।

३ ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, पृ ६९ प्रारम्भमें ही लिख काव्योक्त ऐतिहासिक सार।

४ जैन पुर्वरक्षकों, पृष्ठ ९, भाग ३ पृ १२७७।

५ सति नून मुनि^६ सति संवत् मुक्क पक्ष मगसर बीजबुधवार बधठाटी है।
मल कुम्भुखि नौ जगम भाँति भाँति करि सज्जन सुबुद्धि की मुख्य मुण
काटी है ॥५४॥

प्रबोधबाबनी राजस्थानमें हिन्दीके इलाहिकी ग्रन्थोंकी खोज भाग ४ पृ २२७।

६ पृ १० ७७-७८।

७. राजस्थानमें जैन साहित्यकारोंकी ग्रन्थोंकी, भाग ३ पृ १४१।

“उक्तार तमामि साईं जगम अरार
 प्रति यहै तत्त्वमार मंत्रन का सुख्य मान्यो है ।
 इन्होैं तें भाग मिदि साधय की सिद्धि पाव
 साधु मय मिदु तिन भुर उर भाग्या है ।
 पूरन परम परबिड परमिदु कथ
 सुखि अनुग्राम पाव्या जिपुष बखाम्यो है ।
 जय जिमरंग जया अरार अनादि आदि
 न का हय सुखि तिन साका भइ जाग्या है ॥३॥”

रत-महत्तरी

हमको प्रास्ताविक शीशु और दुःखदय बहत्तरी के नामों भी पुकारा जाता है । इसमें ७२ श्लोक हैं । उनका विषय नाति अक्षरार्थ और अविशेष सम्बन्धित है । बहुत पहले हमका प्रकाशन दिल्लीसे हुआ था । अब उनका पुनः प्रकाशन बीरवाणी में हुआ है । अक्षरार्थ मात्राद्वारा सम्पादन है । अक्षर और अक्षरार्थ दोनों के नामों से पुकारा जाता है । इस प्रति में ७२ श्लोक हैं । बाह्य और अन्त दोनों ही दुःखदय नामों द्वारा कोटित है । एक श्लोक में अक्षरार्थ और अक्षर नामों के अक्षरार्थ रत है

अरम ज्ञान ज्ञानि नहीं रहे तु भारत माहि ।
 जिमरंग के कैय मर, जिम रंग रसा माहि ॥२५॥

यह अनुपम अक्षर जीवनका बोझ नहीं बड़ा पाता इतर भी अन्य बाह्य स्वीकार करता जाता है कि यका वह अक्षर अक्षर न के बड़े बड़े मरगा ? एक स्याय है । जमशेधको जो प्यास बरे पुत्रा करे

“अचना जार न उर मरै और केत पुनि सीस ।
 सा पैके कवा बहूँ है अपि जिमरंग जगदीश ॥२६॥”

एक पत्नी ऐसे विमल है बहूँ है जिसे वह दरवाज है । उन दरवाजों के होने हुए भी यदि पत्नी उरगा नहीं तो जानिये है यदि उरगा है तो धारण्य गया है । उने उर ही जाना जाति । यही पत्नीको विमल बनाया है और उर ही जाना का दरवाजे । अक्षरार्थी न । जगम जीव है । योके समय वह उने-से निरम जाता है । कविनी बुद्धि मर साक्षात्कार है । कविन हम साक्षात्कार । उत्तम उनेके निरम विरा है । अक्षरार्थ नाम निरमो है

बहूँ जार का निरम भागम रसा माहि ।
 जिमरंग अक्षरिज बहूँ है मय अक्षरमा माहि ॥३४॥”

जिनरंग एक अक्षर कवि थे। उन्होंने जर्मके नामपर कौमिल्लकी प्रशंसा की है। उनका अभिप्राय था कि जर्म कविरीची होता है। यदि उसमें कुछे जर्मों का विशेष है तो कही-न-कही कमी अवश्य है। टीका जैन और मुसलिम दोनों विशेष नहीं है। टीकोंके मिलनसे ही यह जोष भवममुक्तके पार सतर मफ़्ता है,

“सैवराति जैनी बुधा सुमकमान इच्छार।

जिनरंग का टीकी मिले तो बीड कर्तार पार ॥३०॥

अनुविंशति जिनस्तात्र

गौरीस तीर्थकराजी मन्त्रिये इकाय निर्माण हुआ है। इसकी प्रति जयपुरके श्री बबीलन्दजीके मन्दिरमें स्थित मुक्त म ९२ में संरक्षित है। उसपर रचना और कैवलनाथ आदि कुछ भी दिया हुआ नहीं है।

चिन्तामणि पादार्चनाय स्तवन

इसमें यह बताया गया है कि भयवान् पादनाथकी मन्त्रिये सब मनीषाम मार्य पूरी हो जाती है। उनका स्तवन चिन्तामणि के समान उत्पत्ती होता है। इसकी भी एक प्रति जयपुरके श्री बबीलन्दजीके मन्दिरमें रखे हुए मुक्त म ९२ में संरक्षित है। इसमें कुछ १५ पद हैं।

नववत्सव बाळा स्तवन

यह आदिना नववत्सवीके लिए रचा बना था। इसमें नववत्सवीका विशेषण है। इसका प्रभाव विस्तीर्ण हो चुका है।

७१ मेया भगवतीवास — (वि सं १ ३१-१०५५)

जैन साहित्यमें भगवतीवास नामके चार ग्रन्थ हुए हैं^१ जिनमें पहले ग्रन्थ काही भगवतीवास थे। उनका अन्त्येष्ट पाण्डे जिनदास 'अम्बुस्वावीचरि' में किया है। ये पाण्डे जिनदासके पुत्र थे। दूसरे 'भगवतीवास बनारसीदासजीके पद महापुरुषार्थमें-से एक थे जिनकी प्रेरणासे 'भाटक समयसार' भी रचना हुई। तीसरे भगवतीवास मट्टारक महेश्वरके शिष्य थे जिन्होंने मट्टारक न होकर पण्डित विद्याकाशके शिष्य हैं। उनका नाम अम्बाला जिनके बुद्धिवा योग्य हुआ था। उनका कुछ भयवान् और भीष बतल था। वे दिल्लीमें आकर अपने लगे

१ जनेऊल, पृ ७ विंश १-६ पृ २४-२२।

य । उनके किये हुए समाप्त २५ वाक्य-ग्रन्थोंका पता चला है, उनमें 'रघु सीता सन्तु' अनेकार्थ नाममाळा' और 'मृगाकसेखा-चरित'से अधिकोप निष्ठान् परिचित है । 'मृगाकसेखाचरित' अपभ्रंशकी रचना है । चौथे भगवतीदास भी है, जिसका उल्लेख पं० हीरानन्दजीने अपने 'पंचास्तिनाय'के हिन्दी अनुबादमें किया है । श्री नाबूरावजी प्रेमोका अनुमान है कि ये ही ब्रह्म-विद्यास'के कर्ता भैया भगवतीदास है । उनका साहित्यिक काल संवत् १७१७ से १७५९ माना जाता है ।^१

भैया भगवतीदास आगराके रहनेवाले थे । उस समय औरनगरेका राज्य था जिसकी आज्ञा सर्वत्र कम्से बढ़ती थी । मृत्युकी उपहार बृहिके कारण ईति-मीति कहीपर भी व्याप्त नहीं थी ।^२ भगवतीदासका जन्म ओसवाल कुलमें हुआ था । उनका नाम 'कटारिया' रखा जाता है । उनके पितामहका नाम बबरन छाहू था जो आगरेके वैभव-सम्पन्न पुरुषाव-से एक थे ।^३ वे धर्मात्मा और पुण्यवन्त भी थे । उनके पुत्रका नाम लालजी था । ये ही भैया भगवतीदासके पिता थे ।^४ भैयाको धार्मिकता भक्ति और कदमो बन्धसे ही मिली थी । संग्रहण भी इन परम्परागत देवकी बलीमूर्ति निमाया । उनका समय आध्यात्मिक ग्रन्थोंके पढ़न-पाठन और पृष्ठस्फोर्जित पदबमोक पाठनमें व्यतीत होता था । भैया उनका उपनाम था । प्राक उल्लोका प्रयोग है । कहीं-कहीं 'यधिक' और वासकिशोर का भी प्रयोग हुआ है ।

भैया एक विद्वान् व्यक्ति थे । प्राकृत और संस्कृतपर तो उनका अद्भुत अधिकार था । हिन्दी गुजराती और बँगलाम भी विशेष पति थी । इससे साब-साब उन्हें उद्ग और फारसीका ज्ञान था । उनकी कविताएँ इस सम्पत्ति निरर्थक हैं । मारवाडी सन्ताका प्रयोग भी अधिक हुआ है । ओसवाल ज्ञानि मारवाड देशमें उत्पन्न हुई बात : उसका प्रभाव स्वाभाविक ही है । सबसे बड़ी विशेषता है कि उनकी भाषा

१ 'व' नाबूराव प्रसाद, हिन्दी जल साहित्यका इतिहास पन्ना २६ ।

२ अक्षिकासमें नि स १७११ से १७५९ तककी ही रचनाएँ उपर्युक्त हैं ।

३ बन्धुद्वीप शु भारतवर्ष : धामे धर्म जन उत्कथ ।

उहाँ उपसेनपुर जाल नगर आगरा नाम प्रभाव ॥

मृत्युति ठहाँ राई औरेंप । जाकी आज्ञा बई समय ।

ईति-मीति व्यापै नहि कोय यह उज्जर मृत्युति की गुण ॥

भैया भगवतीदास अक्षिकास जेन प्रथम रत्नाकर काव्यजन कर्म दिदीय सज्जन सन् १६२६ प्रथमकर्तापरिचय पृष्ठ ७५, पं १ ।

४ पृ ५७, ४५, पृष्ठ १५ ।

५ पृ १, पं ५ पृष्ठ १५ ।

भैयाक पशमें कूछ ऐना भावपय है । शिष्टमें पाठक बन नहीं पाता ।

एक भवन भगवान् शिनेश्वरी पुण्यामें पूजा करता हुआ बहता है कि हे भगवान् ! इस नामदेवन समुचे बिरहमें जोत दिया है इसी कारण इसको पमज्ज जो बहुत अधिक हो गया है । मुझे पूरा बिरहान है कि आगके बरवाही कारणमें जालेय प्रवण नामदेवकी निर्दयताका मैं शिकार न हो पाउँगा । हेमिण्,

‘अगत के आह भिन्हें जीन के गुमारी भया

ऐसा कामदेव उठ आया का कदाचो है ।

ताके घर आनियत कडमि के पुन्द बटु

केनकी कमळ कुंद बरता सुदाचो है ॥

साकनी मुर्गय बार बकि का धनक आनि

बपक गुलाब जिम बरता बदाचो है ।

तेरी हा छारन जिम बार न बसाय पाका

सुमरत सों वृज मोहि साहि पैसा भावा है ॥५४॥’

यह मन मनारके विभिन्न रसमें भटवना फिर रहा है । उनको सम्बोधन करते हुए बकि बहता है कि हे मन ! तू कहीं बीरा हुआ जाता या रहा है इस बेह-कपी देवालयमें भगवान् बैसनी रहता है तू उनको सेवा क्या नहीं करना ?

‘जीन रूपी कन अहां दीक तू ही छोरो नहीं

सुन अहां कान वहां तू ही सुन जान है ।

जीम रस रवान् रस ताकी तू बिचार करे

नाक मूर्धि नाम नहीं तू हा बिरमान है ॥

कर्म को तू छान आनि नहीं बहो बीन जालि

अहां तहां तेरी मोर उबर बिरमान है ।

आहा देह देवक में केवकि रज्जय देव

नाका कर सब मन वहां दाक जान है ॥५५॥

भवन अवधक जाले आगप्यकी मर्षोबुद्धि न समझेन उनमें लज्जानता नहीं आ सकती । भगवान् शिनेश्वरी के शिष्ट पदार्थ मोना लीज गाने है । वे मनुष्य राज्य और शिष्टतायक है । उनके वसन कपड़े ही लज्ज काज करने है और आत्म अवधारण सुन गया जलियाँ प्रवट हो जाये है

‘देव एक शिनेश्वर नाच शिभुवन मन अरे ।

देव एक शिनेश्वर दगा जित बागक अरे ॥

इय एक विगणम् सय मायम मुलशायक ।

इह एव विनयम् प्रकृतं कश्चित् शिष्यान्तरः ॥

देव एक त्रिमूर्ति मन्त्र, ताम चण्ड भिन्न बन्धिष ।

पुन धर्मं प्रगच्छि भूतं रिद्धि कृद्धि चिरन्तनम् ॥१॥

मह मय-समुद्र बह्य विरट है उमे पार करवा कोई आमाग नाम नहीं है
बिन्दु मय-बिन्दो यह पूरा विनाम है कि परमात्माई गुड व्यापके यह पार हो
करना है

विष्णु मूर्ति का हिस्सा बनने की तैयारी कर रहे हैं

ਭਾਸ਼ੀ ਨਮ ਥੀ। ਭਾਸ਼ੇ ਵਲੋਂ ਹੀ ਬਣੀ।

अपके संभारे लें बार यऊ बईबान ही

अपने सुमार बिना बहल हीं गरिबें ॥

बहरणी फिर मिळवो बाहिरेलो ई संयोग बंद

ਦੇਸ਼ ਸੁਖ ਸੁਖ ਕਰਿ ਆਪ ਹਿਥ ਧਰਿਕ ॥

पाहि सु पिच्यारि निम्र जालम पिच्यारि 'मैरा

अरि वरमानमाहि मूढ ज्ञान करिई ॥ १३ ॥

पारम विनाशके भयानके अवलम्बनसे प्रसिद्ध अन्धकार निवृत्त है। यह कहना है कि है जीव ! तु मझैको हृदय उपर भटकता फिरता है। क्यों तु मझ देवी-देवताओंके चिर झुकाता है। तेरी सो शिव-पूजकी विष्ठा अन्धकार पारम ब्रह्मकी विष्ठासे ही नष्ट हो जायेगी।

“काह को रैसादिपातर जावत काहे रिहावत हन्व बरिंद ।

क्याह को ऐति यौ वेद मनावन काहे को धीस बधावन नंद ॥

नामों को सुरक्षित रखें और नीचे दिए गए निर्देशों का पालन करें।

काहे की सीख का दिन है व. सेवात क्यों नहीं पाएवं विनायक ॥१४॥

अपवानुक्त नामकी हृदयमें भारक करलेते हृदय अगवस्तवके युवासे ओठझील हो जाता है। अन्तमें कुछ ऐसी घट्टमुसिबी आ जाती है जिससे वह छात्राग्रिक दुःख-मृगोपि कूटकारा पा ही जाता है। अपवानुक्ते नामकी स्त्रियाँ बसल मरिण है।

१. बदा कुम्हण्डन दक्षिणा ५ २।

बही राज अजिंठरी कर्मिण, वृ ६।

१. कथा प्रमाण कविता ५ ३१ ।

तेरो नाम कस्य ब्रह्म ब्रह्मा को न राखे कर
तेरी नाम कामयेतु कामना हरत है ।
तेरो नाम चिन्तामन चिन्ता को न राखे पास
तेरा नाम पारस सो चारिद्वरन है ॥
तेरी नाम बभ्रुव सिधेते कर रोग जाव
तेरो नाम सुखमूक दुःख को हरत है ।
तेरी नाम बीतराम धरे कर बीतराणी
भक्त्य छोदि पाव भक्तमागर तरत है ॥३॥

भगवान् मन्त्रके अपनेसे एक ओर तो पाप और धूल-मिट्टादि नाम बाते हैं
तो दूसरी ओर विविध प्रकारके वैभव उपलब्ध होते हैं । अतः भगवान् मन्त्रका
प्रतिदिन ध्यान करना चाहिए,

“जहाँ अपहि नवकार तहाँ घब कैसे जायें ।
जहाँ अपहि नवकार तहाँ प्यतर भव जायें ॥
जहाँ अपहि नवकार तहाँ सुख संपति दायें ।
जहाँ अपहि नवकार तहाँ दुख रही न कोयें ॥
नवकार अपत नव निधि मिले सुख समूह जायें घर ।
सो महामन्त्र सुख ध्यानसो ‘मैया नित अपनो कर ॥१०॥’”^२

सम्पत्त्वरी जैन धारमोंमें बहुत अधिक महिमा है । सम्पत्त्व धारण करने
वाले सत्त्व धरैव पूजे जाते प्ये हैं । जहाँ भी एक कवित्तमें उनकी स्तुति की
गयी है,

‘रक्ताय रिक्तवारे से सुगुण मत्तवारे से
धृष्टा के सुवारे से सुप्रान्ण द्वाचंत है ।
सुडि के अवाह से सुविष्णुपातवाह से
सुमन के समाह से महावह महंत है ॥
सुध्यान के धरवा से सुज्ञान के करपा से
सुप्रान्ण धारमैवा से वाकरी धर्मंत है ।
सबै संवसावक स सबै लोकावक से
सबै सुवरावक ससवक के मंत है ॥१०॥’”^३

१ श्री सुप्रान्ण सुप्रान्ण धर्मसिद्धा ५ ।

२ श्री सुप्रान्ण धर्मसिद्धा ५०० ।

३ श्री सुप्रान्ण धर्मसिद्धा ५०५ ।

बहिरोपके वास्तवप्रभुकी स्तुति करते-करते तो भगवन् कवि जैसे भारते
वाचिपदमें बह ही गया है।

भार्गव की कंठ किन्हीं पूनम का चंद किन्हीं
रूपावत निर्मल पत्नी नंद अक्षयमेव को ।
काम को हरे चंद भ्रम का कर निर्मल
चूर दुख इन्द्र सुख पूरे महा भैरव को ॥
सेवक भक्ति तुम गायक भक्ति मैरा
रवाचक सुविद लहू पावें सुख के को ।
ऐसी विनय करे किम में सुख सुखी
वैदित का हृद बारह पूर्ण प्रभु के को ॥९॥

‘मैया’ भगवतीदास और एक किंवदन्ती

बड़ा बात है कि मैया भगवतीदास बनारसी बाबा मुन्दरदास और रसिक
चिरोपनि श्री केदारदासने एक ही मुहसे लिखा पायी थी। तीनों मुहवाई ने।
केदारदासने अपनी रसिकप्रियाकी एक-एक प्रति दोनों छावियोंके पास भेजी और
दोनों ही ने उसकी कड़ी जाँचोचना की। मुन्दरदासजी-दास की यही कड़ी
लिखा ‘मुन्दर चित्तास’ में निरुद्ध है। मैयाने भी एक छन्द बजाया और उसके
मुनपुच्छपर लिखकर बाँट कर दिया। वह छन्द इस प्रकार है।

‘बड़ी नीति कहुनीति करत है बाप सरत बखोब भरी ।
जोड़ा बादि पुनगुनी मंजिल सकल देह मनु रोना बरी ॥
शोभित बाहु मंसमय मूरत चापर रीतिन बरी बरी ।
ऐसी नार निरख कर केलाव रसिक प्रिया तुम कहा करी ॥१०॥’

इन मंत्रि ‘मैया’ केदारदासके समकालीन थे। किन्तु केदारदासका स्वर्ग-
वास वि. सं. १९७ में हो गया था। जायसि रामचन्द्र धून्धके अनुसार,
उनका जन्म सं. १९१२ और मृत्यु सं. १९७४ के आस-पास हुई।^१ रसिकप्रिया-
की रचना वि. सं. १९४८ में हुई थी। इससे प्रमाणित है कि मैयाका जन्म
वि. सं. १९४८ से कम कम २५ वर्ष पूर्व हो हुआ ही होगा। तभी तो

१ मंत्री, अधिविज्ञापक वास्तवप्रभुकी स्तुति छ. २९२।

२ मध्यविज्ञापक सुख दुख पूर्वाधिका छ. १८४।

३ रसिक रामचन्द्र धून्धन हिन्दी साहित्यका इतिहास संतोषित और रसिक
मन्दार १९२७ वि. सं. १४२३।

४ मंत्री छ. २४७।

दोनों साथ-साथ पढ़ सके होंगे किन्तु मैयाका साहित्यिक काव्य १७३१-१७५५ निश्चित है तो फिर यह तो हो सकता है कि छ १७ से इस-आरह वष पूर्व समका जन्म हुआ हो किन्तु १७वीं शताब्दीका प्रथम पाख तो किसी भी वक्ता-में प्रमाणित नहीं होता। सम्मानना तो यह है कि मैयाज अपने साहित्यिक काव्यमें 'रसिकप्रिया' कहीसे भी केकर पड़ी होयी और उसपर यह कवित रच बाका होना।

यह भी सच है कि मैयाने केसरके अस्सील शृंगारको मर्ते ही बुरबुराया हो किन्तु इनकी अर्धकारप्रियतासे वे अवश्य ही प्रभावित हुए थे। इनके काव्यम करक ममक, अनुप्रास और चित्तार्थकारोकी भरमार है। ऊपरके लिए इनके 'वैतन कर्मे हरिन 'सत बछोसरी' और मधुविष्णुक बीरार्थ'को किया जा सकता है। ममकका एक वृत्तान्त इस प्रकार है

'उजरे भाव ज्ञान उजरे जिहैं तें बंधे न।

उजरे मिरखे भाल उजरे आरहु गतिन तें ॥१॥

ब्रह्मविद्यास' अनुप्रासकी कट्यसे वो व्याप्त ही है। कई मापाबोके जाता होनेसे मैया'का सज्जनान परिपुष्ट था। उसीके बलपर परे-परे अनुप्रासका घोलव बिखर सका। सबसे बड़ी बात है उसकी स्वाभाविकता। नम्रवकी भाँति प्रयत्न पूर्वक खींचता नही है। इसी कारण कृत्रिमता नहीं है। सहज गति है। ऐसे ही अनुप्रासोके निर्झरते जब बीररस कलफलाकर बहूँ उठता है, तो बिच-सा बिच जाता है,

'हरिन क बड़ बड़ बड़ कर डारे जिन करम सुमहल क पहल उजारे हैं।

मर्क पिरबंन क पड़ देकें पैर रहे विपैबीर सह बड़ पकर पकरे हैं ॥

औ बन कटान डारे अड मर डुड मार मरण के देख डारे अये डू सहारे हैं।

अवत सम्बन्ध सूर बहत प्रताप पर सुख के समूह मूर सिख के निहारे हैं ॥^१

बिचबड़ कविता ब्रह्मविद्यास'के पृ २९२ से ३४ तक संकलित है। इसमें

१ कम्पोजे किए परमात्मारण्यके ४-१५ व १५, १६ ४ और ४१वें दोहोको हेरिय मरविद्यास पृष्ठ १७३ १८३।

२ 'हे आरमन् ! ज्ञान भाव। (उजरे) उजरे अर्थात् विनाशको प्राप्त हुए जिनसे जा या (उजरे) सबसे अर्थात् प्रकट अपसे बन हो रहा था। और जब ज्ञानमय (उजरे) उज्ज्वल देख गये तब चारों गतिबीज उजरे अर्थात् झूटे जिसका जर्म है सिद्धावस्थाकी प्राप्त हुए।

मरविद्यास परमात्मारण्य, पृष्ठ ६ दिवरी अनुवाद, टिप्पणी पृ १७६।

३ मरविद्यास पुनरुक्त कवित पृ १७३।

अमरार्णविका और बहिरर्णविका भा निबद्ध है। निबद्ध बहिरर्णविका परमपु
त्रोंमें बहुत पुण्यी है। सरवृत्तके जैन रीति-रग्याके वर्तमाने भी निबद्ध
कविताकी रचना पर्याप्त साधन थी है।

७२ शिरोमणिदास (वि सं १०३१)

शिरोमणिदास नामके तीन कवि हुए हैं। उनमें प्रथम शिरोमणि मित्र थे।
उन्होंने सं १६७४में 'अमरवत्त विद्यास'की रचना की थी। दूसरे शिरोमणिदास
भी ब्राह्मण थे। वे साहस्यहंकि दरबारमें रहते थे। वहाँ उनकी प्रशिक्षा थी।
उनका समय १७० के आस-पास माना जाता है।^१ अस्तुतः शिरोमणिदास कवि
पंजाबराजके विषय थे। उनकी जैन धर्ममें निष्ठा थी। उन्होंने तत्त्वमन्त्री ज्योतिषी
हैं निर्माण किया।

ऐसा प्रतीय होता है कि ये बहुतकर सबकोचिते प्रभावित थे। उनके क-
हेसिं प्रेरित होकर ही उन्होंने नगर शिरोमणिमें रहकर एक बहुत बम्बका निर्माण
किया था। उस समय शिरोमणिमें राजा देवीसिंह राज्य करते थे। इस बम्बका
नाम 'धर्मद्वार' था। काशी नामकी प्रचारिणी पवित्रा के जीम-विबरमाने मित्र
'धर्मद्वार' का परीक्षण है, उसकी समाप्ति बावरेमें मानी गयी है। और बहुतकर
सकनकीचिते प्रभावित होनेकी कोई बात नहीं है।^२ इसका समर्थन इसके लिये
हुए एक दूसरे ब्रह्म शिरोमणि शिरोमणि भी होता है, जिसमें उन्होंने सदाशिव
पतिवों और विष्णुवर बहुतकरों सेना हैं की करी-करी मुनाबी है। इसकी रचना
नामोंने सम्भव प्रमाण है। उन्हें बनारसीवासके ब्रह्मावर्मा सम्प्रदायकी
परम्परामें बिना माना चाहिए। वे जागरें ही रहनेवाले थे।

अमीरकी ओरामें उनकी दो रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं—'धर्मद्वार' और
'शिरोमणि शिरोमणि'। दोनों ही में बलि-नामकी मुच-मुच प्रवृत्ति प्रमाण है।
'शिरोमणि शिरोमणि'में धर्मके नामपर ब्राह्मणके शिरोमणि विरोध है, जैसा कि लल
कवितामें था। 'धर्मद्वार'में निर्गुण और सगुण शक्तिका सम्बन्ध है। इसमें उनकी
सम्बोधन कर-करके लंछनके भावा-योग और अपने मुक्त कपको प्रत्य करके
प्रेरणा है तथा तीर्थ-कर, विनयाओ और पंचपरमेष्ठीकी बम्बना भी है।

१ दिल्लीमें विनोद, भाग २, पृ ४२४।

२ श्री, पृ ११।

३ का का प्र बलिनाम फलदायी जेवामिन् विनय सरवा २ अमिन् प्रवृत्ति।

सिद्धान्त शिरोमणि

यह एक छोटी-सी रचना है। इसमें सम्मत्त्वको सही परिभाषाका विस्मयन है। मध्यकाव्यमें कर्मके नामपर बहुत शिक्षाचारका प्रभाव जीवनपर भी पड़ा था। स्वैशम्बर भट्ट और दिगम्बर कट्टारक उसके प्रतीक थे। शिरोमणिसाहसने उसकी खरी आलोचना की। उन्हें ज्ञान-विरोध सहना पड़ा। उन्होंने परबाह महो की। जो आत्माकी सही जाकाज न भुग सके वह क्या जानपाका कहलायेगा ! उसकी निर्भीकता कबीर-जैसी थी किन्तु कबीर-जैसा मस्तानापन नहीं था। कबीरने तो मर्यादा मानी ही नहीं। वे उसके चेहरेमें कभी न बिरे शिरोमणिसाहस बिरे किन्तु उसकी उल्लस बन्धियोंको कभी स्वीकार नहीं किया। शिरोमणिसाहसके दो पद्य हैं

‘नहीं दिगम्बर नहीं धुन धार न जटा नहीं मज मर्म अवार ।

यह धुन के कटु कीजे सार उतर जाही मज के वार ॥५०॥

सिद्धान्त शिरोमणि साहस को नाम कीनी समकित राखि के काम ।

जा कौंड पई सुभै नर नारि समकित कई सुख अपार ॥५१॥

धमसार

इसकी रचनाके विषयमें तो सबत् उपलब्ध होन है। ग्रामाधिक पाँच प्रतिबोधें इसका रचना-संघत् १७३२ बैशाख सुदी १ पड़ा हुआ है।^१ इसकी एक हस्तलिखित प्रति जयपुरके जयचन्द्रजीके मन्दिरमें बेङ्गल नं ८६९ में बँधी रखी है।

मिथ प्रतिपर रचना-संघत् १७५१ पड़ा हुआ है, इसका अन्त्येष्ट ‘कासी नाबरी प्रचारिबी परिवार’के पत्राङ्कमें ज्ञानाधिक विवरणकी संख्या २२ पर हुआ है। सम्पादकीको यह प्रति जैन मन्दिर कठवाटी या स्तुफटा बिजा आपरासे प्राप्त हुई है। इस संघत्का समर्जन करनेवाका रोहा देखिए

‘संघत् सत्रै सी इकावका नगर अगरे माहिं ।

माहीं सुनि सुख बूज को वाक वाक प्रगमाथ ॥

यं नाबुरामजी प्रेमीनि^३ बि सं १७३२ को ही रचनाकाज माना है।

१ दिन्दी जैन साहित्यका मण्डित शिल्प ५ १९ ।

२ संघत् १७३२ बैशाख नाम अज्जयल पुनि बीस ।

पुनीमा अक्षय सनीसमेत मण्डिलन दो मंगल सुखदेत ॥

हेटिज बी मन्दिरकी दूषा ऐठ दिल्लीकी इन्तलिखित प्रति ।

३ दिन्दी जैन साहित्यका मण्डित शिल्प, १९२० ई पृष्ठ ६० ।

हो सक्ता है १७५१ केअनकाज हो । 'बर्मसार'में ७६३ बीहा-बीपाई है । एक मक्ति-बरा पद्य है,

'बीर जिनेमुर पुनची दब । हज्ज मरेज्ज करै तुम सेव ।
और बन्नी हूँ गुन जिन पाव । सुमिरत तिमके बाव बसाव ॥
बरनमान जो जिन पर ईस । कर जोक जिन जाई सोस ।
जे जिनेज्ज मवि सुनि कई । पूजहुँतें मैं सरमथ गई ॥'

७३ आनतराय (जन्म वि सं १७३३ साहित्यिक काल १७८)

आनतराय आकरके रूनेवाके थे । इनका जन्म अजमेर बंश और बीकानेर में हुआ था । इनके पिताका नाम बरामदास और पितामहका नाम बीरदास था । इनके पूर्वज जालपुरके निवासी थे और वहाँसे ही आकरमें आकर रूने बने थे ।

आनतरायका जन्म वि सं १७३३ में आकरमें हुआ । पिता भी जोक ईसते हुई । एक और तो उन्हें कर्तुन्गारसीका ज्ञान कराया गया और दूधरी और संस्कृतक माध्यमसे बार्मिक ज्ञानोंका पठन-पाठन हुआ । अब उन्हें संस्कृत और आरसी दोनों ही का ज्ञान था । इनकी भाषापर भी रोमीकी आर है । अर्थात् माव-बापका सम्बन्ध है उन्होंने आरसी साहित्यसे कुछ सीखा किन्तु उस कुछ संस्कृत साहित्यसे ही अनुप्राणित हैं । साहित्यिक-वरम्भण विषय उन्होंने अनुकरण जिना विमुक्त मारली है ।

कवि जब केवल १५ वर्षके थे जबकि वि सं १७४८ में उनका विवाह हो गया । उन्होंने गृहस्थाश्रमका ब्रह्म ही कल्या मरा विषय अर्पित किया है । हो सक्ता है कि उनका गृहस्थ जीवन कुछोसे जोत-प्रोत रहा हो । एक स्वाम-पर उद्गीर्ण किया है 'म तो रोमवार ही बनना है और न बरमें ही बन है । आलेकी बहुत फिर है और पत्नी गहना चाहती है । नहीं खबर नहीं निम्ना । साक्षीघर और स्वभाव है, बरमें नग नहीं जा पाता । एक पुत्र ज्वाटी हो गया और एक मर गया । पुत्री जब व्याहक योग्य हुई तो उनका विवाह कर दिया किन्तु विवाहोपरान्त वह भी विर्वचन ॥ पयी । इन कुछ-कुन्नोंकी भी जानता है, बरका मका क्या कहना ?'

१ बरवार बनी नाहि बन तो न बर माहि

आम नी फिर बहू नाहि नाहि-पहना ।

इस समय जागरेमें मानसिंह और बिहारीदास बैन बर्मके गुरुन्वर विद्वान् कहे जाते थे। वे आध्यात्मिक चर्चाओंके केन्द्र थे। 'मानसिंहकी सैली' तो अत्यधिक प्रसिद्ध थी। दानराय उमस बहुत प्रभावित हुए, और दोनों ही को अपना गुरु बनाया। इस भाँति कि स १७४६ में उन्होंने बैनबर्मसम्प्रदायी सुदृढ़ मिष्ट प्राप्त की। यह मिष्टा कही नहीं जाये बल्कर बैन भक्तिके रूपमें विकसित हुई। दानरायने बनेकानेक बैन पूजाओंका निर्माण किया। उन्होंने आध्यात्मिक पथोंकी नी रचना की जो 'बर्मविकास में संकलित है। जैसे तो बैन भक्तिकी परम्परा निरन्तर चली आ रही थी किन्तु हिन्दी पूजाओंके रूपमें ऐसा सरल योगदान सिवा दानरायके कोई कृतज्ञ न दे सका था। उन्होंने कि स १७७७ में बिहारकी भाषा भी की थी। कि स १७८८ में वे बिस्फीमें आकर रहने लगे। वहाँ पण्डित सुखानन्दको बर्म-चर्चाओंके अधिपति केन्द्र थे। उनके संसर्गसे कविस भक्ति-यवन हुएब कतोरतर विकसित होता गया और आज वे अपनी रचनाओंमें अमर हैं।

धर्मविकास^१

यह दानरायकी समुची रचनाओंका संकलन है। इसकी समाप्ति कि स १७८८ में हुई थी। इस समय कवि गहोदय बापरेसे बिस्फीमें आकर रहने लगे थे। इसमें केवल पथोंकी ही संख्या १३३ है, कुछ पूजाएँ हैं और अन्य ४५ विषयों-पर भी किताब गया है। इसके साथ विस्तृत प्रवृत्ति भी मिलती है। जिससे उत्कल-जीन जागरेकी सामाजिक परिस्थितिका अच्छा परिचय मिलता है।

बेने बाके छिरि जाहि मिछी तो सवार नाहि

छाओ मिलै और बन जाये नाहि कहना ॥

कोऊ पुत क्वारी भयी घर नाहि पुत बयो

एक पुत गरि कही ताकी बुल सहुना ।

पुनी घर जोब भई ब्याही पुना बम लई

एते बुक बुक जानै रिसे कहा कहना ॥

धर्मविकास कलकत्ता अधिन प्रकाशित।

१ इस कृतिके दोहर रोक्य प्रकाशन मिन्नाली प्रकाशक कार्यालय कलकत्ता से हो चुका है।

२ इसे नोट उमे बाग धमना बई है बीच

पञ्चम सी पुरख सी अगोन प्रवाह सी ।

कहिणो बहूबाँ विचहुक नहीं बा । विनय और लज्जावा भाव ही प्रकट
 ना । इस रचनाके अन्तमें अपनी लज्जा दिखाने हुए कहिये कहा 'अबछे
 दुख हुई और तुजने कम बल । कम और बर्ष भिषकर भावना बना । किन्तु हम
 आपस बर्ष और तुछमते नहीं हम नहीं हैं । यह तो बयादा सब लेकर बयादा
 ही बर्ष दिया गया है । हमने तो अनादि अनन्त बल-बयादे ज्ञान भिषा और
 उचीको समर्पित कर दिया । इस रचनाके अन्तमें परीको भावनादि नीचे दे
 रखा है । उनसे स्पष्ट हो जायेगा कि आत्मतत्त्व कठिनसे कठिन वाचनी की
 आमान भाषाये व्यक्त कर सकते थे ।

अबबान्ने सेठ सुखर्षण बड़ी सीता बारिषेन कीपण और सीतावर जाने
 बाकी विरचितवाकी दूर बिबा । इससे वे आत्मिक सुखी हुए । किन्तु न जाने क्यों
 अबबान्ने मेरे समय बहुत विचित्र बिबा है । मुझे अजीबक बनकी दृष्टा प्रकट
 नहीं हुई । ऐसा अपाकम्प है हुए नष्ट कहता है

‘मेरी पैर कहा होक करी थी ।

सूकी सों सिहासन कीना सठ सुखर्षण विपति हरी थी ।
 सीता सती भगनि में पैरी बावक और करी सपरी थी ।
 बारिषेन पै काहण चकायो चुक माक कीनी सुखी थी ।
 कल्या बापी परध विचमनी, या बर रिद्ध अनेक भरी थी ।
 सिरीषक छागर छे ठारपी राजयोग कै मुक्ति बरी थी ।
 छांय किचो चुकन की माक नीमा पर तुम दया बरी थी ।
 ‘भावत’ में कतु बाचत नाही, कर बैराग्य दया हमरी थी ॥’

आत्मतत्त्वके अपाकम्प आत्मिक सरस होते हैं । उनमें वाच्यवचन और
 हृदयकी कृपेकी साम्य होती है । अन्तमें अबबान्ने कहा कि — आप दीनस्पद
 कहलाते हैं किन्तु हम दीन हम संसारमें ही भर-भार रहे हैं और आप स्वयं मोक्ष

अरबकी कसमीरी गुमराणी भारवारी
 मरी मेरी बामें बहु हैम बरी बाह थी ।
 काचर बागारपी बर थी मनीषीबाग
 कहा अने अने कवि आगत लकाह थी ।
 ऐसे आगरे की हम नीम जाति सीमा नहीं,
 बड़ी बर्म जानक है बैकिए निवाह थी ॥
 बर्माबाह, कसकटा जमिदर परादि २ बर्मा ।

में का बैठे । हम मन बचन कायसे तुम्हारा नाम करते हैं। लेकिन तुम हमें कुछ नहीं देते। हम मन्त्र-बुरे को कुछ भी हैं। तुम्हारे भजन हैं। हम भवराशी हैं। किन्तु भाव तो कल्याणके समुद्र हो। हे भगवन् ! बचस एक बार हमको इस भक्तम निवाह दो।

तुम प्रभु कहियत कीनदयालु ।

आपन साध सुकवि मैं हूँ। हम छु रक्त जग जाक ॥

तुमरो नाम जपे हम भीके मम बच तीनों काक ।

तुम ता हमको कछु दत नहिं हमरो कीन दयाल ॥

मके घुरे हम भगव जिहार जानत हो हम जाक ।

और कछु नहिं बह बाहत हैं राग दोष की राक ॥

हम सौ बूक परा सो बक्यो तुम तो कृपा-विसाक ।

घानत एक बार प्रभु लगनै हमको केहु निवाक ॥ तुम ॥”

मनको एकाग्र किया बिना कुछ नहीं हो सकता। योग समाधि बच तप और पूजादि सभीमें मनको एकाग्रता ही अनोख है ही। परमेश्वरके प्रति सत्य रहनेसे और कौनिक वैयर्थोंकी चाह छोड़ देनेसे मनमें स्थिरता आती है। स्थिर मनसे ही वह तप तपा जा सकता है जिससे छिर न तपना पड़े। स्थिर मनसे ही वह जप जपा जा सकता है जो फिर न करना पड़े। स्थिर मनसे ही ऐसी मीन मरा जा सकता है जो फिर न मरना पड़े। वक्षपरमस्तिवाकी शरणमें जानेसे मनमें एकाग्रता हो जाती ही है। पंचेन्द्रिया भी बचन हा जाती हैं।

“येसो सुनिज कर मर भाई, पचन नहिं मन कियहु न जाई ।

बसेमुर नीं मीन रह्यो, कोकरजना को तज्यो ही ॥

अर भद नेम दाड त्रिधि घरि आसन प्राणाबाम समरि ।

प्रयाहार धारना कीछे ध्यान समाधि महारस पीछे ॥

सो तप तपो बहुरि नहिं तपना सो जप जपा बहुरि नहिं जपना ।

सो जग जग बहुरि नहिं जगना केया मरो बहुरि नहिं मरना ॥

एक परावतन कलि छात्रि पाँचो हृष्टी को न बगोत्रि ।

घानत पाँचो कच्छि कहीछि पंच परम गुण शरण गहीछि ॥

पूजा-साहित्य

घाननरायने भक्तानेक पूजाभावा निर्माय किया। कुछ तो प्रतिदिन यन्त्रिमें पढ़ी जाती हैं और कुछ केवल पढ़ने विनायें ही। ये मुख्य हैं : देवधारणपुत्र पूजा

१. सभी वं वक्षानागरी वाङ्मय-वाङ्मय संपादित वृत्तिनवाली लभ्यमें प्रकाशित हो चुका है और कुछ भाग्यव घानतीक पूजाविधि में भी जारी है।

बीज तीर्थवर पूजा विदेगधेय पूजा पंचमेव पूजा रत्नचयन वर्ज्य पूजा मोक्ष
वाग्म पूजा रत्नचयन पूजा निर्वास धेय पूजा गन्धीरवर हीन पूजा अष्टाद्विज
कृपा तिर्यक पूजा गङ्गावती पूजा ।

इनमें-से देवदास्यगुण पञ्चाशी अधिक कथानि है । देवदे तात्पर्य तात्तान्
मयदान् अतिरत्ने है भाषाण्य देवांसे नहीं । पादपूजाया अप उन शम्भोति है
शिवन मयदान् अर्हन्ते मूर्धने निवसे ह्यु दिव्य वचन निवृद्ध है । भाषार्थ उगा
ध्याय और माधु मुद मार्ग वसे है । वे ही अन्तः-मनुजने वार वरदेके लिए ब्रह्म-
के समान है । तीनों ही की अनुकूल्य करने अष्ट द्रव्योंसे पूजा की गयी है । तीनों
ही 'रत्न' के समान है, शिवजी भक्तिसे 'परमेश्वर' प्राप्त होता है

‘अथम देव आहंते सुमुन विद्वान्म जू ।

गुर विरमन्म आहंते सुकनिगुर वंश जू ॥

ताम रत्न जगन्माहि मी के मति प्माह्वे ।

निनकी भक्ति प्रसाद वरम वद पाह्व ॥१॥

पूजो पद आहंते के पूजो गुद पद सार ।

पूजो देवी मारवता शिवमति छट प्रकार ॥२॥”

मोक्षद वारम पूजामे गन्धीर गुणवासे शिवेन्द्रके वरचोत्तर कंचन-साठसे
निर्मल-भीर बढ़ते हुए मन्त्र जाय विभीर होकर अय-प्रकार कण्ठे हुए एक कदमें
बढ़ उठता है

‘कंचन-भारी शिवमक नीर पूजो शिववर गुन-भीमीर ।

वरमगुद हो जय जय माय वरम गुद हो ॥

हरदाविष्टुद्धि जायवा माय लोकाह तीर्थकर-वद-दाय ।

वरमगुद हो जय जय माय वरम गुद हो ॥

पंचमेवभीरी पूजामे लंगीनकी कम्य है । पंचमेवभीरके अष्टी शिव शक्तिर और
सब प्रतिमाओंको समन्वय वरत हुए मन्त्र बढ़ता है । है माय । जायसी देवदर
मुखे एसा मुख होवा शिवे ‘परम गुन’ के अतिरिक्त और कुछ नहीं ब्रह्म का
बचना ।

“लीनक-मिह-गुणाक शिकाय जक ली पूजो ली शिवराय ।

महागुण होय देवी माय परम मुख होय ॥

पौषी मेर अर्वा शिव नाम सब प्रतिमा को करो व्रतम ।

महागुण होय देव माय वरम गुन होय ॥”

मन्दीरपरके ५२ चैत्यालय और जनम विराजमान प्रतिमाओंमें-से कुछ ऐसा लेन पूजता है जिसके समग्र करोड़ों जम्भ और सूर्योंकी बुधि भी फीकी है । ने बचनसे नहीं बोलने किन्तु उनको तो देखने-भाषने ही सम्भवतः पैदा हो जाता है

‘क्रोडि-सशि-भान-श्रुति-तैव छिप जात है ।

महा-वैराग-परिधाम छहरात है ॥

बचन नहीं कह कलि होत सम्बन्धर ।

श्रीव वाचक प्रतिमा नमीं सुखकर ॥९॥

‘निर्वाच-श्रेष्ठ-शुभा की बचनानामें सम्मेलनसिद्धर की महिमाका वर्णन करते हुए कविने कहा कि एक बार जो कोई उसकी बल्बना कर केता है उस फिर गरक-यष्टु-गति नहीं होती है । गर-पति देव-पति बन जाता है । वह दृष्टीकीक भोवनेको भोवकर श्री शिव-मुखाको पा लेता है । सम्मेलनसिद्धर विष्णोका बिनास करके कल्याण करनेवाला है । उसमें ससारसे पार समानकी साम्य है

‘जीर्णो सिद्ध श्रुति का कपर ।

शिलर सम्मन्-महागिरि श्रु पर ॥

एक बार बड़े जो कोई ।

छाहि गरक-यष्टु-गति बहि होई ॥६॥

गरपति श्रु सुख राग बन्धन ।

तिर्णु कय-भोग भोगि शिव पावै ।

विष्ण-विनायक अंगकधारी ।

शुभ-विकास बड़ी भवधारी ॥९॥

स्तोत्र-साहित्य

छातनरायने स्वयम्भू स्तोत्र ‘पार्वतीनाथ स्तोत्र’ और ‘एकीभाष स्तोत्र’की रचना की जो जिनमें प्रथम दो मौलिक और अन्तिम की वादिराज सूरिके संस्कृत ‘एकीभाष स्तोत्र’ का भाषानुवाद है ।

स्वयम्भू स्तोत्रमें चौबीस पद्य हैं । चौबीस टीर्थंकरोंमें-से प्रत्येककी महिमामें एक-एकका निर्वाच हुआ है । यह स्तोत्र प्रायः पूजाधीनी सभासिद्धपर पढ़ा जाता है । जनमान् पार्वतीनाथ और वर्तमानकी महिमामें बने हुए दो पद्य देखिए ।

इत्येव किञ्च उपमग अशर रवान देखि धापो कविधर ।

राधा कमल छठ मुल कर इवान नमीं मेक सम पारस श्याम ॥२३॥

भय सागर ते जीव अशर धरम पीत में घरे विहार ।

रुचन कय दया विचार कर्तमान बड़े बहुरार ॥२४॥

‘पार्श्वबाध स्तोत्र’ प्रसिद्ध है। इसमें संगीतही लय है और धार्मिक प्रवृत्ति। यह भक्तान् बुद्धिबोधे बुद्धिबोधे हृदयेवासा बुद्धि देनेवाला और धर्मबोधे हृदये महात्मा आत्मिकी सेवा करनेवाला है। उसके सेवकों के पास भय तो कटका है नहीं। यह भक्तान् धर्मिकों को भक्त अपुत्रों को पुत्र भी देता है। देखिए,

हुली बुद्धिबोधे बुद्धिबोधे हुली बुद्धिबोधे ।
सदा सेवकों को महात्मा मर्त्य ॥
हरे यक्ष राक्षस भूत विनाश ।
विष काँकियो विष के मय भवाच ॥३॥
धर्मिकों की भक्ति के दान देने ।
अपुत्रों को पुत्र भी देने की है ॥
महात्मकों से विकार विनाश ।
सब सेवका सर्व को देहि दाता ॥४॥”

भारती साहित्य

आत्मतत्त्वकी पाँच भारतीयों जिनका भी-संग्रह में प्रकाशित हो चुका है। वे पाँचों ग्रन्थ यह विधि मय ३ भारतीयों की हैं। भारतीयों की जिनका भी-संग्रह में प्रकाशित हो चुका है। वे पाँचों ग्रन्थ यह विधि मय ३ भारतीयों की हैं। भारतीयों की जिनका भी-संग्रह में प्रकाशित हो चुका है। वे पाँचों ग्रन्थ यह विधि मय ३ भारतीयों की हैं।

प्रथम भारतीय पञ्चपरमेष्ठीकी जिनमें रही गयी है। वे धर्म-समुद्रों धर्म-बाधे धर्म-धर्मकी मिष्टानेवाले धर्म-भक्तों के बुद्धिबोधे हृदयेवासा बुद्धि देनेवाले और बुद्धिबोधे हृदयेवासा बुद्धि देनेवाले हैं।

द्वितीय भारतीय भी जिनका भी-संग्रह में प्रकाशित हो चुका है। वे धर्म-समुद्रों धर्म-बाधे धर्म-धर्मकी मिष्टानेवाले धर्म-भक्तों के बुद्धिबोधे हृदयेवासा बुद्धि देनेवाले और बुद्धिबोधे हृदयेवासा बुद्धि देनेवाले हैं।

‘सुख भरे असर करत तुम सेवा ।
तुमहीं सब देवक के देवा ॥
भारति भी जिनका भी-संग्रह में प्रकाशित हो चुका है। वे धर्म-समुद्रों धर्म-बाधे धर्म-धर्मकी मिष्टानेवाले धर्म-भक्तों के बुद्धिबोधे हृदयेवासा बुद्धि देनेवाले और बुद्धिबोधे हृदयेवासा बुद्धि देनेवाले हैं।

जो तुम नाम नहीं मन माहीं ।
जन्म मरण भय लोको नाहीं ॥
तुम गुण हम कैय करि गार्हे ।
गणधर कहत पार कहि पार्हे ॥
कल्यासागर कल्या कीजे ।
प्राप्त सेवक को मुक्त दीजे ॥

पुनीय आरती श्री भुविराजकी है, जो अथर्वोक्त स्रष्टार करनेवाक है । उनके चरित्रका पुनरावृत्ति करते हुए कवि कहता है, वे धनु-मित्र और सुख-दुःखको समान मानने हैं तथा काम और अलम्बकी भी बराबर समझते हैं ।^१

चतुर्थ आरती भगवान् महावीरकी अकिन्तमें रखी गयी है । वे भगवान् मनुष्याकी शारंगम भो बैध ही पद हैं जिस कि अपने बर्णोंके विहीन करनेमें । वे दीपकानाम सर्वोत्कृष्ट हैं और धिक्-मित्र का धोय करनेवाले हैं । वे मन-बचन और वागध योगी हैं ।^२

राग-विना सच जग जन तारै; ह्येय विना सच करम बिहारे ॥
करी आरती बद्धमात्र का पावापुर निरवान या / की ॥३॥
धीक सुरंधर निवर्तित भोगी सबबचनपनि कहिय भोगी ॥
करी आरती बद्धमात्र की । पावापुर निरवान याव की ॥३॥

पंचम आरती आनन्दराजकी है । इनमें एक उत्कृष्ट काव्य है । आनन्द ही भगवान् राज हैं । वह भगवान् उनकी मन्दिरमें विराजमान हैं । भक्त अष्ट अष्टमें उसको पूजा करता है । समस्तका आनन्द ही अक्ष-अक्ष है उत्कृष्टभक्त उन्मुख अनुभव-सुख केवलका भक्त हुआ पाक ज्ञान दीपक ध्यान पूर और निर्मल-भाव महाफल है । सबको मिठाकर अक्षय बन जाता है । इस भाँति भक्ति बन जो नरका अक्षिमें प्रवीण है समुपकी भाँति ही आनन्दकी रासमें एवमिष्ट हो उत्कीर्ण हो रहे हैं ।^३ देखिए

‘मंगल आरती आनन्दराज । तब मन्दिर भन उत्तम राज ॥
समस्त अक्ष अक्ष अक्ष । तबुक्त तब स्वयं अक्ष ॥
समस्तभक्त अक्ष की माल । अनुभव सुख भेद भक्ति भाव ॥
दीपक ज्ञान ध्यान की पूर । निर्मल भाव महाफल बन ॥
सुगुन भक्ति अक्ष अक्ष अक्ष । निहरी नरका अक्षि प्रवाल ॥

१. इतिहासाधी भगवत् पृष्ठ १११ ।

२. पान्थीय भूमिकाति पृष्ठ ७, पृष्ठ ११४ ।

३. इतिहासाधी समस्त पृष्ठ १११ ।

जब कोई व्यक्ति व्यवस्थित उत्साहके साथ अन्तर्हृदयमें विद्यमान परमात्म का ध्यान करतायेगा तो वह तब बात है कि ध्यानकी वस्तुस्थिति पर परमात्मामय हो जायेगा जबकि वह और कष्टका साहचर्य एक हो जायेगा । बीन कोन ऐसे ध्यानको शुद्ध ध्यान कहता है । ध्यानतरावने भी ऐसा ही कुछ करता है,

‘श्रुति उत्तरसाह सु ब्रह्मह गान ।

परम समाधि विरत परमान ॥

बाहिर आत्म मान बहारी ।

आन्तर है परमात्म भावै ॥

साहचर्य सेवक भेद विद्याय ।

आन्तर एकमेक ही वाप ॥

समाधिभरण

ध्यानतरावका रचा हुआ समाधिभरण छोटा समाधिभरण कहलाता है । इसमें कुछ रस पक है । यह ‘बृहज्जिनशापी संग्रह’ में प्रकाशित हो चुका है ।

धर्म पञ्चीसी

इसमें कुछ २७ पद्य हैं । यह भी अत्युत्तम ‘जिनशापी संग्रह’ में लिख है । इसमें बीन धर्मके प्रति अनाथ बड़ा प्रवर्तित की गयी है । एक स्थानपर कहता है कि बीन धर्मके बिना अनुपम बीने ही है बीने धर्मके बिना पविरी बीने बिना हाथी और कन्ठके बिना उरुव गारी

‘भेद बिना बिना मज बिन वृत् । बीने तरुव वारि बिन कठ ॥

धर्म बिना बीने मनुष्य देह । ताँते करिब धर्म सचेह ॥

बीनेके बिना सरोवर बीना नहीं पाता धर्मके बिना पक्षका कुछ दुःख नहीं और धर्मके बिना धर्म कोही बीनवर्न नहीं या पाता ठीक बीने ही धर्मके बिना मनुष्य भी सुखीवित नहीं होता

“बीने मीन बिना है पूछ । बीने निर्दोष सरोवर पूछ ॥

बीने धर्म बिन साधित नहीं मीन । धर्म बिना धर्म बीने बिनीव ॥१३॥

धर्मका धर्म है और बीनवर्न धर्मके धर्मका पाता है । धर्म धर्म और मारीका धर्मोय भी धर्मिक है । साराधर्म बीन स्वप्नके समान है । यह देखकर कुछ स्वभावसे बीन धर्ममें बड़ा रक्तगी चाहिए । बीन धर्म बीन बीने ही मति मिलेगी

धर्मका धर्म रहे धर्म मज । बीनवर्न बीने धर्म कपटाव ॥

धर्म मित गारी धर्म मीनोय । यह धर्मसार धर्मका धर्म ॥

बह कवि बिज बर सुख मुभाव । काज श्री जिनबस उपाव ॥
यमाभाव जेमा गति गह । जैमी गति सेवा मुख कई ॥११॥

अध्यात्म पंचामिका

इसमें टीक पचास पद्य हैं। जैना कि इसके नामसे भी स्पष्ट है। इसकी 'सम्बोध पंचामिका' भी कहते हैं। इसमें कहा गया है कि जिसका धारमाके नाम होवे हुए भी यह जीव हरर हरर मटवता छिगता है। अमाशुभिन नीचनी बया विविध कृष्टान्दोषि व्यक्त की गयी है।^१

जैसे काहु पुण्य के रूप गल्या बर माहि ।

कहर भर कर भोग ही स्वीत जारै बाहि ॥१२॥

ता नर मो कि नही कही सु कही मणि भोग ।

तरे बर मै निधि गही स्वीती उचम सीमा ॥१३॥

अन्य रचनायें

आमउपमहृत् कुछ रचनाओंकी मुद्रणा 'राजस्थानक जैन धारम प्रकाशकी' ग्रन्थ-मुद्रो नाम ३^१ से श्री प्राण हृ^३ है। इसमें १८ नामोंकी मुद्रमाता 'रघु म्दान चौबीसी' और 'छद्म हाका' प्रसिद्ध हैं। रघुस्थान चौबीसीमें चौबीस टीककरोंके नाम काज-विज्ञाक नाम ऊँचाई और आपु बादि १ काजोका वर्जन है। इसकी प्रतिक्रिपि सीटकाउ गाह पावदावादेने अणुरमें स १९४४ में की थी।

७४ विद्यासागर (वि सं १०२७)

इसकी रचनाओंका पत्रा अभी अभी छूनी^२ अर्थात् शाकपुरीके धारमप्रकाशकी लोचन समक कहा है। बीच ही इस प्रकाशक इन्फ्रिमिजिज प्रन्थोंकी संख्या १४ ही है। रिन्नु अन्तमें कुछ यहलपूर्व संकल्पन थी है। वा मुद्रकमें हिन्दीकी ऐसी रचनाओंका संकल्पन है जो अभीतक अज्ञात थीं। उनमें-से पहला तो स १८०१ का निष्ठा हुआ है और दूसरा भी इसीउ नाम-पावका प्रगीत होता है क्योंकि

१ बरी, १ ४३०० ।

२ इसी अणुरम १ और और दोकमे १ संज्ञात अमिज है। यह रचना जाने वाली लक्ष्मण लक्ष्मण २ अन्त दूर है। इसका प्राचीन नाम होल्दुरी है। इसमें लक्ष्मण है। यह द्वावर वर पुण्या विद्यात जैन अमिज है। २२ और कर है।

उद्यम प्राम अठारहवीं शताब्दी की रचनाएँ हैं। उसीमें विद्यासागरकी कुछ कृतियाँ निश्चय हैं।

विद्यासागर नामके दो कवि मुजरातीमें हो गये हैं। किन्तु दोनों ही ठगहरी धनाढ्यीय व्यक्तित्व हुए थे। एक तो तपायन्त्रीय विजयराग मुरिके शिष्य थे जिनमें से १५२ में सुखीयल गोन'का निर्माण किया। दूसरे अठारहवीं शताब्दीय मुराजि-कम्पनीमें से शिष्य थे। उन्होंने से १५७९ आसोज सुदी ६ को कदावती 'बीरई' की रचना की थी। प्रस्तुत विद्यासागर उपर्युक्त दोनोंमें ही पृथक् हैं। उन्होंने तो कुछ किन्ना हिन्दीमें ही लिखा। उनका समय भी अठारहवीं शताब्दीया पूर्वाध भाग माना जाये, और कि उनकी रचनाओंसे स्पष्ट है। उन्होंने वर्ष १७३४ में भूतल स्तोत्र 'अप्य'का निर्माण किया था।

विद्यासागर कारंवाके चलेवाके थे। उनके पिताका नाम राऊ साहू था। वे बरेलवाक जातिमें उत्पन्न हुए थे। बरेलवाक धर्मिवाकी एक उपजाति है जो अब भी कारंवाकी तरह अधिक रहती है। पिताके नामसे ऐसा स्पष्ट ही है कि वे एक छात्रभर थे और कम्पनीकी उनपर कृपा थी। वे कर्मविष्ट भी थे तपवान् जिनके भी भक्तिमें हैं। उनका अधिकतर समय ध्यानीत होता था। विद्यासागर भी ऐसे ही थे। वे मुकेश्वर सरस्वतीयन्त्र बलात्कारयके अनुचरके मुद्राभाता थे। उनके पुत्रका नाम जयचन्द्रमुरि था। विद्यासागर बड़ा विद्यासागर कहाते थे। इससे स्पष्ट है कि वे ब्रह्मवादी थे। उनकी रचनाएँ उनकी भक्त हृदयकी घोषणा हैं। प्रथम उसी मुकेश्वर हैं। उनमें लंबा और कल्पना अधिकतर प्रतीय किया गया है।

रचनाएँ

'सोहस्रस्वप्न सारंग' नामकी कृतिमें तीर्थकरकी गीते लोकर स्वर्णका अलिप्त-मय विवेचन है। इसमें केवल ९ पद्य हैं और यह अठारहवीं शताब्दीय प्रथम पादम लिखी गयी थी।

'शिव धम्म मङ्गोलस्य पदपत्र' में जयचन्द्र विवेकके अत्यन्तहीन मूर्खत्वकी लक्ष्मी है। इन अवसरपर इनका इच्छाकी तथा अन्य वैवाहिक बाहर विविध उत्प्रेरणी रचना करता है। उनका एक सफल विषय इस जाते में वाक्यमें प्रस्तुत किया गया है। इसका रचनात्वाक भी अठारहवीं शताब्दीया प्रथम पाद ही है। इसमें कुल १२ पद्य हैं। एक पद्य वैशिष्ट्य,

“चास्यो सुरग तदा विधति मारग विभागे ।

हाव मात्र सचिस्त्राय ऊरो कर मूष्य सु तान ॥

धुमि धुमि धुनिध मार कटार ज महक बज्र ।

धूमि धूमि धाव रंग चार हो एक बहु गज्र ॥

मिचिदि मिचिदि मुम्बरे करि जुगुमरी धम्म के बहु तदा ।

विद्यामागर बड़े सुभा सुर किम्बाणक कर यदा ॥५॥

‘छप्प वज्जम सवेया म माग धम्मसाधो छेदनकी बात बड़ी लयी है । इसमें कुछ बात पद्य है । इसका भी रचनाकाल यह ही है । सबीयोवा प्रयोग किया गया है ।

‘इयमाष्टक’ मयवान् जिनम्बे दानोमि सम्भविष्यत है । इसमें बताया गया है कि मयवान् के वर्णन करना-भावसे ही यह बीच मय-समुद्रमें पार हो जाता है । इसमें ११ पद्य है । रचना काल यह ही है ।

‘विषापहार छप्पम सवेय बड़ा वाक्य है । इसमें ४ पद्य है । यह छप्पमों में लिखा गया है । इसका रचनाकाल भी अक्षरहों वगैरहों प्रथम पद्य ही है । इसमें मयवान् जिनम्बे की भविष्ये इदानीक और पारलौकिक दुःखों के छूट जानेका विवेचन है । एक पद्यमें जिनम्बेका रूप इन प्रकार वर्णित किया है —

“शब्द शरीरादीना रजामि तु हे वृषमहर

कर गंघ रम रदिग प्रमु तु श्री जगदीश्वर ।

ईह गंध गन्ध सवद् ना ज्ञान न ज्ञेय,

काक पि पशमांग मांग जिग ज्ञाने बलाने ।

धम्म लीक जमिमांन धी मन्ने बड़ी नुस न कर

वर विद्यामागर बड़े नुस गुल ममद हु यदा ॥६॥

‘मुपाज रत्ताज छप्पम म कुल २७ छप्पम है । इसमें बीबीय छेकरीकी स्तुति की लयी है । इसकी रचना म १०१ सावित्रमास सुदी मासमी मुक्तारके दिन वागजामे हुई थी । एक पद्यन मयवान् के दानका ज्ञानम्बे के लिए,

नरन्ना मयन भाज रमाथव मरिह मुलकर

मत्र विद्याज गु रवान काज मिनि रन्ना मुलहर ।

मिद मुरम तु मरुन भाज म मयने निरन्नी

विद्यामलि मुस भाज निरन्नु मुळ ई बहु हरन्नी ।

जिनम्बे निरन्ना ई महु भाज म निरन्ना निरन्ना

विद्यामागर बट जिन वि रन्ना वाणिग मन्ना ॥७॥

७५ बुलाकीनास (वि सं १०१०-१०१३)

बुलाकीनासकी मध्य-परम्परा इस प्रकार की साहू धमरही प्रेमचन्द धमरनाम मन्त्रनाम और बुलाकीनास । वे मूलतः बयानाके रहनेवाले थे । किन्तु ज्ञाना धमरनास बयाना छोड़कर जानरेमें रहने लगे थे । उनका पुत्र मन्त्रनाम भी स्वयं और स्वयम्परा का क्रिमपर मोड़िग झाँकर प्रमिष्ट पमिष्ट हैवराजने बननी एव नाम पुत्री 'बैनी ध्यातु बी बी । बैनी कन और सीकमें अनुपम तथा सत्यवतीकी तो सामान् बचतार हो थी । उठीके नर्मते बुलाकीनामका नाम हुआ । बिहुपी माँकी बैन-नेकमें बुलाकीनामका पाकम-दीपक हुआ । वे विद्वान् भी बन मक और मन्त्रावधि थी । उनका कुल बचवाक और गीत भीवत था ।

'नामकी प्रचारिका पविता'के सम्पादकोंके उनके द्वारा रचित श्रीमन्मन्त्र-छोटाभरमूपित' नामक ग्रन्थके आधारपर लिखा है 'वे मूलरूपसे बयानाके रहनेवाले थे किन्तु ज्ञान-नामके संशोधने बयानाकारमें जाकर रहने लगे वहाँ औरपड़ेवाले छात्रनमें सब प्रया सुखी थी उनके पुत्रका नाम रतन वा बी मङ्ग भीवचकके रहनेवाले थे ।' किन्तु 'श्रीमन्मन्त्रछोटाभरमूपित' उनकी किसी रचनाका नाम नहीं है अपितु अपनी माताकी स्मृति रत्नाके किए उन्होंने पाण्डवपुराणके प्रत्येक सर्गके अन्तमें 'श्रीमन्मन्त्रछोटाभरमूपिताया श्रीमन्मन्त्रि-ताया वारतनामाया' लिखा है । अन्त्यमें पाण्डवपुराणकी रचना अपनी माँकी आत्मासे ही की थी । अतीत बयानाकारका सम्बन्ध है ही सचछा है कि उनके पूर्वज वहाँ भी कुछ दिनों रहे हों ।

बुलाकीनासने 'मन्त्रनाम' प्रस्तोतारनामकाचार 'पाण्डवपुराण और 'श्रीमन्मन्त्र' की रचना की थी । इनमें पृथक्पृथक् मन्त्रितसे सम्बन्धित 'श्रीमन्मन्त्र' ही है किन्तु अवधिह तीन प्रश्नमें भी अन्तिमें अनेकों स्थल हैं । वही मन्त्र की स्मृतिवा वही श्रिग मन्त्रिरोका साविद्य नर्मन और वही धमरतीकी धमरनाम रूप अन्तिम है । वही सभी प्रश्नोंका संशोधन परिचय दिया था रत्न है

१ २ प्रमो हिन्दी केन साहित्यका इतिहास, पन्ना १९१० ई. पृष्ठ ९५ ।

२ 'कन बुलाकीनास की मूल बनीना नाम । और रतन गुहरेन की मङ्ग गीताचक नाम । जन्म पान सजोय तें मन्त्र बयानावन्—मन्त्र बयाना-कारम साहित्य औरम नाहि विविधा तिल कतार वही रहे प्रया मुन नाहि ।' 'हेहि का ना म' इतिहासके इन्तिमिज हिन्दी प्रश्नोंका १९वीं वेवार्ति विवरण ।

वचनकोश

इसकी एक प्रति 'सिंठका कूँबा बिल्डी' के जैन मन्दिर के धातु मण्डार में मौजूद है। इसकी रचना वि. सं. १७१७ में हुई थी। यह प्रति वि. सं. १८८९ को लिखी गई है। इसमें १३ पृष्ठ हैं। इसकी दूसरी प्रति जयपुर के बड़े मन्दिर के सेटन नं० १९४१ में निबद्ध है। यह प्रति विष्णुसूक्त छूट एवं पूरा है। इसमें १५७ पृष्ठ हैं। इसपर लेखनकाक सं. १८५३ पत्रा हुआ है। यह धम्म जैन-सिद्धान्तका विषय है किन्तु हिन्दी-पद्यों में लिखा गया है। पद्यों में सरलता है।

प्रश्नोत्तर-भावकाचार

इसकी प्रति बिल्डी के ५वाँ पत्ती मन्दिर के धम्ममण्डार में मौजूद है। इसका रचनाकाल सं. १७४७ और लेखनकाल सं. १९१७ में दिया हुआ है। इसमें कुल १०३ पृष्ठ हैं। इसकी दूसरी प्रति जयपुर में सूफकरजीक मन्दिर के सेटन नं० १८ में निबद्ध है। इसपर भी रचनाकाल सं. १७४७ पड़ा है किन्तु लेखनकाल सं. १९४१ है। यह प्रतिलिपि नामरोषा घाम के बीमान बनहुँसरजी ठैरापन्नीने लिखाया की। इसमें पृष्ठसंख्या १४५ है। इस धम्मका विषय जैन धर्मानुसार भावकोक भाषासे सम्बन्धित है। किन्तु हिन्दी-पद्यों में लिखा गया है और इसमें अनेक स्वर्णोपर साहित्यिक भाग्य सम्मिश्रित है।

पाण्डवपुराण

यह बुलाकीशासना प्रसिद्ध महाकाव्य है। इसमें जैन-वरम्परानुमोदित पाण्डवाकी कथा है। इसकी रचना वि. सं. १७१४ में दिल्ली में राजा की बनी थी। वहाँ राजकी की जैनधर्म या जैनोस धुमधम्म मठारका संस्थान पाण्डवपुराण ब्रह्म और जयन पुत्रकी हिन्दी में रचनाकी आज्ञा दी। उन्हीं लक्ष ज्ञाको पूरा किया। इस काव्यमें ५५ पद्य हैं। राजकी काव्य-शक्तिपर अपना मन अति व्यक्त करते हुए प्रसिद्ध पण्डित नामूरामजी प्रेमीने लिखा है, रचना मध्यम श्रेणीकी है पर कहीं-कहीं बहुत अच्छी है। कविता प्रगिया है पर वह मूलधम्म-

१. ताकी अर्थ विचारके भारत माया नाम ।

बना पादु मुन पंच की कीर्ति बहु महिराम ॥

मुनम अर्थ भावक सबै जन जगदी गाहि ।

ऐसा रचिक प्रथम हो योगि मुनाबी ताहि ॥

पाण्डवपुराण प्रसिद्ध दिल्लीवासी प्रति ।

की ईदके कारण विवर्धित नहीं हो पायी। मूल ग्रन्थों की रचना बड़िया नहीं है।^१ काव्य-शक्ति में भी हुई और पुष्ट है किन्तु कथानकसम्बन्धी घटनाओं के मुनासिफ़ावसे कुछ सीप है जो मूल ग्रन्थों सम्बन्धित है। सम्बन्ध-निर्वाह भी किर्तुषक है। का का प्र के सम्पादनात्ता विचार है। असुत सभ्य अत्यन्त रोचक है। कविता मज्जो है।^१ कविकाके सम्पादकोंके अछमरा (आमरा)के जैन मन्दिरके वास्तवमण्डारसे एक प्रति प्राप्त की थी। उसपर रचना-संख्या १८९१ पढ़ा हुआ है। जिनका पण्डित स्वयं सम्पादनात्ता ही किया है।

इसकी एक प्रति जवा मन्दिर सिन्धुके हस्तलिखित ग्रन्थों में मौजूद है। किंति सं १८९२ की हुई है। इसका २ १ पृष्ठ है। दूसरी प्रति जयपुरके कपी बन्धुके जैन-मन्दिरमें बेष्टन न १४४में लिख्य है। इसमें पत्रसंख्या २ २ है और रचनासंख्या नं १७५४ दिना हुआ है। अछनेपवाली प्रतिके आधारपर प्रारम्भिक एक छन्द छन्द है कि

‘सबत सत सुरास स्वर्ण सिद्धिस्थित सिद्ध सध ।
सिद्धारस सरवस नव प्रमाण सा सिद्धि अथ ॥
करम कद्व कर्तार करम हरम करम चरम ।
अमरम मरम अम्वार मरुन बहम साधन सधन ॥
ब्रह्मविधि अमक गुणगण सहित अग रूपय रूपय रहित ।
विहि मन्त्रकाक मन्त्र नमत विहि हन सरगज नित ॥

जैन-बौद्धीसी

इसका सम्बन्ध काफी गहरी प्रचारितो कविकाके हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थोंके पत्रावर्षे वैवायिक विवरणमें हुआ है। कविकाके सम्पादकोंको इसकी प्रति मावरीक गुजरके रहनेवाले थी दुर्गासिंह राजपूतके नाम प्राप्त हुई थी। मावरीका बादबाला कर्तार लखीक निरावकी और जिना आपरा है। इनमें १९९ अनुपुष्ट छन्द है। कभी २४ तीर्थंकरोंकी मल्लिसे सम्बन्धित है। जयवान् बादिनावकी बन्धनमें एक छन्द इस प्रकार है

बन्दा प्रथम शिवस की बीच अक्षरह जुरी
वेद नक्षत्र ग्रह जीवण गुण अवमत्त मरी पुरी ।

१ हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास, कर्ण १९२० ई पू २४ ।

का का म कविकाके हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थोंकी छेवके वैवायिक पत्रावर्षे विवरणमें है कि

नमो करि पदरि सिद्धि को भइ करम कोयुं छार
सहस्र घाठ गुन सा भई, करै भगत उपार ।
आचारस क पद करि यमो बुरी अन्तर गति मांड
पंच अक्षरजा सिद्धि ते मार जगत क रांड ॥

७६ विनयविजय (वि सं १०३९ तक से)

ये एक श्वेताम्बर साधु थे। इनके गुरुका नाम कीर्तिविजय उपाध्याय था। कीर्तिविजयजी औरममामके रहनेवाले थे। कीर्तिविजयजी पणना अष्टे विद्वानोंमें से। विनयविजय इन्हींके शिष्य थे। उन्होंने अपनी गुरु-परम्पराका सम्बन्ध इस प्रकार किया है। औरविजय विजयदेव विजयसिंह कीर्तिविजय विनयविजय।

विनयविजयजी यशोविजयके समराज्योन थे। बोगल साय रङ्गकर हो वासी म विद्याध्यायन किया था।^१ विनयविजयजी म्याय और साहित्यम समान पति थी। इनका नमकनिका नामका ग्रन्थ अंगरेजी टीकासहित छप चुका है। पुष्पप्रकाशस्तवमन् और पंचपञ्चाशस्तवमन् मरिचक सम्बन्धित हैं। मुजराती साहित्यको उनकी विद्याक डेन है। उसमें 'भक्तिनाथ जमर बीठास्तवन' 'नमि-नाथ बारमास स्तवन' आदिनाम विनयी' बीबीसी बीसी और 'आस्वत विनमाय' ध्वनिधक प्रसिद्ध हैं।^२ कासीम रहनेके कारण उन्होंने हिन्दीमें भी समुचित योगदान प्राप्त कर ली थी। उनका हिन्दीका एक ग्रन्थ विनय-विहार के नामसे छप चुका है। इसमें कुछ ३७ पर है।

विनय विस्वास

यह सरीर मृज है किसीक साथ नहीं आता यहाँ ही पड़ा रह जाता है। और सबको प्रेम करता है, करता नहीं चाहिए। आत्मा ही शेष है जो कभी ध्वज नहीं होता जो कभी मरता नहीं। इन्हींकी कविने एक मुन्धर कपड़के द्वारा उपस्थित किया है। आत्मा या जीव सवार है और सरीर घोड़ा। यह धानेमें तो हाथियार है, किन्तु जब इसपर और कछो सब यह सोना चाहता है। इसपर

१ भक्तिनाथ जमर बीठा स्तवन मुजराती १९५० पृष्ठ।

२ जैन श्रुतकविग्रो भाग २ पृष्ठ १९६२ ई. पृ. ७।

३. जैन लोग सन्तोष प्रथम आज, सुनि चक्रविजय द्वारा सत्यादिन प्रकाशना, पार सिफ्टी, पृ. २२।

४. समीप लक्षित विवरण 'जैन श्रुतकविग्रो' भाग २ पृ. १९७ में प्रकाशित है।

किन्तु ही क्या व्यय करो किन्तु ही व्यय चारा हो सचारीके समय यह व्यय ही इतर-व्यय बहनेवा। यह सचार्थ तो बहुत प्रकारकी करवाता है किन्तु सचारीको कही दूर जगहमें जा पटकता है। जत इस विषयमें बोडेको छीक राखीवर जानेके लिए, बाबुको नाम देना होता। बिना ऐसा किसे यह सचारीकी मार्ग कैसे पार कर सकेगा ? यह कथक देखिए

‘बोरा छय है रे रे मल भूके भलबारा ।
 दोहि सुधा के कागल प्यारा जल होवया न्यारा ॥
 रीर चीर और रीर कैर सी कबड कही क्यारा ।
 चीर कही सब सोया चाहै लाने की होमिचारा ॥
 कूज कबला करव निकस्यो धो सब न्यासरा चारा ।
 भलबारी का कबसर कही गळिया होव लंघारा ॥
 किन्तु सत्ता किन्तु प्यासा होवै गिबमल बहुत करवम हारा ।
 और दूर बंगल में जाई, छरी बनी बिचारा ॥
 करहु रीकड़ा चातुर चौकस सी चतुस हो चारा ।
 इस घेरे को ‘विषय भिलावो क्यों पस्यो भलबारा ॥

यह मनुष्य सामाजिक सुखोंको प्राप्त करनेके लिए बहुत ललचाता है। एक के बाद दूसरेको प्राप्त करनेकी उसकी लुब्धा कभी बुझती नहीं। वह मूल लुब्धाकी भाँति उनके पीछे अविराम बहिये चलाता है किन्तु कुछ मिळता नहीं। बीचमें व्यर्थ बसा जाता है। उसे यह पता नहीं कि उसके पीछर ही सुखाका सौतेल रहता रहा है। बलम स्नान करनेसे सब कुछ दूर हो जाते हैं और परमानन्दकी प्राप्ति होती है। सामान्य मूल उसके पास ही है। वह व्यर्थमें ही इतर-व्यय भटकता फिरता है,

‘फिरा और भूँ और जार स भूगलप्य जित काय ।
 प्यास सुखावन मूँह न पाली, बों ही कबम गमाय ॥
 प्यारे कही मूँ दू ककचाय ॥
 सुधा सरोवर है बा बड में मिसरें सब दुल जाय ।
 ‘विषय कही गुन्य सिपाये को काई रिक छय ॥
 प्यारे कही मूँ दू ककचाय ॥’

सामाजिक पदार्थोंके लिए ललचाणा मुळता है। जिनके लिए वह बीच प्यासु होकर मेरी मेरी करता है वे ललचे मुलमुलके समान बहिये हैं। अधिक पदार्थोंमें विरग्न मूल बुझा मुर्छता ही है। माया-व्यय निकलने लीचके मूल

स्वभावको बाण्डारित कर रखा है। यह अतृप्तिके काँटापर बैठकर दुःख पा रहा है। जल-कुसुमोंकी झर्यापर बैठनका उसे कभी सोचाम्य ही प्राप्त नहीं हुआ। देखिए,

‘मरी मरी करत बाधरे फिर जीव शकुन्ताप ।

पकक एक में बहुरि न बंध जल-कुंद की ज्वाय ॥

ज्वारे काहूँ ककचाय ॥

कीटि बिक्कर ज्वायि की बेदुन कही छुल कपराय ।

जान-कुसुम की मेज न पाई, रहै ज्वाय भ्रमय ॥

ज्वारे काहूँ ककचाय ॥

यहाँ बाधरे शब्द ऐसे उपयुक्त स्थानपर बैठा है। जिससे समुन्ने पद्यमें जीवन का क्या है। उपयुक्त स्थानपर शब्दोंको बिठाया अपने कलाकारका ही काम है। निगमित्रपकी भाषा ऐसी और भाव सभी कुछ मनोहारी हैं।

७७ देवाग्रह (१८वीं शताब्दीका पूर्वार्ध)

जमीकी खोजमें देवाग्रहारी कुछ रचनाबस्तु रचा जाता है। जिनके आधारपर यह निश्चित होकर कहा जा सकता है कि वे हिन्दीके उत्कृष्ट कवि थे। सैकड़ों बिन्दु परों और बिन्दुबिन्दुमें कैसे सगका हृदय ही फूट पड़ा है। भाषा भी परि माविन है। उनपर कुछ राजस्थानीका प्रभाव है। देवाग्रहके अधिकतर पद्य गणवान् जिनकेके चरणोंमें समर्पित हुए हैं।

देवाग्रह य ग्रह सग उपविभूषक है जो जलके बह्मचारी होनेको बात नोपित करता है। सगका नाम ‘देवजी’ था। यह स्वीकार करते हुए भी कि ‘देव’ का प्रयोग प्रायः भाषाके अन्तमें ही होता है, निश्चय करते यह भी तो नहीं कहा जा सकता कि ‘देवजी’ नाम गही हो सकता। नामोकी बिचिभ्रता सभीको निश्चित है।

बाबू कामनाप्रसादजीन अपने इतिहासमें देव ग्रहचारी और कंचरीतिहको केकर एक संज्ञा उपस्थित की है। उनका कथन है कि देव ग्रहचारी (कंचरी तिह) हुए ‘जग्मेरसिखर बिलास नामक रचना हमारे मध्यम है। अर्थात् यका

१. पाराशर्य ब्रह्मसंहिताकी कर्ता जैकिरचने और माहृग गुन लक्ष्मणे रचयिता देवकन्दने कर्तादिने रूपमें ग्रह राजका प्रयोग किया है।

२. हिन्दी जैन साहित्यका सविन विविास पृ. २६३।

देव ब्रह्मचारी केसरीसिंह से ? और यह रचना क्या केसरीसिंहका है ? किन्तु हमने अन्तिम पद्यांश स्पष्ट है कि न तो देव ब्रह्मचारी केसरीसिंह से और न यह कृति केसरीसिंहकी ही है । सोलाचार्यके विषय वत्सावन्ध पुनीत सुपन्न-क जाधारपर देवाग्रहण इन रचनाका निर्माण किया । इसका अर्थ पश्चिम केसरीसिंहने सम्झाया था । पश्चिमी बम्पूर नगरमें अकरके मन्दिरमें रहते थे । देव ब्रह्मचारी भी बम्पूरमें ही रहनेवाले थे ।^१

ब्रह्मचारी शम्भुके कारण देवाग्रहणकी स्थापना-स्थापन बूमत से और बड़ीकी जगताको उपदेश देने से । एक बार उन्होंने बम्पावनी बम्पूरमें श्रीरामा विद्या और बड़ीकी प्रवाणो ज्ञानका मार्ग दिखाया । उन्होंने एक पद्य बम्पावनीका विषय वर्णन किया है ।^२ बम्पावनीके बड़ केसरीमें एक पाठेमाका रहते थे । इनके

१ श्री सोलाचार्य मुनि वर्म विनीत हैं ।

तिन हून बत्त। रस सुपन्न पुनीत हैं ॥

ता अनुनार क्रियो सम्पेव विभास हैं ।

देव ब्रह्मचारी जिनवर की रास हैं ॥

केसरी सिंह नाम रहै कसबरी देह ।

पश्चिम एक भुव नाम यात्री अथ बटाहरी ॥

हेकिन्, वरी ।

२ देवाग्रहण श्रीमाधो काको नवरी में सुप पश्य ।

सब पंचा की म्वाल सुभायो सम्पति इन अधिकार ॥

हेकिन्, मरलीरमी अन्तिम दीर्घ केसरी एक शब्दीय प्रत्येमें सकल देवाग्रहणके पर अरि निवर्तनी ।

३ श्रीशेष मरतपेन मैं देव ब्रह्मचर सार ।

नवरी वर्म ब्राह्मणी श्री देवपुरी सुपन्न की ॥

उन्नोति बाळ मरी श्री प्रजा भूरी वर भारि ।

अन्तिम पुण्य सदा बरी को पूजा धर्म करारि श्री ॥

जिन मन्दिर तो बड़ो बड़ो श्री कीटि वीधि विपत्तारि ।

बड़ के बाहिर बम्परी विषी पुनि जिन मन्दिर सार श्री ॥

दीप को विरली सदा श्री श्रीति नाम सुपन्नार ।

बरम क्पात सारी सरी श्री भरि भरि मन्त्राधार श्री ॥

देमी नमरी दीप के श्री उपसी बाँधे साध ।

सब पंचा की व्यास सुभायी मुरय मुक्ति करार श्री ॥

वरी, पद्य १-२ ।

बयपुरकी घट्टारकीय महीका आरम्भ हुआ था। यहाँ पहले मुरेन्द्रकीर्ति सप्तक है। वे मुरेन्द्रकीर्ति मुनीन्द्र कहलाते थे।

आदित्यवार कथा

मुरेन्द्रकीर्ति मुनीन्द्रने इस कथाका निर्माण बि. स. १७४ में मुंबई की गोपाचण्डयन रहकर किया था। इस कथाको बीरसिंह बेन इटानाते सन् १९०९ में प्रकाशित कर चुके हैं। कथाकी रचना गोपाचण्डयनके जीवनकाल छाह बसवन्तक भाई बसवन्तकी धर्मपत्नीको प्राणनाश की मयी थी। कथाका सम्बन्ध जिनमन्त्री मन्त्रिसे है। कविपय पंक्तिमें है

'कामी दश बनारस नाम। सक बड़ी मलिसागर नाम ॥
छात्र भरनि गुण सुन्दर सती। सात पुत्र साक सुभमता ॥
सहस्रहृद कैलाशको एक। आन सुनिधर सहित बिबेक ॥
आगम मुनि सब हरपित मय। सर्व लोक बदन को गय ॥'

पद

इसके निम्ने हुए विविध पद महावीरकी अतिथयस्थानक एक प्राचीन मुद्रकाम संकल्पित हैं। जिनेश्वर पार्वतीनाथकी अन्तिम किष्ठा हुआ एक पद है,

'जि लोको पाछ जिवेश्वर की ॥
शुभक नाम जिहि जारता पञ्चा
बदली ही पञ्चाश्वर की ॥
साक पछे जिहि दीप्ता लीला
कामी छाड़ि नरहर को ॥
केवलज्ञान बपान मनी है
आ ही सिद्ध सुबीरवर की ॥
कीर्ति मुरेन्द्र बर्म तमु पद है
नित मति पूजि गणेश्वर की ॥

मुरेन्द्रकीर्तिके पञ्चाय आध्यात्मिक इतिहासी छटा मोहित करवेवाली है। गोरी मुमति अपने पनि जेगनै साब होली खेल रही है

'आत्म ब्रह्म तर्फी विचकारी
करना केवरी छोरो ॥ ॥
जेगन विच है मुमति निवा तुम
समस्त जग भर जारी री ॥

मैं अपराध करने दिया था
 माफ़ करो गुजराम मैं
 और देवता सब ही देवता
 सब सहो बिना कामि मैं
 मान्यो बात तो मुर नर गाये
 पानी सब सिख काज मैं
 देवाय्या परमां दिन बनाये
 सेवाय करि दित काज ।”

देवानन्दकी एक अन्य रचनाका नाम ‘सातबहुका अपराध’ है जो परोके कर्म-में ही लिखी गयी है। इसकी एक प्रति जयपुरके ठोसिम्बाके बौद्ध मन्दिरमें बैङ्कन ४१८ में लिखत है। इसमें केवल १७ पद्य हैं। राजस्थानीका प्रभाव है।

७८. सुरेन्द्रकीर्ति मुनीन्द्र (वि. सं. १७४)

ये मुकुन्दब बकात्कार बननी गाँधी साहबके मन्दारक देवन्दकीर्तिके शिष्य थे। सुरेन्द्रकीर्ति सं. १७१८ की खीच्छ सुकवा ११ को मन्दारक पक्षपर प्रतिष्ठित हुए थे और ७ वर्ष तक रहे। वे बिरबरा सामके निवासी थे। बोधकल बह अधिक कामा करते थे। इनका मोन पाठभो था। उन्होंने हिन्दीमें ‘बादिलवार कवा’ और अनेक सरस पदाली रचना की थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने ‘पंचमास चतुर्दशी वनोद्यापन’ और ‘मान पन्नीसी वनोद्यापन’ नामकी कृतियाँ हिन्दी में माताओंके रूपमें लिखी। ये बहुल-महितकी प्रतीक हैं।

एक दूसरे सुरेन्द्रकीर्ति और हुए हैं। इनका सम्बन्ध कान्छरवंश गम्भीरत गच्छते था। वे हनुमन्चमके शिष्य थे और इनके अपराध मन्दारक बने। उन्होंने अनेक पद्य और मूर्तिपोंकी स्थापना की। उन्होंने कम्बोजमन्दिर एकीमात्र विद्यापहार और मृगाक्ष स्तोत्रोंका हिन्दी रूपमें कव्यस्तरण भी किया था। हिन्दीमें कोई मौखिक रचना उन्होंने नहीं लिखी। इनका समय सं. १७४४ से १७७१ माना जाता है।

तीसरे सुरेन्द्रकीर्ति वे थे जो ककात्कार बन जेष्ठ साहबके सकन्दकीर्तिके अपराध सं. १७५१ से मन्दारक पक्षपर प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने किसी हिन्दी रचनाका निर्माण नहीं किया। बीजे मन्दारक बकात्कारवच बिल्ली जयपुर साहबके सेमैन्द्रकीर्तिके शिष्य थे। वे सं. १८२९ में मन्दारक बने थे। इनके

बम्बुरकी भट्टारकीय गद्दीका आरम्भ हुआ था। यहाँ पहले गुरेन्द्रकीर्ति पठकर है। व. गुरेन्द्रकीर्ति मुनीश्वर कहलाते थे।

साहित्यकार कथा

गुरेन्द्रकीर्ति मुनीश्वरने इस कथाका निर्माण बि. ॥ १७४ जेठ मुरी १ को गोपाचक्रवर्त्य रचकर किया था। इस कथाको बीरसिंहजीने इटावासे सन् १९०९ में प्रकाशित कर चुके हैं। कथाकी रचना गोपाचक्रवर्त्यके वीरबाहू दाह असमस्त भाई असमस्तकी बर्मपत्नीकी प्राचनापर की गया थी। कथाका सम्बन्ध जिनमुरकी वृत्तिसे है। कतिपय पंक्तियाँ हैं,

“कामी दश बरारस ग्राम। सड बर्फी मलिसागर नाम ॥
तासु बरनि गुण सुन्दर सती। सात पुत्र ताक सुभमती ॥
सहस्रकूट कैचाकवा एक। आप मुनिवर सहित बिलेक ॥
आगम सुनि सब हरपित मय। सर्व लोक बदन को गय ॥

पद

इनके बिन्ने हुए विविध पद मन्नाबीरजी मणिचयसौमिक एक प्राचीन गुटकासे संकलित हैं। जिनेश्वर पार्श्वनाथकी अस्तिर्भ किका हुआ एक पद है

“श्री लोको पात्र जिनेश्वर की ॥
कुण्ड नाग बिहि बरवा राग्या
बन्धी ही कर्माक्षर की ॥
बाक पजे बिहि बाण्या जीर्मा
कस्मी जेहि नरेश्वर की ॥
कैवकज्ञान उपाय मथा है
जो हो सिद्ध मुनीश्वर की ॥
कीर्ति गुरेन्द्र नमि तसु पद है,
मित प्रति पूजि गनिश्वर की ॥

गुरेन्द्रकीर्तिके पहलम व्यापारिक श्रोकियाकी कटा योजित करनेवाकी है। चौथी मुपति अवन पति चेतनके साथ डोकी पीर रही है

“दातम श्वाभ तर्फी निचकारी
चरवा कैमरी छोरी री।
चलन शिव री सुमनि तिया तुम
समरस जक भर कीरो री ॥

दिया हुआ है।^१ 'चिन्तीत बज्र' इसके पहले ही बनी थी।

जैनक जड़ी सेना कहे जात थे। उन्होंने एक स्वामपर अतीके मुर्चाको विनाया है। वे एक सदार छात्र थे। उन्होंने धनवान् जिनके सत्य-सत्य अर्थ देखी-देख छात्रको भी नमस्कार दिया है। उनको गजबे वर्णनात्मक हीरो हुए भी रस-बुद्ध है। जैनक की बावनी जिनके अविनसे सम्बन्धित है। जैन की बुद्ध बज्र' भी जन्मी की कवि है।

चिन्तीतकी रचना

इस बज्रको मुनि का-तिसागरजीने फार्मस बुद्धपति माहित्य तथा सम्बन्धित वैसाविक पत्रमे उपस्थापित है। इसकी एक दूसरी प्रति नमक जैन सम्बन्धित बीकानेरमे मौजूद है। इसका सविष्ट परिचय भी अवरकम्बकी बाह्य-बाह्य सम्बन्धित 'राजस्थानमे हिन्दीके हस्तलिखित सम्बन्धी शीघ्र द्वितीय भाग न प्रकाशित हो चुका है।^२ इसके पत्रपत्रमे पत्रके अनुसार इसका रचनाकाल स १७४८ यावत् बही १२ मानता चाहिए।^३ यह राजा जयसिंहका समय था। इसमें कुल ५६ पद्य हैं।

उद्यमपुरकी रचना

यह 'भारतीय विद्या के वर्ष १ अंक ४ में मुनि जिनविजयजी-द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुकी है।^४ परन्तु इसमें रचना-संख्या नहीं है। इसकी दूसरी प्रति अजमेर जैन सम्बन्धित बीकानेरमे मौजूद है और इसका सविष्ट परिचय 'राजस्थानमे हिन्दीके हस्तलिखित सम्बन्धी शीघ्र द्वितीय भाग'में उप्युक्त है।^५ उत्तर रचना-संख्या पत्रा हुआ है। प्रारम्भमे ही कविने एकविपरीत नामझारेके प्रोत्साहकी राठमन विरिदेव आवैरी समारम्भ मुवावा भोजाना और

१. सर्वस्य सत्तरी समावन नमनिर जात बुर परब बल ।

बीकानेर बज्रक बीकानेर नाम अष्टक मुचननु मुचनना ॥८॥

राजस्थानमे हिन्दीके हस्तलिखित सम्बन्धी शीघ्र द्वितीय भाग पृष्ठ ११।

२. बही पृष्ठ ११।

३. उत्तर जनी कवि समावन आगे मौज नु एताव ।

सब नु लारेनी अष्टक सम्बन्धित नाम अष्टक बरनाम ॥

बहि बरब बागी नरा कि बीकानेर बज्रक बहिरो टीकि ॥५५॥

हिन्दी बहि ५ ११।

४. भारतीय विद्या बहि ५ अंक ५ पृष्ठ २२-२३।

५. राजस्थानमे हि १११ हस्तलिखित सम्बन्धी शीघ्र द्वितीय भाग २, पृ १०-११।

रतनपुरके श्रुमन्तजी ममस्कार किया है। जयपुरके भी सती देवी-देवताओंका स्मरण किया है। इसके बाद महाराजाके दरबार महम मन्दिर बाजार और बाघ-बगीचाका सुन्दर वर्णन है।

बाघनी

इसकी रचना संवत् १७४६ मगसिर सुदी १५ शुक्रवारके दिन बहरबास नाम के गाँवमें हुई थी। इसकी एक प्रति श्री माहटाजीके पास है।^१ इसमें कुल ६४ पद्य हैं। कवि शैलजीने बहरबासमें 'बीमास' किया था। सती मन्थमें इनको रच शाला होना। इसके अन्तिम कुछ परिचयार्थक पद्य देखिए,

‘संवत् मसर प्रवाह मास सुदी पक्ष मगसिर।

तिथि पूनम शुक्रवार, कबी बाघनी सुधिर।

बारगरी से बन्ध कविष्ठ चौसठ कथन गति।

बहरबास बीमास समय तिथि मया सुदी अति।

श्री बीमराज सुरिसवर इयाबन्धन गति प्राप्त मिलि।

सुमसाद प्राप्त अतक मुकनि कहि बोदि पुस्तक मिलि ॥६४॥”

शैल मन्थी गुण-वर्णन

कवि शैलजीने यह रचना ऐतिहासिक शैल काव्य संग्रह^२ पृ. २९ पर प्रकाशित हो चुकी है। छोटी-सी रचनामें प्रवाद है। शैल मन्थीके प्रति अत्यधिक प्रशंसके कारण गुण विनानेका नाम भी प्राप्त हो गया है।

“केहू तो समस्त व्याप ग्रन्थ में दुरस्त देखे

कारसी में रस्त गुस्त पूरे छत्रपदी है।

किस्त कहे तप की प्रसस्त करे योग ध्यान

हस्त के बिछोकरे हूँ सामुद्रिक मती है।

एन के गृहस्त के बल क हूँ भाहक हैं

गुस्त है कका में हस्त करामाव कती है।

खेतसी कहत पट् बसन में लखरवार

जैन में बबर्दस्त ऐसे मस्त अती है ॥”

८० भाऊ (१०वीं-१८वीं शताब्दीका पूर्वार्ध)

एक शैल कवि थे। इनका जन्म पण गोनमें हुआ था। इनके पिताका

१ श्री, १४ १४४-४२।

सतिबायी तप चंदन छिन्नको
 कीरति जतर धुवांसो री ।
 सहजानन्द मीरा इ ओ सु
 ज्ञान समक को प्यारी री ॥
 गुह न बचन बचायी बाबा
 नहिनी छुमाति बचायी री
 मति के भिन्न कुराय तकि के
 अलस हारी गाथो री ॥
 लज्जामो असुत कुं पत्ता बी,
 निज धरि हरप बचायी री ।
 कीर्ति सुरेन्द्र कई इस अम में,
 देकन द्वार जयो ओरी ॥”

पञ्चमास्त चतुर्दशी अष्टाध्यापन

इसकी एक प्रति बयपुरके छेकियेकि जैनमन्दिरमें दृष्टान म १२९ में लिख
 है । इस संग्रहमें १५४ पृष्ठ हैं । विनमें ३ ५ ति १११ तक यह अष्टाध्यापन लिखा
 हुआ है । इस संग्रहका लेखननाम सं १८१५ है ।

ज्ञान-पञ्चमीसी अष्टाध्यापन

यह भी उपयुक्त संग्रहमें ही संक्षिप्त है । यह पृष्ठ ५६७ से ५४५ तक
 संक्षिप्त है । इसका लिखनाम सं १८४ दिया हुआ है । यह किनि बयपुरके
 बन्धनन बैलाक्यमें हुई थी ।

७९ खेतल (वि सं १ ७३ १ ५५)

इन्होंने कविनामें अपना नाम खेता खेतनी खेनाक और कई-कई खेतल
 रखा है । गन्धीसुबीके अनुसार इनका मूल नाम पेटली या किन्तु जब दीक्षा
 ली ता बवालुन्दर की गया । खेतली नामके कई कवि हो गये हैं । विनमें-से एक
 ठो ताह पाखाके चारण कवि थे जो बौधपुरके महाराजा बजबतिहके नाममें
 वे रहते थे । इन्होंने सं १७८ में ‘माया भारण’ नामका द्विजय ग्रन्थमें एक
 पद्य लिखा था । इसमें महामारुतके अठारह पञ्चोक्त चारण ठेरह द्वार कन्होमें

लिखा गया है।^१ ये खेठसी उज्जकोटिके विद्वान् और प्रतिभावान् कवि थे। किन्तु उन्होंने कवितामें अपना नाम सर्वत्र 'सीह' लिखा है। अतः प्रस्तुत खेनसीसे उनका पुनर्करण स्पष्ट ही है। एक दूसरे खेठसी और हुए हैं जो कि जैन होंगे। वे मेवाड़के खेनवाले थे और उन्होंने मेवाड़के बैराट गाँवमें 'मन्गारास' की रचना सं १७१२ में की थी। उन्होंने अपना जो नाम उनके मुख्य कामाक्षीका धिप्य कलत्मा है।^२ खेठखरतरपञ्जीय से और खरतरपञ्जक बाबाय जिनराजसुरि के धिप्य कलत्माके धिप्य थे।^३ उन्होंने प्रसिद्ध बाबाय जिनराजसुरिजीके पास सं १७४१ ख्रिस्तुन बरी ७ रविवारको दीक्षा ली थी।

खेनख कहते खेनवाले थे यह प्रामाणिक रूपसे नहीं कहा जा सकता। किन्तु उनकी मायापर मेवाड़ी खेनख बेलकर स्पष्ट-सा है कि वे मेवाड़की खेनवाले जागे। इसके अतिरिक्त उन्होंने उदयपुर पहरकी एकल लिखी है जो कि मेवाड़की राजधानी थी। खेनख तो उन्होंने चित्तौड़मंडकी भी लिखी है और ऐसा अनुमान होता है कि अती होनेके बाद वे इन दोनों स्थानपर रहे थे। उन्होंने उदयपुरके महाराजा जयसिंह और जयसमूह ठाकुरकी रमनीयताका उल्लेख किया है।

उदयपुरकी महोपर जयसिंह नामक भी महाराजा हुए हैं। एक तो महाराजा जयसिंहके पुत्र थे जिन्होंने संवत् १६५१ से १६७६ तक राज्य किया। दूसरे महाराजा जयसिंहके पुत्र थे। उनका राज्य संवत् १७१५ से १७६७ तक चला जाता है। खेनख दूसरे महाराजा जयसिंहके राज्यमें मौजूद थे। क्योंकि उन्होंने जिस जयसमूह नामके ठाकुरका वर्णन किया है, वह पहले जयसिंहके समयमें नहीं था। उसका निर्माण महाराजा जयसिंहने करवाया था। अतः खेनख का समय जयसिंहकी सत्ताकी मध्याह्न मानना चाहिए। भी जयसिंहकी माहटा ने उनकी उदयपुर गढ़खका निर्माण संवत् १७५७ मगसिर बरी ५ कलत्मा है। मुनि जिनराजसुरिजीने जिस 'उदयपुर एकल' का सम्पादन किया था उसपर रचना संवत् नहीं था किन्तु समय जैन सम्प्रदायकी प्रतिपर रचनाका ८ में पद्यमें

१ राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. ५४२।

२. जैन गुर्जरकविचर, भाग २ पृ. ५४२-४७।

३. ऐतिहासिक, उनके द्वारा रचित बापनीका ३५वीं पद्य।

४. ऐतिहासिक उदयपुर एकल राजस मं. १२-१७ और ७२।

माहलीन किया वर्ष १. जय ४ पृ. ५४१ और ४४२।

रिवा हुमा है ।^१ 'चित्तौड़ राजस' हमके पहले ही बनी थी ।

खेचक बड़ी खेता कहे जाते थे । उन्होंने एक स्थानपर कपोंके मुवाको पित्तमा है । ये एक प्यार साधु थे । उन्होंने भगवान् मिलेन्द्रके साथ-साथ अन्य देवी-देव-ताओंकी भी गमस्कार किया है । इनकी पत्रोंमें वर्णनात्मक होते हुए भी रस-भूषण है । खेचककी भावना मिलेन्द्र मणिमे सम्मन्विता है । जैन बड़ी मुन बचन की उन्होंने की है ।

चित्तौड़की राजस

इस राजसकी मुनि जगन्निवासजीने कावच बुझाती माहित्य राजा सम्मर्कके त्रैमासिक पत्रमें प्रकाशित है । इसकी एक दूसरी प्रति 'अथ जैन राजाध्य' बीकानेरमें मौजूद है । उसका सविष्ट परिचय भी अपरचन्द्रजी माहटा-भाटा सम्मर्कित 'राजस्वान्तर्गम हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज द्वितीय भाग' में प्रकाशित हो चुका है । हमके पत्रपत्रमें पहले अनुसार इसका रचनाकाळ स १७४८ यावत् बड़ी १२ मानता माहित्य ।^२ बड़े राजा अर्थात् राजा समर्थ था । इसमें कुछ ५६ पद्य हैं ।

उदयपुरकी राजस

यह 'भारतीय विद्या' के वर्ष १ अंक ४ में मुनि जगन्निवासजी-भाटा सम्मर्कित होकर प्रकाशित हो चुकी है । परन्तु इसमें रचना-संशय नहीं है । इसकी दूसरी प्रति अथ जैन राजाध्य बीकानेरमें मौजूद है, और उसका सविष्ट परिचय 'राजस्वान्तर्गम हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज द्वितीय भाग' में छप चुका है । उसमें रचना-संशय पद्य हुआ है । प्रारम्भमें ही कविने एतन्मयी नामधारेके पोसावकी रचनामें निरिच्छा भावैरी उभारमय मुवाका बोधनाय और

१ संवत् सठरे उग्रवसन अगधिर मास पुर परव वस्य ।

बीही बज्रक बीजुन नाम कायक मुकनसु मुख काय ॥८॥

राजस्वान्तर्गम हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज द्वितीय भाग, पृष्ठ ११ ।

२ वरी पृष्ठ १३ ।

३ सरदार बनी कवि खेताक भागी मीर मु एनाक ।

बनू मनेरी बहताय सावण माग मनु बरनाक ॥

कवि परव वाली ठेरी कि बीनी बज्रक पदिको ठीकि ॥५५॥

पृष्ठ वरी ५१३ ।

भारतीय विद्या वर्ष १ अंक ४ पृष्ठ ४१-४२ ।

४ राजस्वान्तर्गम हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज, भाग २, पृष्ठ १-२ ।

रतनपुरके इमामभक्तों का समस्कार किया है। उदयपुरके भी समी बेबी-बेबतामाका स्मरण किया है। इसके बाद महाराजाके दरबार महक मन्दिर बाजार और बाघ-बगीचोंका सुन्दर वर्णन है।

बाबनी

इसकी रचना सन् १७४३ मगसिर सुबो १५ बुद्धवारके दिन बहरबास नाम के मौरव हुई थी। इसकी एक प्रति श्री माहटाजीके पास है।^१ हममें कुछ १४ पद्य हैं। कवि खेठल्ले बहरबासमें 'बौमामा' किया था उसी मध्यम इनको रच सका होगा। हमके अन्तिम कुछ परिचयात्मक पद्य देखिए,

'मंथल सखर जवाक भास सुदी पक्ष मगसिर।

विधि पूज्य बुद्धवार, यथा बाबनी सुधिर।

बारहारी हो बन्ध कवित्त बौमठ कयन गति।

बहरबास बौमास समय विनि जया सुली अति।

श्री बौमराज सुरिसवर बुधावस्थम गति तास क्षिति।

सुमसाद तास खेठक बुकवि कवि बौकि पुस्तक किति ॥१७॥^२

शैव यती गुण-वर्णन

कवि खेठल्ले की यह रचना 'ऐतिहासिक शैव काव्य संग्रह' पृ. २६ पर प्रकाशित हो चुकी है। छोटी-सी रचनामें प्रसाह है। शैव यतीके प्रति अत्यधिक भक्तानुभूति के कारण गुण विनाशका नाम भी धरस हो गया है।

"वेहू तो समस्त श्वाभ ग्रन्थ में सुरस्त ऐसे

अरकी में रस्त गुस्त पूजे कलपवी है।

किस्त कौ तप की प्रसस्त करि बोग ध्याव

हस्त के बिछोकरे कु माधुमिक भली है।

पूज के गृहस्थ के वस्त्र के कु माहक हैं

गुस्त है कथा में हस्त कतामात्र छली है।

खेठसी कहत पद दर्शन में लखरवार

शैव में कर्मरस्त ऐसे मस्त 'जती' हैं त

८० भाऊ (१७वीं-१८वीं शताब्दीका पूर्वार्ध)

एक शैव कवि है। इनका जन्म गर्व गोत्रमें हुआ था। इनके पिताका

१ यही, पृष्ठ १४४-४५।

नाम 'मूल' या 'काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के खोज-विचारणमें उनका नाम मन्दिर दिया हुआ है, जो अभीमें अर्धित पुष्पकान्तपूजा की अर्धित प्रशस्तिमें अर्धित प्रमाणित हो आया है। 'मूलकी पुष्प' का स्पष्ट अर्थ है 'मूल' का पुष्प। मूलका पुष्प होनेके लिए एक और 'क' की आवश्यकता थी। अर्धितर 'मूल' के अर्धित-काष्ठका सम्बन्ध है 'काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के सम्पादकोंमें अर्धित 'अर्धित' कहा है। इन विषयमें कोई स्पष्ट केवल अर्धितक 'मूल' नहीं हो गया है। अर्धित 'आदिश्वारका' एक ऐसे मुठकेम निबद्ध है जिसका केवल नाम ही १७९९ है। जब 'मैमिनाथ राय' नामकी रचना और प्राप्त हुई है, वह निबद्ध मुठकेमें लक्षित है, अर्धितक केवल वि. सं. १९९९ में सम्पादित हुआ था। इससे स्पष्ट है कि मूल इनसे पूर्व ही हुए होयें। अर्धितककी खोजमें इनकी बार रचनाओं-का पता लगा है 'आदिश्वारका' 'पार्श्वनाथ का पुष्पकान्त-पूजा' और 'मैमिनाथ राय'। बायो ही मन्दिर सम्बन्धित है।

आदिश्वार-का

इसका दूसरा नाम 'उत्थित का' भी है। अर्धित-अर्धितमें 'उत्थित का' सम्बन्धी विपुल आदिश्वार है। अर्धित यह है तो अर्धित सम्बन्धित किन्तु अर्धित अर्धितान् पार्श्वनाथकी अर्धित ही प्रमाण है। पुष्पकान्तको उत्थित संघ अर्धितके अर्धितान् पार्श्वनाथके अर्धितके और अर्धित अर्धितका अर्धित ही है। अर्धितकी अर्धितान् पुष्पकान्तके सब अर्धितमें उत्थित करना अर्धित अर्धित और उत्थित पुष्पकान्तके लिए अर्धितमें एक अर्धित जैन मन्दिरका निर्माण करवाया। 'उत्थित' में उत्थित-पूजा ही अर्धित है।

मूलकी 'आदिश्वार का' अर्धितक अर्धित हुई। अर्धितके अर्धितकान्तके मन्दिरके मुठका नं. ८७ और अर्धित मन्दिरके मुठका नं. ९९ में अर्धित एक-एक प्रति निबद्ध है। अर्धितकान्तकी मन्दिरके ९ मुठकोंमें और अर्धितके तीन मुठकोंमें पुष्पकान्त प्रतिमा अर्धित हुई है। इनमें अर्धितकान्तकी मन्दिरका मुठका नं. १५ सबसे अर्धित अर्धित है। अर्धित १७५९ में अर्धित गया था। और अर्धित प्रतिमा इनके अर्धित है। मुठका नं. १७९ में अर्धित अर्धित सबसे अर्धित अर्धित अर्धित है अर्धित १७५४।

अर्धितमें अर्धित तीर्थकरोंकी अर्धित अर्धित अर्धित की अर्धित है

“सारन् लप्यो सखा मन धरी आ प्रसाद कवित्त छत्रो
मूर्य सै पंक्ति पद् होई, ता कारणी सेवै मय कोई,
कह दरमण सुपी मेहन साण ॥
बरह गलगात्र मोली हार गलै पाटो भी सौजन सरार
अना कुंइल हवक बहो सीस मोगी मोल्या अछमके ॥
बाल मेबर दण सुण करै हंस चढ़ी कर चीन कोह
सुमरत बुर्बा महाअक देह सारद नचयी कर बहु भाई ॥

पार्श्वनाथ-कथा

यह भी एक पद्य कृत काव्य है। इसमें भगवान् पार्श्वनाथका जीवन-चरित्र दिया हुआ है। यह कथपुराणे बडे पन्थिरके गुटका नं० १९५ में निबद्ध है।

पुण्यवन्त-पूजा

इस पुजाका उल्लेख ‘कासो नावरी प्रचारिणी पत्रिका’ के पन्नाहमें त्रैमासिक विवरणके ‘Appendix II’ में पृष्ठ ८९ पर हुआ है। सम्पादकोंको इसकी प्रति किरावडी बामराके जैन मन्थिरके प्राप्त हुई थी। इसमें ६७२ अनुष्टुप् छन्द हैं। जैनका मोई तीर्थंकर पुण्यवन्तकी पूजा की गयी है। इसका आदि और अन्त देखिए

आदि

अगर अगर पूर जन्मन देवा भविजन लाप ।
देखे सुर पग घामि श्रीनिग दाय मेक सुदराय ॥
पूर्व नाकिंकर दाम पिठा एसी अक है आदि ।
अङ्गदूष जिन चरन जामो मोपक कडक पादि ॥”

अन्त

अजर अजर मोड मिश्र मर्षी लो जिनदेव शमा की जयी ।
राग दीकयी रच्यो पुराव जीडी बुनि में क्रियो बखान ॥
हीन भयिक आ अछिस होप छाहि लंघारी गुनिपर भापे ।
उत्तम नगर निहुन पुर जानि लही कया की भयो लपान ॥

नमिनाथरास

यह एक उल्लाप कृति है। इसमें १५५ पद्य हैं। इसमें चोपाई छन्दमें लिखे गये हैं। इस रास का नमिनाथकी वैराग्य भेजेवाली बटनानि सम्बन्ध है।

समुद्रविषयक द्वारपर शाराग पहुँची । दुग्धा ने नेमीश्वर कृष्णने छोटे बार् ।
 किन्तु द्वारपर देवे जर्मन ओर्षी । विज्ञाप करते देव ने बीजा केकर विरवारपर
 उप करने बड़े मये । ओषोको नाटवर ओम्पपदाव बनाया बा । नेमीश्वरके
 हृदयमें बहया जर्मन । संसारकी नि-मारणा स्पष्ट साक्षर लड़ी । बिना बिबाह
 जिय बड़े मये । किन्तु रात्रीमगी बया करे । इसका विरवम्पायी बिबाह नरव
 उठा । उसकी नेमीनी दुग्धा भी । यह रास उमीकी केकर बड़ा है ।

बापन बा रही है । दुग्धाकी समुद्रका बया टिबाना है । जहाँसे उसने
 सुना है कि नेमीश्वरको गृधर बचिब प्रिय है । राजगुमीको गृधर-राजमोंकी
 बनी नहीं थी । समने द्वारवाच हीरो-जबे बचन पड़न बड़ेमें मोर्षिकोंकी मन्दा
 बारण की नेमीको पूजोसे सवासा । कलाटपर ठिकठ नेमीमें राजक और मुक्तने
 पान मुपोविठ हो कडा । सजी राजकुमारी बिय है,

‘इन बन्धनक नेमिकुमार गुण राजमगी किबो नृपार ।
 कर कंकण बजु हीरा बरुको बहिरि द्वार गज मोरी मन्वी ॥
 दुग्धा-सीम बड़े बजुताव ठिकठु ठिकठु ब बरुमें बाव ।
 भवन्ध बन्धनक मुक्ति संवील, बरुि बडाहको पुंजुम रेक ॥
 पदिरि पदोरे बसिब नीर बरुिं सिंगूरह सिद्धिको लीव ।
 बरुिबन्ध बरुकी सपन्धर, सव बरु सो होइ पसार ॥”

जब राजगुमीने सुना कि नेमीश्वर बीजा केकर उप करने बड़े बड़े हैं तो
 मुन्निम होकर फिर पड़ी । समने दुग्धा बिबाह न किया । उस पुत्रने बिबाहमें
 बीजन बिना दिया जो न कभी बाबा न जानैबाका बा । इस क्रममें बिबाहके
 बहिरिब नीररसने छुटपुट बुझ है । ने मूक प्रसन्नमें जलसे बड़े हैं । कथानक
 नयन है । बचान्तर बचाएँ मुट्ट बचानी सहायकके अपमें प्रस्तुत हुई हैं । रसमें
 प्रवाह है । बारणमें मरम्पनीकी बन्धना की पड़ी है ।

“सरस्वती माता बुद्धिदाता करहु पुत्रक केई ।
 उर पदिरि हाक करि सिपाक ईस बड़ी बर ॥
 मेकल मुर-नर नवहि मुनिवर लही दरसन छोदि ।
 कवि जवज भाव करि पमाव बुद्धि कक मोदि ॥”

यह रचना जैनधर्मपर पाटीवी जयपरके मुद्रा नं १५ में पृ १२९ के
 १३३ पर बचिब है ।

और १८६८ में लिखी गयी प्रतियाका सन्देश जैन गुर्जरकविओँ में हुआ है।^१
इसका प्रारम्भिक सहीया इस भाँति है,

प्रथमि चरणपुरा पास जिनराज अ के
विचिन के चरण है चरण है भास के ।
विह विकसोहि प्यास परि भत हैसता का
सहेति संपूरत है मनोरम दास क ॥
जान राग दाता गुन कहे अपगारी भेदे,
दिवकर कैय हीरे जाल चरकास क ।
इसके प्रमाण कवि राज महा मुलकाज
सर्वज नवानव है जाचना-विहास क ॥१॥

चेतन-बत्तीसी

इसमें ३२ पद्य हैं। इसकी रचना सं १७३९ में हुई थी। इसकी एक प्रति मुनि डीरानगने में १७४१ आसोज वही ८ को लिखी थी जो माह्दय संपद्में मौजूद है। एक दूसरी प्रति और है जो सं १८६८ में लिखी गयी थी। यहाँ अमावसिष्ठ चतुर्थी केनालेका अमास दिया गया है—

‘चेतन चत रे अचमर मठ कूँडे सींग मुने लूँ साची ।

गाँविक दुई आ दास यजाची ली करसि बाबो सहु काची ॥१॥

उपदृष्ट बत्तीसी

इसमें भी ३२ पद्य हैं। आत्माको सम्बोधन कर उसका विद्वान् पदमे निरत करनेकी बात कही गयी है। जो पद्य इस प्रकार हैं

‘आचमराम मवाले लूँ छडे चरम मुवावा

किमके माई किमके माई, किसके भीक लुगाई जी

हूँ न किमा वा का वही तेरा आयो जाय महाई ॥१॥

इस कावा बाबा का आहा मुकून कमाई बीजे जी

राज कहे अपदेस कर्त्तवी मरुगुल मीन मुर्बाजे जी ॥२॥

१ जैन गुर्जरकविओँ पत्र २ भाग ३ पृ १५४६ ।

२ मुद्रण २४ अमीरम सरिना पंडित चरक पोती

मुद्रणमें मुद्रणाले मचन बीने राज कवीजी ॥३२॥

केन्द्र चरण। जैन गुर्जरकविओँ पत्र २, भाग ३, पृष्ठ १९२ ।

३ वही पृष्ठ १२ ।

४ वही पृष्ठ वही ।

देशान्तरी छन्द

इसमें १९ पद्य हैं। इसमें मगवान् पार्वनाथकी मन्त्रिका उल्लेख है। इसकी एक प्रतिको पाछगपुरमें श्री तेजविजय मन्त्रिने सं १९ ई पौष सुदी ११ को लिखा था। इसमें मिश्रमी छन्दोंका प्रयोग किया गया है। प्रारम्भमें ही देवी नरसिन्हीकी स्तुति है।

सुवचन सुषो सारदा भवा करो मुझ माध
 यो सुप्रसन्न सुवचनतन्त्रो तुमणा य हाव काय ॥
 कालीदास सरिता किपा रंक यकि कविराज
 मंदिर कार माता मुने निज सुष्ठ जानी निवाज ॥

अन्य रचनाएँ

उपरोक्त कृतियोंके अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाएँ भी उपलब्ध हैं। अमर्य करवीरजी बीरई 'अमरकुमार राम' 'बिक्रमाधित्यर्षचरणचौपई' 'रत्नहास चौपई' 'कविता बावनी' 'छन्द्य बावनी' मरत बाहुबली मिहल छन्द बीका मेर बीबीमठ-स्तवन सनकनयन और स्तवनारिका नाम की अमरचन्द्री गद्यदान लिखा है।

अठारहवीं शताब्दीका दूसरा पाद ही उनके साहित्यका निर्माणकाल माना जा सकता है। वे इस शताब्दीके महत्त्वपूर्ण साहित्यकार थे।

८२ विनोदीलाल (वि सं १०५)

विनोदीलाल साहिबपुरके रहनेवाले थे। इसकी साहजिकीपुर भी कहते हैं। बाबर इस नगरकी स्थापना बाबराह साहजिकीके नामपर हुई थी। यह मयाके दिनारेका बना हुआ एक रमणीय स्थान था। इसकी प्रशंसा करते हुए कविने लिखा है 'कोयल बैराके मध्यमें साहिबपुर नामका एक नगर है। यह मयाके दिनारे बना हुआ अपनी छटाएँ अनुपम है। इसकी तुलना अन्य कोई नगर नहीं कर सकता। इसमें बड़े-बड़े महुआवन और बावक रहते हैं। सभी अपने-अपने घरमें सोन हैं। बावकोंका भीन जममें बूझ भयान है। बड़ी भवमान् मिनेजके तीन चित्र-विचित्र वेश्यालय हैं जिनमें विविध प्रकारके घमघसान होना ही रहता है। इस नगरमें पणियों और कणियोंका नरवधिक बाहर-मम्मान होना

सवैया पावनी

इसमें ५८ सवैया हैं। इसकी रचना संवत् १७३८ मगसिर सुदी ६ को हुई थी। इसकी एक प्रति संवत् १७३८ मगसिर शुक्ला ६ की ही तिथी हुई मौजूद है, उसका उल्लेख श्री मोहनलाल कुशीनम्बरजी देसाईन किया है।^१

नेमि-राजुछ पारहमासा

एक ग्रीह रचना है। सवैयाम लिखी गयी है। कुल १४ पद्य हैं। रचना मन्वानके प्रति शम्भुस्वामिपयक रनिका समर्पण करती है। इसकी एक प्रति अमय शैव पन्थास्य बीकानेरमें मौजूद है। इसके वा सवैये देखिए जो माया भाव और तीखी सभी दृष्टियासे सत्तम बड़े जा सकते हैं

‘उमडी बिकर बबघोर छटा चिहुँ औरनि मोरनि छोर मचाया।

बमके दिवि हामिनि यामिनि कुंभय मामिनि कुं विष को संग भायी।

किब जातक पीठ हीं पीठ कई मई राज हरी सुंद बेह छिपायो।

पतिबी पै न पाई हीं प्रीतम की बर्छी जाबज अपो पै नेम न जाया व

ज्ञान के सिंधु अगाध महाकवि मेसर छाकर गौर निचासो।

ईं तु महाकवि या दिन राज स मरा निसाकर का लीं बजासो।

पाठ कई कुछ सुं बह बीगनि मरी कहु करिबीं अनि हांसो।

आगनी कुछ सुं राज कई यह राजक नमि का पारह मासो ११४४

मावना बिल्लास

इसकी रचना संवत् १७२७ पीप बरी १ को हुई थी। इसमें शैवधर्म-सम्बन्धी पारह मावनाका आचर्यक ईश्वर बर्चन हुआ है। सवैयाका महापद भी प्रयोग किया गया है। यह रचना भुवरवासके ‘राजा राजा कनपति’से भी अधिक टीका है।

इसकी एक प्रति बीकानेरके अद्वय शैव पन्थास्यमें मौजूद है। इसकी मुद्रि हर्षतनुजने नापासरमें ही १७४१ आसीन १४ को किया जा।^२ संवत् १८५४

१. नेमि-राजुछ पारह ५, भाग ३ इ १५२२ २।

२. हीन मुपल मुनि पाठि बरसि जा दिन कनो पास।

ठा दिन बीनी राज कवि बह मावना बिल्लास ॥५१॥

भाक्ता निपास, राजजानमे दिग्दर्शि हलपिनि मन्त्रीही श्रेय मय ४
६० १५२२।

३. बरी इक १५२२।

और १८९८ में किसी पयो प्रतियोका सम्बन्ध 'दीन गुम्बरविमो'म हुआ है।
इसका प्रारम्भिक स्वीया इस गानि है,

'प्रणमि शरणधुम पास विमलाम नु के
विधिन के श्रम है पूरण है भास है।
दिह विक्रमोसि ध्यान करि अत ऐवता का
सर्वैसै संपुष्ट है मनारथ दास क॥
मान हम दाता गुह बड़े उबगारी मेरे
दिवकर दीन कीरे जाय परकास क।
इसक प्रसाद कवि राज मदा सुलकाज
सर्वाय बनावत है पावना-विकास क॥१॥

बेगन-बत्तीसी

इसमें ३२ पद्य हैं। इसकी रचना स. १७३९ म हुई थी।^१ इनके एक प्रति मुनि डीरानम्बे स. १७४९ आसीन थी ८ की किसी की जो बाह्य संप्रभमें मौजूद है। एक दूसरी प्रति और है जो स. १८९८ में किसी पयो की।^२ यहाँ प्रमाणित बेगनकी चेष्टानेका प्रयास किया गया है—

'बटन बट रे अवसर मठ बूक सीन मुने लू साची।
गायिक हुई जो दाव गमाकी ली करसि वाली सहु काची ॥१॥

उपहृष्ट बत्तीसी

इसमें भी ३२ पद्य हैं। आत्माको सम्बाधन कर उसको विह्वल बन्ध विरत करनेकी बात कही गयी है। जो पद्य इस प्रकार है

'जातमराम मयाले लू अठ सरम सुलभा
किमके माई किमके माई, किमके लोक सुगाई की
तू ब किमी ना का नहीं तेरा अयो जाय सदाई ॥१॥
इस काथा बाधा का कादा सुहृण कमाई कीये की
राज कई उबईस बत्तीसी मरुगुह नील सुर्बाजे की ॥२॥

१ दीन गुम्बरविमो, खण्ड २, पाग ३, पृ. १२४६।

२ मुद्रक ठट्ट अमीरम सरिखा पंडित मबले बीसी

सगरामे मुसलामे संवत् बाले राज कपीयी ॥३२॥

काल बत्तीसी। दीन गुम्बरविमो खण्ड २, पाग ३, पृ. १२४६।

३ बी. इ. १९२६।

ना इ. १९२६।

है । उस समय बड़ा बाधसाह औरपजेववा राज्य था । बजिने उसकी अन्धविद्व प्रार्थना की है ।^१ विनोदीशास्त्र औरपजेवके दरबार कवि नहीं थे बड़ मुनिरिचन है । जग । उनके द्वारा की गयी प्रार्थना निःस्वाद्य ही बनी जायगी । यादर उन्होंने प्रेमा देखा मैना ही लिखा । व जाने गया औरपजेवके छासन-काय म हुए जैन-हिन्दीके सभी कविबोले मुक्त-बन्ध और एव स्वरसे उसकी प्रार्थना की है ।^२ मक्ता है कि इतिहासके नये विज्ञानवाले हमसे कुछ भौतिक सामग्री उपलब्ध हो गये । विनोदीशास्त्र कुछ दिनोंके लिए हिन्दीमें भी जाकर रहेंगे । बहावर ही हमने 'मक्तामर माया-बन्ध' और 'लम्पलम्प बीमुरी की रचना की । सब तो यह है कि धरतर मुक्तव जैन बन्धों कलि अंधारी और ही बन्धित था । छात्रगणपुरमें भी वे हमो अपने प्रशिक्ष थे । धरतर जग अन्धकार बंध और धर्म गीतमें हुआ था ।^३

इनके विषयमें मिथवाबुद्धोंने लिखा है । वे हीन जेनीके थे करीबी नरेणके बर्ण रहने थे और देवीशान इनके आधिष्ठ थे । विनोदीशास्त्रके अनेक स्वामातर

१ गीतक वेद्य मध्य युग ज्ञान । साहिबपुर नगर प्रचल ॥
गंवागीर बने युग ठीर । पटनर नाहीं ठासु पर और ॥
बस महाजय बहुविधि लोच । अपने धर्म कीन लंघोच ॥
आवक भोज बने कई बने । जैन धर्म रग जन आपने ॥
वैष्णव्य जिनवर के तीन । बिच विविध रुचि प्रवीन ॥
धर्म ध्यान सब विधि सो करे । जती जगो को जनि आदरे ॥
कमरी नाम्नी प्रचारिणी पवित्राष्ट वेदार्थिक वारदाँ विकर, परिशिष्ट १५
१२७५ मन्त्रात् करि, वातायनीवाली गति ।

२ औरप साहिबकी की राज । वातसाह सब हिट बिरताय ॥
मुन विचन तक जैन बरेन । हिन्दीपति सब तेज रिनेन ॥
अपने म्म में सम्पन्न बने । जीक धिरोमजि बिज रिम बने ॥
दीप दीप है जागी ज्ञान । रहे साह जब संजा मान ॥
साहिबहा के कर परिनेन । दिन-दिन तेज बही ज्यो जग ॥
बनो बजटा जगम जड़ील । छिद्र बकी जब जैन होठ ॥
बरी ।

३ ते पुर काय विनोदी रहे । जैन धर्म की बर्ण बही ।
अन्धकाराज जेनी युग बंध । धर्म योग प्रवटधी सराईस ॥
बरी ।

४ विमलबुद्ध विनोद ज्ञान । सन्ध १३ १२, ५ २२५ ।

मनका हीन और चीन वक्ता है। किन्तु हमका जर्ण यह नहीं है कि न वास्तवमें वैसे थे। उस समय मयबानूके समक्ष अपनी लज्जाके प्रदर्शनका यह ही डंग था। महात्मा तुल्सीदासने भी ऐसा ही किया है।

विनायीकाय मयबानू नेमीश्वरक परम भक्त थे। उनका अधिकार साहित्य मित्तावक करघामें ही समर्पित हुआ है। विवाह-प्रारम्भ कीटते नेमीश्वर और विवाह करती रामुन उन्हें बहुत ही पसन्द है। रामुनके बागहमासामें श्रृंगार और भक्तिका समन्वय हुआ है।

रामुन मयवद्विषयक अनुपमका सरस निरर्पण है। उसमें वैसे हीन और नीचवर्गकी संशोधा मया अप्रतिम है। वैयक नेमीश्वर हो नहीं अन्य तीव्रकरोंकी भक्तिमें भी विनोदीसाक्ष्य बहुत कुछ दिखा है। अनुविपति जिन स्वयं सदैव इतका दुष्टाहै। इसमें अतिरिक्त भीका कर्म 'प्रमाण अवमाल' 'फूलमाक पञ्चोत्ती' और 'रत्नमाक' सरसभक्तिके प्रतीक हैं। मयबानू मयभवेवकी भक्तिके कारण हो उन्होंने 'माया भक्त्यामर की रचना की थी। वह संस्कृतके प्रसिद्ध स्तौन 'भक्त्यामर की छायापर बना है। किन्तु उसकी माया-दीप्ती मौलिक है। मूक कविके मायामें श्रावण नहीं आ पाया है। मय ही उसकी विशेषता है। 'मीपाक विनोद' भी ऐसा ही एक अनुवाद है। विनायीकायका अगमते ही भक्त हृदय मिला था। उनकी कृतिमामें उममताका भाव सर्वत्र पाया जाता है। प्रसादगुण उनकी विशेषता है।

नेमि-रामुन बागहमासा

यह बहुत पुराने ही बागहमासा-मंथन में प्रकाशित हो चुका है। साहित्य में बागहमासीका प्रचलन बहुत पुराना है। उसका प्रारम्भ और-भीठमि मानना चाहिए। भारतके प्रत्येक भागकी जन-मायामें बागहमासे प्रचलित है। बाव भी उसके विरत मुपते हैं। मानव-मन किसी भी देश और जातका हा सर्वत्र एक रहा है। मनुष्यरे इस सामान्य मनका लेकर कवनेवाला साहित्य ही बमर ही बना अविच्छिन्न तो नामके कोहोंको न लहहर मर गया। बागहमासे सभी बमर साहित्यका प्रतिनिधित्व करता है।

हिन्दीक अन्य बागहमासीमें विरहिणीका अपना दुःख तो दिखाया गया है किन्तु दुःखक पतिने दुःखका उमे प्यास ही नहीं है आपनीकी मायमनीका आवाज अब रस्मि भी नहीं आता। हा वह पतिने बुझाना चाहती है किन्तु वह यह नहीं

छोबनी कि ऐसे आयेय प्रबानी न तथा बड़ा हास्य होवा । बिगोरीनामकी नादिका
को पतिका अधिक ध्यान है अन्ता नहीं पमुबारी करम बघाको देखकर नमैतबर
बिबाह-हारसे बाधन लीन बये । बिन्नु रामकुम्मे लम्हीको अपमा पनि मान्य ।
बन उनके वाम नयी और बड़ा कि हे पिय । भावनमें धन मन को । अब बनचोर
पटाएँ बिरेनो मोर घोर मचार्येमे जोरित कुनकवी दामिनी हमकवी और पुर
बाईरे छोटे बरमे ता गुम्हारा तन-नेम अथ भाजन नह हो बाधवा

विवा साधन में प्रवर्द्ध नहीं अब और बड़ा सुर आवेगी ।

बहु घोर से मोर दु घोर करें बन कफिर कुनक सुनलैगी ॥

पिय रैन अँचेरी में लूने नहीं कतु दामन हमक डरावगी ।

पुरवाई की झोंक सहमे नहीं उन में तब तेज कुनकैगी ॥४४॥

नैमिनाथको यह मामूम था कि साधनकी प्रवृत्ति उनकी प्रभावशाली हो
सकती बिना कि प्रवक्त बमपत्र स्वर्ग है जो प्रत्येकके लिए ईश्वरार्थ करते
जाता है । साधनकी प्रवृत्ति नैमिनाथके साधन और भीरताका संचार करती है,

“वा जिन को कोई न राजनहार क्यो किमये सरनामय बने ।

कमल बनी सबसों जग में निह सी विधिचायर देख रँगे ॥

इह मरेंद्र चरेंद्र सदै जग आन पर तब नाथ बने ॥

बापें कदा हर साधन का सुन राहुक पित को बों समुजैव ॥५४॥

पीपके माहमें बना आका पड़ता है । लीकमें भी शीन नहीं जानी । उठ
समन रामकुम्मे अपनी बिना नहीं वह पितकी बात ही मोचती है कि अब उन्हें
छोठ जगेवा हो क्या ओमें ? पत्तोली ‘मुचनी’ ती पर्वान्त न होवी । इस लघुमें
ही रामदेव अपनी सेवा केवर आक्रमण करता है, तबका घरीर कोमल है बँधे
मुद्रबन करेमे । भारतीय गारीकी पतिके मुन-नु कनी चिन्तामें जो साधनका है

पिय पीप में जाहो रैगी कवी विन सोड़ के लीन कम नर हो ।

बड़ा भोड़ोमे शीन कने अचही किर्सी पलन की मुचवा नर हो ॥

गुम्हरा प्रभु की तन कोमक है कैल काम की पीनन सो कर हा ।

अब आवेगी शीन चरेंद्र सबै तब हैकन हो तिनकी नर हो ॥५४॥

बिन्नु मेघीस्वरका विचार है कि ठण्डी हवाके जल्ले इन घरीरका कुछ भी
नहीं बिना नकते । मरीरका विवाह तो विविध नमोंके आत्मनसे होता है राम
डेपमे होता है, इन्द्रियोंकी बसनामे होता है और ‘पर’ को ‘स्व’ माननसे होता
है । जिनमे स्व का विचार नर धिया है, वह बनमें रहे या नरमें दूध नहीं
मचना । हम माँगि पीपकी नहीं मेघीस्वरको नहीं लगा पागी और न रामदेव ही
आक्रमण नर जाता है

प्राप्त होय जहाँ पर सोमित शोच करी अरु पौन झर्कर ।

इतिथि पोष पसार जहाँ तहाँ राग राप तैं माघो हि आर ॥

भाठ महामन्द माते रहैं पर प्रभु की वरु जहाँ चित रौर ।

को पर आप बिचार न राखु क ठो गुरु आपनै आपही वारि ॥१५॥

जठका माह कानेपर बहुत अधिक जरमी पड़ेगी। मू. कमेगी और बछ्छी बूपमें बहुत-बहुत पर्यंत भी बह जायेंगे। उस समय तो पत्नी और पतंगे तक बपन-मपन करमें ही रहना पसन्द करेंगे। भूख और व्याससे छटिर मुक्त जायेगा। ऐसी वृत्तिमें पतिक्रम महाबल कैये निम्न पायेगा। राजकुल बाहरी है कि जठका पति इन वृत्तियों में न पड़े। जठका मन प्रियके सुखमें लगेगा है। उसे कानकी व्यास नहीं पतिके हितकी चिन्ता है।

घर्म की बात तो सौची है बाब दे जेठ में जैस घर्म रहैगा ।

छह चक्रे सरचाग कमान ज्यों आम पर गिरमेक बहगो ।

पत्नी पतंग सबै हर है अपने घर को सब काँई चहैगा ।

भूत-भूबा अति बृह बई लख मूसा महाबल क्यों बिचहैगा ॥२॥

जठकी ऐसी भीष्म बोधवृत्तिसे मनीषकरकी विधि मान भी मन नहीं है। उनको मान्य है कि नर-मन-पुर्चम है और जठमें भी व्यापक-योगि। जगः अरु वृत्तवत्तन और सोलह भावनामावाका जिन-अर्थ वाक लेना चाहिये। उचीस इन बीषना वृत्त्याम है। सकठा है। जेठ नेवीरवरके मनको मारी अविशु कोनराको मानको बपाठा है।

हुकूम है नर का मन शाहक हुकूम आजक बाबि हमारी ।

हुकूम घर्म ठ है ब्रह्मचरज हुकूम पौडस आजका भारी ।

हुकूम भी जिनराज को मारग हुकूम है शिखमुन्दर नारी ।

मह सख हुकूम आज लखे अब हुकूम है सज्जाम की सिधारा ॥३॥

विद्युते दु खम आनन्दशायक वस्तुर्पेयी दु ख केनेगामी ही जानी है। वाजिक-वा. महीना है। सब विजयी कर सजा रही है। भाति योगिनि बिचारी रचना कर मपन-नीत नारी है। विषकी बुलाकर नये-नये गृमार करता है। और बीबाकी के बीषक प्रतापे हुए तो बीषे घनका दृष ही पूरा पड़ता है। विष्णु इन सबको देखकर रानुबवा नी तरसकर रह जाता है। सबक पनि नर मा मय विष्णु रानुबवा नहीं आया। फिर भी वह विचारी मारि जोगी बहवर मुरनी नहीं और न जान निम्न छार देनगी है। केनिप

‘विष कालिक में मन कैय रहे अब मामिनि मान मज्जायेगी ।

शिव विष विविध मुरंग सबै नर हा नर मंगक मारेंगी ।

पिय नूतन बारी बिगार कि बरषनी पिय डेर तुलसीनी ।

पिय बरषिहार बरे बिचरा बिचरा तुमरा तरसावेगी ॥१०॥

यहाँ पियको तरसावेकी बोझमें रामकुम्हार तरसना ही ध्वनित हो रहा है । किन्तु नैमिशाचक कानिकके इस राज-शृंगारसे बिचित्र होनेवाले बीच नहीं है । शृंगारने आत्मा और शरीरके भेदको समझ लिया है । यह प्रसन्नता शरीरसे सम्बन्धित है आत्मासे नहीं । ककिचारमें वह ही बूझता है जो बड़ और नेनक मेर को नहीं समझता । जैसे इस बूझको पी केना है और बकको छोड़ देता है जैसे ही बड़ बड़ बीच समझेगा ठह कही वह परमारमारप आत्माको समझ सकता ।

‘तो बिचरा तरस सुन रामकुम्हार को तन को कपनी कर बारी ।

पुर्णक मिला है मिला सबै तन छेदि मनोरथ भाव समझी ।

बूझेगा सोई ककिचार में बड़ नेनक को भी एक प्रसन्न ।

इंस सिंघे पय मिला करै काक सो परमात्म आत्म बारी ॥११॥

नैमि-क्याह

यह एक छोटा-सा काव्य-काव्य है । इसमें नैमिशाचकके बिवाहकी कथा है । नैमिशाचकके पिताका नाम समुद्रविजय और माँका नाम बिचरीबी या । इनका बान शीराष्ट्रान्तर्गत हारावनीमें हुआ था । यह पादबर्षी राजकुमार थे । कुम्हार और बरषा इन्हींके बंधन बड़े भाई थे । नैमिकुमार बचपनसे ही अविनाश्या और बर्षाभा थे । इनका विवाह मृगाचकके राजा कपिलकी कन्या रामकुम्हारके साथ निश्चित हुआ । बाराह पहुँची । मयवलीके उपरान्त टीकाके लिए बारी समझ बनेक पशुओंको बँधे और चीत्कार करते बैठा । उस कल्प-कल्पको सुनकर इनका वैराग्य बढ़तल हुआ और वे गुरुत ही बीरवानी बीसा के विरिन्धारपर उप करने लगे बने । मयवलीउ एक बने बहनाइया बान्त ही पयी । माँ-बापने रामकुम्हारको बहुत समझाया किन्तु उसने जन्मको पति पुनर्मेसे स्पष्ट इनकार कर दिया । वह भी नैमीस्वरकी ही अनुबान्तिनी बनी ।

बिनेसीकाक चित्र उपस्थित करनेमें अनुपम थे । दुकड़ा बीरीरवर बिवाहके लिए जा रहे हैं । तिरपर मीर रखा है, और हाथोंम बचनही छोटी कठकर बाँध दी बनी है । जगोमें कुम्हार लकड़ रहे हैं और भाकपर रोकी बिराममान है । बजरबजरर पडे मोठिओके हारकी ती धीना ही लारी है । देखिए,

मीर बरो मिर दुकड़ के कर कंकण चोच धई कस बारी ।

हुँदक कावज मे लकड़के अति भाक में काक बिरामान रोरी ।

१ इनकी रचनास्थिति यही केन विद्याल मन्त्र पारा में भीतर है ।

मरिच की कड़ु सोमित है छवि हैलि कजें बलिता सय गीरी ।

काक बिमोदी के साहिब क मुल बेसन की बुनिया उठ गीरी ॥

एना प्रदीत होता है जैसे बिमोदीक साहबको देखनेके लिए बुनिया मात्र भी उठकर खड़ी बनी या रही है । उठ खोरी में देखनेकी ऐसी व्याकुलता है जो देखते ही बनती है ।

पटुबोके कटव-कटवका मुनकर मेमिकुमार बहास हो गये । उनके हृदयमें जोय भावका कल्याण करनेकी भावना उचित हुई । किन्तु इसके लिए बसोम आरिष्यक बलकी आवश्यकता थी । उसे सम्पन्न किय बिना वृत्तोंका कल्याण कैसे हो सकता है । एतन्व ही वे गिरिनारपर उप करन गये । उस समयका दृश्य देखिए,

‘मैम उदास अय जब मे कर जाइ क सिद्ध का नाम लिखा है ।

अम्बर भूपख डार द्विष सिर और उदार के डार द्विषो है ॥

कप बरी मुनि का कचही तबही चढ़ि के गिरिनारि गयो है ।

काक बिमोदी के साहिब ने तहाँ पाँच महावत भोग कयो है ॥

बरासीननाथी जहरके आते ही उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान् सिद्धको वन्द्यकार किया । बस मांगो उनकी दुपासे ही वह उत्तम भाव उत्पन्न हुआ हो । वस्त्राभूषण उतार फेंके और वह मीर भी बरासायी हो गया जो विवाहका प्रतीक था । मुनिका कप धारण कर पाँच महावत के किये ।

‘वर द्वारसे ही तों जोठ गया मोहरें तों नहीं पकन पायीं अत रात्रिकका मन्त्र पठि चुननेका अधिकार है । — माता पिताके ऐसा कहते ही रात्रिककी भी मुचित हो गयी । उसने फन्कारते हुए कहा

‘कहा न बात समझाऊ कही तुम जानत हो वह बात मको है ।

गाकिबां कावुत ही हमकी सुनी बात मकी तुम जान बकी है ॥

मैं सबकी तुम तुझ गिनी तुम जानत बा वह बात रकी है ।

बा मय मैं पति मेमप्रभू वह काक बिमोदी के नाप बका है ॥

माँ-बापको फन्कारना कोई अच्छी बात नहीं है । वे जो कुछ भी कह रहे थे अपनी समझसे तो भलेकी ही कह रहे थे । किन्तु रात्रिक भी गया करे उल्टे कुछ था कि उसीके माँ-बाप उसे जानकर भी न जान पायें । उन्हें अपनी पुत्रीके धाधारण मोह-अव्य सुझका ही व्याग था । किन्तु रात्रिक तो विवाहको पवित्र बन्धन माना था भोवका सहारा नहीं । मनमें एक बार बिले पति मान किया भीरव-मर वह ही रहैया । पति कुछ भी करे । नारीके इस पावन आर्यपर

आपाठ करनेवाला बार्ह या क्या न हो। रामक लरी-कोटी मुनाये बिना नहीं रह सकती। उसमें माँ-बापका ध्यान भी मुना देना होता है। पण्डित रामचन्द्र मुनयों हमीको बड़ बर्मति किए छाते बमको ग्यातावर कर देनेकी बात कहती है।^१ यह वहाँ पूर्ण ज्ञान बटिन होती है।

रामक-यन्त्रासी

अनन्तर अश्वाराम इसकी प्रतियाँ मौजूद हैं। बीरानगरक अमर जैन पुस्तकालय जो प्रति है वह बि सं १७८२ केतिर बरी ९ की किमी हुई है। बनपुरके बबोबन्दरीके विगम्बर जैन मन्दिरके मुद्रका नम्बर १६१ न हमनी जो प्रति निबड है, वह बि सं १७९३ की किमी हुई है। बनपुरक ही ठोकिमीके विगम्बर जैन मन्दिरमें केवल नम्बर १९९ में बरी हुई 'रामक-यन्त्रासी' बि सं १७९९ की किमी हुई है। बी मन्दिर की कृपा सेठ दिल्लीके धारमगम्हारक केहन नं ३ ४में इसकी एक प्रति मौजूद है। इस काव्यमें मेदिनाथ और रामकका आचमन बिब अंकित है।

मेमसा रेपठा

इसकी प्रति ओरानरके अमर जैन पुस्तकालयमें मौजूद है।^२ इसको माप-पर उर्दू-अरबीका अधिक प्रभाव है। फरजन्द बिलम्बरसीन कुरमावा लुनरिब बादि लम्बोरा प्रयोग हुआ है। इसमें मेरीवरके बिबाहुय मानक लेकर रामकके स्त्रीकिबकी केहनर स्वर्ण जामे तककी विविध बारी हैं। मुक्तक लम्बोमें ही सब कुछ कहा गया है। अग इस रचनामें मुक्तक और अष्टपदाय्य दोनों ही का बालन सन्निहित है। गीताबकीकी प्रति अरुमें मुक्तकता है और कबाका प्रच्य भी। अदि अल देकिए,

आदि

'समुद्रविजय का करजेंद ब्याहर्क की आपन मेमसाथ खूब बनरा कहापा है। बलन बिलुर्लाम सहरा बिराजता है आर्शोतन पंजयेदि जाय पूर कापा है। बालनर देपिके महरवान हुआ आप इसको खलास करी बेही कुरमाया है। जाना है बिहाय का दरांग है बिरोधाकाय गिरवार जाय न न देवी बिग कापा है।

१ बरिन् रामचन्द्र गुप्त व्यासकी वाम्बुनि किन्नामलि, बहना भाव, अमर, १६३ ई ४ १२१।

२ रामन्तानी दिल्लीके इलाकिकिद अम्बोकी काय, आप ४ बरुपुर, इड १५३।

अन्त

शिरमौरगढ़ दुहाया सुपुत्र त्रिक पसेन आया तहो आंग चित लाय तन कहा गया है।
 सुम ज्ञान विन लीन्हा नचकार मंन कीन्हा, परहन कर्म किया है।
 कीर्तिग केर कीन्हा पुष्टिग पर कीन्हा ससहरह स्वयं पशुकी कछिलांग पर मया है।
 सुम रपते बयाय काळ चिनोरी गाल अनुमाफ हर्ष बाते राजक का मया है।

प्रभात जयमाल

इसे 'मंमल प्रभात और मेमिनाचकीका मणक भी कहत है। इसकी रचना वि० स० १७४४ में हुई थी। इसकी एक प्रति बयपुरके ठोसिपोके जीन मन्थिरके एक पाठसग्रह में मिलत है। इसकी एक दूसरी प्रति पचावती विमन्थर जीन मन्थिर लिस्कीमें मौजूद है। इसमें यमवान् मेमिनाचकी मन्थिरमें कतिपय मुक्तक वधोन्मि निर्माण हुआ है। सभी मन्थिरों में ओगप्रोग है। प्रातःकाल उठकर बनवा बन्धारय करनेसे सुभ-वति मिलनी है।

पशुर्धिशति सिन स्वचन सबैयात्रि

इसकी प्रति वि स १८१९ आरपव कृष्णा तृतीया शुक्लवारकी लिखी हुई बीकानेरके समय जीन सम्पादनमें मौजूद है। यह आरवक बेणीप्रसादके जीवन के लिए लिखी गयी थी। इसमें कुल ७१ पद्य हैं और सभी सबैया हैं। इसके प्रारम्भमें ८९ पद्य आदिनाचके फिर नचकार १२ पावना और पार्श्वनाचके सबैया हैं। पद्यांक ४७ से आगे प्रत्येक छन्द एक-एक तीर्थहरकी क्रमशः स्तुति है। प्रथम तीर्थहर आदिनाचकी भजना करते हुए यका बजता है

'आके बरबारविन्ध पुमिन सुनिह ईह देवन के हन्ध चंर सोमा अति भारी है।
 आके नल वर हवि कीर्तिन किरण गारे सुख देखे कामदेव सामा छविहारी है।
 आकी देह अत्तम है वर्णन-सी इन्विषय अपर्षी सकुन मय पात की बिचारा है।
 कहत बिबारीकाक मय बचन निहुकक केस नाभिर्नदन कू बंदना हमारा है।

पूज्य माळ पचचीसो

बोला कि इसके नामन स्पष्ट है इसमें कुल २५ पद्य हैं। बोला छन्दय और नाराच छन्दाका प्रयोग किया गया है। इसका प्रकाशन बृज्द मन्थारोरी कीर्तन नामकी पुस्तकमें हुआ हुआ है। विषय मन्थिरों में सम्मिलित है। तीर्थहर मेमिनाचके

१ राजनाथमें शिन्हीके वराधिशित सम्मोली योग नाम ४ वरचपुर, पृष्ठ ११ ।

२ हरद्वारकीर कीर्तन भी शिरमौर में मुन्थानम मन्थारोरी वरचुर, बनवरी १९२३ ई. पृष्ठ ११६, ११७ ।

चरणोंम इन्होंने उत्साहपूर्वक एक कुचमाळा समर्पण की जिसे इन्द्राजीने मिल मिल प्रहारके पुण्य भोगी और मणि-माणिक्योसे गुंथा था । उक्त माळाकी घोषा देखिए,

“सुगन्ध पुष्प बेकि कुम्ह बैतकी मंगाय के ।
 चमकि चम सेवर्त । सुहो गुही छु कायके ॥
 गुलाब कंठ छाड़ूषी सभै सुगन्ध आयि के ।
 सुमाकली महाप्रभोष्ट के अनेक मोति के ॥५॥
 सुचर्चत्तार रोह बीच मोति काक काइया ।
 सुहीर बल्ल बीच बीच परम मोति काइया ॥
 सबी रची विभिन्न मोति चित दे कयाह ई ।
 सु इन्द्र ने उछाह सौं त्रिलोक को बहाह ई ॥६॥

वह माळा अमूल्य हो गयी थी । इसे सबीने गुंथा इन्होंने बहामा और मणवान्वा स्वर्ण पाकर वह स्वर्ण भी बलिष्ठ हो कयी थी । इसे प्राप्त करनेके लिए विभिन्न देशोंमें विभिन्न जातिवोले कोप जाने । उनमें साधारण के और असाधारण भी बरीब के और माकहार भी बंजून के और चिकहार भी तथा सामन्त के और राजा-महाराजा भी । सबी माळाको लेनेके लिए अधिकसे अधिक मूल्य देना चाहते थे किन्तु कुछ कंजुस बिलगारित नेजोसे यह बच रहे थे कि वे लोग एक छोटी-सी माळाको लेनेके लिए असीम धन क्यों कुटावे दे रहे हैं । उक्त अवसरपर मनबके विविध मार्चोवा एक छोटा-सा पत्र देखिए,

“सु अग्रबाक थोकिये छु माक मोहि कीजिये ।
 दिवार देहु एक कल मु गिनाय कीजिये ॥
 लखलखबाक थोकिया छु बीच काल देखयो ।
 सु बांदि के तमोक में त्रिलोकमाक केइगो ॥११॥
 कितेक कम काइके छड़े ते हाथ जोरि के ।
 कितेक भूप देखिई चके छु बाग मोरि के ॥
 कितेक सुम को कहे छु कैये कलि दैत ही ।
 सुराज माक जापनो छु गुन माक केत ही ॥२॥

इस मणिके अवसरपर अनेक व्याधिवाएँ अब जागै बहाम बाचोली रीजने-में सममर्क हो कयी तो मूल्य कर छड़ी और सबही शस्त्रेक बिरतनमें त्रिगता उठेन वा । मुरव-तालोवै साव-साव सुवर्च्यति बबल-बीग भी कूट उठे

‘कई प्रबीन व्याधिका त्रिलोक को बचावही ।

कई मुकन्द राग सौं कही सुमाक गावही ॥

कई सुन्दर का करें गई अनेक भावही ।

कई मूर्खता का वै सु जग को फिरावही ॥२१३॥

रीतरागकी माका करीबनेके किए भक्तिकी भावस्थिता है । गुप्त महाराजने बोधना की कि माका उसीको मिलेगी जो भक्तिने अधिक जितम्भभक्तिका परिचय देया । भक्त वह है, जो जिनेश्वर यश और विम्बप्रतिष्ठा करवाकर सब भक्तनका धेय प्राप्त करेया

‘कई गुप्त उदार जो सु सों न माक पाइय ।

कराइय जिनेश्वर-यश विरह अराइय ॥

बकाइय सु संवसार संवहा कइइये ।

तबै अनेक पुण्य सों समोक माक पाइय ॥२१४॥

संबोधि सब गोवि सो गुप्त उदार के कई ।

सुकाय के जिनेश्वर माक संवसार को बई ॥

अनेक हर्ष सों करें जिनेश्वर तिकक पाइये ।

सुमाक श्री जिनेश्वर की बिलोदिकाक पाइये ॥२१५॥

भक्तामर स्तोत्र कथा और भक्तामर चरित

‘भक्तामर स्तोत्र कथा का निर्माण वि. सं. १७४७ सावन सुदी २ को हुआ । यह रचना पद्यमें न होकर हिन्दी-वचनमें है । इसकी एक प्रति वि. सं. १९४७ की किसी हुई जयपुरके ठोकरियोंके जीम मन्दिरमें बिराजमान है । वि. सं. १९९ की किसी हुई हस्तलिखित प्रतिका सुचना ‘बाघी नागरी प्रचारिणी पत्रिका’के वि. सं. २९ के हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोजके परिशिष्टमें अंकित है । इस विवरणके सम्पादकोका विचार है कि यह एक उत्तम कृति है । किन्तु यह पद्य में न होकर पद्यमें है और इनका नाम भी ‘भक्तामरचरित’ दिया हुआ है । एक ‘भक्तामरचरित’का लम्बेका काशी नागरी प्रचारिणी समाजे बारहवें वैशाख विवरणमें हुआ है । उसकी प्रति बाराबकीके जीम मन्दिरसे प्राप्त हुई थी । इसपर भी निर्माणकाल वि. सं. १७४७ पड़ा हुआ है ।^१ इनमें दोहा अठिन्ध कुण्डकिना और सोरठ आदि छन्दोंका प्रयोग किया गया है ।^२ इसके अन्तमें कवि और उसके समयका भी संक्षिप्त परिचय दिया है ।

१ काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिकाका बारहवां वैशाख हिन्दी ग्रन्थोंकी खोजका विवरण परिशिष्ट २ पृष्ठ १२७४ ।

२ दोहा छंद अठिन्ध बनायो ।

बहु कुण्डकिना सोरठ बनायो ॥

रामचन्द्रजी की रचना की थी। तीसरे व हैं जिन्होंने १८१५ में हरिदास हरिचरित्र लिखा था।^१ चौथे प्रसिद्ध भोजी हरिरामदासके मुख्य शिष्य थे। हरिरामदासके स्वर्गारोहणके उपरान्त व उनकी गद्दीके अधिकारी भी हुए। उन्होंने भीसानी नामकी एक प्रौढ़ रचनाका निर्माण किया था, जो संवत् १८१५ के बावकी कृति है।^२ अर्थात् ये सब सन्तोसकी शताब्दीके कवि थे।

पश्चिम बिहारीदासका रचनाकाल अठारहवीं शताब्दीका पूर्वार्द्ध माना जा सकता है। श्री धामतरावका जीवनकाल और मुकाब सं १७४६ में पश्चिम बिहारीदासकी प्रेरणास ही हुआ था।^३ अर्थात् इस समय तक व विद्वत्ता-अन्य स्मृति प्राप्त कर चुके थे। अतः यह निश्चित है कि उनका जन्म अठारहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें हुआ होगा।

बिहारीदासने सम्बोध पंचासिका' बख्शी' किन्नर स्तुति और आरती का निर्माण किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि धामतराय सम्बोध विकसित रूप में।

सम्बोध पंचासिका

इसका दूसरा नाम अक्षर बावनी है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति वि सं० १८१२ की कपी हुई वि जीवन मन्दिर बहीतके वेष्टन नं २७२ गुटका न ५५ में पृ ३६-४ पर लिख है। इसके अन्तम कृतिका रचनाकाल वि सं १७५८ कातिक वही ११ दिया हुआ है। इससे यह भी मिल्ता है कि बिहारी दास बावरेके रहनेवाले थे। कमपुरके बबीचन्दजीके मन्दिरम विद्यमान गुटका नं १२८ में भी इसकी एक प्रति संकलित है। श्री वि जीवन मन्दिर कूँबा सेठ दिल्लीके वेष्टन नं १११ में इसकी एक हस्तलिखित प्रति मौजूद है। इसकी किन्नाकट वस्तु है। उसपर भी रचना सं १७५८ ही दिया हुआ है।

इस कृतिमें ५ पद्य हैं। विविध भाषामें इसकी रचना की गयी है। प्रारम्भ में कवि 'ऊँकार' में बसे पंच परम पदकी बन्दना करके अपनी कबुता प्रशंसित की है।

“ऊँकार मँझार पञ्च परम पद बसत है।

जीन भजन में सार बंदीं गन बच काच के ॥१॥

१ काशी जाल्दी म्भारिजी पत्रिकाकी ११ ५ की पृष्ठ विवर।

२ डॉ० मनीषान्न सेनारिषा राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ ३०३।

३ पश्चिम मेमोयल दिल्ली के साहित्यका विभाग, पृ २।

४ वे बरत बरतवाली हस्तलिखित प्रतिये मिले गये हैं।

अछर खास न माहि कह भेइ समस्त नहीं ।

सुख जारी काम हाथ भाषा अछर बाबरी ॥१६॥”

कविका नयन है कि गरमब प्राप्त करना अत्यधिक कठिन है । इसे ज्ञप्त नहीं होना चाहिए । यदि वह जो गया तो समुद्रम राईको प्राप्ति फिर प्राप्त न होना । वरक वक्रप्रता ही हाथ रह जायगा

अत्यम कठिन उवाच पाव गरमब क्यों तजै ।

राई कहहि समानी फिर हूँ नहीं पाइये ॥१७॥

इ बिधि दरमज को पाव बिपै सुप मारम ।

सो सब अमृत बीच हाकाहुक बिच आचर ॥१८॥

ईश्वर माये कह गरमब मति जाने बुझा ।

फिर न मिलै कह देह पठनाजो बहु हान्य ॥१९॥”

बीरको क्षमवान करते हुए कविने लिखा है कि तुम विपदोंमें अपना मन लगा रखा है । आरमाया हिन नहीं करता । बीर-ही सुखक किए तु मयनमुद्रमें पड गया है । पाप-कहर तुम बड बेटी है । अतः चर्मन्पी बहाद परकर तुम पूर्वज इत मयनमुद्रक पार हो जाओ

‘अतः विचर्यन्त सौ कभी मन माई रे ।

अत्यम हित ज्ञी हा ही केन मन माई रे ॥२०॥

हूँ सुख की मयबिषि बरी मन माई रे ।

पाव कहर हूँ बिधि केन मन माई रे ॥

पकर धर्म विहाज ज्ञी मन माई रे ।

सुखका पाव करे हि मन मन माई रे ॥२१॥

बर्मसे प्रेरित होकर बी विमन्त्रकी पूजा करता है । विमन्त्रक चरकोंमें चित लगाता है उसे मयबाधित कर मिलना है । विमन्त्रने द्वारा वज्रमे मये धिचकार्य-को बी बीडा बी बाज बागा है बीर जन्तने समाधिमरण करता है उसे चतुर्गिता सुख नहीं भागना पटना ।

कामि चरम जिन बुझिच साँच कहदी सख जोइ ।

चित प्रभु चरन लगाइया तन मन चोड़िण कर होइ ॥२२॥

मिच माया जिन साविता किंचित जाणी काइ ।

अनि समाहि मयब करे चड गइ सुख बहि हाइ ॥२३॥

बल्लही

विपन पृथ्वर यह सिखा बा बुका है कि बौद्ध भविष्य-साहित्यमें बल्लहीयोंकी परम्परा पुरानी है। हिन्दीके कवि भी लिखत रहे हैं। कमलम्भ बीसठाराम भूषरदास रामकृष्ण और जिनदासकी बल्लहीयाँ तो बहुत ही प्रसिद्ध हैं। 'बल्लही' की हिन्दीका स्तोत्र कह सकते हैं। बिहारीदासने भी एक बल्लहीया निर्माण किया था। इसमें १६ पद्य हैं। उसकी एक प्रति बमपुरके ठोमियाक दिगम्बर बौद्ध मन्दिरमें बेष्टन नं० ४८ में सुरक्षित है। इसमें कुछ ४ पद्य हैं। इसकी एक दूसरी प्रति बमपुरक ही बड़े मन्दिरके गुटका नं० ८ में सुरक्षित है। इस प्रतिपर रचना-संवत् १७१६ पड़ा हुआ है। इसका अर्थ है कि 'बल्लही' 'सम्बोध-व्यासिका' से दो दश पूर्व बम बुनी थी।

बल्लहीम तीर्थक्षेत्रों बहुविध थीया कल्पवृक्षा बरत-वपयवत् और भावार्थोंकी बरतना की गयी है। कतिपय पद्य इन प्रकार हैं^१

‘धामरा देस के मध्य विराजै सम्मदाचक बरौं श्री ।
कर्म काहि निर्माण पबुध्या बीस जिनदर बरौं श्री ॥
बाम् बाधमको कुछ बरौं नीय बृद्ध सब बरौं श्री ।
रजत धिरि कुकाचक बरौं कंचन गिरि सब बरौं श्री ।
अरिहत सिद्ध सूर उपाध्याय साध सबक पद बरौं श्री ।
जो सुमरथा सा भवद्वि तिरथा मद्य कर्म कुर्वहा श्री ॥

बिनेन्द्र-स्तुति

यह रचना 'बृहन्मिलवाणी संग्रह' (पृ० १२६) में प्रकाशित हो चुकी है। इसमें भववान् बिनेन्द्रके स्तुति-परक भावोंका प्रकाशन हुआ है। भक्त कवि भववान्के इस रूपपर टीका है जिसमें बरवाभूषणका आहम्बर नहीं अपितु मुद्रासे ध्याति बिहार रही है और दृष्टि नासाक जग भावपर स्थित है। भगवान्के चरण कमल-बीसे हैं। उनके लक्ष्मसे कटाहो मुखोंकी प्रभा निकल रही है। उनपर देवेन्द्र नाग और गरुड़ोंकी मुकुट-मणिवाँ झुक रही हैं

“बरवाभरण मिल ध्याति मुद्रा सकल सुर नर मन हर ।
नासाग्रदन्ति बिकारबन्धित निरति छवि सेकद हर ॥
तुम चरण पंकज लक्ष प्रभा बम कीदित्पूर्व प्रभा हर ।
देवेन्द्र नाग वरेन्द्र नमस्त सु मुकुट मणि धुति बिस्तर ॥

१ ये पद्य डोगिनोके मन्दिरवाली धर्मिके आचारधर दिने के हैं।

मन्त्राङ्की लोभा केवळ बाह्य नहा है उसका अन्त भी मसाधारण रूपे रूप रहा है। उसकी पाप कमायेसे पाप-समूह गल्ट हो जाते हैं, और इनका ध्यान करमेसे शिव-भक्त प्राप्ति कागा है। यह जीव मुराहोमें बँधकर संसार के बड़े-बड़े दुःखाको सहन करता रहा है, उसे सुख तो सरसक समान भी नहीं मिला। मन्त्राङ्की मन्त्रिसे ही उसे सुख मिल सकता है।

‘अंतर बहिर इत्थाहि कइमी तुम मसाधारण कसी।

तुम अत्य पापककाप नासी प्यावत शिवभक्त बसी ॥

मैं सेवा करण कुबोध ध्यान बिर भ्रम्यो मय बन सरी।

सुख सहे सर्वे मकर गिरि सम सुख न सर्वप मम करी ॥

संसारक बीज विषय-व्यापार मिम्य है। बी बेट जागा है, यह ही इस मन्त्राङ्कीको तिर जाता है। अपनी विनय करनीपर परचात्ताप करना ही शिव-भक्तकी और बहना है। यह परचात्ताप ही बीचको मन्त्राङ्कीके चरणमें बाठा है और मन्त्राङ्कीके अन्तःकरणसे यह ही छद्म छट्ठी है कि हे मन्त्राङ्की! मुझे आपकी मन्त्रिके अतिरिक्त और कुछ भी ईश्वर नहीं चाहिए। एतत् सम्मन्यो एक पद्य है

‘परचाह बाह बहयो मया क्यहुँ न सम्मन्त्रुका क्ययो।

अनुमय अद्वय स्वाधु त्रिभ विष विषय रस पारी मक्यो ॥

अन बसी मो कर मैं सदा प्रभु, तुम अत्य सेवाक रहों।

वर मन्त्रि अति दह होहु मेरे अन्ध विभक्त नहीं चहों ॥ ५ ॥”

मन्त्राङ्की यह पद्य किन्तास है कि मन्त्राङ्कीके चरणमें जायेते अन्ध-मन्त्राङ्कीके कण्ठसे छूटकाप मिल जायगा

‘मगक सकलो ह्व उद्यम तुम चरण्य विवेस की।

तुम अत्य चरण्य अत्य मम कलि मर अन्ध कयेस की ॥

भारती

विद्यार्थीराजकी किसी हुई एक चरण भारती जयपुरके ऊपरकाके अतिरिक्त विराजमान मुद्रा न ५ के न ४ वर अतिथ है। भारती आपसेवा’की भी बनी है।

करा भारती आत्मसेवा

तुम परमात्म अर्पण अर्पण ॥

आमि सच जग रह जग माहीं

जगत जगत मैं जग समा माहीं ॥

महा विष्णु महाेश्वर ग्याये
 साधु सकल जिह क गुण गाये ॥
 बित ज्ञान त्रिध बिर मय छोके
 जिहि दार्ढ्य जिन विचपद छोके ॥
 जनी शबरी बिध ग्योहारा
 सो छिहुंकाक करम सो ग्यारा ॥
 गुरु शिष्य उभय वचन करि कहिये
 बचनानीत इमा तिस कहिये ॥
 छुपर मरु की खेद न छेरा
 आप आप मैं आप निवेश ॥
 सो परमात्म पद सुख दाता
 होइ बिहारीशम चिक्याता ॥

८४ किशनसिंह (वि स १७६३)

इसका पितामह छिगड़ी कल्याण रामपुरके रहनेवासे थे । उनका बंध बख्से-
 बाब और गोब पाटली था । किसी तीन-चारके लिए सब निकलवानेके कारण
 उन्हें 'तंबी बडा जाल मडा बा । 'मिबही उमीका बिबडा हुआ म्य है । बाज
 की ऐसेके बसबराको मुखई बू' कहते हैं । छिगड़ी बस्याब जनेकानेक मुजोके
 निवास थे अतः उनका बंध भी बहुत बडा था । भगवान् जिनेश्वरका पूजन और
 जिन-मुनबा बख्ययन उनका मित्य-नीमित्तिक काम था । धान भी बहुत देते थे ।
 उनके दो पुत्र थे - सुखदेव और जालम्बसिंह । भगवान् जिनेश्वरके पड़ोसी बम्बनासे
 मुजदेवके तीन 'सुगन्ध' लगाने हुए । बाज भाग और किशन । किशन ही निधान
 त्रिड बने । 'सैन विद्याकी कर्म'के उदयसे वे मित्रपुर की छोड़कर छानानरमें

१. लहेसोबाल बल विद्याल गागरबाळ देसधिय ।

पामापुरबास देवनिवास बमप्रकाश प्रगटविय ॥

संबरीरस्थाय सबगुण बाळ गोब पाटली मुजमलिय ।

पूजाजिनराय अतपुत्राय नमै सकल जिन बाय दिने ॥२॥

नेत्रप्रियायोग प्रार्थन, प्रार्थनसमय, अमपुर, १६२ द २२ ।

२. समु मुग दुप एष मुदमुनवेर्ष लङ्करो बाळरमिय मुजी ।

मुजदेव मुजैरन जिनरदर्शन बाग पाय चिमनेस मुजी ॥

रखन लग वे ।^१ उस समय बाड़ी राजा सवाई जयसिंहका राज्य था । सब प्रजा मुन्नी और बल-बाल्यसे पूर्ण थी । निघनतिहका जीवन भी सुखमय था । उसका अधिकार समय भववान् जिनेश्वरकी यक्षिण और माहित्य-रचनामें व्यतीत होता था । उन्होंने जो कुछ किया हिन्दीमें हो लिया । उनके हृदयमें जो कुछ था भववान् जिनेश्वरके चरणोंमें ही समर्पित हुआ । वे एक भक्त कवि थे जिसकी मायामें भावूर्त का और बालामें स्वाभाविकता ।

पश्चित्त नाचूणमकी प्रेमीने उनकी कैवळलीन रचनाकोला उल्लेख किया था 'क्रियाकोश' 'महाराजचरित्र' और 'राशिमीजनकथा' ।^२ जब राजस्वानके शासन अन्तर्गतमें उनकी कथमग २ रचनाकोला पता लगा है । उनमें-से अधिकतर जैन-यक्षिणसे सम्बन्धित है ।

क्रिया-कोश

इसका निर्माण वि सं १७८४ में हुआ था ।^३ इसका प्रकाशन बहुत पहले ही जैन साहित्य प्रसारक नायालय होराबाय बम्बई हो चुका है । इस ग्रन्थमें २९ पद्य हैं, उनमें बीनाकी आनिक क्रियाओंका उल्लेख है । रचना मौखिक है किन्तु कविकाकी कृतिसे साधारण है । कुछ व्यक्तिसम्बन्धी पद्य हैं

‘समयसत्य कइमी कहित वर्तमान जियराज ।
नमी विरुध बंझित धरन अचिन्तन को सुचरन ॥
बुधन धादि जिय आदि है वारस कीं तेईस ।
मन बच कइया पद पक, बंही करि घनि सीम ॥

किन्तु इह कीनी कथा नवीनी निरवृत्त बीनी गुरपद की ।

सुखराम किया ननि बहु मनबचननि सुखपकी दुरवति पद की ॥२॥

की १ २९ ।

- १ जेव विपाकी कर्म उई बच आईया निजपुर तवि को आभातेरि बतार्ईया ।
तह दिन चर्च प्रसादि यमै विन गुन कही साधगीजनपानि ॥ क्रि नही ॥
पदी ।

हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास १ ९९ ।

- २ तमइसै संवन बीरातिवाजु पायी अछ
वर्षातिरिचैव तिथि कुको रविचार है ।
वदनक्रियाकोश, यक्षिण यक्षिणपद १ २९८ ।

“नमो सकल परमात्मना रहित भगवद् शोप ।
 विपाकिस गुण प्रसुप्त ये है अर्धत गुण कोष ॥
 आचार्य उपास्य गुरु, साधु विविध विरम्य ॥
 मणि जगत्वासी जगति की दूरताई निव पथ ॥

भद्रबाहु चरित

इसकी एक प्रति मया मन्दिर दिल्लीके शास्त्रमण्डारमें मौजूद है । इसमें १९ पृष्ठ हैं । यह प्रति वि. सं. १९२९ की छिखो हुई है । इसकी रचना हिन्दो-मत्तमें हुई की ।^१ इसकी प्रति जयपुरके श्री ठोडियोंके विधम्बर शैव मन्दिरके सेप्टन मं. ७८ में बँधी रखी है । इसमें ३५ पृष्ठ हैं । इसपर रचनाकाक सं. १७८३ पड़ा हुआ है । इसी मन्दिरके गुटका नं० २५ में श्री भद्रबाहुचरित संकलित है । यह एक नवीन प्रति है और इसपर रचनासं. १७८३ पड़ा है जिसका समान उसकी अन्तिम प्रयस्थिसे होता है ।^२ इसमें आचार्य भद्रबाहुका चरित अंकित है । भद्रबाहु अन्तिम अठकेवको के और उनको यन्त्रियें विपुल साहित्यका निर्माण होता रहा है जन्मोंमें-से एक प्रसून रचना भी है । इनका आचार आचार्य रत्न मन्दिरके द्वारा विरचित संस्कृतक ‘भद्रबाहु चरित’ को बताया गया है ।^३ विष्णुमन्दिर के ‘भद्रबाहु चरित’में भाव और भाषा दोनों ही उत्तम कोटिके हैं । आदिका एक पद देखिए,

“केवल शोष प्रकाश शिव उदै होय सखि साक ।
 जग जन जगत्त तम सकल देया दान दधान ॥
 सममति नाम तु चाहूँ श्रीस सममति देव ।
 भावो सममति होजिय जमी विविध करि मय ॥”

१ मय मन्दिर दिल्लीके सं. ३६ पर लिख ‘भद्रबाहु चरित’ देखिए ।

२ सं. १९२९ एन. ३६ पर लिख ‘भद्रबाहु चरित’ देखिए ।

माय कृष्ण गुण अष्टमी प्रग्न समस्त कोम ॥२॥

गुप्ता म. ३३, मन्दिर ठोडिया जयपुर ।

३ मय-मन्त्र कर्ता मये रत्न मन्त्र मु. जगति ।

छापार भाषा प्रहृष्ट कोमो मयी परमान ॥१॥

विष्णुमन्दिर विनती करे मणि कविता की रीत ।

यह चरित भाषा किसी आरुषीय परि प्रीति ॥१॥

वही प्रयस्थि ।

रात्रि-मात्रम-कथा

इसको नायबी कथा' भी कहते हैं। इसकी एक प्रति पंचामृतो मन्दिर दिल्लीके इस्तिलाखित ग्रन्थोंमें मौजूद है। इसमें २८ पृष्ठ हैं। इनपर रचनासम्पन्न १७७३ पड़ा हुआ है।^१ इसकी दूसरी प्रति नायबी कथा ॥ नाममे जयपुरके बनीकपुरजीके मन्दिरके बेटन न १८ में निबद्ध है। उसके बाये भी रचना-सम्पन्न १७७३ ही दिया हुआ है। पण्डित भाबूरामजी प्रेमीजी भी किसी प्रतिके आधारपर यही रचनाकाकाल निर्धारित किया है।^२ इसकी एक प्रति जामेरके आत्ममण्डारमें रखी है। इसमें कुल २१ पृष्ठ हैं जिनपर ४१५ पद्य संकित हैं। इस कथाका आरम्भिक पद्य इस प्रकार है

‘समोसरण सामा सहित जगत पूज्य विवरण ।

जमी त्रिविध भवद्विज की तरण विद्वत् विद्वान् ॥

जिव सुप्र जगुज लरो स्थाहात् मय सोच ।

ता रथर मुष्टि की माय परि जमी सफल मय आव ॥”

बाबनी

इसकी एक प्रति जयपुरके बड़ मन्दिरके बेटन न १२१७ में निबद्ध है। इसमें कुल १८ पृष्ठ हैं। इनपर रचनाकाकाल १७६६ पड़ा है। जयपुरवासी नाहटम बाबनियोंका एक छोटा-या संस्करण ‘रात्रस्वप्नमें हिन्दीके इस्तिलाखित ग्रन्थोंकी खोज’ नाम जगुर्ब (पृष्ठ ८१) पर दिया है जिसमें लिखनकी बाबनी भी है। यह प्रति बीकानेरके ‘जय्य केन ग्रन्थात्म्य’ ने मौजूद है। इसपर रचना सम्पन्न विजयनरसमी १७६७ पड़ा है।^३ उसका आदि मीलाचरण देखिए,

‘जंकर अवर अपार अविकार जग

जगद्वु दे जहात वारणु हुस्य क्य ।

कुंभर त कीर बरजंज जय जगु ताके

अतर के जामी खुनामी लामो संत को ।

१. ग्रन्थालय नं ४ दिनांक २, ७, ५ २६६ ।

हिन्दी केन आदिलका रजिस्ट्रार, ५ ६६ ।

२. धिर तिमराज सोना नछ विरताज

मात्र तिम की हुवा जू कविताई पाई पावनी ।

सबत जगर सगदुई विजयनरसी की

ग्रन्थ की समायज जई है मनजावनी ॥

जय्य केन ग्रन्थात्म्यकी प्रति ।

बिना का हरमहार बिना का करमहार

पोषण भरमहार किसान जनैत का ।

अंत कई अंत दिन राखे का अनंत विष

राखे संत अंत का मरामा मगरंत का ॥३॥

आदिनाचलीका पद

इसकी रचना वि सं १७७१ में हुई थी। यह प्रथम तीर्थंकर धर्मचान् आदिनाचली धर्मिने लिखित हुआ है। इसकी प्रति जयपुरके दि० जैन मन्दिर बबीलमजीक घास्वमण्डारम पुठका नं ११ में संकलित है। यह निवि मवा-
चन धर्मवाचन रीतिरूप की थी।

चैनन-नीति

यह नीति अपन चैननको सिखा देनेसे सम्बन्धित है। चैनन प्रथम में कमकर चर्चाईको भूल गया है। यह नीति जयपुरके दि० पुठका नं ५१ में लिखित है। यह पुठका नं १८२३ नातिक बही ७ वा किखा हुआ है।

कविरा कहन है कि यह चैनन गुणवान् होते हुए भी अपनेको भूल गया है। चापल नहीं होता। यह चानुर होते हुए भी इन संसारमें सुख मान रहा है। यह मध प्रमथकी भाग विस्मृत कर चुका है—

तुम सूर्य काक अनादि के जागा जागी की चैनन गुणवान् ।

हामी सुख भजन संवार में हूँ खम्बी की तुम कीच सवान् ।

कहु मूकिक गन मध प्रमथ को किज सोखी का प्ररवक चाना ॥

भारमण्डको न जानके कारण यह बीच चारों प्रतिपादों प्रमथ करता है। यह उगिनो कुमतिके चरचरने केस जाया है और उसका अनादिनाच धर्म की नीति जाया है

‘हा का हूँ निधि चहुँ गति में प्रथमो

विन जातम तख तकी पदचानि ।

हो री काक अनादि गुमाहवा

इम कुमनि उगोरी क चचमानी ।

चिनती

इस चिनतीका निधीय तीर्थंकरकी धर्मिने लिखा गया है। इसकी प्रति जयपुरके दि० मन्दिरके दि० चैनन नं १ १५ में मौजूद है। जलमें देवक एव पृष्ठ है। चरचर रचना और चैननकाक कुछ नहीं दिया है।

पर

इन्होंने कुछ बचोकी भी रचना की थी। इनके कतिपय पर दि जीवन मन्त्रि बहोतके परचपहकी हस्तकिलिम प्रतिमें कुछ पर कतिपय क्षेत्र महावीरकी एक प्राचीन मुठकेमें और कतिपय बनपुरके बचीचन्नीकी मन्त्रिके मुठका म १५८ में संकलित है।

उन्होंने एक परमें मन्त्रिकालीन जीवन सन्तोषी याति ही कहा कि बुरकी कुछ विने बिना बनवान्के नामोन्पारण और तीर्थयात्राओंकी भी कुछ नहीं होता

‘‘किस आपर्ण बोधा नहीं तब मय हूँ बोलिया नहीं।

मय मैक कुँ बोधा नहीं अंगुल किवा तो क्या हुआ। (केस)

काकच और दिक्काम को बाधति करि बह काम की।

हिररै नहीं सुख राम की हरि हरि कहया तो क्या हुआ ॥

कूटा हुआ बन माकदा बंधा करि बंधाकदा।

हिरदा हुआ धर्ममाकदा कपरी बंधा तो क्या हुआ ॥

एक-दुमरे परमें विमुक्त मन्त्रिकी भाँति ही कविये कहा कि दिनकी बाँधे बनवान् विनेन्परे बन गयी वे उनके बिना रह नहीं सकते। विनेन्परे देखनेपर ही उन्हें सुख मिलता है। बिना देखे वे व्याकुल हो उठते हैं। एक मन्त्रिम बनवान्को बिरन्तर देखते रहनेकी ऐसी अवश्य व्यास होती है जो कभी मुझती ही नहीं

‘‘कामि नहीं व भँसिकों किम दिन रकी हूँ व जाय ॥

जब देखे तब ही सुख उपजै किम देख्या उकलान ॥

मिरद हवे से धूर्त बहव तैं मिथ्या विमिर मिहान ॥

इन्द्र करीसा तृप्त व हुआ काचन सहस बवान ॥

बिरम अति पाय है मेरे वन लूँ बहूँ बवान ॥

अनुभव एस उपज्यो जय मेरे आनन्द अब व समाप्त ॥

दास बिसम ऐसे प्रभु पाये कलि कलि व्यास कलान ॥

पुण्यमन्त्रिककोश

यह एक महत्त्वपूर्ण कृति है जिसकी रचना दि उ १७७१ में हुई थी। इसका संपादन बनपुरके बचीचन्नीकी मन्त्रिके मुठका म १८ में किया गया है। यह गुप्ता उ १८२३ में लिखा गया था। इसमें जीवन-सन्तोषी परचपह कहा है।

चतुर्विंशति जिनस्तुति

यह स्तुति जयमुक्त मन्दिरके ही मुटका नं १०२ बंष्टन नं १९ ९ में अंकित है। भगवान् पारसनाथकी स्तुतिमें रचा गया एक छन्द है।

अश्वसेन मूष पिता वैशि ब्रामा सुमाता ।

हरित काश वर हाव वरवस्त आसु बिप्याता

बाप्यरसी सु जम्भ बंस इक्ष्वाकु मंभारी

कञ्जिन सरप कु बन्धौ प्रभु उपसग निधारी

गलहर सु मय दस ग्दान वर कोस पौव समवादि मनि ।

सौपास्वनाथ वसौ मया कमठ माव भवद्वेष छगनि ॥१६॥१॥

विष्णुनिर्वाणेने भक्तिसम्बन्धी अनेक वीर और स्तुतिमयी रचना की है।

इनका संकलन जयमुक्त मन्दिरके ही मुटका नं ५ २ में किया हुआ मौजूद है।

इन मुटकेमें २ २ पृष्ठ हैं, जिनमेंसे पृष्ठ ५५ तक तो विष्णुसिंहका ही रचा हुआ 'महाबाहुवरित भवा ठिका है और अश्वसिंहपर बनसी भक्तिसम्बन्धी छोटी-छोटी रचनाएँ लिखी हैं। व इस प्रकार है

'आवक मुनि मुक्त वर्जित धीन बोधीस दण्डक (सं १७१४) नमोकार रास' (१७१) 'जिनवक्ति भीरु' 'गुणवक्ति भीरु' 'चेतन बोरी' 'निर्वाण काण्ड भावा (न १७८३ सहायपुर) इसी मुटकेमें उनके 'एकवक्ती व्रत कथा' और 'अविध विधान कथाएँ' भी संकलित हैं। 'कवि-विधान कथा'की रचना सं १७८२ में आकरेमें हुई थी।

८५ सुधासुचन्द काला (वि सं १७७३)

सुधासुचन्दका जन्म सावानरमें हुआ था। उनके पिताका नाम मुन्दर और माताका नाम जनिधा था। मुक्तसुखी पण्डित स्वामीदास उनके गुरु थे। उन्हें इन्द्रक समान कथानि प्राप्त हुई थी। उनके पास विद्यार आग था जिसका

१ वह स्तुति वि सं १७९६ बरगण्ड छप्पा ज्योदरसी सोमनारके दिव पूर्ण हुई थी, केठा इस स्तुतिके १२वें श्लोके रच्य है। वह इस स्तुतिका अन्तिम स्त है।

२ और सुधी आगे नग साव में मुन्दर को गुरु नुवाय।

सिंह निवा जनिधा नग माव ताहि पूर्ण में जयपू आय।

नंद सुधासु कहै छव लोक भावा कीनी सुचत जलोक ॥

नग कवाकोरा मठदि, मठलिनाय ६ १३७।

वितरण भाग नामधनुक समान ही दिया करते थे। वे क्षमावान्, शानवान् और विवेकवान् थे। ऐसे उत्तमचौहाने सिद्धांतके पात्र रहकर पुष्पाक्षरान्ते प्रिया प्राप्त की थी। प्रिया-ग्रहणके उपरान्त ही वे अहानावाहन आकर अर्चनार्हपुत्र नामके मुहूर्त्तमें रहन लगे थे।^१ हिस्तीन्द्र ही नाम अर्जुनावाह था। उन समय कहीं भठ मुचानन्दजी साहब बहुत प्रसिद्ध थे। उनके घरमें रहनेवाके दोपुत्रकान्त नामके आनी दुधनकी प्रेरणासे जो भी सुधाक्षरान्तक हरिर्वच पुत्रार्चन वचानुवाच किया था। कविरही अविनाश रहनाएँ अर्चनार्हपुत्रमें रहकर ही बनीं। कभी कभी नावानेर भी आते रहते थे। उनकी आति अन्त्येष्ट्याह थी।

पुष्पाक्षरान्तके 'हरिर्वचपुत्रार्च' (वि सं १७८) उत्तरपुराण (वि सं १७९) 'अम्बुमारचरित' वधाचरचरित' (वि सं १७८१) अम्बुवरित 'तन्त्राविनाशकी'—(वि सं १७७३) 'अनकपाकोष' (वि सं १७८७) 'पद्मपुराण' (वि सं १७८९) पर और चौबीसी पाठका निर्माण किया था। इनमें पुराण और चरित अमूर्तिन रहनाएँ हैं।

पर

इनके रहे हुए वह अमपुरके ठाकियोंके मन्दिरके गुटका सं १२४ और अमपुरके ही वधाचरचरितके मन्दिरके वर्तमान ४९२ में अंकित है। ठाकियोंके मन्दिरका एक पर आधुनिक उत्तर है। सममें अमर उकाहना हैंवे हुए अमचरान्ते कहा है कि आपने अनेक अधमोको तार दिया फिर मेरी बैर हीन क्यों नहीं है। आप मेरे पुत्र और अमचरान्तर व्यास भग बीरिह, अपने विरहकी और निहारिह,

“तुम प्रभु अधम अनेक उचारै। हीन कहा हम शारो थी ॥

तारन तारन निरह गुन आनो और न तारन हारो।

तुम धिब अमर मरण बुद्ध वाणी। कमल आने पारो थी।

मो गुन अमगुन प्रति भग आवा। अचली अर बिहारो।

अंजय से एक मैं ही मुचारे और कहा अचिन्तरी थी ॥

मैं विवती कर्तुं त्रिभुवन चरि मेरी अचरित सारी।

अहं सुखाक सारन चरनन की सी मचवार उतारी जी ॥

१. वेद इन्द्र कीरति अने नु मुक्तकन मन्दारक नो वचन्य आनो कोहिनु है।
 पुत्रार्च प्रन्तिन्द्र करवाई अविनाशवार मोहनी गुमूर्ति कलेन मोहिनु है ॥
 आनी के मुक्तक मर्हि चरितन चौब पु रात आनी नामधेनु त मुचान रोहिनु है।
 विनाशान व्यासवान चरितन विवेकवान रात्रि चोप आपम विचार रोहिनु है। १।
 गी १. १७४।

श्रीमती स्तुतिपाठ

रि सैन मन्दिर बहोनेके एक मुठकेमें गुप्तासकगङ्गीकी श्रीमती स्तुतिपाठ मँवलिन है। इस मुठकेका सम्मानकाक छ १८१२ है। पूरा मुठका उनही स्तुतिपाठ ही पूरा हुआ है। प्रत्येक स्तुतिपाठ अन्तमें आन मायके लिए केवल 'बम्ब' का प्रमाण किया गया है।

आराध्यही सर्वोत्तम और अपनेही लघुनम मानना अधिनही प्रथम विशेषता है। यही हो प्रत्येक कृता है कि हमारे आराध्यका मुर, नर दोष मईच ठेका करते हैं। अमरक समान उनके चरण कमलका और दिन-रात लगे रहत है। यही कृता है कि भवकाम्पी अधिनही नौगापर चढ़कर प्रत्येक ओर भवमायके पार हो जाना है। यह मय है कि भवकाम्पी मयान कोई निवनायक और मुनपाम नहीं है। वे अधिनाया पर प्रान्न करते हैं। यह आनवर ही प्रथम उनही मरममें आना है। उसे पूरा विरवान है कि वे मवार दुःखने दूर वर दें। ऐसे महिमावान् प्रभुने उल्ला प्रम हो गया है। वह भव भक्ति उनही मवार अधिवार आनना है।

मुर नर मय मया की जा आन कमल का वार।
मवर समान कमल रहे श्री निमि वामर लद मर ॥
अ अम गाँव आर मा करन आनना करन।
मवसागर हो पार है श्री चढ़ा तुम माय विहाय ॥
तुम सम अधिनही का नहीं प्रभु निवनायक मुनपाम।
अधिनासी वर देत हा प्रभु फिर नहीं मय मी काम ॥
दाना कवि मी अधिनाया या कात्र मोहि ह पार।
मय दुःख मी म्वाही रहा प्रभु दाया मरण आवार ॥
चंदन या विरगो जा मुनिगो विमुचवराई।
अम अम वार्क मया प्रभु तुम मया अधिनाय ॥ "

८६ भूपरगास (वि सं १०४१)

भूपरगासही लखनाऊँके केवात दगना ही बना चलना है कि वे आनगाव ११४ वाले प श्री गङ्गाधर आनिये उगाय हूय थे। यहिल हीलगावहीन उगा

१. दुरगा म २० रि श्री वंशकी मंदिर श्री गङ्गाधरजीके देना।

२. आनो म आनगाय भूपरगङ्गाधर

आनर के वनाम गा कविग वरि आन है।

भूपरगास गङ्गाधर वनगा ११४ वगा प्रका हो व चर्चा।

‘मुराराम के नामसे मशहूरिया दिया है और लिखा है कि वे आगेमें गद्यार्थमें रहने थे। गद्यार्थमें अतिरिक्त ही पद्यका प्रतिविम्ब पारस प्रथम हुआ करता था। मुराराम कवि थे और कविता भी। अध्यात्म-वर्णनमें उन्हें विशेष रस आता था। मुराराम आगेकी सभी अध्यात्म-वर्णनार्थमें-के वे जो महाकवि बनारसी-रामसे प्रारम्भ हुई थी।

मुरारामका साहित्यिक नाम निरवधारण अकारणों कागजीया अतिव पार का ज्ञा कि ‘जैनतन्त्र और ‘पारसपुराण’ के रचना-संबन्धमें प्रकट है।

मुरारामने विपुल साहित्यिक निर्वान किया और वह सभी पदम ठावा बनारस है। इनकी रचनाका विचार है तो कोपक भी। प्रसार इनका सबसे बड़ा गुण है। करमता और प्रसार विनी भी ऐसीही गुणाव बना देने है। फिर मुरारामकी अतिरिक्तमें तो स्वाभाविकता भी है। काव्यकी दृष्टिसे उनके साहित्यिकी ही अर्थमें विवका दिया जा सकता है,, एक तो गुणक नाम और दूसरा मशहूर। गुणावकावमें उनके द्वारा रचित ‘मुरारिनाम ‘वर्तक बनारी विनितिया’ बारह भावनाएँ बाईस पद्यक और रसोय व्यक्त है। मशहूरकाव्यके नाम उभाने शार्ङ्गपुराण का निर्वान दिया। यह उच्च कोटिकी कृति है। मरुकाकीम हिन्दीमें उतारा प्रतिष्ठित स्थान है। इनमें भवमान् पारसकाव्यो भावना रसर ही प्रमुख है। गुणाव रचनाओंमें अति है। तो अध्यात्म भी। जैन पद्यन की अति जैन साहित्य में अति और अध्यात्म निगान्त गुणन दो बहन् बहो है। अतिवाचनका बाना समग्रित्त बारह ही बने है। मुरारामकी रचनाओंमें भी ऐसा ही है।

जैन-क्षत्रक

इनकी रचना वि स १७८१ ईस वृष्ण मकरसी रविवारके दिन गुण हुई थी।^१ इसका रचनेकी प्रेरणा वर्मानुप्रायी साहू हरीबिहारे मिली थी। इनमें

१ अनेकाल वर्ष १ मिरास १, पृष्ठ ४, १ ।

२ इसका प्रकाशन जैन साहित्य मन्त्रालय काव्यसंग्रह, बनार और ‘मिलनाली प्रचारक काव्यसंग्रह, बनारस से हो गुण है।

३ तत्पश्चात् इत्यादिवा बीह पात्र तम कीम ।

विधि तैरत रविवार की क्षत्रक समाप्त कीम ॥

जैनतन्त्र कम्पकता अतिम दोहा ३ व २ ।

४ हरीबिह साह क गुणव वर्मानुप्रायी का

दिनके वही हो थोरि कीमि एक छवि है ।

१७ वसित सबसेया दोहा और छन्द है। इस छाने-म काव्यके प्रारम्भमें अहम्भ
तिष्ठ शिवशायी और साधुभाको स्तुतिर्षी है मध्यमें अछार संछारस विमुक्त
शेनेकी बात और अन्तमें कुछ आध्यात्मिक उपदेश तथा जैनत्वकी महिमाका
वचन है।

यह संछार अछार है। इसमें जन्म और मरुपका चक्कर चला ही करता
है। एक ही ममसमें बड़ी तो जन्मकी बचाइकी बचतो है और वहींपर पुन
दियोगने हाहाकार मचना है। निम्नु सब कुछ जानने हुए भी मरु मूढ़ नर पेउता
नही और करोड़ोंकी एक-एक घड़ीको व्यर्थ करना ही जाना है

‘काह घर पुत्र जाचो काह के बिपाग जाचो
काह रागरंग काह रोसाछरु करी है।
जहाँ मानु उगल उछाह यीन गान देखे
मौझ मर्म छाहा जान हाथ हाथ परा है ॥
तेमा जग रीति की न देखि अचमान हाथ
हा हा नर मूढ़ तेरी मनि जाये हरी है।
मनुष जनम पाप मावत बिहाय जाय
छोवन करारन का नृक एक घरी है ॥२३॥

सांसारिक प्राणी चाहता है कि किसी प्रकार सम्पत्ति मिल जाये तो हृदयकी
सभी मनस्वीज अभिलाषाएँ उपछम हो जायें। फिर तो एक माछाच बन जायगा
पत्नीका बहुता नष्ट जायेगा और मुठा-मुनका ब्याह कर देना भी बाँट लूँगा किन्तु
अचानक जन का जाना है और शतशतकी बाजी दरीकी दरी ही रह जाती है,

“आहय है धन होव किमी बिच
नीमव काज मर बिचरा बी।
गैद बिनाय कर्म गहवा बहुत
व्याहि मुनामुन बरिषि जाँडा ॥
बिनाय बी दिन जाहि जमे
कम जानि अचानक देन दगा आ।
अमल सब निरकारि गये
रहि जाव दरी गानरज की जाती ॥२४॥”

फिर फिर जेरे जेरे जानन का अन्त जयी
उनकी बदल यह मेरी मन माने है ॥
जैन राजक कथकथा १ १२।

मनवान् सिद्धने ध्यानरूपी भविष्य कमकपी धनुषाको शिककर बल्य बाला है । बन्धुने दिव्य ज्ञानकी क्रियासे संसारके बीबोला लोककपी जगत्कार नष्ट कर दिया है । यह मनवान् सिद्धकोट्यम बसते हैं । मग्न बनके जगत्को बिकास बृद्धि केते हुए अपनेको पौरवान्वित मानता है ।

ध्यान हुताश्रय में करि हृष्य शोक दिधी सिधु ऐक निचारी ।

शोक हस्त्ये मविकोकन की वर केवक ज्ञान मपूर्य अचारी ॥

शोक ककोक निकोक मध शिष ज्ञान्य कशामृत पक पलारी ।

सिद्धन शोक कसे शिषकक शि-है पगकोक किकक हमारा ॥१॥

मनवान् नेविनायकी स्तुति करते हुए मग्न बहता है कि ऐ मनवान् ! जिस तरह आपने जपसेन कुमारीके बन्धनरुद्धि दुःखको नष्ट कर दिया शोक जैसे ही मुझे भी इस संसार जालसे मुक्त कर दी । मग्नको मनवान् की इस चर्चामें विश्वास है

‘कामित शिषंग धम देखै दुख होय मम

कालक जगज जैसे वीर्य मानु भासतै ।

बाक जहानारी उग्रसेन की कुमारी

बादीमान तै बिकारी जन्मकारी हुलारात तै ॥

मीम मवकमव में भाव न सहाय दरामा

जहो बनि नामी तकि छाबी तुम पास तै ।

जैसे कृपाकान् बन जीवन की बन्धु छारि

त्यों हा दास का लकास कीजै मवपस तै ॥ ४

मनवान् विश्वास अपने देवम है । जिस किसीमें भी अपने देवके कृत्यम हो मग्न उसकी बन्धन करनेकी तैयार है । ऐसी बहारता बहुत कम जनोंमें देखो गयी है । प्राय मग्न ऐसे रहे हैं जो सचार्थको नहीं किन्तु देव-वशेषदे जपासक होनेम ही अपना बहुभाष्य समझते हैं । भूतद्वारा उन ध्यान मग्नोमें नहीं हैं । आध्यात्म समस्तमग्नकी भांति उनकी भी एक कलहटी है जिसपर जरा चरनेवाक्य ही बनना आरम्भ हो सकता है । देखिए,

‘जी जगजस्तु समस्त हस्त तक जेमबिहारी ।

जगजग की समस्त सिधु के वार अवारी ॥

आदि-अष्ट अधिरोधि जगज समस्त सुखशाली ।

गुन जगज सिद्धमार्हि रोग की मार्हि निघावी ॥

माधव मदैव जहा किनी पदमाल के वृद्ध पद ।

दे किन्हु जाव जाके चरन जमा जमी मुक्त देव यह ॥५॥”

मूषर विद्यास

मूषरदासकी छोटी-बड़ी रचनाओंका संग्रह है। इसका एक प्रति बम्बपुरके दोल्फिनाके मन्दिरमें सेप्टेन नं १३२ में मिलता है। उसमें ११९ पद्य हैं। एक मूषर-विद्यासकी सूचना काद्यो मागरी प्रचारिका पत्रिकाक इस्तकसित हिन्दी प्रबोधि चौखटमें जैनाधिक विवरणमें अंकित है।^१ इस विवरणके सम्पादक डॉ पीताम्बरदास बरुवाल से। यह प्रति प्राय-मोड़ना डा०-इटीमा बि०-सस्तनरु के गहनबाडे काहा रिक्कदास जीने पाठ देकनकी मिली थी। डॉ बड़ध्यासन सम्पादकीय टिप्पणीमें लिखा है 'मूषरदासजीकी इन रचनाओंमें कुछ ठी स्तुतन हैं और कुछ अनुवाद हैं। मागरीं यद्यपि कविका लक्ष्य ब्रजभाषाकी ओर मुका हुआ है फिर भी उन्होंने कहीं-कहीं स्तुतनभाषा काहीबोलीका भी प्रयोग किया है। बोझ-सा प्रयोग गुजरातीका भी है।'^२ 'मूषर-विद्यास जिनबाणी प्रचारक कार्यलय कलकत्तामें प्रकाशित हो चुका है। इसमें ५१ पद्य हैं।

मूषरदासका विश्वास है कि यदि भवसागरका पार करना चाहते हो तो भक्तिवर्णी ब्रह्मज सदाओ 'मूषर जो भवसागर तिरना सबिन ब्रह्मज सजी ॥ ये भवसागरे नाममें जसीम बल मागत है। यदि किसीन ब्रह्म-मुबारसने अपनी रचनाकी नहीं पोसा तो वह भ्रम है।

'समय मुबारम मीं नहिं चाहै, सो रचना किम काम की ॥

अपि भाका जिनवर नाम की ॥३९॥

भक्तने भगवान् बलिजनासे प्रायना की कि है भववन् । तुम कल्पवृक्षके समान हो मेरी मनोकामना पूरी करो। मुझे हाथी-बोझ नहीं चाहिए मरे हृदय में तो आप तनक बनो बरनक मुझे मोछ न मिल जाये।

'तुम किमुचन में कछप पदवर पास मरो भगवान जी ॥

ना हम मींगे हाथी बोझ ना कछु सपति भान की।

मूषर के डर बसा जगत गुरु, लख कौं पद् निरधान जी ॥३९॥'

पद्मप्रद

मूषरदासका 'पद्मप्रद' बहुत पद्यों की प्रकाशित हो चुका है। एक 'पद्मप्रद' बम्बपुरके पण्डित कृष्णकरजीक मन्दिरमें गुप्त नं १२९ और सेप्टेन नं ३३३ में मिलता है। जैसे तो भारतके विभिन्न जैन भण्डारीके विविध मुद्राओंमें मूषरदासके पद

१ कदाही मागरी प्रचारिका पत्रिका "दोऊवे कल्पल इस्तकसित हिन्दी प्रबोधि चौखट जैनाधिक विवरण १९५९ ई" प्रतिष्ठित १।

२ वही।

विपरीत हुए हैं। प्रकाशित पदसङ्ग्रह^१ में ८ पद और विपरीत गारि हैं। उनका विपरीत मिलान किनबार्चा और मुहरी भणित्त सम्भगित है। जनेक पद आध्यात्मिक भावों के चोटक भी हैं। नगरी चेतनानी हैते हुए लिखनके पीछे कैमोनी अचनी वरम्पण है। मुहरवासी इस बीबीउर कबीरवा प्रभाव स्वीकार नहीं किया था सजता।

यह बीव सत्तारके मुख और कैमोमे सराबोर होकर भनवान्वा भाव केना भी मुख बाया है। कुमोमे ता सको भनवान्वा धारनमें बाती है, हिन्दु मुखमें वो भनवान्वा अलि वर बही सजता घण्ट है। बड़ी भण्ट कवि सत्तारकी अमारठाकी वजलता हुआ बीवकी भनवान्वा मजनी और प्रेरित कर रहा है,

“भगवन्त भजव क्यों भूका रे ?

बह सत्तार रन का धुपना तन धव बारि-बलूका रे।

भगवन्त भजव क्यों भूका रे ?

इस बीवम का बीव भरोमा पाचक में लक-लूका रे।

काक कुम्हार निध निर छाड़ा क्या समझे भव भूका रे ॥

भगवन्त भजव क्यों भूका रे ? ॥

स्वारस मारो पाँच पाँच तू परमारव की लड़ा रे।

कहू कैम मुख पव प्रार्थी काम कर कुर भूका रे ॥

भगवन्त भजव क्यों भूका रे ? ॥

माह रिहाव कल्ला मति मार निर कर कँव बलूका रे।

मज जो राजमगीवर मुखर की कुरमति सिर भूका रे ॥

भगवन्त भजव क्यों भूका रे ? ॥”

न जाने वह मीन का जाने इनलिम् भगवान् जिनैरके वरपोकी तो कमी हिम्बरन करना नहीं चाहिए। उनके दखन-माचके हैं। कुछ भव बाती हैं और वृम्भ-से तो बड़े-बड़े पाप भी गष्ट हो जाते हैं। भनवान्वा वरपोका एकचित हो ध्यान करनेसे मनोबामभाई पूरी हो जाती है। भनक सजटित हो बड़ते हैं और पाप टन जाने हैं। म्पनकके मुकाठ ही बीहूम्पी बून भी लड़ जाती है। भण्ट कवि मुहर वापका वचन है कि वजनक कक वजलन आकर गहीं लह जलता तजनक भनवान्वा भन के। वाने अधिक प्रविष्ट हो जानेसे कूप बीरना वानुर्व नहीं है।

“जिबराज वारन मम मति विधरी।

को जाने किहि बार काल की भार अधवक जानि वीरे ॥

हेलत गुन भक्ति जाहि हसी बिस पूजत पातक-पुंज गिर ।
 इस ससार-सार-सागर सौं और न कोई पार करे ॥
 इक चित्त प्यासत भोजित पावत भावत मंगल विषय री ।
 मोहनि बूक परी माध बिर मिर जावत ललक करे ॥
 लखौं मजन सौंवार सपानी जनकी कछ नहि कंठ करे ।
 भगनि प्रवश मनी घर 'मूंदर लोह' रूप न धार करे ॥

परमार्थ जलझड़ी

जीनेमें बख्शीयाँ मिलनेकी परम्परा बहुत पुरानी है । इसकी शुरुआत श्रीकृष्ण रामकृष्ण और विनवास जादि सभीने बख्शीयाँ मिली है । मूंदरवास-की इस जलझड़ीमें केवल पाँच पद्य हैं । पं पन्नासाह बाकसीबाह-द्वारा सम्पादित विनवास 'संघ' में इसका प्रकाशन हुआ था ।^१

मनको सीख बैठे हुए कवि कह रहा है कि जो मेरे मन । तुझे इस संसारमें थोड़े ही दिन तो बीतित रहना है इसलिये तू मगवान् जिनैश्वरके बरसाते प्रेम कर । जिनैश्वर भक्तिके बिना करोड़ बरसा तक बीतित रहना भी व्यर्थ है । जब तुझे नर परम प्राप्त की है तो जानो मुझकी बात समझकर भयवान् 'जिन' की भक्ति कर जब मन मेरे से जुग जुग मिल सजानी ।

जिनवर चरना से कर कर प्रीति सुझानी ॥

कर प्रीति मुझकी सिखसुख जानी जब बीतव है पच दिना ।

कोहि बरम बीबी किस लेख जिन करणामुख मलित बिना ॥

नर परब्रह्म पाव भति उत्तम गृह बसि यह काहा करे ।

समझ समझ बीसें गुह जानी साल सजानी मन मरे ॥३॥

गुरु-स्तुति

मूंदरवासने वो गुरु स्तुतियाँ की रचना की थी और बोना ह्री विनवाजी संघ में प्रकाशित हो चुकी है ।^२ जीनासे देव सारन और मुबरी पूजा बहुत पुराने समयसे चली आ रही है । मुझके बिना न तो भक्तिकी ही प्रणाली मिलती है और न ज्ञान ही प्राप्त होता है । इन्हींलिए एक ओर तो ज्ञानिधर्म गुरुकी महिमा है तो दूसरी ओर भक्त भी मुझके बिना नहीं चल पाता ।

यही मूंदरवासजी नमः शृंगारजीकी काटना चाहत हैं विष्णु बनरी पूरा

१ इतिहासवादी समग्र विद्वान् सम्राट् संस्करण पृ ५५६ ५७ ।

२ इतिहासवादी समग्र विद्वान् सम्राट् संस्करण सिम्बर १९३३ पृ १२ १३१ ।

मिस्वात है कि मुक्त अनुग्रह बिना ब कट नहीं सकनी । मुक्त एक उस राजबीरकी सीति है, जो भक्तकी रोचही तो गुरन्त ही ठीक कर देता है । उसका मुख केवल परीपरेसे पान्धित्य^१ बाधा मुक्त नहीं है अपितु वह स्वयं भी इत सज्जारे ठाठा है और दूतराको भी तारता है । देखिए,

“बड़ी दिगम्बर मुख चरन कम तारन तरन जान ।

ते धरम गारी रीत को हैं राजबैध अहाव ॥

जिनक अनुग्रह बिना कभी बहिं कटे कम अंजार ।

ते साधु मेर डर बसाहु, मम हरहु पातक पीर ॥

जैन मुक्त उपस्थी होता है । वे जोड़को अपनी होनहारिबानी अपने पर्सोकी कतु व गुरुपर बाधकारी मयावह पठोमें ट्यू-ट्यू करते बुद्धिकि नीचे और पीठ-पातमें तुपापकून ली और सरोवरार्थ टटपर ध्यान धारण कर बैठते हैं । नूबरपाठ ऐसे मुक्तों अगम भूमि में स्थापित कर अपनेकी औरकान्ति मानने हैं^२

‘बेठ तपै रवि भक्तो सुखी सारन-भोर ।

सैक-सिन्धर सुनि तब तब हासैं ममल करोर ॥

ते गुरु मेरे मज बजो ॥

पाउम रन बराबरी बरमे छकवर बार ।

तकनक निजसे साहसी बाजे अज्ञाचार ॥

ते गुरु मेरे मज बसा ॥

सात बड़े कवि-मद गल्ले हाई सब बज राव ।

साक हरगिनि क लड़े मरु ध्याव अगाव ॥

ते गुरु मेरे मज बसा ॥

बह विधि बुद्धर तप लपै सीमों कमल मझार ।

जागे महज सकल में तनसी ममल बिकार ॥

ते गुरु मेरे मज बजो ॥

मुक्तवाचका मुख वह ही है जितने इन्द्रियाणी मध्यमें बिना हो और मुक्त तथा वैमवाकी लाभ पार दी हो । जो पत्रके रंजकहर्षोकी कोकल ध्वजमोर पीडना वा और मज पतके रिझते पहरमें बाधा-ना सरीरवा सकोष कर भूमि बज मो केना है । वहने वा अनुसन्धिनी केना सजाकर इन्दीवर चकना वा भव उमीनको रंग-बेजकर बनना है । ऐसे मुक्तोंके चरण जहाँ पड़ते हैं वह रघव

१ बड़ी बरली मुख लुठि, ५ १४८ ।

२ बड़ी, इतनी सुल्लुनि चह १२ ।

दीर्घशेन बन जाता है। उस बूकको मस्तकपर बसाते हुए भूधरदास अत्यधिक पीरवान्भित है^१

ईश-महक में पावते कोमल सेज पिछाच ।
ते पश्चिमनिशि भूमि में सोवै संचरि काय ॥
ते शुद्ध मरे मन बसो ॥
गज चर्दि चकहे गरुड सों सेना सजि अमुरग ।
निरखि निरखि वग वे चरै पार्श्वे कण्ठा भग ॥
ते शुद्ध मरे मन बसो ॥
वे शुद्ध चरन जहाँ चरै जग में पीरन लेह ।
मो एक भग मस्तक चढ़ा 'भूधर' भगि लेह ॥
ते शुद्ध मरे मन बसो ॥

बारह-भावना

यह जनेको बार प्रकाशित हो चुको है। अभी अभी ज्ञानपीठ पुरस्कारित म मो हस्तप्र प्रकाशन हुआ है।^२ इसमें साधारणिक जीवनकी अनारदाको सरसताके साथ कहा गया है। हम संसारमें राजा और रंक सबको मरना है। मरते समय कोई रोक नहीं सकता बहीसे बड़ी ताकत भी नहीं। यह जीव संसारमें जब एक रहा दुखी रहा चाहे समय पास बन वा या नहीं

“राजा राजा कन्नपति हासिल क असचार ।
मरना सबको एक दिन अपनी अपनी बार ॥
एक एक हुई दुखवा मात-पिता परिवार ।
मरती बिरिया जीव को कोई न राखन द्वार ॥
शाम बिना निर्जन हुली लुप्तावस्था जगदान ।
कई न मुक्त संसार में सब का देखो काल ॥
आप जनेको जबतरे मरै जनेको हीन ।
तू कहहुँ हम आब को साथी मगा न कोष ॥

जिनम्ह-स्तुति

भूधरदासके द्वारा लिखित तीन जिनम्ह-स्तुतियोंका प्रकाशन जिनवाणी सप्तह'म ही हुआ है। जिनमे-से अभी ज्ञात कुछ एक'वाणी सरन स्तुति जिन'ड सपीन नके

१. वही दूसरी प्रकाशित, पृष्ठ १२१।

२. ज्ञानपीठ पुरस्कारित भारतीय ज्ञानपीठ कार्या १९५७ ई. अक्टूबर ६, ७, ११, १२, १३।

३. हरमिन्माली जयन्त ४ इ. ३८ १९८३ ३३ ३३।

साध 'आनरीठ पूजाभक्ति म भी छरी है ।

संसारमें दुष्ट कर्मोंके ॥ कारण हम बीबनो विविध दुःख निपटै है । हम एक बहुत बड़े दुःखमेंके समान है । उससे छुटकारा पावके लिए दुःखमें मल पीनरपाक प्रभुमें प्राप्त करना कर रहा है ।

अही प्राप्त शुद्ध एक मुक्ति अरु हमारी ।
 तुम प्रभु बीबनबाच मैं दुःखिया संभारों ॥
 हम जब-जबके माहि काक बनादि गमाया ।
 भग्नो बहूगति माहि भुग बहि दुःखबाहु पाया ॥
 कर्म महामिषु और एक न काम करै जी ।
 सब साधे दुःख देखि काहु सों न करै जी ॥”

पाप और पुण्यमें भिन्नकर पीछेमें बेहो काम हो है और एकद्वी पापपूर्वमें बहुत अधिक दुःख बिना है । है जयबन्ध ! मैंने हमका कुछ नहीं बिनाया था ये तो अकारण ही बेटी बन गये है । अब मैं आपके सुखमकी सुनकर आपकी घरमें आया है । है नीति-निपुण जयराय ! हमारा स्वागत कर दीजिए ।^१

“पाप पुण्य भिन्न होय पावनि बेड़ी छारी ।
 उन काराग्रह माहि मोहि दिवा दुःख आरो ॥
 हमकी बक विचार मैं कतु माहि किया जी ।
 विन कारण जयबन्ध बहुविध रीर कियो जी ॥
 अब आओ तुम बास सुन भिन्न सुखस तिहारो ।
 नीति-निपुण जयराय कोठे स्वागत हमारो ॥”

सुखरकी भक्तिमें स्वाभि-सेवक धाम ही प्रमाण है । फिर भी हमका सेवक बुझानकी विनीती अवस्था एक नहीं पहुँचा है । अब कहींपर भी ऐसे विविधाने नहीं देखेंगे । उसने धुना कि जयबन्ध पत्तिरोर। उद्धार करनेवाके है और वह भी जयन बुझाका केवर लवके पास पहुँच गया

“बे जयपूज परम शुद्ध नामी बलिष्ठ जयारुन जंतरजामी ।

बास बुझा तुम अति उपगारी सुमित प्रभु ! अरुबास हमारा ॥१॥”

मल-जबमें आराम लज्जक बने और समाधिपरकपूर्णक कष्ट हो । ऐसा लोक-प्राप्ति एक होना रहे । वह सब कुछ भयवान्की यन्त्रिणे ॥ सम्भव ॥ और यजमान्

१ आनरीठ पूजाभक्ति पत्रक ३, पृष्ठ २२२-२२३ ।

२ पृष्ठ २२२ ।

३ पृष्ठ २२३ ।

४ हरिभक्तनाथी पत्रक, पृष्ठ २३९ ।

नी मन्त्रि भी भगवान्की कृपासे ही मिल सकती है । देखिए

‘भर भव अनुभव आत्मकेरा; होहु समाधिमरण निग मीरा ।
जबकीं जबम जगत में कापों काक कविय बर कहि सिब साधी ॥
तबकीं ये प्रापति भुस हुओ मन्त्रि प्रताप मगारय पूर्वी ।
प्रभु सब समरण हम यह कारें भूषर भरज करत कर जारें ॥’

पादवन्ताय स्तुति

इसमें भगवान् पार्वन्तायकी महिमाका बचन है । इसका प्रकाशन ‘जिनवाणी संग्रह’में हो चुका है ।^१ कविने लिखा है भगवान् पादवन्तायका नाम सुधारसके समान सीतलता और शान्ति प्रदान करनेवाला है । उसकी पूरी महिमा बारीमें छल भी समर्थ नहीं है फिर भी तो कष्टसाध्य ही कर्तृप । जब तो यह ही प्रार्थना है कि अवश्य मैं मोक्ष प्राप्त करूँ तबतक प्रत्येक क्षणमें आप स्वामी और मैं सेवक रहूँ,

‘पारस प्रभु को नार्हें सार सुधारस जगत में ।
मैं बाकी बकि जारें अजर अमर पद धूक वह ॥ १ ॥
बो अगम महिमा सिधु सादर राक पार व पावहीं ।
तबि हासमय तुम दास भूषर भगतिबध बस गावहीं ॥
जब होत अर-अर स्वाभि तैं मैं सदा सेवक रहों ।
कर कारि यह बरदान भागी मोक्षपद जावत रहों ॥ १ ॥’

पादवन्ताय स्तोत्र

यह स्तोत्र भी कर्पूरुत ‘जिनवाणी संग्रह’में ही छप चुका है ।^२ इसमें कुल २२ पद हैं । बौद्ध-बीनार्ईका प्रयोग किया गया है । स्तुतिको अपेक्षा यह स्तोत्र अधिक सरस और भीमन्त है ।

भगवान् पार्वन्तायके पदका वर्णन जब चार आंगके चारक मुनि भी नहीं कर पाते तो एक साधारण मन्त्रकी क्या सामर्थ्य है जो उसका वर्णन कर सके । किन्तु भगवान्की भक्तिसे प्रेरित होकर उससे जो कुछ करते बतला है, वह करता ही है । इस भाँति मन्त्रकी लघुताका यह बिज जनीव गुहायना है

‘प्रभु इस जय अमरव ना कीय । जासों तुम यत्न वर्णन हाथ ॥
चार शान चारी मुनि जके । हम से यह कहा कर सके ॥

१. पृ. १४ २४३-२४ ।

२. पृ. १४ २४५-२४ ।

३. पृ. १४ २४६-२४ ।

बहु बर बालक बिहबल हान । ब्रिज महिमा बर्नन हम कीन ॥

पर तुम मन्त्र पढ़ी पापाक । तिस बख होय कहीं गुणमाक ॥

मिथ्या-मनवा गुन बना हुआ है । हमारे जग और मरने के फल बने हैं ।
बहु दुःख कर फलको देखेवाला बस निवा मणिमयो मुठारके और बिछोने नहीं
कट सनना

“ब्रह्म जग मिथ्यामय भूक । जन्म मरण कागे तहैं दूक ॥

सो कबहूँ ब्रिज पकित कुसर । कटे नहीं तुल फल बाजार ॥ ११ ॥”

पंजीमाव स्तोत्र

बहु बालिदास मुनिने ‘एकीभाव स्तोत्र’ का पावानुवाद है । किन्तु इसका सफल
अनुवाद है कि मूलका रस नहीं पर भी विमृशक नहीं हो पाया है ।

ब्रजवासी की चक्रिणी गवासे का स्नान कर बैठा है, वह फिर कभी बरबिस
नहीं हो पाता । वह रंग स्थापना की बरतसे निकलकर मोलकी समुद्र में
मिली है

“रधादा गिरि उपमे योस सागर कौं पाई ।

तुम चरणाशुभ परस अकि रंग सुखदाई ।

जीवित भिन्नक जगो ज्ञान रसि दूख तसै ।

अथ बहु हो न मकीन कीव जिन संछप पारि ॥ १२ ॥”

तत्पदिष्टा बचके जारी तुम मनेसजी कहने हैं कि है बिन । तुम लोहितमय
हो और बुरिदकी जन्मवार निवारण करनेवाले हो । जबतक तुम मेरे चित्तकी
बरसे बतोगे तबतक बापकी जन्मवारकी पहुँचा बचकाय ही नहीं निकल पाता

“तुम जिन जाति रचक्य बुरिद जैबिपारि निगरी ।

सो गमेस तुम कहैं तप विद्या मन जारी ॥

मेरे चित्तपर भाई बड़ी समीप्य पावत ।

बाप किमिद अचलाय तहाँ सो क्यों करि पावत ॥ १३ ॥

पार्ष्णीपुराण

इस महाकाव्य की रचना वि. स. १७८९ आषाढ शुक्ल ५ को हुई थी ।

१ लोचना पञ्चदश विनयाली समरमें हुआ है । समरमें कुल २० पद हैं । विनयाली
समर, स. २४९, २५० ।

२ बन्धु सगरु है सवध और बवासी कीय ।

मुनि बपाहु विधि पबमी जन्म समान्य नीय ॥

पार्ष्णीपुराण १२२वीं पद, स. २१ ।

इसका प्रकाशन बहुत पहले जिनमाली प्रचारक कार्यालय कलकत्ता से हुआ था । यह एक मौलिक कृति है, अर्थात् किसी संस्कृत रचनाका अनुबाद नहीं है । जैन-परम्पराय विरित ज्ञान विज्ञानके लिए कुछ ऐसी निश्चिन्ता बाँधे हैं जो प्रायेक रचनाय वासी बाँधेनी और यह इसमें भी है । पूर मण्डका वनन मनी माँ और प्राकृतिक धोत्राका वक्षेय मीके धोत्रा स्वप्न और पञ्चकस्यापका भक्ति प्रवाह प्रत्येक कृतिम निकेया । लैलो-वत मिमता ह्री मनीमता कही का लकटी है । मूचरबाइकी लैलो प्रवाहयुक्तयुक्त है और माया कामलकाम्य वरावली से समन्वित ।

पार्श्वपुराण एक महाकाव्य है । इसमें ९ अधिकार हैं । मन्वान् पार्श्वनाथ की जन्मस ही मही किन्तु पूर मन्वाय केकर निर्वाण पर्यन्तको कथा है । प्रथम अधिकारमें अन्तिम वय तककी कथामें एक सम्बन्धनिर्वाह है । अन्तर्गत कथाएँ मुख्य वचनककी पुष्टि और अभिवृद्धि करती हो हैं । बायक धर्मिय राजकुमार और लीनकर है । ध्यातरसकी प्रधानता है, वेसे अन्त रवाका भी सदावेस हुआ है । सभी अधिकारमें दोहा चौपाईका बहुत अधिक प्रयोग है कहीं-कहीं सौरस और छन्द भी जाये है । विविध प्राकृत वृत्तोंका वचन है । प्रारम्भ और अन्तमें अन्वयावरण भा है । काव्यका नामकरण नावकके नामपर हुआ है । इस भीति महाकाव्यके सभी छन्दय इसमें वर्तमान हैं ।

प्रारम्भय ही मन्वान् पार्श्वनाथकी स्तुति की गयी है । कविकय अट ५ विरवात है कि जन्मो वन्दना करेसे अनादिकासे बने हुए कम पूर जायेसे

“बाव मिह अछ हँहि विचम विपवर नहि छँडे ।

भूत प्रेय विठाक क्याक बैरी मन छँडे ॥

नाकिनि छाकिनि भगनि और नहि मथ उपजाये ।

राग लोभ मथ आदि विपत मेर नहि छायै ॥

आ पावसेह के पद कमक हिय धरन निज पद मन ।

छूँरे अवादि बैचन बने कीन कथा जिनसे विचम ॥ १ ॥

महापद्म आनन्दने मुनिवर विपुलमनीने पूछा कि प्रतिपाद्यनु उरवान को प्रवट अनीन अंग । पूछक मन का पुष्प फल क्या कर देय धर्मग । गुम मन य

(१) महाकाव्यके छन्द लक्ष्योक्ति विर जायार्थ विरवातका उदाहरणका अन्त परिच्छेद, पृष्ठ ११४-१५ देखिए ।

२. भारतपुराण, पृष्ठ १ ।

उत्पन्न निर्मिर दूर करण रवि कप । यह मुक्त मरम मिटाइए, नरी बीगनी मृग ॥
अर्थात् मयमान् मिलेगन्त्री मयेगन प्रतिमा पूजक बनको पुष्प एक हीसे प्रदान करती
है ? मुनिग को उत्तर दिया यह दत्त प्रभार है

अये विष्णुमणि रतन मगनीजित दातार ।
तथा अयेतन विष्णु यह बाँझ पुन हार ॥
अ्यों पावन मुन कनकन दायो बन को दूध ।
र्यों अचत यह देत है पूजक को मुक्त लेव ॥
मणि मन्त्राधिक जीवपी है प्रत्यक्ष कह कप ।
विष रोगारिक को दूरे र्यों यह अचहर मृग ॥^१

तपस्वी पार्ष्णीबाधपर वनके भीमने बहुत बड़ा उपसर्ग दिया । वाग्देवने उसे
हँसते-हँसते लेक किया । उसीबा एक विष मर्ग उपस्थित किया गया है । यदि
विषमग्न कृतम वाग्देवी नसोटी है तो यह वध भी उत्तम कर्मका ही विरचन
माना जावेगा

किङ्किर्जत कैलास कनक कनक छवि लज्जहि ।
सी करक विकरक जाक मधुमत्र त्रिभि मज्जहि ॥
मुँदमाक मक करहि काच कोचवनि करहि कव ।
मुक्त बुकिग मुँकरहि करहि निर्द्वैत मुक्त इन इन ॥
इहि विभि कनक बुक्केव वरि कनक जीव उपसर्ग किय ।
तिहुँ कोक वन विनयन प्रति बुकि हाक निज जीत किय ॥

मयमान् पार्ष्णी अनुषो केवकमान उत्पन्न हुआ । इन देवप्रभोंके साथ
मयमान्के समकक्षरवर्ग आया । मयमान्की पूजा की जीर तिर मुनापर सुनि
करण लमा कृतम। अन्तिम पद्य है,

“तिस कारण कल्पामिषि नाम प्रसु लक्ष्मण करे हम दात ।
कनको निवृत्त हाव निरवान जगनिवान् कुरै पुन दात ॥
तककी तुम करनम्बुज वात हम दर होहु नदी अरवात ।
और न कनु बीछा मगनाम यह दूषाक हीजे वरदात ॥

१ श्री पृष्ठ २६ ।

श्री, पृष्ठ २७ ।

२ श्री २२२ पृष्ठ २५ ।

४ श्री भाग्योन्निधिर १ ७२ ।

अन्य रचनाएँ

गज भावना और पंचमीर पूजा ने रचनाएँ हैं जिसका कि अभी पता चला है। वे दोनों टोकियोके दिगम्बर शैल मन्दिरमें विराजमान १८८३ 'पाठसंग्रह' में निबद्ध हैं।^१ इसी 'पाठसंग्रह'में 'वचनानि चक्रमतिकी वैराग्यभावना' नामकी रचना भी संकलित है। तीनों ही भूवरवासकी कृतियाँ हैं। इनमेंसे 'वैराग्यभावना' 'जिनवाणी संग्रह' में छान भी चुकी है।^२ बाईस परीषद् भी भूवरवासको कृति है। इसका पुस्तक प्रकाशन 'जिनवाणी संग्रह'में पृष्ठ ७, ११५ तक हो चुका है।

८७ निहालचन्द (वि सं० १८वींका अन्तिम पद)

कविहर निहालचन्द पार्श्वचन्द्र मल्लके बापक हरवचन्द्रके शिष्य थे। इनकी रचनाओंसे इनके पारिवारिक जीवनपर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। इनका लक्ष्य विविध होता है कि इनके जीवनका अधिकांश समय बीगात्म कटा। उनकी मामूलावा गुजरानी को लग यह स्पष्ट है कि वे गुजरानम ही करो उत्पन्न हुए हों। उनकी पाँच रचनाओंमें से तीन गुजरानीमें और दो हिन्दीमें हैं। इनका समय संवत् १८ के आस-पास है। निहालचन्द एक उत्तम कोटिक कवि थे।

अमीनचकी छोड़ोमें उनकी केवल पाँच रचनाओंका पता चला है 'मजिफ-इरोरास ओमविचारभाषा नवतत्त्वभाषा 'बीगात्मकी गवक और ब्रह्म वाचनी। इनमें अन्तिम दो हिन्दीमें लिखी गयी थीं।

ब्रह्मवाचनी

कविहर निहालचन्द्रकी यह एक प्रसिद्ध रचना है। इसीके आधारपर उन्हें ब्रह्मकवि कहा जा सकता है। इसकी रचना वि सं १८ १ वारिक सुदी १ को

^१ राजस्थानके शैल शास्त्रमण्डारोकी प्रत्यक्षता मान ३ शुभ ११११।

^२ इतिहासकी छपा शुभ १३११ १२।

^३ पदचन्द्र मल्ल स्वयं बापक हरवचन्द्र

कीरते प्रसिद्ध जाकी सामु मन भावनी।

बाके चरनारविन्द पुष्पत निहालचन्द्र

कीन्ही जिन मतिसे पुनोठ ब्रह्मवाचनी॥

मन्मथकी, २१५ कपड़ी अग्नि वस्त्रों, राजस्थानमें दिल्लीके इन्सिपियल मन्मथकी काग माय ४ अक्टूबर १९३४ शुभ ८८।

मुद्रितवाक्यमें हुई थी। इसकी एक प्रति बीजापुरके जगत जैन ग्रन्थालयमें मौजूद है। इसमें ५२ पद्य हैं। उपर उपरुक्त रचना-संग्रह दिया हुआ है। दूसरी प्रति 'जैन शिक्षाप्रणाली' आराधके हस्तलिखित ग्रन्थोंमें मौजूद है। यह प्रति भी मुद्रण एवं पुनः है।^१ एक प्रति यह है जिसका उल्लेख श्री मोहनदास कुमारीजी देसाईने किया है। इस प्रतिमें भी ५२ पद्य हैं। प्रति पूर्ण एवं मुद्रित है।^२

इसमें जैन-परम्पराके अनुसार जगज्जन्मिष्ठ ओ निराकार और बहुरूप की उपासना की गयी है। निराकार आत्माका ब्रह्म होनेके कारण उसमें ब्रह्मत्व और रास्यका गुट अहित है। निर्गुण-ब्रह्मकी शक्तियों सत्त्व, रजस्वती रचनाएँ जैसे मयुरता-निरुद्ध हैं। जैसे ही इसमें भी आकर्षक वस्तु आधोनी देखा गया है। जोकार कव जगज्जन्मिष्ठकी शक्तियों बड़ा गया एक पद्य देखिए,

‘आदि जोकार आप परमपर परम जोति

जगम जगोकर जगज्जन्म कन गावी है।

इसका मैं एक है जनेक भेद बरावी मैं

आधो जगज्जन्म जग बहुरूप है। छापी है।

सिद्धि सिद्धक मेव तीनों ओर तीव्र है

जग सिद्धि जगो निधि हाथक कदावी है।

जगज्जन्म के रूप में स्वकव मुक्तकोट हुंकी

देवी जोकार हर्षकव मुनि व्याधो है।^३

जोकार मन्त्रकी प्रशंसा करते हुए कविने लिखा है कि इसके बराबर दूसरा कव नहीं है। यह छन्दोंको निधि, सत्त्वोती शक्ति, मयुरोती महिमा जोकिर्लो मोव देव और मुनिजगो मुनि तथा जोकिर्लो मुनि देना है। यह चिन्तामणि

१ संस्कृत अक्षरे से अक्षर एक वाली गाय

पद्य अक्षरोंके निधि छिपीया मृदावली।

पुर में प्रतिष्ठ मन्त्रमुद्रावाक्य रूप देव

जगुँ जैन वर्म देवा पतित को पावनी ॥

मन्त्रावली, ११वें पन्ना प्रारम्भिक पद्यों।

रास्यवाक्यमें दिग्गति हस्तलिखित ग्रन्थोंकी छोग मन्त्र भव, १४ पृष्ठ-४८।

२ जेवा जगज्जन्म ग्रन्थोंमें निधि जैन शिक्षाप्रणाली आराधके मुद्रित हस्तलिखित दिग्गति-ग्रन्थ, ११वें पन्ना।

३ जैन धर्मरक्षितों तीनों गाय कव १ पृष्ठ ५, ६।

४ वही पृष्ठ ५५

ब्रह्मसूत और कामधेनुके समाग हैं। विद्युत् ज्ञानकी वृष्टि भी उसीसे मिलती है।
 'मिथुन की मिथि चन्द्रि देहि सगन को महिमा महन्तन की देत दिन माही दे
 यागी का ज्योति है सुकति देव सुमिषक, मोगी कू सुगति गति मति उन पोही है।
 चिन्तामग रतन कम्पकूट कामधेनु सुखक समाग सब थाकी परछाही है
 कई मुनि हर्षचन्द निर्वन्ध ज्ञान रहि क कर मध सम और मन्त्र माही है ॥

कवि निद्राप्रचण्ड सादृश्य-विधानमें निपुण थे। उन्होंने अपनी अमृता रिखाते हुए सादृश्यकी रचना की है। कविने लिखा है कि मेरा यह काव्य वाक्छेडाकी भाँति है। उनमें एकत्रियोंका होना स्वाभाविक है। परन्तु अपनी मृदुलि और उदात्तचित्तसे उनको सुधार के। मेरे हम काव्यका वं पवनके स्वभावसे स्वान स्वानपर प्रमिष्ट कर हैं फलवत् स्वभावसे एतचित्त होकर मुनें प्रमरके स्वभावसे बर्बरी सुपत्ति प्रमृष्ट करें और हंस स्वभावसे बुबाचो बुन लें

‘हम पै हवाक हलै सगजन चित्तक चित्त
 मेरी एक बाबरी प्रमात करि कीजिबी।
 मेरी मति हीन छत कीन्ही वाक कवाक हू
 अपनी सुबुद्धि से सुचार तुम प्राप्तिबी ॥
 पाल के स्वभाव है प्रसिद्ध कीन्ही और और
 ब्रह्म स्वभाव एक चित्त में सुकीजिबी।
 एक के स्वभाव लें सुगन्ध कीजिया चरच की
 हम क स्वभाव होक गुन को प्रहीजिबी ॥”

पराकट हंसकी गजक

इसपर रचना-काल नहीं दिया है किन्तु इसका बचनसे ऐसा प्रतीत होता है कि इसका निर्माण बि. सं. १७८२-९५ के बीचमें कभी हुआ।^१ इसमें मुख्य तब बवाबके मुसिहाबादका बचन दिया गया है। उस समय बड़ी गवाब मुजानाह राज्य कर रहा था। गवाबके इतिहासमें स्पष्ट है कि मुजासहने ई. स. १७२६ से १७३९ तक मुसिहाबादकी गवाबी की। इसी आचारपर उपयुक्त संक्षेपी कल्पना की गयी है।

मुनि कान्तिदासजीने यह गजन ‘भारतीय विद्या में प्रकाशित करवा दी है। मुनि जिनविजयजीने बड़वा ऐतिहासिक सार भी दिया है।

१ येन विद्यालय मन्त्र व्याख्याती प्रति।

समय श्री प्रभाकर दीक्षादेववासी प्रति।

२ राजस्थानमें दिव्यदिने इत्यतिथित प्रणीती छोक, भाग २, अक्षरपुट, १६५० ई. १५२१।

४ भारतीय विद्या ब. १ अंक ४ पृष्ठ ४१६ २६।

८८ प० दीक्षतरामजी (वि सं १७७७-१८१९)

४ दीक्षतरामजीका जन्म जयपुर स्टेटके बसवा नामक गाँवमें हुआ था। आज भी यह जयपुरका एक कसबा है। यह दिल्लीसे बहमबाबाद जानेवाली री की ऐन्ड सी आई मार्ग का एक स्टेशन भी है।

दीक्षतरामजीके पिताका नाम बालनाराम था। उन्होंने अपनी प्रत्येक रचनाके आरम्भमें 'बालनाराम सुत दीक्षतरामेन' लिखा है। उनकी भाति लखेरवाक और सोन नासरीवाल था। वे जयपुरमें जाकर रहने लगे थे।

बसवामें दीक्षतरामजीके घरक सामने ही विशाख जैन मन्दिर था। वहाँ दिन पूजन आरतस्वाध्याय तथा उत्पत्तियाँ होती ही रहती थी। बालनरामें दीक्षतरामजीका झुकाव जैनधर्मकी ओर नहीं था। इसी मध्य कालका आना जयपुरा हुआ। यहाँ बनारसीदासजी अष्टात्म-परम्पराके अनेक विद्वान्मोक्ष जयपट था। उनमें ४ गुरु बसवजीकी सर्वाधिक स्वाति थी। दीक्षतरामजीने उन्हें गुरुवर्यके नामसे पुकारा है। उनके अतिरिक्त हेमराज सवानन्द जयराम विहारीदास फतेहचन्द कर्तुब और जयनारायणके नाम भी विशेषकरसे उल्लेखनीय हैं। इनहींमेंसे जयनारायणजीके उपदेशस दीक्षतरामजी जैनधर्मपर निश्वास हुआ और जानै चककर वह विश्वास जगाध मन्नाक रूपमें परिचित हो गया। दीक्षतरामने अपने गुरु जयनारायणका अनेक स्थानोंपर स्तवन किया है।

५ दीक्षतरामजीका व्यक्तित्व असाधारण था। वे एक और तत्काकीन जयपुर और जयपुरकी राजनीतिकी मूलभार थे और दूसरी ओर साहित्य-साधक भी। उनकी रचनाओंसे उनकी विद्वत्ता भी स्पष्ट है। संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओंपर उनका समान अधिकार था। उन्होंने जैन गुरुओं और आध्यात्मिक ग्रन्थोंका सफ़र हिन्दी अनुवाद किया है। उनकी गद्य हिन्दीकी अमूर्त विधि है। अष्टात्म आर्यदासी नामके ग्रन्थमें उनकी नीतिक नाम-प्रतिभाके वर्णन होते हैं।

६ दीक्षतरामजी जयपुरके महाराज सवाई जयसिंहके पुत्र जयसिंहके मन्त्री थे। माधवसिंह जयपुरमें रहते थे अतः ४ दीक्षतराम भी वि सं १८८९ से सं १८८८ तक जयपुरमें रहे। माधवसिंहके जयपुरवासी होनेपर वे जयपुरमें जाकर रहने लगे। उनकी कम्पा समय जयपुरमें बीता। जयनारायण होते हुए

१. पुस्तकालय कीकाओ जतिम प्रशस्ति।

२. बसुवा का गाँव यही जयपुर जय का गाँव।

मन्त्री जयसिंह की छोटी भाति महाराज जतिम ॥

पुस्तकालयकीकाओ जतिम प्रशस्ति।

भी पण्डितगोत्रा का हृदय उदार और स्वातन्त्र्य का । उनका जो समय राज्यकारणों से बचता था उसका उपयोग वे पूजन ध्यान अध्ययन और ग्रन्थ-निर्माणमें करते थे । उनका रहन-सहन साधु और पवित्र था ।

रचनाएँ

पं श्रीमन्नारायण स्वयं 'पुष्पाक्षर कव्यालोचन' की भाषा-टीका वि सं १७७७ ई की । तत्पुनरुक्त ग्रन्थों 'वसुन्धरीधाराकाचार की टीका टीकाका निर्माण वि सं १८८८ ई किया । उनके द्वारा 'पद्मपुराण की भाषा-टीका वि सं १८२३ आदि पुस्तक' की १८२४ 'पुराणविशेषपुराण' की १८२७ और 'हरिबोधपुराण' की १८२९ ई की । श्रीमन्नारायण के 'परमात्मप्रकाश' की टीका के विषय में डॉ ए एन कपाध्वने लिखा है इस बात का कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि इस हिन्दी अनुवाद के इस कारण बोलने और उनके 'परमात्मप्रकाश' की इसकी स्थापना मिली है । उन्होंने 'हरिबोधपुराण' के साथ ही 'श्रीपादचरित' का भी हिन्दी अनुवाद किया था । इन टीकाओं में मौलिकता मूल ही न हो ऐसी सरसता है जिसके कारण आज भी लोग उन्हें बहिर्मुख पढ़ते हैं । उनके दोन-चारोंमें केवल 'पद्मपुराण' पढ़ने के लिए ही हिन्दी सीखी और बाबा भागीरथ-जी से अनेक जैन 'पद्मपुराण' की हिन्दी टीका पढ़कर जैन-मठालों हो गये ।

'परमात्मप्रकाश' की टीका पं श्रीमन्नारायण की आध्यात्मिक प्रवृत्ति स्पष्ट हो गई । उन्होंने अज्ञातमन्त्राचार नाम के एक मौलिक ग्रन्थ का भी सुजन किया था । उन्होंने उसका दूसरा नाम 'मन्त्राक्षरमाहिका नामो स्तवन' भी लिखा है । यह पण्डितजी की समस्त काव्यशक्ति का प्रतीक है । इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतिमाँ विविध धारण मठालोंमें मौजूद हैं । बदा मन्दिर जयपुर वि जैन मन्दिर बदा और बदा मन्दिर दिल्ली की प्रतिमाँ मिले हैं । सभी इसका रचनाकार वि सं १७९८ विवा हुआ है ।

इस कृतिमें द्वितीय ५२ अक्षरों-से प्रत्येकको लेकर काव्य-रचना की गयी है । इसका पठन परिच्छेद है । पं श्रीमन्नारायण स्वयं पढ़ने मन्त्राक्षरमाहिका नामिका काव्य का उपेक्षा करता और मातृसमिद्धि-जी से सहजता के द्वारा ही हिन्दीमें प्रयोग किया । इस रचनामें गीता और श्रीमद्भागवत-जी से जैन काव्य भी है । इनके अति रसिक अंशोंमें ब्रह्म जीपई सबैसा नविस छाप्य बरवी भुष्टकिया अदिल्ल मोटक नववी भुष्टनप्रयात नाराय विधायी और तीरथार्थ भी नवित की ।

इसका विषय मणि और जम्बूतल होना ही से सम्बन्धित है। इसमें लयमय ५ पद हैं।

‘जम्बूतल बाटूझडी ये भक्तिरस अपनी चरम सोमावर पहुँच गया है। ऐसी माक-विभोरता ऐसी तल्लीनता बहुत कम रचनाओंमें देखी जाती है। पं. दीक्ष-रामने उम राग की गन्तवा की है, जो सबसे रम रहा है। ऐसा कोई स्थान नहीं मिला वह राम न हो

बंदी कबक राम की रसि तु रह्यो सब माहि ।

ऐसी हीर न रसिज जहाँ देख वह माहि ॥१॥

आत्मा और शिवेश्वरके करम कोई अन्तर नहीं है। अन कविने ‘आत्मदेव की सेवा करनेकी बात लिखी है।

‘तुझी आत्मदेव की रसि तु आत्म देव ।

आत्मदेव जगदेव जो देख देख शिवदेव ॥२॥

घरार अन्न कविमाने अपने देव ही अन्य देवाने की वचन दिए हैं। मूरखे दुष्कर्म रामकी और तुलसीने राममें दुष्कर्मका देखा है। नव कविमाने शिवेश्वरमें श्रद्धा भिन्नु और मूर्खे तीनों ही लिखा है। अन्य नारायण इन विचारोंकी सर उपा देखिए,

‘तुही शिवेश्वर मूर्खों मुपेकी प्रजापति

तुही हिरण्यगर्भ की अर्ध का आत्मपति

महा स्व अस्मि नृपति तुही शिवी रमायना

रमा तु नाम नाम माहि जलिन रूप है कला ॥५॥

नराधिप सुगन्धि और पद्माधिप तेरा भजन करते हैं। अनादिमानके कर्म दूर माय जाते हैं। हे ईश्वर ! न तु बाक है न बुधा है और न मूढ़ ही है। तू सबके भी है और एक भी है। तू ज्ञान रूप है और ऐश्वर्यका विधान है। इस भाँति भक्ति करते हुए कविने लिखा है,

नराधिरा सुगन्धि आत्माधिरा तुझ मर्मे

अनादिमान के तु कर्म ज्ञान त परे मर्मे ।

तुही तु माहि बाक है न बुद्ध है बुधा न है

अनेक रूप ज्ञान रूप हैस तू निधान है ॥५८॥

‘ॐ की अनेक कविनीने स्तुति की है। इन रचनामें भी नव कविने ॐ की अन्तर्गत भजन लिखा है।

‘ॐ’ सम को मंत्र तु नाहीं पच परम पद पाके मोहीं ।
 ॐ मन्त्र तु मगपत क्या ॐ भुति सधुति की मूपा ॥
 ॐकार रहस्य निरंजन ॐकार सकल भुति रजन ।
 ॐकार विधान समुपम ॐकार प्रमाण अगुपम ॥

जिनेन्द्रका हास आवाजमगके चक्करसे बच जाता है । ऐसे अनन्त हास भव समुद्रसे पार हो जाते हैं,

इक सब धरि बह तो मैं मिलिहु,
 तेरो दाम न जग में चलिहै ।
 तेरे दाम अर्जत तु उचरे
 सोकी पाव बहून जन उचरे ॥

नाबु ‘निरयोदी’ हाकर अर्चान् नमार त्याग कर जिनेन्द्रका ही वन्दन करत है । जिनेन्द्र अनुमृति कथ है । उनका स्वभाव मन्त्र हाता है और प्रभाव अमिग । अमिग इन अमिग-भावनाय । मोटक छत्रमें अमिग्यण किया है

“जे भाउ अनन्ता बसहि तु कथा मल जिन कथा दिह तु धरे ।
 ते अपहि तु तो ही है निरमाही छाहि सचाही ध्यान कर ॥
 तू है अनुमृती कथ विमृती नाहि प्रमृती कवापि धर ।
 अतिरिक्त विमाथा शुद्ध स्वभावो अमित प्रमाथो काक हर ॥

भगवान्की वक्ति करनेसे अनेक गुण उत्पन्न होने हैं । यह गुण बननी और शिवजननी दोनों ही हैं । गुणमाता अमिग ही मुरमाता भी है

‘मुरहरो अमिग तु नाथ भी उपमावै गुन धाक ।
 ताते गुन अमनी है शिव अमना विनु धाक ॥
 गुनमाता मुरमाव है तरी अमिग स्वाक
 और न मुरमाता प्रभू रह पार्य मुरसाक ॥

उक्त कवियोंकी जीमि पं श्रीकण्ठासम लिखा है कि वैष्णव मूर्त मुद्रानेके गुण नहीं होता है आनन्दरायकी लबा करनेसे ज्ञान उत्पन्न होता है । आनन्दरायकी लबा करनेसे भगवान्की वृत्तये ही प्राप्त हो सकती है

“मूढ मुद्राव कहा लख नहि पाव को ली ।
 भूदमि को उपदेस तुने मुनिग तु नहि लाकी ॥
 अकमृतादि अथा तू देह कबहू नहि मुद्रा ।
 मुद्रा जालमराज ज्ञान की मूल प्रमुद्रा ॥

ऐसा ता बिनु को कही की हूँ जिन शास को ।

मुनि सु भीमनी तारि हरि मूर्ति रही मति कामकी ॥”

४ शीतलपद्म छत्रवाला आदि के कर्ता ५ शीतलपद्मसे पुष्पक ने ।

८९ भवानोदास (वि सं १०९१)

बभारसमें रामचण्डपर एक जैन मन्दिर है जिसके शास्त्र-अष्टादशमें जनेका हस्तलिखित प्रतिपोंका संवत् है । एक प्रथम भवानीदासकी अठारह रचनाएँ लिखि-
वत् है । सभी हिन्दीमें है । उनपर रामचण्डानी अथवा मुञ्जराठीकी कोई छाप नहीं
है । इनका आधारपर यह प्रमाणित है कि उनका जन्म हिन्दी भाषा-आदिबोले प्रम
ही हुआ था । ‘कुटुम्ब छत्रक के तीन पक्षोंमें आपरके तीन श्वेताम्बर मन्दिर
और उनमें प्रतिष्ठित मुख्य मुनिबोला समय आदि दिया है । पहले पक्षके अनुसार
आपरेके चित्तामणिश्रीके मन्दिरकी स्थापना सं १६४ माघ बरी ५ की हुई ।
दुन्दे पक्षके अनुसार भीमचण्डर हवावाके मन्दिरमें जन्मानवशीकी प्रतिमा सं १६९८
की माघ बरी ७ की छत्र शीतलपद्मने स्वभावो जिनके चरणपर छत्राद् बहावीर
आया था । तीसरे पक्षके अनुसार मगवान् शीतलपद्मकी प्रतिमा सं १८१८ के
माघ सुदी १४ की प्रतिष्ठित हुई । इन त्रिणि लक्ष्मि आनरेके शास्त्र शीतलपद्मका
भी सम्मानपुष्पक करके किया है । अद्यपि जहाँने लिखेके समुपपत्तीके मन्दिर
की स्थापनाकी भी बात नहीं है किन्तु मुख्यता आपरेके मन्दिरोंकी ही है । इन
आधारमें यह अनुमान लगाया जातल है कि वे आपरेके रहनवाके ने और उनका
जन्म श्वेताम्बर आदिबोले हुआ था । ऐसा प्रतीत होय है कि उनके मुख्य नाम
‘मुष्प दानाजी’ का जो एक प्रतिष्ठित श्वेताम्बर साधु थे । भवानोदासने सं १८१
म वर्षप्रथम उनसे भेंट की । जहाँने मुष्पकी सं १८९ पीय बरी ८ बुद्धमणि
चारकी रातकी स्वभावानी होनेकी सूचना भी अपनी कृति ‘बोध बिचार भाषा’ में
लिखी है जो संवत् १८१ नातिक सुदी १ की रचना है । कवि भवानीदास
का रचना-काल संवत् १७९१ से संवत् १८२८ तक माना जाता आदि,
ऐसा ही उनकी कृतियोंमें स्पष्ट है ।

उनकी मजिहाय रचनाएँ मगवान् जिनग्रको लिखिते साधनित है । वीथ
व इमे जामो कुछ कृतिनामे साहित्यक चर्चा में की है किन्तु प्रमाणना लिख
की है । बभारस बाख्तमाना और जैन हिन्दीलगा-जीपी रचनाकोसे यह प्रष्ट है

कि उनपर बनारसीकी अध्यात्म परम्परा का भी प्रभाव था। भारमाको लेकर बारहमासोंका वर्णन करना जड़बुद्धके प्रति अनुभूति-परक भावोंकी प्रकट करना है। मयानीदासकी रचनाएँ इस प्रकार हैं श्रीबीस जिनबोळ पद्य — सं १७९७ अध्यात्म बारहमास — १२ पद्य — १७८१ ज्ञाननिर्मय बावली १२ पद्य — सं १७९१ कलकावलीछो — ३४ पद्य — सं १७९६ श्रीबीसीके कवित्त — २६ पद्य 'इतिपदेय बावली — ५२ बोझा — सं १७९२ पम्पवना अस्याबहुत ९८ बोम भाषा — ५२ पद्य — सं १७९१ मुमति कुमति बारहमास — १२ पद्य ज्ञानछन्द बावली — ४ पद्य — सं १८१० सरथा छत्तोसी — १७ पद्य नैमिनाथ बारहमास — १२ पद्य चैतन द्विण्डोकना गीत — ८ पद्य 'नमिद्विण्डो कना — ८ पद्य राजमति द्विण्डोकना — ८ पद्य 'नैमिनाथ रात्रीमती गीत — ८ पद्य 'चैतन मुनि मन्नाय — १२ पद्य कृष्णर राजक — ९८ पद्य 'बीबविचार भाषा — १५१ पद्य।

मयानीदासके कतिपय पद्य अतिशय सेव मशहोरकीके एक अक्षरके गुल्कमें निबद्ध हैं। नैमीश्वरकी मक्तिमें समर्पित एक पद्य देखिए

“एक अक्षर आबुअक्षर आवत है
 चको सली मिर्की देखत है ॥
 मोर मुकुट केसरिया जामा
 कर में छंगाय राशित है ॥
 चीन छत्र माये पर मोही
 अबसत जमर हुगवत है ॥
 इन्द्र अम्ब धारी सवा करत है
 मारत भीन बजावत है ॥
 दास मयानी होत कर आह
 चरणों में साम नवावत है ॥”

९० अजयराज पाटणो (वि सं १७९२-१ ४)

अजयराज आनैरवे रहनेवाले थे। इनकी आनि रायदेणवान और मोन पाटणो था। अतिशय रचनाकोति स्पष्ट है कि वे जण्डारदवी राणाभरीके अश्विप गारमैहूत थे। यद्योपर बीरई — सं १७९२ वार्षनाथ सातेहा — सं १७ १ और आदिगुण — सं १७ ७ ये रचे गये थे। इनसे छनवा रचना-सम्पत् स्पष्ट है।

को बूझ है । इसमें सब प्रकारके व्यक्तियों और जीवनों के नाम मिलाने गये हैं । मोक्षमोक्षार्थ बन-विहार आदि का भी वर्णन है । भगवान् जिसे मने बाक वर्णन में भी दीर्घ है । सब कुछ भगवान् 'जिन की भक्तिसे ही सम्बन्धित है । यह रसीरे छावारा नहीं है । आराध्यको सम्बोधन करने के लिए बनायी जाने के कारण इसमें कुछ लौकिक स्वर आ गया है । आरम्भ मध्य और अन्त देखिए

'यह जिन को को कहूँ रसीरे । लार्क सुखत बहुत सुख होई ॥
सुख कसा मठ मेरे कमला । लोको बहुविध घर के अपला ॥
इस लोके बहोत खिजाये । माला देनि बहुत सुख पाये ॥ १ ॥'

मध्य

किम्बदन्तिया किन्ना लति भका । इच्छा निरख दे वृत्त में लका ॥
मेसी रोटी लतिक बकाई । आरीगो निमुबन पति राई ॥

अन्तिम

'जगैराव इह किन्ना कलाप । सुख लूक मति ईसी सुमान ॥
लंका लालसै लेगाये । लड माला लूना इहै ॥

कलका-बत्तीसी

यह कृति लाली मलिकारके पुटका में ५८ और बहान में १२१ में लिख है । यह पुटका में १२१ पर जो लिख है । इसको रचना वि सं० १७१७ ईसा के सुदी ११ विम सोमवारको हुई थी । इसमें ४ पद हैं । कविने लिखा है,

'बनो निपट लाली है । निजपर लिख लड माहीं ।
लपों लक लोकि कमोदनी लो लेख लड पाहीं ॥ १७ ॥
ससा लो लल पाइकी लो कमलू लकी लाय ।
ललि ललैपर ललि लल, लिख ललाल इहै पाय ॥ १९ ॥

पुटका में ५८ में अमरनाथकी लिखी हुई एक वृत्त की कलका बत्तीसी और है । इसमें केवल १४ पद हैं । लल अमरनाथ-बत्तीसी कहला ही ललमुक्त है । कविने इत्येक लोकी आत्माकी परमात्मा कहा है और ललीने प्रेम करनेकी लल लिखी है

'लल ललल ललल में लिख
लल लल ललल ल लोह है ललल ॥

१ ललाली-बत्तीसीने लिख लोचन ललल ।
लोचन ललल लली ललल ललल ललल ॥
ललल ल १ लली लल ।

सुखयोग सुभाव करि ज्यों
 आनन्द बहुत होइ रै काक ॥ १३ ॥
 बड़ा हँसो महा को जिय
 ता निनि करनी बाहि रै काक ।
 ता निनि चहुँगति हँसोचौ जिय
 पोको काक बनादि रै काक ॥ १५ ॥
 दूहा निज हरसण बिनां जिन
 नार तप ससै बिरज रै काक ।
 कछ बिज तुम ज्यों कछक तैं जिय
 भासै कछु न हसि रै काक ॥ १७ ॥
 मनां बिपद सनेह करि रै
 निज प्रीतम निज भाहि रै काक ।
 सदा हँसीको रस भरसौ
 राखी देखत मन हरपाहि रै काक ॥ २१ ॥

बिनती

जयप्रयागकी 'श्री जिन रिखत यगन्त नाई' स्तुति चतुर्विंशत मन्दिरके मुठका नं १२१ में बायी बायी हो श्रीमुख के 'राम' मन्दिर ठोकिमान जयपुरके मुठ नं १३१ (के बि सं १७७९) में और 'मिजरी कनी तुम परम सो बरीचन्दनीके मन्दिर जयपुरके मुठका नं ५१ व ६२ पर अंकित है। अग्रिम स्तुति बत्सबिन्द सरस है। कुछ पंक्तियाँ देखिए,

'चारण विरद सुखो ससै सुनि जिय कामाव पाव ॥
 मिजरी कनि तुम परम सों सी कचहु नहिं आप ॥
 तुम मूरति प्रभु देवता निज पद सहज कमाव ॥
 चान कमक छुति है इसी कोटि सुरज किप जाव ॥
 सुख करतों बुच लोचतों तुम जिमुवन पति राइ ॥
 तुम संवा बिज सुणी प्रभु बुद्ध करम नहिं बाइ ॥
 मनि जिन बहौव समोधिक भनि जक पार उठार ॥
 भजैराकि बिनती करि आवागमन बिचारि ॥

पद

जयप्रयागके पद गारतके सभी आत्म भण्डारोंके पदसंग्रहोंमें पाये जाते हैं। जयपुरके मन्दिरोंका ही आधार श्री श्री आत्म-जयहार हैं। जिसमें जयप्रयागके पद न

अथपराय अद्वैतार्थी धर्माधीन एक सामर्थ्यवान् कवि च । कवनो अविनाश
 वृत्तिर्वा भक्ति और सम्पारमते सम्मिश्रित है । जिनगीन वरनछद्म 'सुख
 और अथमाकाये 'नमोचार सिद्धि तथा 'नेनिनाथ चरित' अतिपूर्ण वृत्तिर्वा है ।
 'वरका चढवाई' 'शिखरमणिका विचार' और 'जिनजीनी रतोई' सम्पार-
 सम्मन्धी कवच है । 'आदिपुराण भाषा' 'चार विधाकी कथा' 'मछोवर चौपई'
 और कवनो मछोछो नाकारण रचनाएँ हैं । इनपर राजस्थानीका प्रभाव है ।

आदिपुराण भाषा

यह हिन्दी-पद्यमें लिखा गया है । इसमें २२५ पृष्ठ हैं । इसकी रचना वि
 स १७९७ म हुई थी । अथपुरके बड़ मन्दिरमें बँहन म १११ में लिखत है ।

चार मित्रोंकी कथा

इसकी रचना स १७८१ म हुई थी । बड़ भी जयपुरन मन्दिरके ही
 बँहन म ४१२ म लिखत है । इनमें कुल ९ पृष्ठ हैं ।

मछोवर चौपई

इसकी रचना वि स १७६२ वात्तिक बरौ २ को हुई थी । इसकी एक
 प्रति स १८ जैन बरौ ११ की लिखी हुई कथोचलसीके वि जैन मन्दिरम
 स्थित है । यह प्रतिकलि बन्तोवाके चूब्रहमक वाटनीने आपेरमें करवावी थी ।

वरका चढवाई

एक कवच-नाम्न है । यह अथपुरके बड़ो-रत्नसीके जैन मन्दिरके गुटका न
 १६८ में लिखत है । इसमें ११ पद्य हैं प्रथम तीनमें जिनजीनी रचना है बाग
 पद्यमें वरखेवा कवच है और अन्तमें उषाकी कन्योगिताका वर्णन है । कुछ भाग
 पूर्ण और रचमुक्त है । प्रारम्भके पद्य देखिए,

श्री जिनचर बँह गुणगाथ अनुर नारि अपे काय ।
 राग होय निमगा परिहरि अनुर नारि अपे चिन परी ॥
 प्रथम भूषण चरका की आनि देव नाम गुण विरथे आनि ।
 दोष अशुभ रहत पू देव गुण निरगं विल करि सब ॥
 बरौ जिनसुर नाथित सार जयत तग द्विरई अथचार ।
 कबौ समकित कबले सुखकार ता विष अन्धो मय पू धरमार ॥

शिखरमणिका विचार

यह कवचुना मन्दिरके गुटका म १५८ बँहन न १२७५ में लिखत है ।
 इसमें कुल १ पद्य है । आरम्भमें परमारनाके कवच होने को ही आरम्भके साथ

परमात्मका विवाह माना जाता है। इसीको जीन लोग जोन कपी गुह्यका मोक्ष कपी रमणीके साथ विवाह माना स्वीकार करते हैं। जब ऐसा होता है तो देव मिश्रकर आनन्द मनाते हैं

‘देव सबै मित्रि आहवाजा,
हरप हाथ अधिकाय ।
कप कृत मन मोहोपा जो
कोचन सहस कराथ ॥३३॥

शिवरमणीने आत्मका मन मोह दिया है। उनके आनन्दका पारावार नहीं है। अत्रयरात्र हाथ जोड़कर ऐसे आत्मनूके पुन बाते हैं

शिव रमणी मन मोहोपा जी
कटै रहे जी तुमाथ
जान सरोवर में छकि गय जी
आवागमन विचारि ॥१५॥
आठ गुण्य मंजि हुवा जी
सुख को तहाँ नहीं कर
प्रभु पुन गाथां तुम तर्ग जी
अत्रेरात्रि करि जोड़ि ॥१६॥

जिन-गीत

अपमृत्त मुटनेय ही जिन-गीत की संकल्पित है। इसमें १ पद्य है। कविने एक पद्य लिखा है कि हे मयवन् ! आपके ‘तारन विरद’को सुनकर ही मैं आपकी घरनमें आया हूँ। आपके बचनसे मुझे पुन मिला। एक दूसरे पद्यमें कविने शिवरमणीन कण्ठ जिनोत्रसे मन मनसे हम पार लटार देनेकी प्रार्थना की है,

‘आओ तारन विरद सुम्हो तुम सरनीं आईपो जी ।
आका वरमन देवित में प्रभु भुंजि अपाईपो का ॥
प्रभुजी शिवरमणी की कंठ परमप्रद अपाईपो जी ।
तारै अब मुहि पार लटारि क्वा जिन आईपो जी ॥ ॥

जिनसीकी रसाई

इसकी रचना वि स १७११ में हुई थी। यह कवीचन्द्रजीके मन्दिरमें विराजमान मुटवा न ५ बैङ्कल न १ १४में लिखत है। इसी मुटनेयें यह वा स्थावोर अंकित है। एकमें १६ पद्य है जो अपूर्ण है और दूसरमें ५१ पद्य है

यो पुत्र है । इनमें सब प्रकारके व्यञ्जना और भाञ्जना^१ नाम बिनाये पय है । भोजनीयरास वन-विहार आदिवा भी वर्णन है । भगवान् त्रिनेत्रदे बाल वपनमें भी खेचर्य है । सब कुछ भगवान् भिन नी खलिन ही सम्बन्धित है । वह रजोई साधारण नहीं है । आराध्यका सम्मुख करनक किए बनायी जानेके कारण इनमें कुछ अनौकिक स्थापना यथा है । आराध्य मध्य और अन्य देखिए,

वह भिन जी की कहूँ रसाई । लाका मुण्डन बाहुन मुण्डन हाई ॥
 तुम कनो मत मेरे चमका । खेचो बहुविध घर के भंजना ॥
 देव अनेक कहान निहाये । जाला देनि बहुत मुण्डन पाये ॥ १ ॥”

मध्य

“उमक चला चिवा अनि मका । इकट् मिरच दे कृत में लम्बा ॥
 मेसी राही अकिक बनाई । आतीना त्रिमुचन पति राई ॥

अन्तिम

“जत्रैराज हूँ किचो वगवान । भुल चुक मलि ईसी सुजाय ॥
 संवर मज्जामे केलाय । केह मान्य भूराय हूँ ॥

ककका-बत्तीसी

यह कृति उही मन्विरके मुद्रणा में ५८ और बँडन में १२६में निरुद्ध है । यह मुद्रणा में १२१ पद भी अंकित है । इनकी रचना बि सं १७१७ बैशाख सुदी १३ दिन सोमवारकी हुई थी । इनमें ४ पद हैं । कविता बिना है

‘मनो विपद मज्जाक है निजपर निज कद माहीं ।
 कपी अक बाधि कमीदमी खी खेचन अह बाहरी ॥ १ ॥
 मसा या जय बाहरी सी कपहुँ नहीं जान ।
 मलि जयपर मलि एक निज मसाह हूँ बाय ॥ २१ ॥

मुद्रणा में ५८म अञ्जयराजकी लिखी हुई एक दुबरी कवना बत्तीसी और है । अन्तमें केवल १४ पद हैं । यह कव्यालय-बत्तीसी कहला ही कममुक्त है । कविने प्रत्येक बीचकी आत्माको परमात्मा कहा है और उहीसे प्रेम करनेकी बात लिखी है

‘देव बाहुन अमल में निज
 तुम पास अवर न भीहूँ है काक ॥

१. सोमवार सेरखि यही अवर कव्याली पाय ॥
 मुद्रणा में ५८ पदों पद ।

सुखयोग सुमात्र करि स्था
 ध्यामन् बहुरि होइ रै काक ॥ १३ ॥
 दण्ड इन्दी नक्ष की श्रिय
 ता चिनि करनी बाजि रै काक ।
 ता चिरि कर्तुगति हकीमी श्रिय
 पोखी काक अवाहि र काक ॥ १५ ॥
 दण्ड भिन्न दण्डन विना श्रिय
 नर नर सखे निरख र काक ।
 कथ्य विन तुम अही कटक तैं श्रिय
 भाई कटु न दधि रै काक ॥ १७ ॥
 नली निपट मजह करि रै
 निज प्राप्तम निज माहि र काक ।
 मद्रा रंगीको हम मरवी
 छाडी देपत मज हरपाहि रै काक ॥ १९ ॥

बिनयी

अथपराशरकी श्री शिव रिमल मङ्गल पाठों स्तुति करपुस्तक मन्दिरके मुद्रण
 नं १२१ में आयी गयी हो श्रीमुक्ता के राम मन्दिर टोकियान अमपुरके मुद्रण
 नं १३१ (न वि सं० १७७९) में और 'बिनयी गयी तुम परम सौ'
 बसोभनवीके मन्दिर अमपुरके मुद्रण नं ५१ पृ ५२ पर अंकित है । अन्तिम
 स्तुति सम्पन्निक सरत है । कुछ परिवर्तन देखिए,

'सारथ्य निरद सुखा सखे सुनि विन कलाउ पाप ॥
 निजरी कनि तुम नरथ श्री श्री कर्तु यदि आप ॥
 तुम मूरति प्रभु देवता निज पद सहज कयाव ॥
 नरथ कमाऊ बुद्धि है हामी कोरि नुरथ छिप जाव ॥
 सुख करता हूय मोचन तुम विमुक्त पति राह ॥
 तुम नया विन सुनी प्रभु हूह करम नहि जाह ॥
 यदि विन नहीत सम्पन्निक यदि जह पार उत्तर ॥
 अत्रैरात्रि बिनयी करि आवागमन निजारी ॥

पद

अथपराशरके पद भारतके मंत्री धाम्प-मन्दारके पदमपहोदि पाये जाते हैं ।
 पञ्चपुरके मन्दिरोंका तो धाम्प ही नही धाम्प मन्दार ही जिसमें अथपराशरके पद न

हों। बसोचन्द्रजीके मन्त्रिरके मुद्रका नं १५८ बेहान नं १२७५ में निम्न एक पदकी रचनाएँ इस प्रकार हैं

‘तुम परमात्म देवि तु वद मयको कल्पी
आत्म अनुभव बभूव ११ अपुरव चरणी ।
संसी मय सिद्धि अपो महा आचम्य मयो
आचक उपहित निज पद निज घर में कवी ॥ ८ ॥
ननु वसुं प्रभु हरप महा उर आशि के
मयव मयो तुम देवि निजपद आवि है ।
इहै मगति घर बानी मय करि गाहसी
अचराज कहे सुख मुक्ति वद गाहसी ॥ ९ ॥

अजयराजका पूजा और अयमाका साहित्य

अजयराजके बसोचन्द्रजीके मन्त्रिरमें विराजमान मुद्रका नं ५ बहुत ही प्रसिद्ध है। इसमें २२ पृष्ठ हैं। अजयराजकी अनेकलेख रचनाएँ इसी मुद्रकेमें संकलिप्त हैं। अचिन्तर पूजाएँ हैं। आदिनाथपूजा ‘चतुर्विंशति तीर्थकरपूजा’ ‘नन्दोरवर पूजा’ ‘पद्मेश पूजा’ बीस तीर्थहरोंकी अयमास’ ‘सिद्ध स्तुति’ ‘चौबीस तीर्थकर स्तुति’ और ‘श्री योगेश सकल भुव नार श्री हनीमें संकलिप्त हैं। इनके अतिरिक्त ‘वासनाथ घासहर’ भी हनीमें लिखा हुआ है जिसकी रचना सं १७९१ ज्येष्ठ सुदी १५ को हुई थी। ‘आदिनाथ पूजा’ पूर्ण है। नन्दोरवर पूजा में केवल ९ पद हैं। सबसे अधिक पद ‘चौबीस तीर्थकर स्तुति’ में है अर्थात् ९ पद हैं। अयमान् जिनैन्द्रजी मन्त्रिमें लिखे गये अय्य भुवनक वद श्री हनी मुद्रकेमें निम्न हैं।

जमोकार सिद्धि

यह भी अर्जुन मन्त्रिरके मुद्रका नं ५१ और बेहान नं १२१७में अंकित है। यह मुद्रका सं १८२१ कार्तिक वरी ७ को लिखा गया था। यह जोर-बा कमल ‘जमोकार मन्त्रकी महत्ता से सम्बन्धित है।

मेमिनाथ चरित

यह एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसकी रचना वि सं १७९१ आषाढ़ सुदी १३ को हुई थी। इसकी प्रतिलिपि नं १७९८ वैश्व सुदी ८ को की गयी।

१. नंदन नगराई जीवै नाथ अछाढ़ पाई वर्षयो ।

निज तीरज अंबेरी नाथ भुवनार भुव छठिय बाज ॥

मेमिनाथ चरित देवियोंके मन्दिर अजयराजकी हस्तलिखिता प्रति ।

यह बयपुरके लोकमें कि शैव मन्दिरके पुटका नं० १ ८में लिखत है। करिबकी पद्य-संख्या २६४ है। इन काव्यक निमावकी प्रेरणा सम्भावनी नगरके जिन मन्दिरमें विराजमान भगवान् नेमिनाथकी भोज्य मूर्तिको देखकर मिली थी। कविन इस प्रतिमाको इयामवर्षका कहत है। वह इसकी पूजा-अर्चा भी प्रति-दिन किया करते थे। प्रारम्भिक संयत्तावरण देखिए,

“जो जिनकर बन्दी सबै आदि अन्त कह्योसै।

ज्ञान पूर्ति गुण सारिखा जसो विमुचन का ईस ॥

तासैं जनि जियन्त का बन्दा चारणार।

तास चरित बसायिस्वा तुष्ट हृदि अनुमार ॥”

कटनेके लिए बँचे बीबावर कहना करके ही नेमोश्वर विषाह-द्वारसे बापस छोट बाये। बीतरामी बीजा के नय करने विरवारपर चके पये। विहाप करती पनुक बहती है “यदि तुम्हारा विबीष हुआ तो इमारत जग्य ही निष्कल हो बायेगा इसलिये संयम छोड़कर सासारिक सुखोको भोयो। अब तुमन दया करके पगुबों तककी पूजा किया तब मीनकी भाँति तहपती हुई मुसपर दया क्यों न करोय ?

“जो होइ वियोग सिहार निरफक है जवम इमार।

तासैं संजम अब तजिए, ससार तण्य सुख मजिए ॥

अक दिन मीन जिन किम मीन सीसैं हूँ तुम धारिनी।

तुम माव बचा की कीन्हा सब जीव पुझाई ओ ॥”

राज सवाई जयसिंहका राज्य था। सम्भावती नगरके मध्यमें एक जिन-मन्दिर था। उसमें नेमिकुमारकी अनुपम मूर्ति थी। मन्दिरके चार ओरके प्राङ्ग-तिक वातावरणका दृश्य देखिए

अजगराज यह कीथा बजाय राज सवाई जयसिंह जान।

अंवावती सहैर सुम पाव जिन मन्दिर जिन हव विमान ॥

धीर निबाध मोई बनराई बकि गुकाव जमेसी जाई।

अयो मरवा और सखति बी हा जानि जाना विधि कीटी ॥

बहु मंवा विधि सार नरणन मादि कारी वार।

गह मन्दिर कछु कह्यो न जाइ भुजिवा काग बन अधिकाइ ॥

तामि जिन मन्दिर इक मार तही विराजै श्री नमिकुमार।

इयाम मूर्ति नीमा भनि जनी ताकी उपमा जाइ न गनी ॥”

सुम मायसे सन भयवान्के बचन ही पाते हैं । जनक धारक वहाँ जते हैं और अपन अपन कर्मोंको काट डालते हैं । अजयराज भी मन बचन कर्मते पूजन करते हैं । निरुप-प्रति अत मुक्तिकी वन्दना करनेसे यह भीच इस भव-समुद्रसे पार हो सकता है,

‘आर्य आग अबै सुख होइ करि वरसज हरै मेट सारै ।
 आर्य आर्य सरावज बज्य करै कर्म सखि आपणां ॥
 अजैराज वहाँ पूजा करै, मन बच तब जति हरव जतै ।
 विरत प्रति वन्दै ते बारम्बार तारव तरव करै सब पार ॥

विभाग दो

जीन मक्ति-कायिका भाव-मक्ष

बृहत् समय पहले तक हिन्दीके बड़े बड़े विद्वान् यह स्वीकार करते रहे हैं कि हिन्दीमें लिखी गयी जैन रचनावर्गे कम प्रकारकी माध्यम भर है, उनमें बह भावी गेय नहीं है जिसके आधारपर रसका उत्तेज होता है। यदि 'रसो वै स रसं कम्प्याऽऽनन्दी भवति' वाक्यो बात रस है, और हृदयसे एतत् कृटी अन्तःस्रज्ज्वा ही भाव-बारा है तो जैन काव्यमें रस कीर भाव दोनों ही सन्निहित हैं। 'मक्ति रमामृत सिन्धु'में मक्ति रससे सम्बन्धित पाँच भाव स्वीकार किये गये हैं। शान्त दास्य सख्य वात्सल्य और माधुर्य। इनको उत्तरोत्तर उत्तम माना है, किन्तु जैन-मक्तिमें 'शान्त ही सर्वोत्तम है। यहाँ इन्हीं भावोंके आधारपर जैन मक्तिका भाव-मक्ष वर्णित किया गया है। भावोंका क्रम इस प्रकार है सख्यभाव वात्सल्यभाव प्रेमभाव मिलनभाव और शान्तभाव। इतमें आगे-आगे विद्युद्धता बाढी गयी है।

सख्यभाव

ममत्वानुको सखा मागता ही सख्यभाव है। इसमें बराबरीका बर्ण प्रदान होता है। ममत्वानु अपने मित्रोंपर ममत्वस्वभाव आरोपन नहीं करते मित्र भी ममत्वानुके ऐश्वर्य और माहात्म्यसे आश्चर्यचकित न होकर, उनकी सुख-सुविधाका ही अधिक ध्यान रखते हैं। इनमें श्रेष्ठ-श्रेष्ठ भावकी भाँति संकोच नहीं होता अपितु वे आपसमें स्पष्ट रूपसे जुक्त रहते हैं। यदि कभी मित्रको ममत्वानुका काम अनुचित और भ्रमपूर्ण मानूम होता है तो वह उसका निराकरण भी करता है।

जैन साधनाके आध्यात्मिकतावाके पहलमें सखा भावका निर्वाह हुआ है। कर्म-मज्जे रहित विधुख आत्मा ही परमात्मा है। उसे जैन-शास्त्रावे 'सिद्ध संज्ञा' भी नहीं है। अर्थात् आत्मावे परमात्मा बननेके सभी अर्थ मौजूद हैं। यह जीव जब आत्मासे प्रेम करता है और उसे जेतन नामसे पुकारता है। इसीके साथ पनना मित्र-भाव है। जब भ्रमवशात् जेतन अर्थात् पनपर चकता है तो यह भी

उन्हे भिन्नकी भाँति ही उन्हे सावधान करता है। यद्यपि स्वतः साहित्यके 'वेतनकी को अर्थ'में भी सावधान करनेकी ही बात है। किन्तु वहाँ जिस मनको सावधान किया जा रहा है। समर्थ भयवान् बननेकी सामर्थ्य नहीं है। अतः हम उन्हे उदात्त मान नहीं कह सकते। वैज साहित्यमें तो वेतनको ही परमरत्न माना है और उसके सुखके लिए उन्हे सावधान करनेवाला भिन्न ही है, अन्य नहीं। चारों कवय्यते 'वीर परमार्थी'में लिखा है, 'हे वेतन। मुझे भारी आश्चर्य है कि जब समूह-वैदे द्वितीयकारी कवय्यते द्वारा सङ्गुह सुम्में समझाता है और तुम भी जानो हो फिर न जाने क्यों तुम वेतन होठे हुए भी वेतन उत्पत्ती कहानी नहीं समझते। 'परमार्थी रोझाघटक'में तो उन्होंने इसे ही प्रेमपूर्ण उपाय वेतनकी समझाता है। उन्होंने कहा "कहो कवय्यते राज। अपने कला विचार छोड़कर और चिन्तितकी सुख मुकाबर मह-भयमें क्यों डग रहे हो। तुम्हें इस संसारमें भ्रमण करते-करते बनादि काठ बीत चुका है। व्यर्थ ही दुःख क्यों लेकते हो? अपने घरको क्यों नहीं संभालते। इन्द्रिय-मुकते बनकर तुम विषयोंमें रीझते हो रहे हो और परम अनीन्द्रिय सुखकी नहीं समझते। किन्तु विषयोंका सेवन करते हुए तुम्हारी तुलना चपचप नहीं होनी। अत्युत्तमारे बलके समान बहती है। जानीकी।"

मायाके कवय्यतेमें फेर वेतनकी सावधान करता है। पं कनारतीदासने लिखा है, "हे वेतनजी। तुम जानकर जाना सावधान होकर देखो कि नहीं मायाके पीछे क्ये हो। माया और तुम्हारा क्या सम्बन्ध? तुम तो न जाने कहाँ जाने हो और कहाँ क्ये जानो। किन्तु माया तो बाह्यकी छ्वाँ है। रही। माया न तो तुम्हारी बाहि-प्राप्ति है न बँधनी है और न तुम्हारे अंधकी इतने दुःख झकड़ है। इसको देखी न कलनेके यह तुम्हें कायेंति रीझती है। हे वेतन तुम ऐसी जानीति क्यों रखन करते हो। तुमको इस मायाकी रातना छोड़ देनी चाहिए।"

"वेतन की तुम जानि विजोषहु

कानि रहे कहाँ माया के ताँई ॥

जाने कहीं सीं कहीं तुम जाहुगे

माया रहेगी कहाँ के ताँई ॥

माया तुम्हारी न जाति न नाँति न

बँध की बकि न बँध की काँई ॥

१ चारों कवय्यते, वीर परमार्थी।

२ चारों कवय्यते, परमार्थी रोझा घटक।

३ कनारतीदास नामक संस्कृत, साक्षात्परिभाषा, पृष्ठ ७, ११५।

बासी बिदे बिब कावनि मारत ।

ऐसी अनीति न कीजे गुनारै ॥

इस सवारमें जाकर बैठन बुद्ध बन्धनोम बैठ गया है किन्तु उस बेसुमको हमका होश हो नष्ट है । मक्का जब उसका उन बन्धनोसे कीज लूझाये । वह विवेकहीन है ठीक वैसे ही जैसे पञ्चराज स्नान करनेके उपरान्त भी अपने शरीर पर बूझ बांध रक्ता है और वैसे रक्षमका कीटा तन्तुओंको जगहवर स्वयं उनसे बन्धनमें बैठ जाता है । उसे समझाते हुए बबिने कहा है 'हे बेन ! तुम स्वयं सम्यक् ज्ञान हो किन्तु सवारकी भ्रम-बीबियोम अपनेको मूक गम झा । मग तुम ध्यान धरके और ज्ञान-नीकापर बड़के इन बीबियोसे पार निकल जाओ ।'

'बेन'के प्रति सखामात्रके उद्गार अभिगहन करनेमें भयवर्तीवास प्रेमा व्यतिरिक्ता है । उम्हारे सुमतिको रागी और बैठनका राजा बनावया है । सुमति अपने पतिको सर्वोत्तम मानते हुए भी उसके पक्ष प्रवृत्त होनेपर कभी प्रत्यक्ष-भरी चीख और कभी मोटी फटकार लगाती है । प्रेमपूर्वक समझान बबबा मोटी फटकार लगानेका काम सिवा मित्रके और नहीं कर सकता । पत्नी भी जब ऐसा बपती है तो वह मित्र ही है । सुमति बेनको सम्बोधन करके कहती है 'हे शिवनाथका ! एक बात कहती हूँ कि क्या यह स्वाग तुम्हारे रहने योग्य है वहाँ तुम बैठक रहे हो । मग तुमने कौन-सी विचक्षण रीति अपनायी है कि तुम बिना देखे-भांके ही इन्द्रियामें बैठक बसे हो । यदि तुम जाब भी मेरे बुधोंमें विश्वास करो तब एक अकारकी बात कहूँ कि तुम अपने बैठके पट क्या नहीं खोलते ? वहाँ तुम स्वयं प्रकाशमान होकर बिराज रहे हो उस अपनी सुन्दर

१ बेन तोहि न नेक संभार

नख सिखलो दिखबन्धन बेहे कीज करै निहार बेन ॥१॥

पद्मो पञ्चराज पञ्चार जाय तन जाय ही शरत छार ।

बापहि जगकि पाटकी कीरा तनहि लपेटत तार बेन ॥३॥

ननारसीदास ननारसीबिदास, बबपुर, १२३४ ई २३१ ।

२ जाय निकसि निमोह निबु तैं फिर तिहु पक्ष टके ।

बैंसैं परबट डीब जाग को बबी पहार तकै बेन ॥३॥

भूने जब भ्रम बीबि बगारसि गुन सुरजाग जके ।

बर गुन ध्यान ज्ञान बीका बकि बैठे ते निकसि बेन ॥४॥

ननारसीदास ननारसीबिदास बबपुर, बन्धानन्दसिंह, पक्ष १२३५ ई २३१

मन-मुखादा पाव क्या नहीं करते ।^१ समझानेपर भी बेगन समझता नहीं । वह राग-विन सनारके बगैरों में बेहोश रहता है । अब तुमने कुछ सीखकर कहा है कि बेगन ! तुम्हें कुछ यह भी ध्यान है कि तुम बीन हो कहसि आये हो जिसने तुम्हें बहारा रखा है और तुम किसके रसमें मग्न हो रहे हो । तुम जब कर्मोंके साथ एकमेक हो रहे हो ओ आब तक तुम्हारे हाथमें तो आये नहीं उठते तुम्हीं उठकर फन्देमें कैमकर बचकर बचाव किरने हो । तुम तो बड़े बनुर हो कि तुममें यह बीन-सी बनुराई की ओ तीन बीनके नाच होकर भी मिखागीकी तरह छिपत हो ।^२

ओकरा सउते बड़ा स्वार्थ है अपनेको ही कुछ कर्मों बहचानना किन्तु वह बेगन होकर भी बबैरोंमें कैमकर रह गया है । उमकी समझते हुए साम्प्रदायिक कर्म है 'हे बीन ! तुने यह मुझका कहसि बाब कि माघ संसार स्वावरी बाहना है किन्तु तुसे यह बज्जम ही नहीं कम्पा । क्या नहीं कि तुम क्यों मरुति अपने और कुछ ठगमें बिरमके रह बप हो । तुम्हने अपने परम बगीन्द्रिय मुझकी स्वाव कर विषय रोगोंको निपटा रखा है । तुम्हारा नाम 'बेगन' है, फिर तुम्हने यह होकर अपने नामको क्यों बँबा दिया है ? क्या तीन ओकरे उमकी ओकरा मोह मोहते हुए तुसे लगता नहीं आती ? अब तुसे इस मुठे मुझनेसे छुटकारा मिल जायेगा तभी तू उल्ल बहका करता है और तभी तू मोहने

१ एक बात कहूँ धिक्कामकरी तुम मायक और, कहाँ बटके ।

यह बीन बिचयन दीनि यही विनु बैचहि बसत सों पटके ॥

अबहुँ बुझ मानो तो बीन कहूँ तुम ओकरा क्यों न पई पटके ।

बिम्बुपति बापु बिराजतु है निम सूरत देखे मुखा पटके ॥

मैत्रा धम्मजिह्वा, उल्ल बबैरों १०वीं पद्य, मछविषय केन धम्मजिह्वावर काथेय्य पद्य १११२, १ १ ।

२ बीन तुम कहाँ आये कीने बीरामे तुमहि

नाके रस रते कहूँ तुम हूँ बरतु हो ।

बीन है मैं कर्म किन्हीं एकमेक आनि रहे,

अबहुँ न अपने हाथ भीररी बरतु हो ।

वे विन बिनाये कहाँ बीने हैं अमादिवाक

कैसे कैसे मँडत सहेहुँ बिनतु हो ।

तुम तो मगाने वी समान यह बीन कीनी

तीन ओक नाच हूँ के बीन से किरतु हो ॥

मैत्रा, १०वीं पद्य, १ १४ १२ ।

बलन्त मुसके साव विधास कर पायेना ।

एक सम्मिलकी भौति चेतनकी समझात हूय मूखलासका दबन है 'बो
बजानी ! तू पापकमी बतुरा न हो । एक बजानके समय तू फूट-फूटकर
रोयना और प्राणोंसे भी ह्रास हो बैठेगा । कुछ बोड़े-से विषकीके कारण तू
इस दुर्धम देहको व्यथ न जाने दे । ऐसा जबसर तुझे फिर न मिसेगा भय
भीरमें सोना न रह । ऐसे समयमें समान लोग कष्टभुसकी छोबा करते हैं किन्तु
तू बिप बीने लग रहा है, भया तेरे समान बधावा कौन होगा । संसारमें बितने
कुलशायक और रस हीन कर हैं वे सब तेरे इस विपकीबजा ही परिणाम हैं । तू
यह सब कुछ मनमें जानकर भी भौंठ गया हो रहा है ।

वात्सल्यभाव

मद्यति मविन रसका स्वायो-भाव भगवद्विषयक रति है किन्तु रतिके तीन
प्रधानकर माने गये हैं—भगवद्विषयक वात्सल्य और शर्मल्य । इनमें ॥ अष्टिम

१. बीर तै मुहनाता कित पायो ।

सब कम स्वारस को चाहत है स्वारस तोहि न भायो ॥१॥

बसुवि अचैन कुछ तन माही कहा जान बिरमायो ।

परम अतिमी निज कुछ हरि के विषय रोय छटायो ॥२॥

चेतन नाम मया कहू काहू अपनी नाम बमायो ।

चोन लोक को राज काहि की पीछ माय न सवायो ॥३॥

मूढपना मिथ्या सब कूट सब तू सब कहायो ।

धानत मुख अर्गत चिथ बिजरी या सङ्गुद बतकायो ॥४॥

कान्तकसमय विनवाही प्रचारक कान्तिबन, कनकपा पर १८, एव १९ १० ।

२. बजानी पाव बतूच न होय ।

एक बाजान को बार नई बूध मरई मूरस रोय । बजानी० ॥१॥

किचित विषयनि के मुख बारस कुछन देह न होय ।

ऐसा अवसर फिर न मिलेगा इस भीरकी न होय । बजानी ॥२॥

इस विरिया मैं बर्म करुणतह सोचन सुवाने काम ।

तू बिप बीवन लगत ही सम बीर बसाया होय । बजानी ॥३॥

वे जय न कुछ शायक बेरस हम ही के कप सोया ।

या मन मूखर जानि की भाई फिर क्यों भाजू होय । बजानी ॥४॥

भूखल्लास कनकपा पर ४ एव ५ ।

को भी मगधबुद्ध होनेके कारण मगधविषयक हो है किन्तु निम्न सेर और रचना-विभागकी दृष्टिसे ही उनका वक्तु निम्न कहा जाता है। मगधविषयमें विनय वात्सल्यमें बाक-कीका और वात्सल्यम मगधभावसम्बन्धी रचनाएँ आ जाती हैं। मानव जीवनकी दो ही प्रमुख वृत्तियाँ हैं—वात्सल्य और वात्सल्य। इनमें भी हिन्दी मणि-काव्यके कवियोंने वात्सल्यपर जितना लिखा वात्सल्यपर नहीं। एरमात्र सूर हैं। इस लोकके बचनवाले रत्न हैं। यद्यपि आचार्योंने वात्सल्यको पुरुष रत्न नहीं माना है किन्तु उनमें कुछ ऐसी स्पष्ट सामाजिक चर्चा है, जिसमें किन्हीं दिग्दर्शकों ने पुरुष रत्नके रूप में स्वीकार किया है। और इसका स्वाधीनता 'स्नेह' रखा है। यदि इस दृष्टिसे देखा जाये तो वैन साहित्यमें वात्सल्य रत्नके आत्मजन पंचपरमेष्ठी और आचार्य माँ-बाप तथा मन्त्र-जग होने। आत्मजनन चेष्टाएँ, कार्य और उद्यम बचनपर समावे जानेवाले उत्सवादि उद्दीप्त विभावके अन्तर्गत आ जायेंगे।

सूरने वात्सल्यका सरस उद्घाटन वैन हिन्दी साहित्यमें ही हुआ है। बन्धके बचनरोपर होनेवाले आचपक उद्घाटकी कटाकी ही सूर भी नहीं छूटके हैं। वैन साहित्यमें तो आत्मजनके बन्धमें आनेके पहले ही कुछ ऐसा वातावरण बनाया जाता है कि बन्धके कर्म केनेके पूर्व ही 'वारमस्य' कल्प छूटा है। सूर राखी घटावकी प्रसिद्ध कवि कवचवने पंचकपायककी रचना की है, जिसके प्रारम्भमें ही गर्व और बन्धकपायक है। तीर्थकरके बन्धमें आनेके छह माह पूर्व ही इन्होंने बन्धकको सेवा जिसने तीर्थकरकी मन्त्रीको मणि-मादिमन्त्र सजाकर बपुर्ष बना दिया। उसने बड़े-बड़े ऊँचे प्रासादकी रचना की और बन्धको कनक तथा रत्नोंसे ढक दिया। बहूँ स्वाग-स्वागपर रम्य व्यवस्था सुसोपित होने लगे। वनमें विहार करनेवाले सुन्दर वन भूषाको बारण शिखे मन्त्रनिवासी यनको मोहित करते हैं। वन-गृहमें छह माह पूर्व ही यन-बारण वरसम लगी और बचनकासिनी वैश्या प्रसन्न हो-होकर धन भाँति बन्धकी सेवामें पुट बयी। वनमें एक 'यौ' नामकी देवी थी जिसने बन्धकी कस्तूरी बूँद को बड़े सावधानी से गुप्त किया जिसमें बिकोर्षके नाचको भी ताह रचना था। उद्यमका एक यन को नाम सागर स्वप्न वैद्य और प्रातः वास बच बन्धका कन आने बनिसे वृद्ध तो वरान दुम्हारा पुत्र विमुक्तवर्ति हुआ प्रीति रिया। इस भाँति वैन ही को आनन्द हुआ और भी माह सुन्दरक बोले लगे।

भूवरदासने अपने पादपुत्राण्य^१में भगवान् वाचनाथके पंचरस्यामकाका काचर मय वपन दिया है। पाण्डे स्वयम्भुवकी भाँति इसमें भी उन्ही आठावा अक्षर है किन्तु कल्पनायत सोम्यव अधिक है। इन्द्रकी आज्ञासे वनपतिन महाराज ब्रह्मसेन के घरमें साढ़े तान करीब रत्नोंकी बर्षा की। आकाशसे गिरती मधियोंकी बमक देसो मासूम छोटी थी वैसे स्वयंकाककी लक्ष्मी ही तीर्थकरकी भाँती सेवा करने लगी आयी हो। कुन्तुमियासे गम्भीर ज्यमि निकल रही थी भागो महासामर ही बरन रहा हो।^२ कुसाचलवासिनी देवियाके सोम्यका वपन करते हुए भूवरदास न बिछा है। काव्यसे भरा उनका काव्यवान् घरोंर ऐसा मासूम होता वा भागो दामिनी ही आकाशसे उतरी हो। वैसे तो उन्हाने अम धर्ममें भूवार सजामा था किन्तु उनका स्वाभाविक रूप-सौन्दर्य भी काव्यममें डालनवाला था। उनके माथेपर चूड़ामणि अममया रहा था और बसस्वरूपर वस्त्र-वृक्षके मुमलाकी माछा मुवासित हो रही थी। उनके गुपुपुष 'अचन-मुखर' छंकार उठ रही थी।

तीर्थकर पादनाथके गर्भमें आते ही चार प्रकारके देवताओंके मासन डिल उठे। इन्द्रने अपने अवबिज्ञानसे यह जान लिया कि आज भववान् परम ज्ञाय है। वह अपने सुरपरिवारसहित विमानपर चढ़कर वर्मवस्याचोत्सव मनामके लिए चम पड़ा। सब देवताजाल माँ-बापका बचन बलघोसे स्तपन दिया और मंत्रमयीत गाये। उन्हीन विविध प्रकारसे वर्मवासी भगवान्की पूजा भी की। उसके बड़े जामपर शक्तिवासिनी देवियाँ रह गयीं जो जिन जिन प्रकारसे माँ की सेवा करती थीं।^३ कोई स्नान कराती था कोई भूवार सजानी थी कोई मुखातु मोजन बिछानी थी और कोई ताम्बूल देती थी। कोई मुखर गाना पाठी थी कोई घम्या बिछाती थी और कोई बरन बाबती थी। कोई चन्दनस सींचनर पर मुवासित करती थी कोई जौपनमें मुहायी देती थी और कोई वस्त्रवृक्षके फल कुवासी भट बजानी थी। अगरासन एक 'लभुर्मवक' की रचना की थी। उसमें केवल छेरह पद्य है। उसकी हस्तलिखित प्रति बडौनक वि. जैन मन्दिरके गुफा न ५४ पत्र ९ १ २ पर लिखी हुई है। उसमें भी शक्तिवासिनी देवियाँ के डारा तीर्थकरकी माँकी सेवाका वपन है। एक रागीके सम्मुख वपन पियं लगी है एक उनपर बँबर हुआ रही है एक बरनामूयन पड़ना रही है या दूसरी

१ भूवरदास काव्यपुत्राण्य जैन ग्रन्थ रत्नाकर काशीपत्र, [दीरावाग निरदीव कन्दे, भाषा १८७८] में टिप्पणीवृत्ति ५५ - ५८ ५ ५१-५४।

२ पृ. ५१२७-१३३ ५ ५२।

३ पृ. ५१३३ १५४ ५ ६।

४ पृ. ५१४७-१८ ५ ६०-६१।

बीचासे मन्दुर इति निम्नक रही है। एक पहिली पृष्ठनी है तो दूसरी इत्यन्त होकर सत्तर बेनी है। इस नीति दिन और रात आनन्दपूर्वक बीतने लगे। विष्णु बननाथकी महिमाका वयन कदाचित् किया जाये। व केवल भक्तपर शीघ्र है। बदरामन जनका यक्ष जाया है,

‘कवि उच्छाह निज पूर गया माता पुष्प प्रभाषी की।
 कवन कुमारि इत्यक र्थ जाला रीति रिझाई की ॥
 एक सखमुप वरपन कीया एक दात्री बैचर डुरारि जा।
 वसन आभूषण ईक मै एक मधुरा र्थि बजाई की ॥
 पु कट एक पदच्छिन्न एक उच्छर मुनि हरपाई की।
 निमि दिन अति आनन्द स्वी इस वचनमात्र विताई की ॥
 महिमा विष्णुबननाथ की कवि कहीं की वरपाई की।
 मन्त्रि परमा कवि मन्त्री जगतराम जस पाई की ॥

श्री माहर्षि जनराल भवबान्धवा जन्म हुआ। तीनों लोकाम स्वाभाविक आनन्द फैल गया। वहीँपर लीली मेह और कूकुरा प्रकोप दिखाई लड़ी पक्ष विष्णु शोचन मन्त्र सुगन्ध पवन बहून लया। वरपासिबोंके वराम बन्धे स्वयं पर उठे व्योमिपिदोष बहू। वेहरियोका नाच होने लगा भवनात्मोंमें पंख बर उठे और व्यन्तरवानियोंके यहाँ अलंकार भेरिवा ध्वनि हो उठी। वरपास स्वयं ही पुष्पोशी वृद्धि करन लगे। इन्द्रागन भी कल्यायमान हो उठे। इस नीति आनन्दमय प्रकृतिने यह जोपिन कर दिया कि भवबान्धु जिनेन्द्रका वयन हुआ है। सभी इन्द्र अपने अपने विद्यालयसे कठकर पड़े हो गये और बहसि ही भवबान्धुको प्रथिपाठ किया। इन्द्र-वन्दितक बहनके सिद्ध कुबेरने एक व्यायाम्यी देवावतरी रचना की जिसके नास्तिक सोन्यमें काम्यत्वका पूर्ण निर्वाह हुआ है। उस हाथीके ही मुख के और प्रत्येक मुखमें आठ-आठ बीत ने। प्रत्येक बीतपर एक एक करोडर का और हरक सरोवरमें एक ही पक्षी वमर्शनी बिजली थी। प्रत्येक वमर्शनीपर पक्षी वमर्शर कमल बने हुए थे और हरक वमर्श एक-ही आठ पते थे। उन पत्तोंपर बैठागवाएँ नृत्य कर रही थी जिसकी छविनी वमर्शर समार मोहित हो जाता था। जगदी बीतोंमें लगे उस वयन रहे थे।

१ वही, वही ११ व १३-१४।

२ वरके वरपास वरपास वमर्शर वमर्शर, वम १, वमर्शर वमर्शर वमर्शर वमर्शर वमर्शर, वमर्शर, वमर्शर, ११३० व १३ १४।

ओजस काय गंधदु बद्धम मा निरमये ।

बद्धम वद्धम बद्धुर्द्ध-र्द्ध सर सदये ॥

सर सर सौ पनवीस कमकिची छात्रही ।

कमकिनि कमकिनि कमक पचीम तिराजही ॥

रात्रही कमकिना कमक अग्रतर मी दनोहर दल बल ।

दल-दलहि अग्रतर नदहि नवरम हान मान मुहावन ॥

मणि करक किंकिणि वर विचित्र सु अमरमदप सोदये ।

पन घंट बैर बुद्धा पठाका हेनि विमुचन मो-ये ॥

ऐसे हाथोपर इन्द्र का और घड़ी भी । साथमें वैराग्य भी विविध उत्सवाको करते हुए बैठे ।

इन्द्र-बभ्रु प्रभुनिभूतने गयी जहाँ माना पुनर्हित लेटी थी । उमने प्रदक्षिणा देकर प्रणाम किया । मृत राजसे रैवी माँ ऐसी प्रणीत होगी थी जैसे मानो बालक धानुमहित सम्प्रा ॥ १ ॥ सो । सचीने मायामयी बासवको मणि पास रखकर भगवान् को अर्पण हाथोम छटा मिया । बासवकी देखसे एमी ब्योति फूट रही थी कि उसके समस करोहो सुपौरी छवि थी मन्दिन ही प्रतिमामित होती था । भगवान् की देखा स्पर्श करके इन्द्राणीको इतना मुक्त मिला कि उमपर वर्गन पवि-वासीसे परे है । प्रभुके मुख-वाग्विकको मुर रानी बार-बार देखनी थी बिलु अचाठी नहीं थी । इन्द्रने ता हो नर्तकी अपर्याप्त समझकर सहस्र वेष्टाकी रचना कर ली । शौर्योन्नत भगवान् को बोधने ले किया ईशानक मुरखल सनके निरपर छत्र लगा दिया और सान्तकुमार गया म-इन्द्र जमर बुझाने लगे । बह्मादि स्वर्गके इन्द्र जय जयहार बाल डटे । स्वकी मान मुररमधिया मृग करन सभी और पद्मर्ष बन्ध बाबाकी बीजाएँ मुपठ-वीर्यसे निगारित हो उठी । विविध प्रकारके जाने बज गये । बीर-बोई सो मृग-बावन मूककर बासवको निमित्तैव देखा ही रह गया ।

सब देव मित्रकर बासव भगवान् को पाण्डुक वनमें ले गये और वहाँ पाण्डुक मित्राण विराजमान दिया । फिर धीरमावकरके एक सहस्र बी बाट बन्धुनि उतना इतना हुआ । उमका प्रारम्भ शीघ्र स्वर्गके इन्द्रके किया ठिठ मर इन्द्र और देवोंने समैक मर हुए बन्दी वन सद्य प्रभुन बासवके निरपर जाने । वहाँ एक नमगगा-नी प्रवाहित होने लगी ।^१ अनुस बह और बीरके वारण ही

१ मृगराम वारवपुराण, कर्ण ३१३ ३८ ३८ ३८ ।

वही ३१३-४७ ३८ ३८ ।

२ वग ३१३-३४ ३८ ३८ ।

भववान् इस प्रसन्न बल-वाराको छद्म कर सके अथवा उसमें इतनी सक्ति थी कि वे उहे विरि-सिद्धर भी लज्ज-लज्ज हो जाते ।^१ भववान् के स्वामन्त्र घरीर पर लज्ज-नीरवा ऐसी छटा था। जैसे मानो नीलाचलके तिरपर बाँके के बारन बरस रहे हो। उनके स्नपनके बलकी छटा उल्लङ्घन कर आकाशको ओर चल उठी सो मानो वह भी स्वामीके साथ पापद्विज हो गयी है। अतः घमरी भी ऊर्ध्वगति क्या न हो। उनके स्नपनके बलकी तिरछी छटा ऐसी विरिद्ध होती थी जैसे किसी विषमिताका वर्णपूज हो हो।^२

अप्य म्हीन को विधि पूर्व म्हीनपर घचीने पवित्र बस्त्रसे उसके घरीरको निर्बल किया। उसपर कुङ्कुमादि बहुत प्रकारके रंगन किये। अब भववान् के घरीरकी सोजा ऐसी बाहुम होने लगी जैसे नीलविरिपर सज्ज कूची हो। घचीने भववान् का सब शृंगार किया। उनके माध्यम निष्कल कयाया तिरपर मन्त्रिमन्त्र मुहुट रखा और माथेपर कुङ्कुमादि लगाया। स्वाभाविक रूपसे अङ्गित नेत्रोंमें भी अङ्गन लगाया। दोनों कानोंमें मन्त्रिजटित कुण्डल पहनाये जो लज्ज और मुरजकी मति ही प्रकाशित हो रहे थे। कच्छमें मीनियोंकी बाज म्हीनकोमें मुखरज और चंदकियोंमें मुद्रिवापें पहनायीं। कमरमें मन्त्रिमन्त्र मुहुटजटिकाओं के युक्त लगी पहनायी। त्रिममें रत्नाकी बाँकर बटक रही थी। विभिन्न बाहु-पममें युक्त भववान् इस मति विराज रहे थे जैसे विविध उत्तमि युक्त घुर लव ही सुधोमिन हो रहा हो।^३

सम्राट् बस्त्रसेने भी आभोत्सव मनाया। बाटवसीके घर-घरमें मंत्राचार होने लगे। नामितिका वीथ या उठी और स्वान-स्वानपर नृत्य लवा संवीथ होने लगा। समूचे नगरमें अन्धन छिड़कना दिया गया और घर-घरमें रत्नोंके मणिवा रखे गये। माचकीको बाल दिया गया। और मुञ्जकीका सम्मान हुआ। सबकी जायार् पूरी कर दी गयी। अब कोई भी दीन-दु की लिवाई नहीं देता था। ऐसे अवसरपर इन्होंने भी देवताओंके साथ आनन्द नामके मन्दिरकी रचना की जिसमें उनके ताच्छक-नृत्यका नृत्य अनुपम था।^४

प्रथम दीर्घकर भववान् आनन्दके आभोत्सवकी बात कहते हुए आनन्दराजने लिखा है हे माई ! आज इस नवरीमें आनन्द मनाया जा रहा है। त्रिपती भी

१ गी, ५.१५.१. ५. १. १.

गी, ५.१५.५०. ५. १. १.

२ गी, ५. ५५. ५५. ५. १. १.

४ गी, ५.१. ५.१. ५. १. १. १. १.

५ गी, ५.१.१. १.१. ५. १. १.

पद्मामिनी और सधिवरणी सहनिगी है वे सब संयस-पीत पा रही हैं। राजा नाभिरायके घर पुत्र-अगम हुआ है और इस अवसरपर उनके यहाँ वा कोई भी भोजन भोजन नया उससे कहीं अधिक किया गया जिससे उसे फिर भोजनकी आवश्यकता ही नहीं रह गयी। सब देवीकी कृपा वर्य है जिससे ऐसा प्रतापशाली पुत्र हुआ कि देवता भी उनके चरणोंकी श्रद्धा करनेमें अपना महोभाष्य मान गये हैं। कवि बनारसीदासने दूसरे तीर्थकर अक्षितनाथके जन्मोत्सवका वर्णन किया है। उस अवसरपर भी देवागनाभोजने प्रभुराज्यमें संयसाचारके पीत पाय थे। अक्षितनाथ निर्मल वस्त्रको धारि सुन्दर थे। उनके जन्मसे पृथ्वी सोमा-सम्पन्न हो गयी और तीनों लोकों आनन्द छा गया। इसका कुल वंशमें उनके उत्पन्न होनेसे कुमतिवन्धी बन्धनार तो बहुतकुछसे विनष्ट हो गया था।^१

कवि बनारसीदासने एक आध्यात्मिक क्षेत्रके जन्मको दिखानेका प्रयास किया है। वह आध्यात्मिक पैदा 'सुखोपयोग' है। लोगोंमें बड़ी कुशलतासे 'सांगम्यक' रखा गया है। जिस प्रकार मूल जन्ममें उत्पन्न होनेवाला पुत्र समूचे कुटुम्बकी खा जाता है ठीक वैसे ही सुखोपयोगके उत्पन्न होते ही परिवार सम्पत्ती सदा-अमरता विकसित समाप्त हो गयी। उसने जन्म क्षेत्र ही ममता-रूपी माता मोह-कोमलकी दोनों जाई काम-कीचरकी से काका और दुष्मा की बाबकी खा लिया। पापकी पड़ोसी अधुन कर्मकी मामा और बन्धन गहराये दावाकी समाप्त ही कर दिया तथा स्वयं समूचे बाँधमें फँस गया। उसने कुमतिवन्धी दादीकी खा लिया और दादा ही उसका मूल देखते ही मर गया था। इस बाळकके उत्पन्न होनेपर भी संयसाचारके बहाने नामे मये थे। इस बाळकका नाम भोगू रखा गया क्योंकि उसके कुछ भी रूप और वर्ण नहीं है। वह तो ऐसा बाळक है जिसने नाम रखनेवाके पाण्डेकी भी खा लिया है।^२

१ गजबमनी अक्षि बरनी सकली मंगल वाचत है मिथरी ।

माई जान आनन्द है वा नगरी ॥

नाभिराय घर पुत्र मयी है, किसे है अज्ञातक बाचकरी ।

पाई जान आनन्द है या नगरी ॥

दानत वर्य कृप नरदेवी धुर सेवत आके पद री ।

पाई जान आनन्द है या नगरी ॥

बान्धनसंयस कलकटा पद १ ६ ६ ।

२ बनारसीदास बनारसी विद्यास, अथपुर १६१४ जलिनदासजीके जन्म पृष्ठ १५५ ।

३ बनारसीदास बनारसी विद्यास अथपुर १६१४ परमार्थ दिवसका पृष्ठ २३२ ।

'मऊय बैरा जायो रे साधो मूकन बैरा जायो रे ।
 जाय सोय कुनूय सब त्यायो रे साधो मूकन बैरा जायो रे ॥
 बम्भत माता बमता खाई मोह कोम दोह भाई ।
 काम अघ दोह अक्य त्याव छाई तुवना दार्य ॥
 पारो बाप परौसी लायो अछुय करम दोह माया ।
 माय नगर को राजा खायो पैर परी सब गामा ॥
 हुरमति दासी छाई बायो मुख देखन ही मूखी ।
 मंगलाचार बचाव बाजे कच यो बाकक हुनी ॥
 नाम धर्यो बाकक को धौनु, कर बरन कनु बाही ।
 नाम बरति पाँडे खाप कहत क्वारसि माई ॥

जैन साहित्यमें अनेक स्थानों पर बाककोंके लेखनी कथा वर्णन है। बाक-
 वर्चनोंमें सगरी लेखिकाणा की निरूपण होती रहा है। महाकवि वाल्मीकिने
 जैन 'आनुमन्तव्य' में दुष्यन्तके पुत्र धरय्यरा ऐसा ही एक लेखनी विषय बर्णित
 है। यद्यपि बाबू बकवर जीमदुबायधर की मुख्यताने बाककोंके मधुरतापरक
 कथको ही प्रचलना की किन्तु वह परम्परा भी रही। सतरावीं सठानीके
 अतिथि कवि ब्रह्मराजमल्लने 'हनुमन्तचरित' का विमोचन किया था जन्में बाकक
 हनुमन्तका जोरमयी वर्णन है। उन्होंने लिखा है, जब सूर्यकी भाँति देवीज्ज्वाल
 बालक हनुमन्तका जन्म हुआ तो जन्मकारकी धनुमन्तक स्वयं ही पद
 पदा। यह बाहे जोटा ही हो अत्यधिक सुर होता है, वह बड़े-बड़े हाथियोंको
 पचनाचूर कर डालता है। बुजोने जवान हुआ जब पितृता ही विस्तृत स्त्री न
 हो रती-भर जलित ही उसे बड़ाकर छार कर डालनेम पूर्व समर्थ है। अतिथि-
 ता बाकक की ऐसा ही जलिके स्फुटिकाकी भाँति होता है। बाकके स्वभावमें
 धीरे होता है उसे वह कभी छोड़ नहीं सकता।" ऐसे जन्म वर्णन की हिन्दीके
 जैन चरित ग्रन्थोंमें अतिथि है। जन्में वाण्यलीपठन ॥ और सरवध ॥ जल
 हीराबाके भी विविध वर्णन जैन पुराणोंमें व्याप्त है किन्तु जन्में सुर-जैठे मनो-
 वर्धनकी धमना नहीं है। बाककोकी जन्म-प्रकृतिही जैनी बुद्धर और स्वाभाविक
 व्यंग्यना सुर कर लके जैन-हिन्दीका कोई कवि नहीं।

सुरदासका विमोचन ध्यान बाकक दुष्यन्तका बाकिना राधापर नहीं।
 बाकिनाकीरा मनोवैज्ञानिक रूपन होता और अज्ञानके जन्में जैन भक्ति-कालीमें
 उपलब्ध होता है। रामचन्द्रके 'सीता चरित' में बाकिना सीताकी विविध

बेहोश होकर पड़े बिना सोचा गया है। 'जैनना सुम्हरी रास' में जैननाका बास-वर्णन भी हृदयग्राही है। बासिका सीता मधिमय आँगनमें बैठी अपने सुभाषित मेरासे चारों ओर देख रही है। किन्तु वह निता जनकपर नजर पड़ती है तो उसका हँसोपर भीठी मुसकराहट इस भाँति छिटक जाती है। जैसे किसी भक्तके हृदयकी विषय ज्योति ही हो। अम्मामें पड़ते उसके मुख-कमलके प्रतिबिम्बने कमबोली मालूम हो रच बी है। जैननाको तो उसके माँ-बाप सर्वसौ पकड़कर बचना सिखात है, किन्तु वह बार-बार फिर जाती है। वह मोली बालोंसे पिताकी ओर देखती है और वे उसको धूमकर बोचये उठा लेत है।

यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि जैन हिन्दी कवियोंके बास-रस सम्बन्धी चित्रण पर सुरदासका प्रभाव है। इसके दो कारण हैं—पहला तो यह है कि सुरदासरमें मम और अमोत्सवाकी उस खोखी पार्थिवी भी दृष्टान्त नहीं होता जो जैन काव्यमें प्रमुख रूपसे अपनायी गयी है। सुग्ने कुम्हक जैनकी आनन्द बघाईके उपरान्त ही 'यतीका हरि पातने मुचाई प्रारम्भ कर दिया है। यह अमो-त्सव ओझके बीच जैसे आनन्दकी सृष्टि न कर सका। जैसा कि जैन काव्यमें हुआ है। यद्यपि जैन कवियोंके इन उत्सव-विषयों परम्परानुवृत्तता अधिक है। मौलिकता कम फिर भी एक ऐसा आदर्श है, जो सर्वत्र चिर-नवीन बना रह्यो। सुधरा बारण है। हिन्दीके जैन मनि-साहित्यपर जैन-संस्कृत और अपभ्रंश काव्यका प्रभाव। हिन्दीक अविनाश चरित्र-ग्रन्थ ऐसे हैं जो संस्कृतके अनुवाद-भाष हैं। मुरदासका 'पार्व-पुण्य एक मौलिक काव्य है। किन्तु उसके वर्णन भी संस्कृत-साहित्यसे अनुप्राणित हैं। जैन जैन हिन्दीके बास-रसके पीछे उसकी अपनी परम्परा है। सम्भव है उसका सुरदासपर भी प्रभाव पड़ा हो। स्वयम्भूके पहल चरित और पुण्यरत्नके 'महापुण्य में बलिष्ठ बास-वर्णनके कतिपय पद्य मुरके बास-वर्णनमें मिलते हैं। महाकवि पुण्यरत्न (ई सं १५९) के महापुण्य में बास-वर्णनमें बास-सीन्धर्व मुरदास (वि सं १५४) के सुरदासरमें बलिष्ठ बासक रूपसे बिलकुल मिलता हुआ है।

ममबकीकिवा काकमसीकिवा । पङ्कजा दादिवा कवा न मादिवा ॥

धूमि धूमर बबगव कविस्तु । सह आपक निकर्षेस्तु कविस्तु ॥

हो इकट ओ आ सुहु सुजहि । पई वजर्षतव मूचगणु ॥

अरु टिगह हुकिव मकन । का सुवि अकिगुण न दाह मणु ॥

१ राधकन्द जीवाचरित, जैनविद्यालयका काराकी सम्पत्तिगत ग्रंथ १११९ पृष्ठ ११ ।

२ जैन-सुन्दरीभाग जैनविद्यालयका काराकी सम्पत्तिगत ग्रंथ १११९ पृष्ठ ४१ ।

भूखी भूमरा कठि किंकिणी सरी ।

निरुप मलीकड भीकइ पाकड ॥

— महापुराण

कहीं की बरनी सुन्दरताह,

ककट कुँआर कमल योगन में जैन भिरति कवि छाह ।

कुम्हड़ि कसति सिर स्वाम सुमग भति बहुविधि सुरंग बगाह ।

मापी बबबन कपर राजत मयका बबुब बगाह ।

भति सुदेश मृदु हरत चिकुर मय मोहन मुख बगाह ।

लंछित बबन देव गुन गुन कप कप ककपाह ।

सुदुरा ककट रैनु तन मंछित सुरदास बनि काह ॥

— दूरदास

इसीको केसरों का पंखिला तोषारने लिखा है, अतः इस संक्षेपमें यह उक्त है कि हिन्दीकी सभी काव्य-प्रवृत्तियोंका स्पष्ट स्वरूप हमें जैन कवियों-द्वारा प्राप्त हुआ है। महाप्रज्ञ-रूप में तो यही एक किता है कि—हिन्दीका कौन कवि है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से महाप्रज्ञके जैन प्रत्यक्ष काव्यात्मक प्रभावित न हुआ हो। यही इतनी बड़ी बात नहीं कही जा सकती। किन्तु महापुराण और दूरदासक काव्य-बचनोंका साम्य विचारणीय व्यवस्था है। दोनोंके हृदयमें एक-ही भाव था उभरते है फिर भी ऐसा हुआ नहीं गी सकता। यह सब होना है तो प्रथम का द्वितीय पर प्रभाव सिद्ध हो ही जाता है। प्रभावित होते हुए भी दूरदास पुष्पग्रन्थके अनुशासक नहीं है। पुष्पके लेखक 'बाब और केसरी' कपरो अपनानेके कारण बाक्यकी विविध लीरयोंके निकपयका मित्रता अवतर दूरदासकी भिन्न पुष्पग्रन्थकी नहीं। महाकाव्यका निर्माता बाक्यार्थन'में अधिक नहीं बन सकता। उसे कथानकके लाने जाये वह बना होता है।

यं दामनर धुलकने लिखा है, 'वाल्मीकिरसके भीतरकी जिनगी वास्तविक कृतिता और रघुबीरका अनुभव और प्रत्यक्षीकरण दूर कर के कल्पना और कोई नहीं। दामनर धुलकको 'जैन हिन्दी काव्य' देखकर हममें नहीं भिन्न। मन्दारक काव्यमयने अपने 'माधवीचरित्र' में 'माधवीचरित्र'की इतिवृत्ति

१ डॉ. राधिका प्रेम, जैन साहित्यकी हिन्दी साहित्यको देख, प्रती अमिताभ भाग पृष्ठ ४६ ।

२ डॉ. श्री कल्याण राय काव्य अमिताभ भाग पृष्ठ २२ ।

३ महाप्रज्ञ-काव्य, विनीत चरित्रका लक्ष्यी भूमिका पृष्ठ २ ।

प्रति^१ में बाहिनामकी बाह्यवशाओंको विचरवत् उपस्थित किया है। बाह्यक मादी स्वर पात्नेमें पड़ा हुआ सो रहा है किन्तु बीच-बीचमें कभी भाँख झोककर देखता है, कभी रो बैठता है और कभी अपना बचक हावासे द्वार मोड़ भगवा ठोड़ देता है।

‘आहे क्षिप्ति ओवहू क्षिप्ति सोवहू रोवहू कहीअ सगार ।

आकि कमहू कन ओवहू ओवहू नकसर द्वार ॥१॥ ३॥

भट्टारक ज्ञानभूषण एक सामान्यवान् कवि थे। बाह्य-भगवान् के पैरोंमें स्वयंके भुँवरु पड़े हैं। जब वह लड़कवाले उपासे बसत है तो उनमें-से ‘अन अन नौ भवुर धनि फूटनी है, जिसे सुनकर भुवति और माँ मरुईसो बोनो ही को अपार प्रसन्नता होती है।

“आह अन्न अन्न भूँचरी बाजहू ईम सजी बिहु पाहू ।

तिम तिम नरपति हरकहू मरुईसी माहू ॥१॥ १॥

वहाँ ‘भूचरी और ‘अन-अन’ न समुचे दुष्पको ही उपस्थित कर दिया है। ‘भूचक’ वा लघुस्वर ‘भूचरी’ लघु शालकके उपमुक्त ही है। उनमें-से निकलनेवाली ध्वनिके लिए ‘अन अन के प्रयोगसे बिग बीबन्त हो उठा है।

कविन बाह्यक छरीरकी शोभाक बर्णन करते हुए लिखा है कि बसक अम प्रत्येक अनुपम है। बाह्यकके मस्तकपर टोपी विराजमान है, कानामें कुण्डल लटक रहे हैं। देखनवाका क्या-क्या देखता है उनका हृदय अधिकधिक आह्लासित होता जाता है। अर्थात् बसक तृप्तिका अनुभव नहीं करना।

आहे अगोच अंगि अगोपम उपम रहित शरीर ।

टोपीअ उपीअ मस्तकि बाह्यक लहू वज बीर ॥१॥ ५॥

आहे कनिअ भुँडक झककहू लककहू नैडर बाड ।

जिम जिम निरकहू हिवकहू तिम तिम माहू ॥१॥ ६॥

प्रेमभाव

भक्ति रसका स्वादो भाव भगवद्विषयक अनुराग है। हमीकी ध्यानिदृश्यने परानुरक्ति, बड़ा है।^१ परानुरक्ति बम्बीर अनुरागको कहते हैं। बम्बीर अनु

१ आनेर शास्त्रब्यवहारकी दृष्टिनिष्ठित भक्तिर, रचनाकाव्य वि स १२२२ दिया है।

२ शास्त्रिण्य भक्तिरुप बीजमेष्ठ दोरधुर ११९, पृष्ठ १।

एव ही 'प्रेम' कहलाता है। सैन्यमहासमुने रति धवला अनुपपत्ते बाई हो जानेको ही 'प्रेम' कहा है। 'भक्तिरसायनसिन्धु' में भी उल्लेख है। तन्मन्त्रमूर्ति-तन्त्रावली समस्तानिष्ठमादिष्टम् । माध- स एव साक्षात्मा कुर्वे प्रेम निवर्तते ॥

प्रेम' का प्रकारका होता है—भौतिक और अधौतिक। भगवद्विषयक अनु-एतन अधौतिक प्रेमके अन्तर्गत आता है। यद्यपि भवबान्धुता अन्तार माधकर वृत्तके प्रति भौतिक प्रेमका भी आरोपण किया जाता है। विष्णु उद्यने पीछे अधौतिकत्व सहैव छिपा रहता है। इस प्रेयमें समूचा आत्म-समर्पण होता है और प्रत्येक प्रका-पमनकी भावना नहीं रहती। अधौतिक प्रेयवश्या तत्कीनता ऐसी विकसित होती है कि ईशवास ही मुक्त हो जाता है। फिर प्रेम' के प्रतीकारका धाम नहीं रह जाता है।

गारियाँ प्रेमकी प्रतीक होती हैं। उनका हृदय एक ऐसा कोमल और चरत जाता है, जिसमें प्रेम-भावको कहकरहानम देर नहीं लगती। इसी कारण भक्त को बाण्डाबाधसे भवबान्धुकी आगाहना करनेमें अपना अहोपाध्य समझता है। यन्त्र 'प्रिय' कहता है और भवबान्धु 'विष'। यह आत्मरसभावका प्रेम केन कविबोली रचनाबोम भी उपलब्ध होता है। केन साहित्यके व्यापनकर कवि बनारसीरायने करने 'अम्बारम-भीत म आत्म्याको नायक और सुमति को वसुकी पत्नी बनाया है। पत्नी पतिके विरोगमें इन घण्टि पड़प रही है। जैसे बच्चे बिना मछली। वृत्तके हृदयमें पतिसे भिन्नता भाव निरन्तर बह रहा है। वह अपनी समता नामकी लगी-से कहती है कि पतिके वर्धन पाकर मैं सममें इन तरह मग्न हो जाऊँगी जैसे बूँद हरिया में समा जाती है। मैं अपनी ओर पित्त सँ मिलूँगी जैसे बौद्ध बहकर पानी हो जाता है। अन्तमें पति तो कब अपने बटने ही भिन्न पदा और वह

१ साधन-मणि हृदये हृदय रतिर बहव ।

भक्ति बाण हृदय तार प्रेम नाम वय ॥

भक्ति वन कुने प्रेम उपजय म

सैन्य भट्टिगान्, क-भाण, मणि वन्द, वर्ष १११ अंक १ पृष्ठ ११३।

२ श्री मन्त्र बोलासी, अधिष्ठातासिन्धु, बोलासी आम्बर राखी उपाधि, भक्तुन्मन्त्रका आर्चन, काशी सि र्त १६०० मन्त्र सल्लर, १५११।

३ मैं विरहित पित्त के आधीन। त्यों तन्त्रो की बह बिग मीन ॥३॥

होतुं बनन मैं बरतन पाव । क्या हरिया मैं बूँद मनाय ॥२॥

विष का विषम अन्तरी कोम । आका वन पानी क्यों डीव ॥१॥

बनारसीनाथ अक्षर १६२४ ई. अन्तःतन्त्रो पृष्ठ १५६ १६ ।

उमसे मिलकर इस प्रकार एकमेक हो गयी कि द्विविधा तो रही ही नहीं। उमके एतत्त्वको बहिनने अनेक गुप्तर बृहत्तमसे पुष्ट किया है। वह करतूति है और पिय कर्ता वह सुप-सीव है और पिय सुम सागर वह विष-सीव है और पिय दिव-मन्दिर वह सरस्वती है और पिय ब्रह्मा वह कमला है और पिय माधव वह मधानी है और पति होकर वह जिनवाणी है और पनि जिनेन्द्र।

“पिय मोरे घट में पिय माहिं । जक तरंग ज्यों बुझिवा बाहिं ॥
पिय मो करला में करतूति । पिय ज्ञानी में ज्ञान विभूति ।
पिय सुम सागर में सुख सीव । पिय शिव मंदिर में शिवनीय ॥
पिय ब्रह्मा में सरस्वति नाम । पिय माधव मो कमला नाम ।
पिय होकर में होवि मजानि । पिय जिनवर में देवक बानि ॥

बहिनने तुमवि रानीको ‘राधिरा’ माना है। उसका लीलाय और वातुर्य सब कुछ राधाके ही समान है। वह कपली रसोमी है और अमरुपी ठालेकी घोन्नेके लिए कीलीके समान है। ज्ञान मानुको बन्म देनके लिए प्राची है और आत्म-स्वयमें रमनेवाणी सखी विभूति है। धारने धामकी गहरदार और धमनी रमनहार है। ऐसी उम्याकी माय्य उसके पग और गन्धोंमें प्रतिष्ठित और घोमाकी प्रतीक राधिका तुमवि रानी है।^१

तुमवि धारने पति ‘चेनम’से प्रेम करती है। उमे अपने पतिके मनस ज्ञान बल और मोयबाधे पल्लव वर एकनिष्ठा है। किन्तु वह बर्मा की नुसंयतिमें पड़ कर मदक गया है। ज्ञान बड़े हो मिटास मरे प्रेमसे तुलरावे हुए तुमवि बहनी है ‘हे मात ! तुम किछे छाप बहूँ लये छिछे हो भाव तुम ज्ञानके महकम गया नहीं धारने। तुम अपना हृदय-सलम ज्ञानवृद्धि शोकदर देखो दया दामा

१ बनारसीविनायक, बनपुर, अन्ध्यात्परीन इ. १११।

२ दय की रानीकी अम बुन्द की कीली

लील मुवा के समुद्र औलि सीलि मुरवाई है।

प्राची ज्ञान मान की अत्राची है निधान की

मुराची निरवाची और सांची ठगुवाई है।

धाम की गहरदार धाम की रमनहार

राया रम बहनि में पाबनि में पाई है।

मनस की मानी निवाणी कर की निमापी

धाने मुदति रानी रादिका बहाई है।

बनारसीशाल बाउल्लकगार मयविट्टिहार वय ७४।

समता और शान्ति दोनों सुन्दर रमणियों तुम्हारी सेवायें करी हुई हैं। एतने एक अनुपम कपवाली हैं। ऐसे मनीस्य वातावरणको मुकन्द और कहीं न जाए। यह मेरी सहज प्रार्थना है।”^१

‘कहीं कहीं कीम संग कागे ही फिरत काक
जायो कहीं न आज तुम ज्ञान के मण्डप में ।
बैज्य निकोकि देखी जगद सुदृष्टि नेती
कैसी कैसी बोकी नारि काड़ी हैं दृष्ट में ॥
एकबलें एक कवी सुन्दर मुकुप गनी
उपमा न काव गवी नाम की चहुँक में ।
देसी विधि पाव कहूँ भुक्ति और काय कीजे
कौन कौन मान कीजे भीषती सहक में ॥’

बहुत दिन बाहर बटवनेके बाद जैन राजा आज घर जा रहा है। सुनठिने जानकरा कीई ठिठाना नहीं है। बपोंकी प्रतीक्षाके बाद जिनके आगमनको सुनकर भना कौन प्रसन्न न होतो होवी। सुनठि आकाशिन होकर अपनी लकीने कटती है। ‘हे लकी ! देखो आज जैन घर जा रहा है। यह अनादि नाक एक बूझोंके बंधन होकर जूझा फिरा अब कहने तमारी सुख की है। अब तो यह भवजान् जिनको आकाशको घातकर परमानन्दके पुष्पको पाता है। उनके जन्म-जन्मके पाप भी पकावन कर गये हैं। अब तो जगने ऐसी भुक्ति रस को है जिससे उन्हें संसारमें फिर नहीं जाना पड़ेगा। अब यह जगने जलवासे परम अलक्षित मुकन्द विद्या करेगा।’^२

पतिनो देखते ही पत्नीके जगदसे परमपुनरुप प्राप्त हुए ही जाना है। ईश हट जाता है और जैन जगम हो जाता है। ऐसा ॥ एक जाव बनारसीबासे

१ मीरा जगन्निवास, अष्टनिवास कैदाभारतभारत बरबोस, बन्दी दिदीपदधि, ७५ १६२६ ई. राजा जगोपरी, जगदीश, १४ १४।

२ देखो मेरी लकीये आज जैन घर जावे।

नाक अनादि फिरपी परबध ही अब निज सुबहि चिन्तावे ॥

जगम जगम के रूप जिने को ही जिन माहि बहुरावे ।

मी जिन आकाशिर पर बरती परमानन्द मुज पावे ॥

ईश बकाबुकि जगद फिरन को ऐसी भुक्ति जगवे ।

निकने मुज निज परम अलक्षित देखा सब मन पावे ॥

महा समारंभ परमनि, १४ वीं पद, १४ १४।

चास्ति विवाहः । सुमतिं चेतनसे कर्तुमीति । हे प्यारे चेतन ! तेरी ओर बेवत हो परामेयनही तपरो पूरा गयो । बुद्धिबाका जंजल हूँ गया और समूची कर्मा पनावन कर गयो । कुछ समय पूर्व तुम्हारी याद जाते ही मैं तुम्हें सोचनेके लिए बकैसी ही राग-गमकी छोड़कर भयावह कायारामें भुल पड़ो थी । वहाँ काया तपरोके भीतर तुम अनन्त बल और ज्योतिबाके होते हुए भी कर्मके आबन्धनमें सिले पड़े थे । अब तो तुम्हें मोहकी नींव छोड़कर साधवान हो जाना चाहिए ।

बाकम तुहू तन चित्तबल गान्गि कूटि
अन्तरा यी अन्तरा सरम नै कूटि बाकम ॥१॥
पिड सुनि पावत बन में बैसित ऐकि
छाहव राज इगारिबा मन्त जकेकि बाकम ॥२॥
काय नगरिबा भीतर चेतन भूप
करम छेप कियदा बल ज्योति स्वकम बाकम ॥३॥
चेतन कृति विचार धरतु सन्तोष
राम दोष दूह जंजन हूटत मोप बाकम ॥४॥

एक सखी सुमतिको लेकर नामक चेतनके पास मिलानेके लिए गयी । पहले बुनियाँ बना दिया करती थी । वहाँ वह सखी अपनी बाका सुमतिनी प्रशंसा करते हुए चेतनसे कहती है । 'हे भाऊ ! मैं बबोलाक बाका कायी हूँ । तुम देखो तो वह कैसी अनुपम सुन्दरी है । ऐसी गारी लीना छछारमें बूझती नहीं है । और हे चेतन ! हमकी प्रीति भी तुममें ही लगी हुई है । तुम्हारी ओर इस राखेकी एक-दूसरेपर अनन्त रोति है । उनका वर्जन करनेमें मैं तृप्तगीया असमर्थ हूँ ।'^१

आध्यात्मिक विवाह

इसी प्रेमके प्रसंगमें आध्यात्मिक विवाहोंको किया जा सकता है । ये 'विवाह का विवाह' विवाहकृत और 'विवाहकी आदि' नामसे अभिहित हुए हैं । इनको दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—एक तो वह सब बीसा-दृष्टिके

१ वनारसीलिपिअनुसृत मधुर जयपालस्यकि ५ १९८-२०३ ।

२ साई हो भाऊन बाक बबोलाक देखतु तो तुम कैसी बनी है ।

ऐसी कहूँ तूहें जोह मैं नुबर और न गारि जनेक बनी है ॥

याहि तै तोहि कहूँ दिन चेतन याहूँ भी प्रीति नु ली लो लो लो है ।

तेरी ओ राखे की रीति अनंत नु लो ये कहूँ वह जान गयी है ॥

मद्रिनास राज ज्योती १५ २५, ६ २४ ।

रचना वि. सं. १९३१ में हुई थी। हिन्दीके कवि मुमुक्षुभक्तका 'ऋषभविवाह' भी ऐसी ही एक कृति है। इसमें मगवान् ऋषभनाथका वीरान-कुमारीके साथ विवाह हुआ है। भावक ऋषभनाथका जादीस्वर बोवाहूँ भी बहुत ही प्रसिद्ध है। विवाहक समय मगवान् जिस चुनड़ीकी जोड़ा था वही चुनड़ी छगानेके लिए न जाने किन्तुनी पत्निमाँ अपने पतिमाँस प्रार्थना करती रही है। छोछहवीं पदाब्दी के निमग्नभक्तकी 'चुनड़ी' हिन्दी साहित्यको एक प्रसिद्ध रचना है। साबुकीठिकी 'चुनड़ी'में ही सजेदारमक प्रवाह भी है।

सौर्यंकर नेमीश्वर और राजकुलका प्रेम

नेमीश्वर और राजकुलके कथानकको केकर तीन हिन्दीके मस्त-कवि शास्त्रय भावको प्रकट करते रहे हैं। राजसेठर सुरिने विवाहके लिए राजकुलको ऐसा सजाया है कि उसमें भूख काव्यस्व ही साक्षात् हो उठता है। किन्तु वह वही ही अपात्य बुद्धिसे संभावित है, जैसे 'उषा भुवानिधि'में राधाका सौन्दर्य। राजकुलकी छोछहवीं सोमाँस पूछ ऐसी बात है कि उससे पवित्रताको प्रेरणा मिलती है, जानबारी नहीं। विवाहमण्डपमें विराजी बहू जिसका जानकी प्रतीसा कर रही थी वह मूक-यष्टुकीं करन-कनकसे प्रभावित होकर सोठ गया। उस समय बहूकी निमनिसहृद और पतिको या कैनेकी बेचैनीका जो चित्र हैमविजयसूरिने खींचा है वृत्त नहीं खींच सदा। हृषकीनिकी नेमिनाथ राजकुल पीत भी एक सुन्दर रचना है। इसमें भी नेमिनाथको या कैनेकी बेचैनी है किन्तु वही सरस नहीं हैनी कि हैमविजयने अंकित की है।^१

कवि भूवरदासने नेमीश्वर और राजकुलको केकर अनेक पदोका निर्माण किया है। एक स्थानपर तो राजकुल अपनी मति प्रार्थना की है, हे माँ! हेर न करो मुने धीम ही बहूँ मेर ही अहूँ हमारा प्यार पति रखता है। बहूँ तो मुने कुछ भी अण्ड नहीं लगता भारो और अँवेरा-ही अँवेरा दिखाई देता है। न जाने नेमिन्धी विवाकरना प्रजासमभाग मुन कब दिखाई पड़ेगा। उनके बिना हमारा हृदयकी धरनिन्य मुरलाया गया है।^२ विमलिकनकी ऐसी विषट

१ इसी मन्त्रका वृत्त अन्धान, हेमविजय।

२. मा विमल न काम पठाव लहूँ री अहूँ अपति पिय प्यारो।

और न मोहि मुदाय बछू बच बीसे जगन अँवारो री ॥मा विमल ॥१॥

री धी नेमि विवाकर की नव देखा बरन उमरारो।

बिन पिय देरी मुरलाय रखी है धर अँवेरा हमारो री ॥मा विमल ॥२॥

भूवरदास भूवरनिवास कनकदा १९३१ पृ. ५८।

बाहू है जिससे कारण बहुतों ने प्रार्थना करते हुए भी नहीं कहा। कौन-से प्रेम-यमनने कहा जाती है क्योंकि उसमें काम'की प्रधानता होती है, किन्तु वही तो मन्त्रीक और विष्णु प्रेमकी बात है। मन्त्रीककी लक्ष्मीनन्दमें गाय हारिक अर्चन अनुचित प्याग नहीं रहता।

रामचन्द्र विद्योत्तम 'संवेचना'वाले पहलूकी ही प्रधानता है। मन्त्ररामने रामचन्द्रके अन्त स्वर विष्णुको सहज स्वाभाविक रूपसे अभिप्रेषण किया है। रामचन्द्र अपनी धर्मीसे कहती है "हे सखी ! मुझ वहाँ के एक बच्ची प्यारे बाजीरारि रहते हैं। मेमिस्सी चन्द्रके बिना वह आवाजका चन्द्र मेरे सब तन मनको बजा रहा है। उनकी किरणें नाचिकके तीरकी पति अधिक लुत्तियोंको बरसाती है। पतिने तारे तो बंगारे हो हो रहे हैं।"

"उहाँ के एक ही ! बच्ची बाजीरारि प्यारे।

मेमि निम्नकम बिना वह चन्द्र, तब मन बहुत सखी ही ॥१॥

किन्तु किसी नाचिक-दर-पति के लो प्यारक को सखी।

तारे हैं बंगारेसखी रत्नको रत्नक एक ही ॥२॥

कभी-कभी रामचन्द्रके विष्णुमें 'ऊँ' के दर्शन होते हैं किन्तु जयमें नाचिकके 'पै'लम ही जानेकी बात नहीं आ पाती है इसी कारण वह समाज बचने का गया है। यद्यपि रामचन्द्र 'ऊँ' की ऐसा एक रहा है कि हाथ बतके धर्मन नहीं के जाया आ सकना किन्तु ऐसा नहीं कि बचकी बरसीते बचनेमें सुन्दर बचन कमी हो। रामचन्द्र अपनी धर्मीसे कहती है, "मेमिस्सी चन्द्रके बिना मेरा बिना रहना नहीं है। हे सखी ! वेद मेरा हृदय बँना तन रहा है। तू अपने हाथकी निम्न कर देनती कवी नहीं। मेरी विष्णुमन्त्र बलवन्त कपूर और लम्बके वस्त्रि दूर नहीं होती उनकी दूर दूरा है। मुझे तो 'विष्णुमन्त्र' की बकर कपड़ा है। विष्णुमन्त्र प्रभु मेमिस्सी चन्द्रके बिना मेरा 'विष्णु' कीलक नहीं हो सकता। विष्णु विद्योत्तम रामचन्द्र की पीछी एक कमी है किन्तु ऐसा नहीं हुआ कि बचके धर्मन एक लोका मात भी न रहा हो। विष्णुके धर्म नदीमें लतका हृदय भी

१ मन्त्रराम मन्त्रराम, कल्याण १९३०, पृष्ठ २२।

२ मेमि बिना न रही मेरी विष्णु।

हेर ही हैनी तन कर कौनो लम्बन कवी निम्न हाथ न निम्न ॥१॥

बकि बकि दूर कपूर लम्बन दन कम्बन बकर लम्बन विष्णु ॥२॥

मृपद के प्रभु मेमि बिना बिना कीलक होन न रामचन्द्र विष्णु ॥३॥

वही २ १०५ ६ २२।

या है किन्तु बसकी बाँधेति जूनके बाँधू कभी नहीं बूझक । हरी तो वह भी बसति घँटकर ही होनी किन्तु उनके हाथ मुझकर सारंगी कभी नहीं बने ।

बारहमासा

नेमीस्वर और राजकुलको लेकर शैव हिन्दी-साहित्यमें बारहमासोकी भी रचना हुई है । इन सबमें कवि विनोदीशारदा बारहमासा उत्तम है । प्रियाको प्रियके मुझके अनिरवधकी बाँधका सबैव रखनी है भके ही प्रिय मुझमें रह रहा ही । तीर्थकर नमीस्वर योगदायी होकर, निराकुलतापूर्वक विरगारपर लप बर रहे है किन्तु राजकुलको संका है । अब साधनमें जनबोर बढाएँ बूझ जायेंगी बारा मोरसे मोर घोर करेने कोकिल मुझक सुनावेको बागिनी बसकेगी और पुरवाईके जाने बसेगी तो वह सुबपूर्वक लप न कर सकेंगे । ^१ प्रियके लपनेपर तो राजकुलकी बिम्बा और भी बड़ ममी है । उसे बिम्बास है कि पतिका बाबा बिना रमाईके नहीं बनेगा । बतानी बुझनीसे तो काम बसेवा नही । तमपर भी कामकी छीने इसी मनुमें निपटती है कोमल गावके नमीस्वर उससे लड न सकेंगे ^२ ब्रह्मावरी गरमीको देकर राजकुल और भी अधिक व्याकुल है, क्योंकि इस बरसीम नेम बरको व्यास बनेगी तो बीतक कब कहीं बिकेगा ? और तीव्र धूपस लपटे बरबरोसे लनका घरीर डक बायेगा । ^३

कवि बदामीस्वरका निमि राजकुल बारहमासा भी एक प्रसिद्ध रचना है । इसमें कुल १४ पद्य हैं । प्रहलिके रमणीय सन्निधानमें विरहिनीके व्याकुल साव-ना सरस सम्मिलन हुआ है । 'भावगका नाह है बारा मोरसे बिचट मढाएँ बमड छी है । मोर घोर मचा रहे है । आसमानमें बागिनी बसक रही है । बागिनीमें

१. देखिए, मृदुकिताव १२वीं पद्य वृ ६ और विनायक बागिनीके नाममात्र विरह कर्तव्ये ।

२. प्रिया साधन में जन लीने नहीं जनबोर बढा पुर जायेंगी ।

बहुँ और ते मोर कु घोर करे जन कोकिल मुझक सुनावेगी ॥

प्रिय रस बंधनी में लूरी नहीं बरु बागन बसक डरावैगी ।

पुरवाई की लीक सदायै नहीं छिम में लप लीक सुरावैनी ॥

कवि विनोदीशारदा बारहमासा मेधिराहुपका बारहमासा नमरा विम्बावरी प्रचारक काव्यक, कल्पकदा ४वां पद्य वृ २४ ।

३. वरी, १२वीं पद्य वृ २० ।

४. वरी, २२वीं पद्य वृ २६ ।

आध्यात्मिक होलियाँ

बैन साहित्यकार आध्यात्मिक होलियोंकी रचना करते रहे हैं। उनमें होलीक संग-उपायोका आरम्भसे रूपक मिलाया गया है। उनमें आकर्षण तो होना ही है, पावनता भी आ जाती है। ऐसी रचनाओंको 'प्यव' कहने हैं। इस विषयमें कवि बनारसीदासका 'प्यव' बहुत ही प्रसिद्ध है। उसमें आत्माकयी गायक विषममुखरी से होली लेता है। कविने लिखा है—
सहज भाग्यकयी बसन्त आ गया है और
धुम भावकयी पत्ते लहलहाये कये हैं।
सुमतिको कोकिका गहगहरी होकर गा
छटी है और मनको मीरे भरोमस्त होकर गुँजार कर रहे हैं।
सुरतिकयी अग्निज्वाला प्रकट हुई है, जिससे अहकर्मकयी बन जाक गया है।
अमोचर अमृतिक आत्मा बमकयी प्यव लेल रहा है।
इस भाँति आत्मध्यानके बलसे वरमन्त्रोति प्रकट हुई जिससे अहकर्मकयी होली बल गयी और आत्मा धाम्नि
राममें मग्न होकर विष-मुखरीसे प्यव लेकने लगा।

विषम विरच पुरो मचो हो धायो सहज बसंत ।
प्रगती सुखचि सुगंधिता हो मग्न मनुकर मचमंत ॥
सुमति कोकिका गहगहरी हो बहो अपूरव बाढ ।
भरम कुंदर बादर कये हो बढ बाढ़ो बहुराढ ॥
धुम दक बरकच कहकह हो होहिं अमूम पतझार ।
अकिन विषव इति माकठी हो विरनि बेकि विस्मार ॥
सुरति अग्नि ज्वाला जगा हो समकिन भासु बमद ।
इदव कमल चिकसित मचो हो प्रगट सुखस मकरंद ॥
परम ज्योति प्रपट मई हो कागी होकिका प्यव ।
बाढ काढ लच करि बुझे हो गाई लताई भाग ठ”

कवि धाम्निदासने ही अर्थात्के मध्य होलीकी रचना की है। एक ओर तो बुद्धि क्या आत्माकयी गारियाँ हैं और दूसरी ओर आत्माके गुणकयी पुर्य हैं। भाग और ध्यानकयी डक लचा लक बन रहे हैं उनल वनप्रकयी वनघोर पक्ष विफल रहा है। धर्मकयी काक रंयका गुनाक डक रहा है और लमनाकयी रंय होमो ही बलीन बीम रला है। बीमों ही बल प्रसक उधारकी भाँति एक दूसरेपर विचकारी भर भरकर कोरते हैं। इससे पुरुषधर्म पृच्छा है कि तुम जिसकी गारी हो तो उकरके लिखा पृच्छी है कि तुम जिनके छोटा हो। बाढ कर्मकयी बाढ अनुभवकयी अग्निमें बल-बुझधर धाम्नि हो गये। फिर तो लज्जामों

के बेनकरी बजोर, धिबरमण्डीके बागमण्डली कीरको दण्डनी क्यार देखी हो रहे ।^१

आयो सहज बसंत खेले सख हारी होय ।
उठ बुधि ब्या छिमा बहु छाँई हूत बिब रचन सजे गुन जोर ॥
गान ग्यान उठ ताछ बज्र हैं अवहट् सङ्ग होय बनबोरा ।
बरम सुराग गुकाक उड़त है समता रस दुई न जोर ॥
परसन कतर मरि पिचकारी जोरत बीनो करि करि जोर ।
हूतसे कई बारि तुम कानी उतसे कई बीन को जोरा ॥
आठ बरत अनुभव पावक में एक बुद्ध दान्त कई सख जोरा ।
आनत सिख आनन्द बरु छवि देखहि सखजन बीन बजोरा ॥^२

मूरदाच्छा की बापिकाने की अपनी छविसे केरा दया-बदलीमें बागमण्डली केरसे छिक्की केरत मोरकर जोर रये हुए बीरकी अवधकपी पिचकारीमें भरकर अपने प्रियजनके ऊपर छोड़ा । इन धाति अपने आरक्षिक बागमण्डली अनुभव किया ।

बनरामजी होकिषीमें बिब उपस्थित करनेकी बहुतुन समय है । एक जोर बिनरामा है हूतरी जोर गूढ परिपति रानी । दोनों एक-दुसरेके हूरतकी अनुभवतपी रससे मुरसिकपी पिचकारीके द्वारा छिड़क रहे हैं । दोनोंने जय जय रसमे सराबोर हो गये हैं । कोई बचा नहीं है । इस मुहमें दोनों जीन हैं । किसी प्रकार भी विद्वष्टे नहीं कल्प । दोनों बहुत बलवत बीरके युक्त हैं । प्रमुके हूत बरमुन कौतुकको देखकर बर्यकका बरकपी गठ अवस्थित होकर माने किया नहीं रह सकया ।^३

“हारी की छाछपी क्यार मछी है ।

बिनरामा बुद्धि परिमति रानी रस बस बीन काहि रच्यौ है ॥

१ बागमण्ड, बागमण्डल किन्नाली ग्यारह काशीन बनकरा दरर्षी न
॥ ३६-३७ ।

२ सरमा नामर में बहि कवि केनर जोरि सुरी ।

बागम नीर अवध पिचकारी जोरो नीली रीत ॥

होरी खेलौनी बर माने बिहारन रीत ॥

मूरदाच्छा पर ‘होरी खेलौनी’ धम्मपण्डली, १ राममुनार क्यारि,
बारौन धम्मपण्ड, काशी १ ७५ ।

३ मूरदाच्छा न ४६५, पं ३३ नीलकण्ठी मधिर, अनुवर ।

अनुभव रंग सुरति पिचकारी छिरकन हिय रै पा निहचपी है ।

अग-धंग सरसग सगसग बुद्धि कीक नाहि बचपी है ॥

सुन में कीम न बिछुरत क्यों ॥ भीरज अनुक अनस्त करपी है ।

अग प्रभु का अनुभव कीगुक ककि मन बर मरी अगति नचपी है ।

इस बार अमरामके प्रभुके लिए बैठी अकली होती बन पड़ी है। अग्य निमीके किए नहीं। उनकी निमपरिणति रानीने उन्हें भी अपने रंगमें रंग लिया है। उनका रंग ऐसा-वैसा नहीं है। वह आनन्दकी सखि दुयकनी केसर और चारितकपी चोपाका मिलाकर बनाया गया है। रंगके साथ ही बुनपी औरके व्याकपी मुलास-अबीरका भी प्रयोग हो रहा है। रानीने लुककपी नयोंमें राखाको छना डाला है। नय और वलकनी नर्तकियां नाचा नाचते नृत्य करती हैं। वे स्पाइर कपी नाचको अलापने हुए निम-नियम लय और ललित रिखाती रहती हैं। रानीने राखाको हम प्रकार रखके वरमें कर लिया है कि वह अग्य नही जा पाता। अगते सबलकपी कमुका लेकर अपने मन्दिरमें बिरमा लिया है।^१

‘पेनी कीकी हारी प्रभु हो के बनि जायै ।

निम परमति रानी रंग कीकी अपने रंग बिकारै ॥

ग्याम सखि अग केसर चारित चोपा चरति रचारी ।

दया गुनाक अबीर उकुनी सुचमद उकनि ककाब ॥

नचकत लुपकारिनी नाचै नाचा माच बतारै ।

स्पाइर मोह माह अलापन कय तानन मी रितायै ॥

कम हम कम करे कीमे जो अनन न जानन पायै ।

मरकम कमुका के अगति पै निम मन्दिर बिरमायै ॥”

नगरम होयी हो रही है। लभन आनन्द आया है। बैचारी मुक्ति उधने निगान बचा है। उनका पनि अत्रन पर नहीं है। वह दु नी है-अनीष दुनी। उनका दुग बेचल फिरह अग्य हो नहीं है। अगिनु इनलिए भी है कि पति सीत कुमनिके घर हाथी लेन रहा है। किन जानि लाया जाये। अगुमें अगते ‘निम ग्यामी के प्रार्थना की कि उसे ललाकार कीप्रलनेमें ललायना करे।^२

१ वरमद १८ म ३८, वर १२ दिन्दर अग बैचारी मन्दिर, वहीन ।

२ अगते हा रही हो ।

दोरी निम चोपा का नाही वह दुग मुनि है को ॥

कीन बुनति के नाचि गदपी है निम बिचि स्पाइर को ।

स्पाइर मुक्ति के निम बैचारी मुनि का निम्या हो ॥

वरमद १८ म ३८ १ दि अग कीन वहीन (मद) ।

जब 'पिबा' घर नहीं तो 'पत्नी' किससे होनी खेले । वह हाथी न खेले
 खेलेगी । उसके लिए हम वर्षकी होखी कोरी है । ऐसे समय वह उठ होखेरी
 मार करती है जब वह उपसमझी केसर बोककर प्रियतमके साथ खेलेगी ।
 'मुमति मन्मथसे हाथ बोककर कहती है कि हे प्रभु ! ये पुन' वह समय जब
 पाठेगी'

'पिबा बिग कापीं देखीं होरी ।

आतमराम पिबा घर नहीं मोहू होरी कोरी ॥

बक बार प्रीतम हम बैठे उपसम केसरि बीरी ।

मानसि वह मनका कब पाठे मुमति कई कर बीरी ॥

मन्मथा आनन्दवनने आध्यात्मिक क्षेत्र में विरहकी विविध रसामोति अनुराग
 बिग खींचे हैं । प्रिया विरहिणी है । उसका पति बाहर बसा गया है । वह
 पनि बिना कुछ-कुछ को बैठी है । मन्मथके हठोकेमें उसकी बाँहें झुक रही हैं ।
 पति नहीं आया । जब वह कैसे बीचें । विरहकी मूर्धन्य उसकी आनन्दपी वादुषी
 पी रहा है । खीटक पंखा कुमकुमा और चन्दनसे कुछ नहीं होता । खीटक पनने
 विरहलक हटता नहीं अफिरु तब-तबको और भी बढ़ता है । ऐसी ही रसामें
 एक दिन होखी बक उठी । लकी बाँधने खेलेमें मस्त हो बचीं । विरहिणी बीच
 खेले । उसका मन बक रहा है । कमका समूचा तन काक (बूक) होकर उठा
 जाना है । हीकी एव ही दिन बचती है उसका मन तो सब दिन बकता है ।
 हीनीके बलनेमें आनन्द है और इस बलनेमें तीव्र कुछ'

"पिबा बिगु झरु कुछ झुकी हो ।

आन कमाह कुछ मन्मथ के झरके झुकी हो ॥

प्रीतम आनपति पिबा पिबा कैसे बीचे हो ।

मान पचम विरहादका मूर्धन्य बीचें हो ॥

खीटक बका कुमकुमा चन्दन कहा जाये हो ।

अबक न विरहलक दै तनताप बढ़ाये हो ॥

अनुराग बाध हकमिया हीरी सिरमारी हो ।

मेरे मन सब दिन बके तन काक उठावी हो ॥"

१. बही ।

आनन्दवननमस श्रीमद् मुनिमाधवीकृत गुणरागी आनन्दसुनि आनन्द-
 दानसुनारक मन्मथ कर्मी हि. म. १६९४ वर ४१ पृ. ११६-११७ ।

अनन्य प्रेम

प्रेमम अनन्यताका होना अत्यावश्यक है। प्रेमीको प्रियके अतिरिक्त कुछ रिश्ता ही न हो। तभी यह सच्चा प्रेम है। माँ-बापमें रामकुलम दूसरे विवाहका प्रस्ताव किया क्योंकि रामकुलमी नेमीस्वरके साथ भीषरे नहीं पड़ने पायी थी। किन्तु प्रेम माँ-बरोकी अपेक्षा नहीं करना। रामकुलको ठी सिखा नेमीस्वरके अन्धरा नाम भी स्वीकारों नहीं था। इसी कारण उसने माँ-बापको फटकारते हुए कहा 'हे ठान! तुम्हारी जीव खूब बची है, जो बन्नी कड़कीके लिए भी गालियाँ निकालते हो। तुम्हें हर बात से सावधान रहना चाहिए। सब स्थितियों को एक-ही न समझो। मेरे लिए तो इस संसारम केवल नेमि-अनु ही एक मातृ पति है।'

'काह न बात समझाऊ कही तुम जावत हो यह बात बची है।
गाकिर्वाँ बहिन हो हमको सुनो बात बची तुम जीव बची है ॥
मैं सबको तुम तुल्य गिनी तुम जानत ना यह बात रकी है।
बा भय में पनि बम प्रभू यह बात बिनाही की नाथ बची है ॥'

महारामा आत्मवचन अमन्य प्रेमको जिस भाँति आध्यात्मिक पत्रमें पटा मके वैसे द्वितीका अम्य काई कवि नहीं कर सका। कबीरमें साम्यप्रभाव है और आध्यात्मिकता को किन्तु वैसे आवरण नहीं वैसे कि आत्मवचन है। आध्यात्मिक प्रवचन अमन्य अकीकिककी ओर इशारा मके ही ही किन्तु कीकिक कथानकके कारण उसमें यह एकतामता नहीं मिल सकती है। बीनी कि आत्मवचनके मुक्तक पद्यमें पायी जाती है। सुमानकाके अनात्मके बहुत-से पद 'अवबद्धमिति मे वैसे नहीं अप सने वैसे कि सुमानक पद्यमें भेजे हैं। महारामा आत्मवचन बीनके एक पद्यमें हुए सामु मे। उनके पद्यम हृदयकी उत्पन्नता है। उन्होंने एक स्थानपर लिखा है, 'मुद्रात्मिके हृदयमें निर्गुण ब्रह्मकी अनुभूतिसे ऐसा प्रेम बसा है कि अनात्मिकासे बनी आनेवाली अज्ञानकी नीच समाप्त हो गयी। हृदयके भीतर अग्नि के दीपकम एक ऐसी सहज स्वादिकी प्रकाशित किया है जिससे अमन्य स्वयं दूर हो गया और अनुभूति प्राप्त हो गयी। प्रेम एक ऐसा अचूक तोर है कि जिसके अगता है वह डेर हो जाता है। यह एक ऐसा बीयाका नाथ है जिसकी पुनकर आत्माकी मृग तिनके तक चरना शुरू जाता है। अमु तो प्रेमसे निवृत्ता है उसकी कहानी नहीं जा सकती।

सुदानम जागी अनुभव प्रीत सुहा ।

मिन्द अज्ञान अनादि की मिट गई निज राति ॥ सुहा ॥१॥

१. निरीदोनात नेमिन्नार केम मित्राणमन्य आराधी इत्यतिथित मति ।

बट मन्दिर हीरक किरी सङ्ग सुखोति सकल ।

आप बराह आप हा अमल वस्तु अमल ॥सुहा ॥१॥

कहा दिखावुं जीर कूँ, कहा समझाई जोर ।

तीर अमल है प्रेम का कागे सो रहे योर ॥सुहा ॥२॥

बार बिसुखो प्रान कूँ, रिम न मूल दूगकाल ।

आवन्दन प्रसु प्रेम का अलक कहाँ जोर ॥सुहा ॥३॥

चलक पाठ भववान् स्वयं जाते हैं । भक्त नहीं जाना । जब भववान् जाते हैं तो भक्तों के आत्मिका पारवार नहीं रहता । आत्मिकाभक्तों की मुद्रादन बाटीके नाथ भी स्वयं जाते हैं और अपनी 'तिहा' की प्रेमपूर्वक स्वीकार किया है । अम्मी प्रतीक्षाके बाद आये नाथको प्रसन्नतामें पत्नीने भी विविध भाँतिके मृदार किये हैं । उसमें प्रेम प्रतीति राय और कबिके रूपमें रेंबी छाठी बारम को है मन्दिरी मेहरी राखी है और भावना सुखकारी अंजन कयावा है । सहज स्वभाव की खुशियाँ पहनी हैं और बिरलाका भारी कपल बारम दिया है । व्यावहारी करवली पहना बसवकपर पद्य है और पिपरे पुषली भावनाको पकेमें दूना है । मुरनके विन्दुरम माँकरी समारा है और निरतिकी बेबीका बारपक डंगरे मूँबा है । उसके बटमें विमुलनकी सबसे अधिक प्रचारवमान व्योक्तिवा बस्य हुआ है । बहति अगद्वक्य नाथ भी कर्म कया है । जब ती वसे कयातार एवतामके पियरसका आत्मन उपकाल हो रहा है ।

॥बाज सुहायन भारी ॥अवधू भाज ॥

मेरे नाथ आप सुख कीनी कीनी निज अंजकारी ॥अवधू ॥३॥

प्रेम प्रतीति राग कबि रंगत बहिरें किनी छारी ।

महिरी भक्ति रंगकी राखी भाव अंजन सुखकारी ॥अवधू ॥४॥

कहा सुमाध जूँबी नबी बिरला कंयव भारी ।

व्याव करवली कर में राखी पिप पुष माक अकारी ॥अवधू ॥५॥

मुरन सिंदूर मांग रंग छारी बिरले कैनी समारी ।

उपकी उकीउ उकीउ बट विमुलन बारसी कैवक फारी ॥अवधू ॥६॥

उपकी सुनि अजरा की अगद्व जोर गयारे भारी ।

अहाँ लहा आत्मन्दन बराधन बिन मोरे हक छारी ॥अवधू ॥७॥

१ मयाया आत्मन्दन, आत्मन्दनपरमेश्वर आत्मन्दन मयारक परवत, वन्दे,
येवा कर ६ ७ ।

वरी २०वीं कर ।

ठीक इसी भाँति बनारसीबासकी 'गारी' के पास भी निरञ्जनदेव स्वयं प्रकट हुए हैं। वह इधर-उधर भटकती नहीं। उसने अपने हृदयमें ध्यान समाया और निरञ्जनदेव जा गये। अब वह अपने जीवन-बीँस गन्नासे छेसे पुरुषार्थमान होकर देख रही है और प्रसन्नतासे भरे गीत गा रही हैं। उसके पाप और भय दूर भाग गये हैं। परमात्मा-बीँस साजमने रहते हुए, पाप और भय बँसे रह सके हैं। उनका साजन साधारण नहीं है वह कामदेव-बीँसा सुन्दर और सुधारस-सा मधुर है। वह कर्मोंका शय कर देनेसे तुरन्त मिल जाता है।

विनयभाव

रतिक तीन प्रधान रूपोंमें प्रवृत्तिपथक रति ही मुख्य है और निरूपणकी दृष्टिसे उसमें विनयके समीप जा जाते हैं। 'विनयभाव' को ही साहित्य परम्परा में 'सिन्धु-सेवकभाव' और वास्यभाव भी कहा जाता है। इसमें अपनी लपुना शीमता आराध्यकी महत्ता याचना और शरणागतकी रक्षाका भाव प्रमुख होता है। सेवाकी अनुभूति भी कथ्य है अनुभूति बढ है जो निष्कामतासे अनुप्रापित हो। भक्तिसे सम्बन्धित वास्यभाव आराध्यकी महत्ताकी स्वीकृतिपर आधारित है निम्नी स्वार्थपर नहीं।

सेवा

सोचपूर्वकी योजनाकी सामर्थ्यवान् कवि श्री मेघनन्दन उगाध्यायने लिखा है अतिशय और शान्तिभाव प्रवृत्तिवाक श्रीसम्पन्न और पुनोके चन्द्रकी भाँति मुख प्रधान करनेवाले हैं। दोनों ही संसारसे मुक्त हैं और नेत्रोका ज्ञान-वित्त करते हैं। उन भिन्नवराको प्रभाव करके और उनके पुण्योको याचर को उनकी सेवा करता है उनके पुण्यसे लब्धकार भर जाते हैं और उनका ज्ञान-बोध सफल हो

१. गहारे प्रकट देख निरञ्जन।

भटकी कहा कहा सर लटपट कहा बहूँ मन रजन ॥ गहारे ॥१॥

रंजन दृग्न मन नयन लाले लाले विनयन रंजन।

नजन पट अंतर भरपाया लवण दुःख मन रंजन ॥ गहारे ॥२॥

कीन्ही कामदेव होय नाम भर बोली रंजन।

और उवाच न विन बनारसी गच्छ करनपय रंजन ॥ गहारे ॥३॥

बनारसीदास बनारसीविनायक मधुर १५२४ ई. दोमनेर ५ २४ क।

माता है।" इसी शताब्दीक प्रसिद्ध कवि ब्रह्म जिनवासने मयव नृ आपन्नदेवते न मोक्ष मोक्ष और न हृत्कीर्तिक वीरव । उन्होने कहा है प्रभु । हमें न म-अम्में आपके करघोको सेवाका अवसर मिले। अठारहवीं शताब्दीके कवि मयवरावने 'मयवरावराव'के एक पत्रमें लिखा है 'हे मयवन् ! मैं याचक हूँ और आप दानी हो । मुझ और कुछ नहीं चाहिए केवल सेवाका अवसर देनेकी कृपा करें।' 'वीरभगवत'की एक 'मयवन्-याचना'में भी समझल यह ही कहा है 'हे सर्वत्र देव । सर्वत्र सेते सेवाका अवसर प्राप्त जाता रहे ऐसा मेरा निश्चय है।'

भग्न मल्ल कभी नहीं चाहता कि वह कहेगा ही अपने आराध्यकी सेवा करे, बलिवु उसे तो यह देखकर परमात्मन् निकला है कि जिसने बड़े-बड़े वीरवराकी बीज भी उनके आराध्यकी सेवा करते हैं । अठारहवीं शताब्दीक कवि मुसल-कामने लिखा है, "हे मयवन् ! तुम्हारा बर इस पृथ्वीपर और उठ समुद्रमें कहाँ अर्पण होय बेदीप्यमान है तथा उठ व्योममें कहाँ अवस्थित मुर पड़ने फिरे हैं छाया हुआ है, बसुर इन्द्र गर जगर विविध अन्तर और विचार तुम्हारे पैरोंकी सेवा करते हैं और निरन्तर आन कपाते हैं । हे व सर्वश्रेष्ठ । तुम समुद्र जगत्के नाव हो और सेवाकागी मनोवामनाओंकी विन्तामनिके समस्त पूज करते हो । तुम सम्पत्ति भी बर हो और बोधराशी पवनर भी बढ़ात हो।" पाण्डे कल्पवृक्षके पत्र मयवराव जगदस्वायक तो मयवान्की सेवाका ही एक

- १ मयव वसुधा नृपुण, तुम्ह सावर पुनिध नृपुण ।
अन तुम मजिध शिखरुण मणीमुर नयवाणपुण ॥
मे शिखर वनमेविए, मे मुँच पाह सुसंश्रिए ।
पुत्र अङ्गार भरेमुए, मंगल मल सङ्कट करेमुए ॥
मेकमरुण करामाण, अकिण्ठागिण्ठावणम् इती धन्यका हूरा मन्वाव ।

- २ तेह मुन मे आर्ष आ ए, सरमुन ठनी पञ्चावनी ।
महि महि स्वामी सेवर्मु ए, कानु कह मुन नाव तो ॥
अक किण्ठाण, आदिपुराण इती धन्यका हूरा मन्वाव ।

- ३ मयवरा सेवा कर बीजे ।
मैं याचक गुण दानी ।
मैं तो दानी आज महिवा दानी ॥
मयवरावरा वसुधा १६वीं पद ५ २४ ।

- ४ आनन अम्पान कोयु सेवा सज्ज सेते मयव सर्वत्र मिले गावरमीयन की ।
अम्पान, कल्पवृक्ष १६वीं पद, ५ ३ ।

- ५ इसी धन्यका हूरा मन्वाव, पुराणनाम ।

पुनोत्पत्ति है। इसमें अतिरिक्त 'सामान्यभाव' में ब्रह्मज्ञानक प्राप्त हो जाने पर भगवान्क मन्त्रधारणकी रचना स्वयं कृष्णजी की था जो उनके सेवा-भावकी हो प्रतीक है।^१ उस समयधारणमें विराजमान भगवान्की ओर नर-नारी सेवा करते थे उनको अनिवार्यमान्य प्राप्त होता था। साधन नामके देवता तो मन्त्रधारणके आश-वासकी भोजन-प्रमाण पुष्पीको सर्वत्र स्था-वृत्तारकर पवित्र और निम्न रखते थे। उसपर मेघकुमार नामके देवता यन्त्रोदकी सुवृद्धि करते थे। भग्न देवदत्त भगवान्के चरते समय उनसे भीसे कमकी सुद्धि करते थे।

जैसा भगवतीनामने भगवान् वाच विनेन्द्रकी सेवाकी बात करते हुए लिखा है 'हे वाच ! तू वेद-वेदान्तमें क्यों बौद्धता फिरता है। इन्द्र और तरेन्द्रको क्या रिझाता है ? देवी-देवताकाको क्यों मनाता है और क्या ब्रह्मको छिद्र झुकाता है। सुमनों अंजलीबद्ध होकर भगवान्क क्यों करता है, और क्या पादपङ्क्ति छविबोके पैर धूना फिरता है। न जाने तू पार्श्व विनेन्द्रकी सेवा क्यों नहीं करना जिससे तेरा दिन और रातना सोच ही समाप्त हो जाय।

'काहे को देस विद्यानर बाबत काहे रिझावत ईद बरिद ।

काहे को देसि औ देव मनावत काहे को सीम नबावत चंद ॥

काह को सूरज सीं कर ओरन काहे मिहोरन सूख सुनिद ।

काहे को सोच करि दिन देव तू खेचत क्यों नहि पादप किर्पद ॥^२

'जैसा का पुत्र विद्यानर है कि भगवान्के करघोंकी सेवा करनेसे तुरन्त ही भगवत् पुत्र प्रकट हो जाते हैं और इन्हीं 'रिझि-सिझियाँ' मिच्छी हैं कि इनसे विरकात्मक परमानन्दका अनुभव लिया जा सकता है। इन्होंने 'महिमिदि पादपविन स्तुति' में लिखा है, अस्वमेयके लम्ब आनन्दके लम्ब है जबका पुनर्मने लम्ब जबका विनेन्द्र है। वे कर्मोंके छन्दों द्वारा भगवत् निरन्तर करते

१ वाचके रूपक, ब्रह्ममन्त्र ध्यानकल्याणक, १९वीं पृष्ठ, धामर्षि पुर्यासि पार्ष्णि धान्नीक, काशी, १९५० ई. पृ. १ ।

२ भगवद्गीता परमानन्द सबकी नारि नर के छेवता ।

भोजन प्रमाण बना सुमार्जित जहाँ मासक वैभवा ॥

पुनि बरहि मेघकुमार गंधीवक सुवृद्धि मुहावनी ।

नर बमक तर सुर निरहि बमक तु बरहि नहि भोजा बनी ।

३वीं, पृष्ठ १९वीं पृ. १ ।

३ अद्वितीय जैन धर्मशास्त्रकार आचार्य, बम्बई सन् १९५५ ई. दिनांक ५, ६, ७ ।

दुःख-दण्डको चूले और मझाईनने लुगको पूरते हैं। मूर्ख कलही मेवा करत हैं
मरेख मुच पात हैं और मुरीण्ड ध्यान लगाने हैं और हम जाति लमीको बच-
विक मुरा दिसता है। ये मनवान् मिनचण्ड राण मरमि ही मानन्दरी मुरमि
विगेर रेठे हैं।

मानन्द को बँध किचो पूनम को बँध किचो
देगिण् विनंरु केगो मन्म अइवमेन को।
करम को हरे बँध प्रम का बँध निरंरु
चूर दुग दण्ड मुच पूर मझा जैव को ॥
मेधन मुनिंरु शुच गावन मरिंरु जैवा
ध्यावन मुनिंरु, ठेहू पाने मुच जैव को।
देसी मिनचँरु बँरु दिन में मुचँरु मुनी
केजित को हँरु वास्वै चूमी प्रमु जैव को ॥^१

अठारहवीं शताब्दीके कवि, बिहारीदासने अपनी पिछनी करनीपर परचाछन
करते हुए मझानुमे प्रार्थना की है। मैं सर्वत्र तुम्हारी बाहुमें पड़रछा रहा हूँ
और सनना-मुबाही बडा ठक गयी। आर्य भयचण् रघारके बिना मैं निचवरसका
ही भजन करता रहा। हे मनु! अब तब सेरे हूरपमि इसो और मैं सर्वत्र
आपके बन्धोका ठेकक रहूँ।^२ अष्टाध्यायमें भी 'बैन-मद्यापली'में 'सावित्र ठेकफलाई'
के कुछ श्लोकोंकी ही वाचना की है।^३ छिरोमणि बैनने अपने 'बर्मभार'में भयचण्
मझाहीरने जन भरलोम मझापूर्वक मस्तकर किया है, मिनकी दण्ड और मरेख
निरन्तर सेवा किया करते हैं और मिनका स्मरण करने मानके ही पाप विहीन
हो जाने हैं।^४ कवि विमलचरणने अपनी चौबीसी के प्रथम छन्दमें ही लिखा है

१ कवी अविधिग वास्तोमिव लुपि, २०वीं शब्द, पृ. १९९।

२ परचातु बाहु बहूपो सदा बचई न साम्म मुबा बक्यो।

अनुभव अपुरव स्वाधु भिग भित विपम रस पारो नक्यो ॥

मद बनो मो घर में सदा प्रमु, मुम परव ठेकक रहो।

बर मणि मति मुद होहू मेरे जन्म निमन गयीं बडा ॥

बिहारीदास, विनेश्वरदास, ब्रह्मिकन्यासी-समर, लखार मस्तकर मरमन
छिरोमच २०वीं शब्द, पृ. १२० १२।

३ भयचण्ड, बैन चरामली, शती मन्मथ वृत्ता मन्मथ, मन्मथान।

४ छिरोमचिदास बर्मभार, शती मन्मथ वृत्ता मन्मथ शिरीमचि दास।

‘भयवान् श्रुयन् विनेन्द्रं दयन मातसे पाद दूर हो जाते हैं और आनन्द बढ़ता है। उन भयवान्की सुगन्ध और इन्द्र सबैव सवा निपा करता है।’

दीनता

दीनताका अर्थ ‘विधियाना नहीं है’ अपितु आगम्यके गुणोंमें प्रभावित होकर अपनी विनम्रता अभिव्यक्त करना है। आपसूची स्वार्थव्यय होती है जब कि दीनतामें भक्ति भाव ही प्रधान है। आपसूचीमें शिवाता है और दीनतामें स्वयंप्रेरकता। दीनता हृदय पावन होता है, जब कि आपसूचका अपावन। श्री विद्योपीहरिका कथन है, ‘दीनबन्धुका निवास-स्थान दीन हृदय है। दीन हृदय ही मन्दिर है, दीन हृदय ही मस्जिद है और दीन हृदय ही गिरजा है।’ दीन अपने दीनबन्धुसे याचना भी करता है किन्तु स्वाभिमानके साथ। महात्मा बुद्धनीवासने उसको मानी मँयना सिखा है। यह ही उसकी शान है।

भूवरदासके पदोंमें ‘दीनबन्धु’ शब्दका बहुत प्रयोग हुआ है। एक स्थानपर उन्होंने भयवान् विनेन्द्रको सम्बोधन करते हुए लिखा है, हे भगवन्सुख । हमारी एक सरल सुनिष्ट । तुम दीनबन्धु हो और मैं संसारी दुखिया हूँ। इस शमास्की चाँचे यनियामें घूमते-घूमते मुझे अनाविकास बीठ गया और किचिन्मात्र भी मुझ नहीं पा सका। दुःख ही-तु का मिळते रहे। हे जिन । तुम्हारे सुपसुको सुनकर जब तुम्हारे पास आया हूँ। तुम संसारके नीति-निपुण राजा हो। हमारा म्याम कर दीजिए।^१

श्री चामनरावने विनय सरा उपासक अपने दीनबन्धु भयवान्को दिया है। उन्होंने कहा है प्रभु । तुम दीनबन्धु कहकाने हो किन्तु स्वयं तो मुक्तिमें जा बैठे हो और हम इस संसारमें मर-जप रहे हैं। हम तो मन और बचनसे तीनों काम तुम्हारा नाम अपने हैं और तुम हम कुछ नहीं देन। बनाओ फिर हमारा क्या हाल होया। हम जैसे बुरे को कुछ भी है तुम्हारे

१ देखो आद्यम विनेन्द्र ठग तीरे पाणि क हुरि पयी ।

प्रथम विनेन्द्र काव्य कवि गुरु-सद कव ।

मेरी सुगन्ध और सब आनन्द मयी ॥ १ ॥ है ॥

२ श्री विद्योपी हरि, दीनोत्तर नाम ‘दीनबन्धु और माहिन्ध’ डॉ. कदवयानुमिता सम्पादित अन्तर्गत मेरठ मध्य कल्याणी प्रकाशक २६२३ ई. १६ ।

३ भूवरदास दीनगी अष्टविंशत्यो समा ६० २६ ।

भक्त हैं और तुम हमारी चान्छी बनते हो। हम कोई भीतिक वैश्य नहीं चाहते केवल जान हमारे राज-द्रोहीको हटा दीजिए। हे प्रभु ! हमने निष्ठा ही चुनें हो पसी हा और हमने कितने ही पाप किये हों किन्तु आप ही करवाने समुद्र हो। हमको एक बार और केवल एक बार हम संसारसे निराक हो बच जाना ही निवेदन है।”^१

लघुता

काव्यके सयक लघुताकी अनुसृष्टि साहित्यकाकी जोतक है। विषय उसके भक्तका चिर समयानुके चरचापर झुक गयी नहीं सकता। लघुतासे बह्मचार हटता है और चित्त उत्पन्न होती है। तुलसीदासकी विनयपत्रिका—लघुताके भावसे ही जोतप्रोत है। क्षेत्र मन्दिर कवियोंकी रचनाओंमें भी लघुताका भाव है।

कवि बनारसीदासने यद्यपि विने-बसे प्रार्थना करते हुए कहा “ओ कर्मठ-के मानका भजन करनेवाले बरिमा और यन्नीर बुझोके समुद्र है, तथा विषके समका वर्जन करके सुरबुझोभी पार प्राप्ति नहीं कर सकते ये ब्रह्मानी बन्धुकि यद्यको बहनेका प्रयास कर रहा है। अर्थात् यद्यपि लघुता बस यद्वा है और मेरी बुद्धि जगत्। प्रभुका स्वस्व अत्यधिक अग्रज है और बचाव, ये उद्योगी बैठे ही नहीं कर सकते जैसे दिन जगत् समूह एवि-किरणके उद्योगको नहीं बह सकता।”^२

भक्तके पास ऐसी बुद्धि नहीं जो वह यद्यपि विने-बसे स्तुति कर लके किन्तु फिर भी बह करता है क्योंकि करे दिना रह नहीं सकता। पाखे हेमउम-ने इसी भावको केसर अपनी लघुता अभिव्यक्त की है, ये बुद्धिहीन होते हुए भी आपके चरचोंकी स्तुति करनेका प्रयास कर रहा है वह बैठा ही है जैसे कि कोई मूर्ख बालक बचने प्रतिबिम्बित चित्रको पकड़नेकी इच्छा करता है। आपके अग्रज बुझोको कहना प्रत्ययकाकरी पवनसे उद्यत समुद्रको बुझावोंसे ठीर जाना है।”^३ ब्रह्मानी लघुता दिवाने हुए पाखे कवचमने ‘मिर्वाच कल्याण’के अन्तमें

१ स्त्री मानका हृत्त लघुता, बालकान्तः।

२ बनारसीदास काव्याचमन्दिर लघुता भाषा नीतार्थ ३-४ बनारसीदास, लघुता, १९१४ पृ. १५४।

३ पाखे हेमउम काव्याचम लघुता भाषा नीतार्थ ३-४ लघुताकाकी सयक १९१२ पृ. १ १९४।

लिखा है, बुद्धि-हीन होते हुए भी मैं भक्तिसे विनम्र होकर ही भगवान्‌की स्तुति कर सका हूँ। मेरा मंगलमोह प्रबल बुद्धिके न होते हुए भी भक्तिसे ही अनुप्राणित है।

भक्त भगवान्‌की स्तुति करना चाहता है किन्तु कैसे करे उसमें सामर्थ्य तो है ही नहीं। इसी मायको आश्रयक होनेसे अभिव्यक्त करते हुए चानतरामजीने कहा है प्रभु, मैं तेरी स्तुति जिस हंसे करूँ। जब नयन भी फटत हुए पार प्राण नहीं कर पाते तो फिर मेरी बुद्धि क्या है। इन्द्र कम-अर सहस्र जिह्वाओंको चारण कर तुम्हारे नखको करता है, फिर भी पूरा नहीं कह पाता। फिर भक्त मैं एक जिह्वासे कैसे कहनेमें कैसे सफल हो सकता हूँ। मेरा यह प्रयास बैसा ही होया जैसे सन्तु सूर्यके गुणोंको कहनेका उपक्रम करे। हे भगवन्। तुम्हारे गुणोंको कहनेका बचनोम कैसे ही बक नहीं है जैसे मेघोंमें आकाशके तारे बिनने की शक्ति नहीं होती।

भक्त मैं किन्ति किन्ति भुति करीं तेरी।

गलब कहत पार नहिं पावै क्या बुद्धि है मेरी ॥ प्रभु ॥ १४ ॥

एक बचन नहिं सहस्र जीम चरि तुम बस होत न पूरा।

एक जीम कैसैं गुन गावै बहूँ कहै किन्ति सूर ॥ प्रभु ॥ २२ ॥

जमर कत्र सिंहासन बरनीं ये गुन तुमहीं ल्यारे।

तुम गुन कहत बचन बहूँ नाहीं पैत तिनै किन्ति तारे ॥ प्रभु ॥ २३ ॥

आराध्यकी महिमा

आराध्यकी महिमाकी स्वीकृतिसे बिना विनयका माग निम्न ही नहीं चलता। जबतक मनु आराध्यके गुणोंपर विमुख न होया उसको उपासनामें न तो एक-छानता जायेगी और न सचाई। आराध्यकी महिमाकी अनुमृति मिलनी बहुरी होती जायेगी भक्तका हृदय बतना ही पुनीत और आराध्यमय हो जायेगा। उपास्यके गुणोंकी वरम अनुमृति पूर्य और पूरकके भेदको मिटा देती है।

छोछट्टीं राठान्दीके कवि पद्यतिलकने वर्म विचार स्तोत्र'का निर्माण दिया था जिसमें भगवान्‌ जिनैशकी महिमाका वर्णन करते हुए चम्पाने लिखा है,

१ मैं मतिहीन जयतिवत्त भाजन आह्वय।

मंगल कीत प्रबल्य नु निजपुंज आह्वय ॥

रावडे कृष्णर मंगलगीत प्रबल्य निर्वाक्यवाक्य, २१वीं पृष्ठ पामरीठ पूर्वाश्रम ५ १ १।

२. पाल्कराव, पाल्कराव सम्य कल्याण ४२वीं पृष्ठ, ५ १६-२।

‘हे भगवान् ! तुम्हारा वचन करने चाहते ही मुझे ऐसा विचित्र हाथा है जैसे कि उत्तम विद्यामणि ही मिल गयी हो जैसे हमारे भाषणमें वचनवच विचित्र पडाते पर नया हो और जैसे हमारे परमे गुरुदेवता ही बगठार हो गया हो । जिस विद्याने भगवान् आप्रमणावधो अपनी मज्जिसे प्रसन्न कर दिया उसकी सभी ममोवाञ्छित अभिलाषाएँ सहजमें ही पूरी हैं। वाणी है ।’^१ इसी उत्तामरीके एक भूतरे कवि येकनन्दन उपाध्यायन ज्ञान तीमन्तर विमलवचनमुनि स्वामी तीमन्तरकी महिमापर विमोहित होकर लिखा है, ‘उन विनेत्र भगवान् की वच हो जिनके वचनमें “उता अमुन परा है कि उद्यम समझ बहका अमुन-भुन भी मुक्तना प्रतिपादित होना है । भगवान् के लेश कोमल और विद्या कमठरी भाँति है । देव कुलुमिवाँ उद्यम भगवान् की महिमाकी लक्ष्मीपि करने रहती है । भगवान् ज्ञान मुक्तोने प्रतीक है और उनका कृपा-महाप्र पक्ष-परमे ही भक्तकी संसार-समुद्रसे पार कर देता है । भक्तकी पूरा निश्वास है कि ऐसे भगवान् को प्रपाम करनेसे मन निराश्रय रहकर बहल होकर बीड नहीं पायेगा । उसे अशक्य मिलेगा और वह भव-समुद्रको पार कर देगा ।’^२

उत्तराहली राजाजीने कवि विमलवचनने ‘अभितर्पणघट्ट में परमपदकी वच वचनार करते हुए कहा है ‘जिनका स्वयं पानन है मुक्ति अनुभव है और जिसकी वाणी बहवाते परो हुई है । उन संवसन्त भगवान् ने एक पोर बोझारी मालि ज्ञान हृदयमें बीकपये वसुपकी कारण किया है । उससे तीव्र वाचकी छोड़ छोड़कर वे अपने अनु मोहका वच करते हैं । संसारमें ऐसे परमपद टा भगवान् की उद्यम बह-बहकार होवे ।’^३ उत्तराहली राजाजीके कवि विमोलीनाकने अपने ‘वसुविसति जिन स्वकन लीय्या’में भगवान् आदिनाथकी महिमाका उल्लेख करते हुए लिखा है ‘जिसके वरवारविन्धी पूजा करकेक लिए बड़े-बड़े गुरेन हन्त और देवीके समुद्र भाषा करते हैं और जिनके वारो पोर वन्त-वीरो बाधा छिटकी गइती है जिसके नखोर कगारो सुखीकी किरनें ग्योछावर की जा गवठो है और जिसके मुखरो देवकर कमधैरवी गोवा भी वरविज हो जाती है, जिसकी

१. वचन तुम्ह विद्याय अकट विद्यामणि अविमल ।

गुराव अंधवि अम्ह अकट विविहणारि पविमल ॥

मुहमेनु अंधविहि जाह अम्ह अंधपरिवल ।

अह भेद्य निरि रिहहमाह नयवडिय हरियल ॥

वन्तिलक, वन्तिचारलीन (वर्णक) ।

येकनन्दन उपाध्याय, तीमन्तर विमलवचन, इसी ग्रन्थका दूसरा अन्तर्ग ।

२. विमलवचन, अभितर्पणवाचन, मध्य वच, प्रथमि संवत् १७७५, छ २ ।

उत्तम देह रूपकी भाँति चमकती है और उसमें साग भव साक्षात् दिखाई देते हैं ऐसे मन्वान् नाभिनन्दनको हमारा विकास नमस्कार हो।” इसी घटावरीके कवि जिनहृदये लिखा है ‘मन्वान् आदिनाथकी सुर, नर और इन्द्र सभी सेवा करता है। उनके दर्शन करन-भावसे ही पाप दूर भाग जाते हैं। कश्चिमुमने किए तो वे जलनखकी भाँति हैं। सारा संसार उनके चरणोपर झुबता है। उनकी महिमा और कीर्ति इतनी अधिक है कि कोई अंधका पार नहीं वा सक्ता। सब स्वर्गोपर जिनराजकी ज्योति चमकता रही है। वे भव-मनुष्यको पार करनके सिन् महावरी भाँति हैं। प्रभुकीकी छवि योद्धी और अनूप है उनका कर अद्भुत है और वे बर्मके चम्के राजा हैं। हमारे नेत्र क्यों ही मन्वान्को देखते हैं कि कुछ के बादल बरस पड़ते हैं।

‘देवकी ज्ञानम जिवद् उच सेरे पाठिक दूरि गयी
प्रथम जिवन् चन्द ककि सुर-सद कन्द ।
सबै सुर नर इह आनन्द मयी ॥
जाके महिमा कीर्ति सार प्रसिद्ध बही संसार
कोक न कहत पार अनन्त बही ।
पंचम बारि में आज बारी ज्योति जिवराज
अचक्षिपु को जिहाज आनि कै उयो ॥
बन्धा अद्भुत कय मोहनी छवि अनूप
करम की साची मूर प्रभुजी बही ।
कई जिन हरपित नवध भारे निरखित
सुख धन वरमय इति उच्यौ ॥”

अन्वये महत्ता

भक्ति-भावके सभी कवियोंमें अने-अने आराध्यको ज्योति कहीं अधिक महिमावान् बनकाया है और जैन कवि भी उसके अनन्तर रूप नहीं हैं। जगत कविबाका यह भाव उनकी अनुसरताका नहीं अपितु अनन्वयताका सूचक है।

सप्तहवीं शताब्दीके पाण्डे हैमराजने ‘नवजामर स्तोत्र भाषा’ में आदि प्रभुकी स्तुति करते हुए लिखा है, ‘हे भगवन् ! जो ज्ञान आपन सुयोधित होता है, वह

१ किमोदीताल अनुविदिति जिनज्जल सवध रामस्वानये हिन्दीके इन्द्र-सिद्धि
प्रभोकी ज्ञेय चतुर्थ भाग, साहित्य सल्लाम, कलकत्ता १९२४ ई १९२५।

२ जिनरर्षी चौबीसी वरता कर रामस्वानये हिन्दीके इन्द्र सिद्धि प्रभोकी
ज्ञेय चौथा भाग, ई १९२३ १९२४।

बिष्णु और महादेवमें नहीं हो सकता। मरणा जो चमक महारत्नमें होती है वह काँचके टुकड़ेमें कहीं पायी जा सकती है। कवि बिहारीदासने भी 'बातमा' की देखी भारती करते हुए कहा है "बहुधा बिष्णु और महादेवर तबै बिघका व्याग कराते हैं और सम्पुष साजु बिसका गुन पाते हैं मैं उस बातमईया की भारती करता हूँ।"^१ कवि सागररामने एक पद्यमें मरवाणु मेमिगावको मरानु ज्ञानी और बीनरायी बताते हुए यह स्वीकार किया है कि उनके समान अन्य कोई देव नहीं है। उनका कथन है 'है मरवाणु मेमिगाव। इस निस्सम तुम्हीं सबसे अधिक ज्ञानी हो। तुम्हीं हमारे देव और पुत्र हो। तुम्हारी कृपासे ही हमने सकल ज्योंकी जान किया है। हमने तीनों मुक्तियोंको जग बना है किन्तु तुम्हारे समान अन्य कोई देव बिसाई नहीं दिया। संसारमें अन्य जितने भी देवता हैं उन रावी होयी कामी बनवा पायी हैं, किन्तु आप बीनरायी और बनपायी हो। मर मीनममममम राबुल राणीको छोड़कर तुमने बिघ इन्द्रिय-व्यवस्था परिचय दिया या अन्य कोई देव नहीं दे सका। है मरवाणु, मुझे इस संसारसे निकाल दो, हम घरीब प्राणी हैं।'^२ मरवाणु बिबेगावकी बाणीको अन्य देवोंकी मिथ्याबाणीसे उल्लेख करते हुए भूवरदासने किया है 'बाक और बावके रूपमें बनेरा अन्तर है। मरवा कहीं कबिकी बाणी और कहीं कोयलकी टेर। वहाँ माटी घानु और कहीं बिचारत बबिया कहीं पूनोरा जनेका और वहाँ घानसका बनेरा। यदि

- १ जो सुबोध सोई तुम माहि। हरि हर बादिक में सो माहि ॥
जो बुद्धि महारत्न में होय। नाथ सब पावै माहि सोय ॥
बाबडे हेमराज, मन्मथ सोन मारा २ शीतल, हरमिल्लावाली छन्द १६५९ ई ५ १६५।
- २ बहुधा बिष्णु महादेवर व्यारे। साजु सकल जिई को गुन पावै ॥
करी भारती बातमा देवा। गुन परबस बनत बनेवा ॥
बिहारीदास, भाषाकी भारती, हरमिल्लावाली छन्द, १६५९ ई ५ ३९।
- ३ ज्ञानी ज्ञानी ज्ञानी मेमिगो। तुम ही ही ज्ञानी ॥
तुम्हीं देव पुत्र तुम्हीं हमारे, सकल बरव ज्ञानी ॥ ज्ञानी ॥१॥
तुम समान नीज देव न देखा तीज भवन ज्ञानी।
आप ठरे मर बीबनि तारे बनता नहि ज्ञानी ॥ ज्ञानी ॥२॥
और देव सब रावी होयी कामी न मायी।
तुम ही बीनराय बनपायी तजि राबुल रायी ॥ ज्ञानी ॥३॥
घानराय निकल बनत हैं हम बरोब प्राणी ॥ ज्ञानी ॥४॥
बाबराबराबराब बनकता २००११५, ५ १२।

कोई पारखी निहारकर देखे तो उसे बेन बैन और अन्य बैनोम स्पष्ट अन्तर दिखाई देगा ।

‘बैन करि केतकी कमर एक कही जाय
जाक दूध गाव दूध अन्तर बनेर है ।
पीरो होठ ही रो पै न रीस और कंचन की
कहां कमल बांधी कहां कोयल की रेर है ।
कहां मग मारी कहां अगिबा बिचारी कहां
धूली को उबालो कहां मावस बन्धेर है ।
पच्छ कोरि पारखी निहार मेक नीके करि
बैन बैन और बैन हूतबी ही फेर है ॥’

नाम-वध

मगवान्के नाम-वधको महिमाको सभी मन्त्र कविगोले एक स्वरसे स्वीकार किया है । तुम्हीको विनय-पत्रिका का एक बहुत बड़ा अंश मगवान् के नामको महत्तासे भरा हुआ है । बैन कविगोले भी विनयके नाम-वध बमत्कारको स्वीकार किया है । उनही दृष्टिमें मगवान्के नामसे मोक्ष प्राप्ति होता है । मगवान्के नामसे बलमर्त्याका पर विजयना तो बहुत ही आसान है । अर्थात् नाम-वधसे इहलोक और परलोक दोनों ही सचट हैं ।

सत्तरहवीं सताब्दीके कवि कुमुदचन्द्रने मरठ बाहुबली जन्मके आरम्भ में ही मगवावरण करते हुए लिखा है ‘मै छत्र बाहीस्वर प्रभुके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ जिसके नाम देने मात्रसे ही संसारका छेप कूट जाता है । अर्थात् यह बीन भव जगत्से मुक्त हो जाता है’^१ । श्री कुमुदचन्द्रने अपने मन्त्रकार जन्म परमपरीक्षीके नामकी महत्तापर बखान करते हुए लिखा है ‘मो नित्य प्रति मन्त्रकार’को बपता है उसको संसारकी संपत्तियाँ छोड़ छो जाती हैं और सात्वत सिद्धि भी उपलब्ध होती है’^२ इसी सताब्दीके कवि मन्त्रामने ‘मन्त्राम-विकास’में लिखा है । ‘मरठके नामसे आठ कर्मकपी

१. बेनराम, १६वीं पद, कलकत्ता पृ. १-२ ।

२. पद्मविधि पर बाहीस्वर केरा जोड़ नामें कूटे भव फेरा ।

कुमुदचन्द्र मरठबाहुबलि जन्म पहला पद्य, मद्रासिर्माह अगस्त, १९११

पृ. १४१ ।

३. मुराराम, मन्त्रकार जन्म अलिप्रकाश बैन शुक्लचन्द्रिनी पहला भाग, बम्बई १९१६ पृ. १२६ ।

धनु मछ हा जाने हैं और 'सिद्ध' के जगत्से सब काम सिद्ध हो पाते हैं। आचार्यजी अगिने सद्गुणोंका समानेष्ट हीठा हैं। उपाध्यायजी ध्यानसे 'उपपाद' पीते बन जाते हैं और नाबुझोंके स्मरणसे सब मनोकामनाएँ पूरी हो जाती हैं। इस भाँति परवरमेष्टोंके नामस्मरणका जाय इस जीवकी मित्रधाम बर्तानु मोक्ष प्रप्त करा देता है। श्री पर्यायिजबजीन 'आत्मस्मरण अष्टावही'के एक पद्यमें लिखा है 'अरे जो भोग । तु हूँ तंगारके भयमें क्यों फटा हुआ है । भवगुन मिलने नामका भजन कर । सद्गुरुने जी नमस्मान्के नाम जानेहा हो अनेष्ट दिया है ।'

पानतराबने अपने मनको समझाते हुए लिखा है 'हे मन ! तू दीनदण्ड बलवान् त्रिनेत्रको भय बिपका नाव केनेके लक्ष्मणमें कराको पारके बाध कर जाते हैं । त्रिनेत्र नामको हस्त कबीर और बहुर और जाते हैं तथा त्रिनेत्र नामकी आजके प्रजापने बिप्रा जाल स्वतु हो मछ हो जाता है । त्रिनेत्र नामके लक्षण ऊर्ध्व मध्य और पाताल कीकमें भी कोई नहीं है, पृथीके नावरी नित्य प्रति जनों और बिप्राजल बिप्राकी छोड़ दो ।

रे मन ! मज मज दीनदुपाक ॥

आज नाम लेत हूँ छिन मैं कई कोट अह जाक ॥ रे मन ॥

हस्त अविन्धु अकबर गाँव जाकी नाम रसाक ।

आत्म नाम आज परकसी बायो मिल्वा जाक ॥ रे मन ॥

आके नाम समान नहीं कजु करत मध्य पताक ।

साई नाम ज्यों नित धानत छोकि बिचल बिकराक ॥ रे मन ॥^१

१ करमाधिक करिण को हरे बर्यत नाम

सिद्ध नरे बाज सब सिद्ध को धनन है ।

उत्तम सुपुन पुन आचरत जाकी संघ

आचारज नपति बरतन आक मन है ॥

उपाध्याय ध्यान ही अपाधि सम हीन

साध परिपूरय की सुमरन है ।

पंथ परमेष्टी की बलकार मंदराज

बाई नमराय जोई बाई मित्रवन है ॥

मन्त्राय, मन्त्राय लिपात, पंथ १ मन्त्रि अलिपान अचरकी हलकिटिज मनि ।

२ त्रिनेत्र नामसार मज आतम कहा परम बमारे ।

सुपुन बचन प्रणीत भई तब आत्मस्मरण क्यारै ॥ नामा ॥

अष्टविम्व नामस्मरण अष्टावही, आत्मस्मरण अष्टावही आत्मस्मरण अष्टावही नामा ।

३ आत्म परमम अकलता अर्थी नद, ३ २ ।

शान्तिभाव

पहलेक वाचार्थमें शान्ति को साहित्यमें अनिवचनीय भाग्यका विधायक नहीं माना था किन्तु 'पण्डितराज के अकादश वर्कों में उसे भी उसके पदपर प्रतिष्ठित किया। सबसे अधिकतम उसकी गणना रसोंमें होती जाती आ रही है। उसे भिन्नकर भी रस माने जाते हैं। वाचार्थमें भी इसी भी रसोंको स्वीकार किया है, किन्तु उन्मूलन मृगारके स्थानपर शान्तको रस-राज माना है। उनका कथन है कि अनिर्वचनीय आनन्दही सन्धी अनुभूति राय-रूप नामक मनोविचारके अपसम हो जानेपर ही होती है। राय-रूपसे सम्बन्धित अन्य बात रसोंके स्थायी भावसे उत्पन्न हुए आनन्दमें वह महोपलब्धि नहीं होता जो शान्त में प्राप्त जाता है। स्थायी आनन्दकी वृद्धिसे तो 'शान्त' ही एक मात्र रस है। कवि बनारसीदासने 'नवमा शान्त रसमि को नायक माना है। उन्होंने तो बात रसोंका अन्तर्भाव भी शान्त रसमें ही किया है। डॉक्टर भवभानुदास ने अपने 'रस प्रीतिमा' नामके निबन्धमें अनेकानेक संस्कृत कथाहरणोंके साथ 'शान्त'को रसरत्न चिह्न किया है।

अधिकतम शान्तिका सम्बन्ध है शैव और शैव सन्धीने शान्त का ही प्रभावता ही है। यदि साहित्यिक मठानुसार 'परमुरक्तिरस्वर ही शक्ति है, तो यह भी ठीक है कि ईश्वरमें परमुरक्ति सभी हो सकती है जब अपरको अनुभूति समाप्त हो। अर्थात् जोशकी मन-प्रवृत्ति संसारके अन्य पदार्थोंसे अनुपलब्ध होकर ईश्वरमें अनुपलब्ध करने सभी वह शक्ति है अन्यथा नहीं। और संसारको असार, अनित्य तथा दुःखमय मानकर मनका आत्मा ब्रह्मा परमात्मामें विलीन हो जाना ही शान्ति है। इस भाँति ईश्वरमें 'परमुरक्ति का अर्थ भी शान्ति ही हुआ। स्वामी सनातनदेवजीने 'अपने आत्म शक्ति की भूमिकाएँ' नामक निबन्धमें लिखा है 'मन्मथनुराय ब्रह्मेष्टे अन्य वस्तु और व्यक्तिओंके प्रति मनमें वैराग्य ही जाना भी स्वाभाविक ही है। शक्ति-आत्ममें मन्मथनुराय ही इस प्रारम्भिक अवस्थाका नाम ही शान्तभाव है। मन्मथनुराय

१ प्रथम विचार और दूसरी रस तीसरी रस कहना अनुशयक।

हास्य अनुर्थ छह रस पञ्चम छट्ठम रस बीसवें विधायक।

सप्तम अथ अष्टम रस अष्टम नवमो शान्त सति को नायक।

ए नव रस एव नव नाटक भी अर्ह मग्न सोह तिहि कावक।

बनारसीदास नायक सनतदास, वं बुद्धिमान् वाचकनी दीक्षासहित शैव प्रथम रत्नाकर कार्यालय लार्ड १९२३ ए २२१।

२. स्वामी सनातनदेवजी, भाष्यविवेकी भूमिकाएँ कल्याण शक्ति विरोधक, वं १९२३ ए २२३।

अपन भक्तिमूर्त में 'सा त्वस्मिन् परम प्रेमरूपा समुत्सवम्पा' बनो न लयाना है।^१ हममें पड़े हुए परम प्रेम से यह ही शक्ति निकलती है कि संसार से वैराग्य-मूढ होकर एकमात्र ईश्वर से प्रेम किया जाये। साहित्य में भी वैराग्य ही प्रधानता है। भक्ति रसामृतमिश्र में आध्यात्मिक पितामह नृसिंहाचार्य वल्लभा भक्ति।^२ उपयुक्त वचनका ही समर्थन करता है। यह कहना अनुचित नहीं है कि अनुरक्ति में नवीन बहाना होती है, चाहे वह ईश्वर के प्रति हो अथवा संसार के कर्त्ताकर्म बोलाने में। सांसारिक अनुरक्ति दुःख की प्रतीक है और ईश्वरानुरक्ति दिव्य सुख को लक्ष्य बनाती है। पदवीय बहाना है, जो दुष्टों में शीतलता पदवी में अपावकता है जो दुष्टों में विविधता। और पदवी में पुनः-पुनः प्रसन्नता का है, जो दुष्टों में सुख हो जाने की सुनिश्चिता।

अंतर्भाव साहित्य के परम समर्थक है। उन्होंने एक मन्त्र राघ-देवसि विष्णु होकर बीनपायी पथर बनेको ही साहित्य कहा है। उसे प्राप्त करने के लिये काव्य है - उत्स-विस्तार और बीनपावियों की शक्ति। बीनपाव में किया गया अनुपम साधारण रंग की कान्ति में नहीं आता उसका विवेचन पढ़े अध्याय में ही हुआ है। उन्होंने साहित्यशास्त्री के अर्थ अर्थों पर स्वीकार की है - प्रथम अवस्था यह है जब मन की प्रकृति दुःखकारक संसार से हटकर आत्म-योग्यता की ओर मुड़ी है। यह व्यापक और सहस्रपूर्व बना है। दुष्टों अवस्था में उन प्रसन्नता परिष्कार बिना जाता है। मित्रों अथवा संसार के सुख-दुःख छटाते हैं। तीसरी अवस्था यह है जब कि कपाल वासनाबोला पूर्व अवस्था होने पर निर्मल आत्मा की अनुकृति होती है। चौथी अवस्था वचनशास्त्र के उत्तम होने पर पूर्व आत्मानुभूति के कारण है। यहाँ अवस्थाएँ आत्म-विद्वानों के हाथ नहीं गयीं सुख-विमुक्त और सुख-विमुक्त ब्रह्मा के समान नहीं आ सकती हैं। इनमें स्वयं ही भाव ही रसता के साथ होता है।

१. हेरिज 'नारदयोग भक्तिमूलम्' लक्ष्मीनारायण देव संस्कृत भाषाशाली, पटना १९२१।

२. भक्तिरसामृत मिश्र, आत्मा की रास पर सांसारिक प्रभु प्रसन्नता काव्य, काशी सि. स. १९०८ प्रथम संस्करण।

३. पुनर्विमुक्त ब्रह्मात्मविद्वानों का शब्द स. एच. स. १९२१।

रसप्रमेयि तत्त्वमिन्द्रियादि स्थितिरस न विच्छेदः ॥

आचार्य किष्काव नाथिचरित साहित्यशास्त्राचार्य द्वितीयाध्याय उक्ति,
संस्कृत शिक्षासूचि वि. स. १९६१ भा. १२. पृष्ठ १९।

जैनशास्त्रोंने 'मुक्ति' वशा में 'रसता' को स्वीकार नहीं किया है। यद्यपि वहाँ विरचित पुनः शान्ति को माना है। अर्थात् सर्वज्ञ या अर्हन्त जबतक इस संसारमें है तभीतक जगत्की 'शान्ति' धाम्तरम कहलाती है। सिद्ध या मुक्त होनेपर नहीं। अमिमानराजेश्वरकाश'में रस की परिभाषा बताते हुए लिखा है 'रस्मन्ते अन्तरात्मनाऽनुमूयन्ते इति रसा'। अर्थात् अन्तरात्मा ही अनुमूर्ति को रस कहते हैं। सिद्धावस्थामें अन्तरात्मा अनुभूतिसे ऊपर उठकर आनन्दका पूर्ण ही हो जाती है, वन अनुमूर्ति की आवश्यकता हो नहीं रहती। जैनशास्त्र धाम्तरमें अपने 'वाग्म टाक्षर'में रसका निरूपण करते हुए लिखा है, विमोक्षितानामैव सात्त्विकैश्च मिथपरिभिः। आरोप्यमाण उत्कर्ष स्वाधीनाद्यः स्मृतो रस'। अर्थात् विमोक्षितानाम् सात्त्विक और अमिचारियोंके द्वारा उत्कर्षको प्राप्त हुआ स्वाधी भाव ही रस कहलता है। सिद्धावस्थामें विमोक्षित अनुभाव और अमिचारी आदि भावोंके अभावमें रस नहीं बन पाता।

जैन शास्त्रोंने भी जैन साहित्य-साहित्यको भी मूर्ति ही 'धर्म' को धाम्तरस का स्वाधीभाव माना है। महाशिवनसेमने अलंकारविन्यासमणि में 'धर्म' को विवर करते हुए लिखा है विरगतादिना निर्विकारमनस्तथ धर्म अर्थात् विरक्ति आदिके द्वारा मनका निर्विकारी होना धर्म है। यद्यपि आचार्य मम्मटने निर्देश को 'धाम्तर-रस का स्वाधी भाव माना है, किन्तु उन्होंने उत्पन्नान् अत्यन्तनिर्देशयैव धमक्यत्वात्' लिखकर निर्देशको धर्म रूप ही स्वीकार किया है। आचार्य विस्वनाथने धर्म और निर्देशमें भिन्नता मानी है और उन्होंने पहुँचकी स्वाधी भावमें और दूसरेकी संवारी भावमें मनना की है। जैनशास्त्रोंने वैराग्योत्पत्तिके दो कारण माने हैं - उत्पन्नान् इन्द्रिययोग अनिष्टसंयोग। इसमें पहुँचते फलान् हुआ वैराग्य स्वाधी भाव है और दूसरा संवारी। इन मूर्ति जगत्का अमिमान भी आचार्य मम्मटसे ही मिलता-जुलता है। इसके साथ-साथ उन्होंने मम्मट तथा विस्वनाथकी मूर्ति ही अनित्य जगत्को आत्मजन जैनमन्दिर जैनदीर्घसेन जैनमूर्ति और जैनशान्ति को उद्घोषण मूर्त्यादिको संवारी तथा नाम अर्थ को

१. वैश्वदेव, अमिमानराजेश्वरकाश, 'रस शब्द'।

२. आचार्य वाग्म टाक्षरकाव्यमालाकार।

३. महाशिवनसेमना अलंकारविन्यासमणि।

४. आचार्य मम्मट काव्यमाला चौदहवां अध्याय मन्वमाता अध्याय ४६ २२२० ई. पृष्ठ ४८२४ ५ २४४।

५. आचार्य विस्वनाथ साहित्यरत्न शान्तिप्राम् शास्त्रीकी व्याख्यासहित लक्ष्मण १९२२-२४ ई. २४४।

मोहने समान अर्थान् सर्वममल्लवो अनुभाव माना है ।

वैन वाचायेंनि घागरसवो जिस रूपमें निरुक्ति निरा वैन बचिबोले जना सन्ने बनोये निरुक्ति भी किया । उन्होंने घातिनी की ओरमें विद्यानिगामे को आंग उठाकर देखा भी नहीं उसको प्रथम देखेकी बात तो बड़ी-छड़ी प्यो । शृंगार रस-राज पके हों किन्तु भक्तिके क्षेत्रमें तो उसे बोरपर ही निरुक्ति बाँटिए किन्तु न जाने कैसे अपदेवके समकाले एक ऐसा बिह्वल प्रवाह वह रस जो कि धारने प्रहार के कारण कभी बहा हो नहीं । विद्यापतिकी रासारी रास और मुन्दरिण विद्यासिनाकी तो रसीन्द्रनाथ ठाकुरल की स्वीकार किया है । 'मुरसावर' में कहीं-कहीं ऐसे अलंकार लख है कि घातीय मनको चकते नहीं ।

वैनोने भक्ति-काव्योंमें यदि एक और साधारण रूप-रूपोंमें विरचित है, तो दुसरी ओर अवलोकते अरुण-घातिनी वाचना । इनकी घाति तो बाँटिए किन्तु अस्पष्टी नहीं । वे उस घातिके उपासक हैं जो कभी पुरुष न हो । वह एक मनसे बुद्धिवा न मिटेगी वह कभी भी घातिके अनुभव नहीं कर सक्य । और यह बुद्धिवा निरन्तर निरन्तरके सुमिरन करनेसे ही दूर हो सकती है । यदि वनारसीघात अपनी बिन्ता व्यवहार करते हुए कहने हैं न जाने वह हमारे वैन वाचक अलंकार-पदकी बनकी मुँह वन सर्वसे सभी इनकी निराशुक्त घाति निकलेगी । और न जाने वह कहीं कब आवेगी जब हृदयमें समझ-आव लगे । हृदयके अन्तर अन्तरके सुबुद्धि बचनोंके प्रति कुछ अज्ञात अस्पष्ट भाँति होनी परमार्थ सुख नहीं मिल सक्य । उसके लिए एक ऐसी काव्यरचना उत्पन्न होना भी अनिवार्य है जिसमें वह छोड़कर मनमें आनेका भाव उचित हुआ हो ।

१ कम निरन्तर निरन्तर सुमिरा

उस देखा जग-जग की

बुद्धिवा कम बी है या वन की ॥१॥

कम यदि ती पीने बुद्ध वाचक

बुद्ध अन्तरजग वन की ।

कम पुन अज्ञात वरी समझ यहि

नर्क न समझ उस की बुद्धिवा ॥२॥

नम नट अन्तर रई निरन्तर

दिखा नुबुद्ध बचन की

नम सुख नहीं नैव परमार्थ

किं कारण पन की बुद्धिवा ॥३॥

कवि बनारसीधामने आन्तरिक रस कहा है उसका आस्वादन करनेसे परम आनन्द मिळता है। वह आनन्द कामधेनु, जिनावेति और पंचामृत मोक्षके समान समझना चाहिए।^१ इस आनन्दको साक्षात् करनेवाला जैन त्रिमूर्ति कहलें विराजता है उस त्रिमूर्तिकी बनारसीधामन धन्दना ही है।^२

यह जीव संसारके बीचमें घटकता छिगता है किन्तु उसे सांत्ति नहीं मिळनी। वह अप्रमद अष्टादश बोधसे प्रवीणित है और आनन्दना उसे मठाठी ही रहती है। मैया प्रमदवीरासका कथन है हे जीव। इस संसारके अर्चक कोटि नामरको पीकर भी तू प्यासा हो है और इस संसारके दीपोमें जिनना अथ भरा है उसको छाकर भी तू मूका हो है। यह सब कुछ अष्टादश बोधके कारण है। वे सभी जीवों का घटते हैं जब तू प्रमदना जिननेका ध्यान करे और छठी पञ्चका अनुसरण करे, त्रिमूर्ति से इत्यर्थ जये ये।^३ 'मैया की बुद्धिसे अष्टादश बोध ही

कम कर जाई हाहुँ एकाकी

जिन्ये लाकसा बल की

ऐसो बसा होय कम मेरी

ही बलि बलि का छल की बुझिया ॥४॥

बनारसी विज्ञान अष्टादश, १६३४ अष्टादशमसंस्कृत, १६वीं पृष्ठ पृ २३१ २३२।

१ अनुमो की केकि यह कामधेनु जिना वेकि

अनुमो को स्वाधु पंच अमृत को कीर है ॥

मनारनीरास नाटक समसारा, अष्टादश अष्टादश १६वीं पृष्ठ पृ १७-१८।

२ सत्य-व्यक्त सदा जिनू की प्रमदपी अष्टादश मिष्याण निकरन।

सात बसा निगू की पहिचानि करे कर जोरि बनारसि बंदन ॥

कही मन्मथारस अठा पञ्च पृष्ठ ७।

३ ये तो अल लोक मध्य सागर असक्य कोटि

ते तो अल पियो पै न प्यास पायी गयी है।

जेने नात्र बोध मध्य भरे है अष्टादश डेर,

तेने नात्र जायो लोक मूच पायी गई है।

वात प्यास ताको कर जात यह जीव हर,

अष्टादश बाप बाहि य ही जोत गई है।

बहे पंच गू ही पावि अष्टादश बाहि भावि

होय बैठि महाराज तीहि सील बई है ॥

'मैया' मनारनीरास अष्टादश विज्ञान बैन प्रमद राजाकर अष्टादश, अष्टादश १६२९ है
एन अष्टादश, १ २ वीं अष्टादश पृ १२।

मोहके जमान बर्षान् सर्वमल्लहो अनुभाव यागा है ।

जैन साधकोंमें ध्यानरसको जिस रूपमें निरूपित किया जैन कवियोंने उसका मन्त्रे बर्णोंमें निर्याह भी किया । उन्हींमें ध्यामित्री कीर्त्यमें विताडिगाही और भांग उठाकर देखा भी गइो । समको प्रथम देनकी बात तो बहान-ठान् रही । शृंगार रस-राज मके हो बिन्दु मणिके क्षेत्रमें तो उठे बीजपर ही निरूप्य बाहिए, बिन्दु न जाने कैसे अद्वैतके समकाले एक ऐसा विद्वत् प्रवाह बह ग्यो, जो कि जाले प्रवर देनके कारण कसो रक्षा ही नहीं । विद्यावठिकी पावनी रस और मुग्धरिग विद्याविगाही को रवीन्द्रनाथ ठाकुरने भी स्वीकार किया है । मूलाधारमें कहीं-अद्वो ऐसे अर्थकोक स्पष्ट है कि ध्यामीन मनको बचते नहीं ।

जैनादे मक्ति-शास्त्रोंमें यदि एक और सांसारिक पाप-दुष्टोंसे विरहित है तो दूसरी ओर सबबान्त्रि चरम-ध्यामित्री वाचना । इनको ध्यामि तो ध्यामि बिन्दु मस्वावी नहीं । वे उक्त ध्यामिके उपासक हैं जो कसो पृथक् न हो । सब एक मनसे बुद्धिवा न झिन्नी बह नभी थी ध्यामिका अनुभव नहीं कर बगडा । और यह बुद्धिवा निजनाथ निरञ्जनके सुनिरन करनेसे ही दूर हीं उरती है । अथ बनारसीबास बपनी बिगाडा बगल करते हुए कहते हैं न जाने कब हमारे वैष्णवात्मक अज्ञान-पड़कनी मनकी मुँह नभ तकने सभी धमकी निराशुक ध्यामि निकेली । और न जाने कब कड़ी कब आवेगी कब हृदयमें समता-भाव बदेगा । हृदयके अन्दर बसठव मुमुक्षुके बचनोंके प्रति कुछ प्रज्ञा उत्पन्न नहीं होनी परबर्ष मुक्त नहीं मिल सकना । उसके किन् एक ऐसी काबनाका उत्पन्न होना जो अनिर्धार्य है, जिसमें बर ओढ़कर बगमें जानेका जाल उचित हुआ हो ।”

१ कब निजनाथ निरञ्जन मुविरी

तब सेवा लभ-लभ की

बुद्धिवा नभ की है या मन की ॥१॥

कब बसि ली पीरै मुम आत्मक

मूर जलमयल मन की ।

कब मुन प्रान बरी समता भवि

कई न समता तन की बुद्धिवा ॥२॥

कब बट अन्तर रही निरन्तर

रिझा मुमुक्षु लभन की

कब मुन कड़ी पीर परमार्थ

मिटै बारला पन की बुद्धिवा ॥३॥

कवि बनारसीवासने शान्तमनसको आत्मिक रस बड़ा है उसका आस्वादन करनेसे परम आनन्द मिलता है । वह आनन्द कामधेनु जिनावेति और पंचामृत मोहनके समान समझना चाहिए ।^१ इस आनन्दको साक्षात् करनेवाला जैन जिसक मटमें बिराजता है उस जिनराजकी बनारसीवासने बन्दना भी है ।^२

यह भी संसारके बीचमें मटकता फिरता है किन्तु उसे शांति नहीं मिलनी । वह अपन अष्टादश दोपसे प्रशीलित है और आनन्दना उसे सताती ही रहती है । मैया मनबलीवासका कथन है है बीच । इस मनारके बसंत्त कोटि मागरको पीकर भी तु व्यासा भी है और इस मनारके बीचोंमें जिना जस मण है उसको लाकर भी तु मुखा भी है । यह सब कुछ अष्टादश दोपके कारण है । व सभी भीते वा सकते हैं जब तु मनवान् जिनेश्वरका ध्यान करे और सभी पक्का अनुसरण करे जिसपर वे स्वयं बने थे ।^३ 'मैया की बुद्धिसे अष्टादश दोप ही

कब बर जाँठ होहुँ एकाकी

सिमे सासना बन की

ऐसो बसा होय कब मेरी

हो बलि बलि वा छन की बुद्धिवा ॥४॥

बनारसी विद्यास अणपुर, १६४४ अष्टादशमर्षि, १६४५ पृ २२१ २२२ ।

१ अनुजी की केहि यह कामधेनु जिना वेति

अनुजी को स्वादु पंच अमृत को कीर है ॥

बनारसीवास नायक समझार, कम्प अष्टादश १६४५ पृ १७-१८ ।

२ सत्य-सरूप सदा सिद्ध के प्रगटपी अष्टादश निष्कान निकहन ।

सत बना निम्ह की पहिचानि करे बर जोरि बनारसि बंधन त

बही मन्वाचरक, बड़ा क, पृ ७ ।

३ ये तो बस लोक मध्य सागर असंख्य कोटि

ते तो बस पियो वे न व्यास बाकी मयी है ।

केने नाम दोप मध्य बरे है अष्टार डेर

तेने नाम कायो ठोऊ मुख यापी नई है ।

ठाठे ब्रह्म ठाको कर जाते बहु जिय हर,

अष्टादश दोप बाधि ये ही कोत लई है ।

यह पंच मू त्री बाधि अष्टादश बाधि माधि

होय कैठि मन्नाराज तोहि चीन बई है ॥

मैया: अष्टादश, अष्टा विद्यास जैन मन्त्र एनाकर कार्यालय, बम्बई १ २२ ई
रज बडोदरी, १ २ मी कविता पृ २२ ।

असाधितके कारण है और वे भवबान् विनके ध्याने जीने का सकते हैं। उद्योग और उद्योगिकता अनुभव करेवा जो भवबान् विनके ध्याने पावते हैं वे उद्योगी हैं। ध्यानात्मक स्थिति अधिपत्य है कि राम-रूपमें प्रेम करनेके ही कारण यह जीव अपने परमात्म-स्वरूपके दर्शनको प्राप्त नहीं कर पाता। भवबान् वह विन-मरणके मुख्य कारण हैं। राम-रूपका मुख्य कारण है मोक्ष, इनकार के बिना राम-रूप स्वयं गद्य हो जायेगा और राम-रूपको देखनेसे मोक्ष का बर्तकपित् भी न रह पायेगा। कर्मकी कृपाधिको समाप्त करनेका भी यह ही एक उपाय है। जबसे उपाय आरम्भमें आकाश के समान रहता है। और फिर तो उसके बाद पाठ कर और पुनः भी पुनः आरम्भमें। तब विद्यमान प्रकाश होता और वह जीव विद्यास्थानमें अन्तर्गत कुछ विद्यमान रहेगा।

मोक्ष के विचारें राम होवहु विचारें जाहि
राम होव जाहि मोक्ष के हू न पावहु ।
कर्म की कृपा के विचारिने की रेंव नही
अक के उपायें कुछ कीये अहंकार ।
आप पाठ कर-कर जाहि पुनःकाल जाय
कर्म के कृपा की रेंव के अहंकार ।
तब होव विद्यास्थान अन्तर्गत कर्म
विद्यमान अन्तर्गत कुछ सिद्ध में अहंकार ।^१

अन्तर्गत कुछ ही परम शान्ति है। जीवने एक सुन्दरसे रहने की शान्ति रहता है। शान्तिकी बात करनेवाले ही जाही है, अन्य तो परमात्मा ही रहे जायेगी।

भूतब्रह्मकी स्वाधीनी कारण तो इतीकिए लक्ष्मी है कि वे सर्व और सम्पूर्ण शान्ति प्रदायक गुणोंसे युक्त हैं। भूतब्रह्मकी अन्तर्गत बहुत बड़ा शक्ति है। उद्योगिकता अन्तर्गत शक्ति की शक्ति की शक्ति है और अन्तर्गत शक्ति काय पावते हैं। अन्तर्गत भूतब्रह्म अन्तर्गत अन्तर्गत शक्ति की शक्ति करती है। क्योंकि अन्तर्गत यह अनुभव अन्तर्गत अन्तर्गत शक्ति की शक्ति पावते हैं। शक्ति की शक्ति कर सकना। शक्ति-अन्तर्गत शक्ति की शक्ति नहीं कहते। यहाँ अन्तर्गत

१ यही विद्यास्थान विनमृतमन्त्रकी शक्ति है १२१ ।

२ शान्ति रह जाहि कर्म अन्तर्गत शक्ति की शक्ति है ।

३ यही शान्ति की शक्ति है और शक्ति की शक्ति है ।

४ यही, शक्ति शक्ति शक्ति, अन्तर्गत शक्ति — --- ।

कर्म है मोक्ष नहीं किसी प्रकारकी आहुतिया नहीं होती। ऐसी ध्याति यह ही ले सकता है जिसने स्वयं प्राप्त कर ली है। वे संसारी साहिव जो बारम्बार जन्मते हैं मरते हैं और जो स्वयं मिसारी हैं दूसरोंका दारिद्र्य भी हार सकते हैं। मयवान् ध्याति जिनम्ब जो स्वयं ध्यातिके प्रतीक हैं सहजमें ही अपने सेवकोंके सब-कुछको हार सकते हैं। भूबरवास जन्मीसे ऐसा करनेकी धाकना भी करते हैं। यह जोव सांसारिक कर्मोंके करनेमें तो बहुत ही उत्तमका रहता है किन्तु सबबान्के सुमरणमें हीरा हो जाता है। जैसे कर्म करता है वैसे फल मिलते हैं। कम करता है असाध्ति और आहुतिका किन्तु फलमें ध्याति और विद्यकुछता चाहता है जो कि पूर्णरीत्या असम्भव है। आक बोधेया आम वैसे मिली नम हीरा नहीं हो सकता। वैसे यह जीव विषयोंके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता वैसे ही यदि प्रभुको निरन्तर बदे तो साधारण असाध्तिको पार कर निश्चय ध्याति पा सकता है।^१

ध्यातमात्रको स्वयं करनेके लिए भूबरवासन एक पृथक ही जग अपनाया है। व साधारण वैश्वोत्री साधिकाको दिखाकर और तन्त्रमय वेदानीको उद्बोधित कर चुप हो जाते हैं और जसमें-से ध्यातिकी प्रथि संसारकी संसारकी तरहसे फूटती ही रहती है। जन और जीवनके मयम जगत्त जीवोंकी सम्बोधन करते हुए जगत्त कहा ए निपट संसार नर। तुझे समझ नहीं करना चाहिए। मनुष्यकी यह काया और माया झूठी है अर्थात् साधिका है। यह सुहान और जीवन कितने सम्यका है और कितने दिन हम संसारमें जीवित रहना है। हे नर! तू धीम्र ही चेत ना और विकम्ब छात्र है। क्षण-क्षणपर तेरे सब बड़ते बावेंगे और तेरा पल-पल ऐसा घाटी हो जावेगा वैसे भीषणपर काली कमरी^२। भूबरवासने एक दूसरे पदमें परिचर्तनशोकताका सुम्बर वृत्त्य अन्वित किया है। जगूले कहा इस संसारमें एक अवयव तपाया हो रहा है जिसका स्थापित-नाश स्वयंकी शक्ति है अर्थात् यह तपाया स्वयंकी तरह धीम्र ही समाप्त भी हो जावेगा। एकके धरमें मनकी आधाके पूर्ण हो जानेसे मयक-नीत होते हैं और दूसरे पदमें किसीके विशेषके कारण मैन निराशास नर-नरकर रीते हैं। जो तेज तुरन्तीपर चढ़कर चलते थे और जासा तथा मलमल बढ़ते थे वे ही दूसरे क्षण नम होकर फिरते हैं और जनकी दिलासा देनेवाला भी

१ भूबरवास भूबर निपात कणकटा २१वीं पद ५ ६ ।

२ वही २१वीं पद, पृष्ठ १६ ।

३ वही, २२वीं पद पृष्ठ १६ ।

४ वही २१वीं पद, पृष्ठ १६ ।

वासा अग्र दृष्टि भी धारें मुक्त मुक्तित्त माली गाये ।
 धनुमी रस अलकत माली पेसा व्यासम शुद्ध चिराये ॥
 भद्रमुक्त रूप अक्षय्य मदिमा तीन लोक में छाये ।
 बाकी छवि देखत इन्द्रादिक अग्र सूर्य गण छाये ॥
 धरि यदुराग विहोक्त बाकी अग्रम करम छवि गाये ।
 जो वाराणस बल मुमरव ती अग्रदृष्टि बाया बाये ॥”



कोई दिखाई नहीं देता। प्रातः ही जो राज-सलापर बैठ चुका प्रसन्न-वदन था, लोक-धोषहरने समय उसे ही उदास होकर वनम आकर निवास करता था। तब और वन आर्त्ताधिक अस्थिर है, जैसे शानीका बनाया। भूवरदागती नहीं है कि इनका वा यत् करता है उसके अन्तर्गत विचार है^१। यह अनुपम मूल है देखने हुए भी अग्रा बनता है। इसने भर जीवनमें पुनः विरोध देखा, जैसे ही अपनी मारीका जालके मार्गमें आते हुए विरला और इसन वन पुनः शान्ति को सर्वत्र मानवर चले ही दिखाई देने से एक झुंझर बिना वहीके मार्गमें देखा चले हुए देखा फिर भी इसका वन और जीवनसे पप नहीं बटा। भूवरदागती वन है कि ऐसे मुनकी अंतरेके राजदोषका कोई इलाज नहीं है^२।

“देखो मर कावच में पुनः का विरोध व्याप
 तस्य हा विहासो विज्र मारी काक मग में।
 जे के पुनःकाव जीव दीमल है बाल ही है
 एक मने फिर लेख पुनही न राग में
 पुन है अमालो वन जीवच सीं परे राग
 हाव न विराग अने रहूंगा कलय में।
 अकिन निर्यात अथ सुने की अचेत
 के जे राजराज की हकाम कहा मग में”

एक मुनपुष्पकी पुष्प बट गयी है, उसकी अति पण्डित बुद्धि है, वहि बंक हो गयी है और वनर मुन बनी है। वनभी वरवाली थी कठ बुद्धि है और वह अत्यधिक एक होकर परमेश्वर के गवा है। उसकी मार (मर्त्य) वार रही है और मुँहसे आर नु रही है। उसके सब अंत-अपान पुनः ही बने हैं किन्तु हृदयमें तुम्हाने और भी गभीर रूप आरभ दिया है। जब मनुष्यकी मीन भावी है तो अनेक संसारमें रच-पनने को मुक्त दिया है, सब कुछ यही ही पत्र

१. श्री १०१ वर पृष्ठ २८।

२. श्री १०१, अन्तर्गत १२० वर, पृष्ठ २९।

३. बुद्धि बटी गयी तब भी अति बंक मई वति बंक वर है।

वच रही परनी वरनी अति एक मनी परमेश्वर लई है॥

काव्य मार बई मुन आर मनुष्यति लक्षित अति बई है।

अन उपम पुनः परे सिखा आर और गभीर मई है।

मैत्राण्य, अन्तर्गत १२० वर पृष्ठ २९।

एक भावा है। मूचरबाधनीने कहा है 'तोषणामी सुरंग सुन्दर रवेति रवे हुए
रम ठेके डेके मत्त मत्तग बास और लबास वनमधुम्बी अट्टालिकाएँ और करोड़ों
की सम्पत्तिम मरे हुए कोष इन सबको मर नर अन्तमें छोड़कर बला भाता है।
प्राप्त्य वहक कहे ही रह जाते हैं काम यहाँ भी पड़े रहते हैं जन-सम्पत्ति भी
यहाँ ही उन्नी रहती है और नर भी यहाँ ॥ मरे रह जाते हैं।

“तत्र सुरंग सुरंग मळे रम मत्त मत्त-मत्त रर हा।

बास प्रबास कबास अट्टा वन और करोड कोष मर हो ॥

पेसे कहे लौ कहा मर्षा है नर छपि कहे उति अन्त छने ही।

घाम करे रहे काम नर रहे व म करे रहे काम करे ही ॥”

घोषानगरायण भी मयवान् जिनेन्द्रको धामि प्रभावक ही माना है। वे
उनकी धारणमें इसलिये वय है कि धामि उपसन्न हो सगयी। उन्होंने कहा
हम लौ नमिजीकी धारणम जाते हैं क्वाकि लहे छोटकर और कहीं हमाप
मन भी लौ नहीं लगता। वे संसारके पापोंकी बलनको उपशम करनेके लिए
बादलके समान हैं। उनका विरह भी सारन-सारन है। इन फलोन्म और चन्द्र
भी सनना ध्याम करते हैं। उनकी मुख मिळता है और वृक्ष दूर हा जाता है।
बड़ी बादलस सरनेवाली छोटकता परम धामि ही है। धामिको ही सुख कहते
हैं और वह मयवान् नमिनामके सबकोको प्राप्त हाती ही है। धानतपयकी
दृष्टिम भी पच-डेप ही अधामि है और उनके मिट जानस ही 'विपरा सुख
पावपा, अर्वात् उनकी धामि मिलेगी। अरुन्धता स्मरण करनेसे राम-डेप
विधीन हो जाते हैं अतः सनना स्मरण ही सर्वोत्तम है। धानवराप भी अपने
बाबरे मनको सम्बोधन करते हुए कहते हैं 'हे बाबरे मन ! अरुन्धता स्मरण
कर। क्वाति काम और पूजाको छोड़कर अपन अन्तरम प्रभुकी लो लगा।
वृक्ष नर मन प्राप्त करके भी लसे ध्याम ही लो रहा है और विपय मोनाको
प्रेमा दे-देकर बड़ा रहा है। प्राणाके जानेपर है मयवा ! वृ पठनायेना। लीपी
मायु सन हाग वम ही रही है। मुनोके शरीर नम गुन भिम बरिजन पम

१ बरी, इहो वय वृ ११।

२ अब हम नमिजी की धारण ॥

और लीर न मन लगन है छात्रि प्रभु के धारण। अब ॥१॥

सकल जनि जय-जग्न कारिब विरह सारन तरन।

इन्द्र बाड कनिष्ठ प्यावे पाय मुख वृक्ष इन्द्र। अब ॥२॥

पाव्य वरमपद, कनकदा बला नर वृ १।

तुरन्त और रसमें तेरा आ पाव है वह ठीक गड़ी है। ये साक्षात्कार पदार्थ स्वयं की मायाको धोती है और आँख मोचती-मोचती समाप्त हो जाते हैं। कभी सम्म है, तू मयदान्का ध्यान कर के और मंगल पोत पा छे। और कवि कदाँ तक कहा जाये फिर उपाय करनेपर भी लय नहीं लकेपा^१।

धुल्लध्यानमें विरत तीर्थकर सात्विके प्रतीक होते हैं। उभयमें से सग्री प्रकारकी वैधर्मियाँ निकल चुकी होती हैं। उन्हें अन्तर्गत पूर्वसंस्कारक रूपमें बोधराप्ता मिलती है। उसी स्वरमें वे पकते बड़ते घोष मोलते और दीक्षा लेते हैं। कभी विद्यामोक्ष छेड़ते-उठारते कभी राज्याका संवादन करते और कभी धनुषाको पराजित करते किन्तु वह स्वर सदैव वचनकी जाति प्राचीनमें मिला रहता। कबहार पाते ही वह उन्हें वन-वचन के छोड़ता। बिनाएँ स्वतः पीछे रह जाती। बीतराप्ता धुल्लध्यानके रूपमें फूट उठती। आत्मिकके वह धावर दिनी दृष्टि 'बिन्ताविरोध'को स्पष्ट करता। वह एकमताकी बात कहती ही रहती। और फिर मुखपर जानबूझा अनवरत प्रकाश छिरेक उठता। अनुभव रत अपनी परमवस्थामें प्रवृत्त हो जाता। उसकी अन्तर्गत तीर्थकरका तीर्थार्थ अतीतिक स्वको अन्त होता। जिसे देख राज्ञ पूर्व और राज्ञ-वैभवं सम्मन्तोन्मय रत्न विवर्धित हो वह जाता। वह लय है कि उन परमसात्विक अनुभव करते तीर्थकर के वर्चनसे 'अबुन' नामवादी कोई कर्म टिक नहीं सकता था। फिर कवि उनके स्मरणसे अनङ्गद बाधा बन उठता हो तो बकत क्या है। चयनमने लिखा है^२।

'विरलि मय भूरवि कैसी शक्ती।

तीर्थकर वह भवान करत हैं वरमावस नद कावै ॥

१ अरहन्त सुमर यम बाबरे ॥

क्याति अयम पुनः लवि भाई अन्तर प्रभु की काव्य रे ॥ अरहन्त ॥१॥

नर मय पाव अकारण कोभी निषय जीव नु बड़ाव रे।

प्राप्त बने पकितैह भगवा किल-किल जीवै भाव रे ॥ अरहन्त ॥२॥

मुकती तम मन तुल मित परिवल यम तुरन्त रम पाव रे।

यह संसार गुणन की मया भाव पीव विवराव रे ॥ अरहन्त ॥३॥

ध्यान ध्याय रे अम है भाव रे, लाही मंगल भाव रे।

आनद बहुत कहा ली कहिये फेर न कछु उपाय रे ॥ अरहन्त ॥४॥

कबी कर्माव, पृष्ठ १६-६।

२ अरहन्त न ४६१, पत्र ७७ कबीन्दरजीका गविर, कपूर।

नासा अथ एहि की चारें सुख सुखकित्त मानौ गानै ।
 अनुभौ रस सकलकत मानौ ऐसा वासन छुड़ बिराजै ॥
 अनुसुत रूप अनुपम महिमा तीन लोक में छानै ।
 बाकी कवि देखत इन्द्रादिक अम्ह सूर्य गण कानै ॥
 परि अनुराग बिकोकत बाकी अनुम करम तजि मानै ।
 का जगराम जरी सुमरन ती अनहद बाजा बाजै ॥



जैन भक्ति-काव्यका कला-पक्ष

भाषा

भाषाही दुहिने तीन शिरीके भक्ति-काव्यको ही कालमें बाँटा जा सकना है—एक तो वि सं १४ १९ वृत्त वि ल १९ १८ ०। पद्य का अन्त अर्धश्लोक के अन्तिम विरट है। इसका अर्थ है कि इस मुक्ती द्वितीय अर्धश्लोक की विरटेशाह पायी जाती है। वह अर्धश्लोक ही विरटिण क्य है। अर्धश्लोक को अन्तःश्लोक प्रकृति वही भी प्रतिष्ठित है। इत्यन्त उक्त द्वितीय क्य उक्तान्त है और वहाँ उक्त कर्मकारणको विरटिण के कर्मों की वं ॥ प्रयोग हुआ है। इनके वृत्तान्त निम्न प्रकार है

क्रिया

“तउ कपिनि मन तिमड मचड,
पुते अछचारि उहाँ गपड ॥”

—तापस, मन्त्र करि

कर्ता

“तल पुनु मिरि बंधुह भूषकवपमिहड ।
चउह विरजा विविहक्य मारीस विहड ॥”

—विजय, बीमराज

कर्म

“गुरु भागम मो दैव पसीड”

—वासन्त, देवीसुत बी

इन मुक्ती द्वितीय अर्धश्लोक की मीति ही अर्धश्लोक के स्वागपर स्वरे स्वाग की प्रकृति थी। राजदेवराजपुरी ‘अमाह’ के स्वागपर ‘अमाह’ का और ‘अमाह’ के स्वागपर ‘अमाह’ का प्रयोग किया है। विद्वान्ने पुनर को

१. इन कर्मकारण विरटिण अन्तःश्लोक वृत्तों का अन्तःश्लोक है।

२. बहुविधा लीम भुवविषयं अरि भुवभु अमाह ।

अमाहोरी अमाहोरी भाषि अमाहोरी ।

राजदेवराजपुरी द्वितीय काव्यका कला-पक्ष अन्तःश्लोक, १९४६ ई. पृ. ३५० ।

‘हुविठ’ और ईश्वरमूर्तिने अकिर्तांग को ‘अकिर्तय’ सिखा है ।

‘हि’ और ‘हि’ विभक्ति को पहले अपूर्णसमे केवल वरन और अधिकरण कारकके बहुवचनमें हो प्रयुक्त होती थी आगे चलकर प्रायः सभी कारकोंकी विभक्ति वन ययी मेरुमन्त्रन उपाध्यायने उसका प्रयोग वर्ता कारकमें किया है^२—

‘हम भगसिहिं साकिम तनीप् ।

सिहि भक्तिव संति मिम पुह मनिप् ॥

—अकिर्तांगितकम्

इस विनयासने ‘हि’ का प्रयोग कर्मकारकमें किया है । वह इस प्रकार है,

‘विनवर स्वामी भुगसिहिं गामी सिहि नधर मंडणी ।

—विष्णो हुक्का

कवि हरिचन्दने भी ‘हि’ को कर्मकारककी विभक्तिके रूपमें ही स्वीकार किया है,

गुह भक्तिप् सरसहिं पसार्य ।”

—कनकनिम्ब सन्नि

मुनि विनयचन्दने इस विभक्तिका प्रयोग परम्पराके अनुसार अधिकरण कारकमें ही किया है,

“पदम परिक हुह बाहिं आसाकहिं रिसह गम्भुनहिं उत्तरसाकहिं ।

बंभारो कुहिं तहिमि बंभमि बासुपूज गम्भुपूज ॥

—बंभस्तापकदासा

मुनि विनयप्रय उपाध्यायने भी ‘हि’ को अधिकरणका चिह्न माना है

साठ हाथ सुप्रमाण देह कविहिं ईसाचर ।

—नैमरासा

हिन्दीमें कहीं-कहींपर ‘हि’ के ‘ह’ वा ओप कर केवल ह का प्रयोग देखा जाता है । रामदेवमूर्तिने लिखा है कि राजीवनीके लीमन्तमें मोतीचूर्णसे युक्त चिन्मूर्ती देखा सुयोग्यत थी

१ जो गर करह सो मुक्ति न होइ

विद्वत् कामयेकमी चर्य ।

सकिर्तय कुमरवरियं ललना अतियन विनुनेह

ईश्वररि ललितप्रवरिय ।

इसी प्रत्येक दूसरा अन्वय ।

२ सभी कदाहरणोंके लिए, इसी प्रत्येक दूसरा अन्वय देखिए ।

'सीमंगह' मिथुरोह मोतीसहि सारी ।

—वेमिनाकाव्य

हिन्दी-विहीने 'ह' के स्थानपर 'ए' का प्रयोग किया है। 'ए' विभक्ति अधिकारकमें प्रयुक्त हुई है। येकाव्यन कथाप्रकारके 'अतिरिक्त' स्तन का एक पद्य इस कथनको पुरु करता है,

'मंगल कमका कंधुप' सुख सागर चमिभ चंदुप ।

जग गुह अतिरिक्त मिथुरोह, संतीसुर नवमार्गदुप

—अतिरिक्तमिथुरोह

हिन्दी कविमाने स्वार्थक प्रत्ययोंमें 'अ' 'ऐ' और 'डी' का बहुत प्रयोग किया है। इनमें भी 'अ' का प्रयोग बहुत अधिक हुआ है। रामदेवजीने 'चंदुप' को 'कंधुप' कावाले बदलने को 'कंधुप' पद्यविभक्तिमें 'अतिरिक्त' को 'अतिरिक्त' ईश्वरसूरिने अतिरिक्त को 'अतिरिक्त' और समर्थ को बदलने किया है। ये रूप स्वार्थक 'अ' प्रत्ययके कारण बने हैं।

'ऐ' और 'डी' का भी प्रयोग हुआ है किन्तु बहुत कम। 'ऐ' का उत्तम प्रयोग नि. सं. १६—१८ के श्रवियोंमें देखा जाता है। विनयप्रम कथाप्रकारके एक पद्यमें 'ऐ' का प्रयोग हुआ है

'मरह-मिथुरोह' मिथुरोह-मर-मर

कमल पुंडरिकाक्षी विजय पुस्तकधारे ॥

—सीमंगल लाली लाल

मरहक पुस्तकधारे 'ऐ' और 'डी' का एक ही पद्यमें प्रयोग किया है,

"रौम रचित संगीत सुनी रे संपदा पुरज अम ।

अम दुहि मम सुमिरी डुहवा अमुममि जाय ॥

—अतिरिक्तमिथुरोह

१ मरह कावर कंधुप पुंड पुस्तक माका

रामदेव, वेमिनाकाव्य ।

अतिरिक्त कंधुप कंधुप

कावाले अतिरिक्त ।

मरहके अतिरिक्त माका अतिरिक्त अतिरिक्त

अतिरिक्त अतिरिक्त ।

अतिरिक्त कावाले कि मग समर्थ साहस और

ईश्वरसूरि, अतिरिक्तमिथुरोह ।

इन सन्के सिद्ध, वेमिना लाली अतिरिक्त दुहवा अतिरिक्त ।

जैन हिन्दीके किसी कविने स्वाभाविक प्रत्यय 'अस' हल्क और ठस्क' का जहीरर भी प्रयोग नहीं किया है।

अपभ्रंशमें ह्रस्व और दीर्घके व्याप्यका नियम था। इसका अर्थ है कि ह्रस्वके स्वाभाविक दीर्घ और दीर्घके स्वाभाविक ह्रस्व हो सकता है। अपभ्रंशकी प्रवृत्ति ह्रस्वान्त है। जहाँ ह्रस्वको दीर्घ हुआ है, वह स्वाभाविक प्रत्ययके ही कारण। आचार्य हेपथमन मध्य और अन्तमें ह्रस्वको दीर्घ किया है। ऐसा कि 'मत्सा हुआ भी पारिधा'—इस प्रयोगसे स्पष्ट हो है। यह प्रवृत्ति जैन हिन्दी-काव्यमें भी अस्मत्प्रत्ययों है, एक उदाहरण देखिए,

मनु पणु चणु पणु पणु करि निमुचउ सो मणिपा ।

त्रिमि निवसइ तुम्ह रहि गहि गुन गन गहगहिवा स ।

पादमध्यमें भी ह्रस्वको दीर्घ करनेके बृहन्म मिळते हैं। ब्रह्मजिनवासन किया है।

वरकर्म स्वामी पापी पाव कर्माचर्म बीचार दो ।

—भाट्टपुराण

कवि ठठुरसीने किया है

"रयणि पवीतो सज्जन्मी नीसरि सक्की न मद्रु ।

—रवेन्द्रिय वेत्त

आचार्यसमयमें भी पादमध्यमें ही ह्रस्व को दीर्घ किया है

'सुमि मचीलम अच बीरजिन पामिउ सिचपुर दान्ड ॥

—सिद्धान्त चोखे

जैन हिन्दीमें प्रारम्भिक ह्रस्वको दीर्घ करनेका बृहन्म नहीं मिलता है। परिचयसमयमें लहे हो 'प्रसाधन' को 'पासाहय' किया गया हो किन्तु जैन-हिन्दीमें तो 'प्रसाधित' को 'पसाधिय' और प्रसीध को पसीउ और 'प्रसाधित' को 'पसाधिय' देखा जाता है।

१ विनयम कदाप्यत्र नीलमरासा बहसा कव, दिव्यी जैन साहित्यका इतिहास कम्परे १६१७ ई. ३२ ।

२ निम्मस ए नयतरयचणु पसाधिय सयसतमु,

देसमरन कदाप्याच, सीमवरजिनमरमम् ।

बुध गीतम सो दित पसीउ

अनमन मेमीरक नीन ।

जेन पसाधिय देह चारि

दिराउ कानरचनी चणु देजि रती मरकड दूउरा मरणाप ।

कर्म'से काम' कर देनेकी बरगस्त अवर्षणको प्रकटते बिरी की।
 केन हिन्दीके इस युगमें भी कर्म कीये प्रयोगकी अविरता है। 'कर्म' को
 ऐकदा रमानेपर प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त राजसेनरसूत्रिने 'कर्म' को
 कर्म विनयप्रसने 'शेन' को 'प्रति' 'विद्या' को 'विद्या' 'निद्रा' को 'निद्रा'
 विद्य को 'विद्य' मैदमग्रसने समर्थ को समस्तु इत्य को 'हस्तु' ऐकदा
 सूरिने 'पुन को पुन' 'दुर्ग' को दुर्ग और 'स्वर्ग को मर्ग' लिखा है।

आदर्शम अनुसंधारकी प्रवृत्ति भी बहुत प्रचलित थी। डॉ. हजारीप्रसाद
 द्विवेदीने इसके तीन कारकाकी उद्भावना की है - (१) संस्कृतकी मरिचक म्पि,
 (२) छन्दकी वाच्युक्तिके म्पि, (३) एकाच यात्राकी कमीकी पूरा करके म्पि।
 केन हिन्दी साहित्यमें अनुसंधारोंका अधिकार प्रचलित रूपके सौन्दर्यका निर्वाह
 करनेके लिए किया गया है। मैदमग्रसने एक पद्य देखिए -

‘मह सचक कवलय जाति
 सुमियवर्ण सुनि बहूँ समर हुमाँ
 मविष मुह मंदकी मचम आनंदकी
 पलितो समुह दिवलाकुमारि ॥

—विनोदचन्द्रिप्रसाद

अवर्षणमें पद्यात्मके 'ओषा' की तुल्यके कामें पद्वेकी प्रवृत्ति थी।
 पुष्पल प्रभाव लंबू' में ऐसे अनेक उदाहरण हैं। केन हिन्दीका मरिचक-युग
 इस प्रवृत्तिकी अपनानेमें सबसे आगे रहा है। राजसेनरसूत्रिने निम्नांकित पद्य
 इसका दृष्टान्त है,

“मरिचक कज्जकराह मचमि मुहँकमकि लोको।

बागोदर कंजक कंठि-अनुहार विरीको ॥”

—केवलाच नर

इसके अतिरिक्त विनयप्रसने 'वीरविनेतर करम कयक कनकादकवाओं'
 में भी पुनरापारके अवलम्बी एक दिनट कष्टक दुरित पाप विचारकों' में और
 ब्रह्मविनयात्मके आदि विनेतर भुवि नरमेतर समक पुन विनासकों' में भी यह
 प्रवृत्ति ही परिचलित होती है।

केन हिन्दीके इस युगमें 'मुह स्वर को कबु बगानके मी अनेक दृष्टान्त हैं।
 विनयप्रसने 'मी' दन्तप्रति' को 'मिदि इहनुह' और मैदमग्रसने भी 'मी' को

१. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्यका आर्थिक विनीत अध्ययन,
 १. ४२।

२. देखिए इसी मन्थन दूधरा मन्थन।

की शिवहर भाषी मयेनि, गुह निर्गन्ध पाव प्रणयेनि ।

कहुं नारायण सुविचार, संजोति साधेहार ॥

—मारायणा प्रतिष्ठेन शा

मटारक ज्ञानमूपण

“भाहे प्रथमीव भगवति सरमति जगति विचोवन माव ।”

—बाहीनर वान

मटारक सुयचन

“कर्म कर्मक विचारवी रे मिसेव होव विनाय ।”

—रासदा रूच

कवि राजमल्लके पियक धारुमै उत्तम कपोली हैं। प्रबलता है। इनका एक धराहरण है,

‘स्वांति बुंद धुन बर्ष विरंतर संपुट सीपि बमो कहरवर ।

अम्मी सुनवाहक मारहजक कंदनरस सिरी अचकोपक ॥’

इन उपर्युक्त दृष्टान्तोंसे भी चन्द्रवर धर्म बुझेरी इस कवनका समर्थन होता है कि—‘इन लोग संसृत धर्मोंका बहिष्कार अवश्य करते रहे, किन्तु वे बर्ष ही बदे ।

कैन हिन्दीके इस युगपर गुजरती और राजस्थानीका भी प्रभाव है। वह समस्त हिन्दी गुजरती और राजस्थानीमें विधिय जलर नहीं वा। राहुकरीका मत है कि वे अवर्षयसे विकसित ही हैं। भी उनके मूक कर्तोंमें भेद नहीं वा। उनकी बुद्धिमें गुजरत ठेकरी धर्तीतक हिन्दी शेषका अभिलक्ष्य बंद रहा है। सोकाभाय राहुके सम्पादक भी इस समयकी हिन्दी गुजरती और राजस्थानीमें स्थाना कर्तमें नहीं मानते विना कि भाव-कक है।^१ फिर भी यह सिद्ध है कि उनमें कुछ-न-कुछ कर्तमें वा अवश्य विषये उनका प्रवृत्त बहिष्कार प्रमाणित होता है।

वि सं १४-१५ के हिन्दी कविमें राजसेखरसूरि साधारण चित्त और मेकान्तनवर राजस्थानीका प्रभाव है, ती विषयप्रवृत्त अपाधाय सोमसुन्दर सूरि अपाधाय अवलपर वयासावर सूरि, हीरानन्दसूरि और मटारक राज-भीतिपर गुजरतीका ।

१ हिन्दी के साहित्यका इतिहास मारतीव ज्ञानी, धारी, १९४१ ई. पृ. १५।

२ राजा सहायक, हिन्दी ज्ञानीका ज्ञानीका पृ. १५।

३ हिन्दी साहित्यका इतिहास ज्ञानीका ज्ञानीका पृ. १५ के अध्याय।

वि सं १२ १९ के कवियोंमें पद्मसिखर मुनि हरिचसेन जैन-मन्त्र मुनि विनयचन्द्र ठाकरसी और कवि हरिचन्द्र राजस्थानीसे प्रभावित हैं तो ब्रह्म विनयास सायणसमय संवेगसुन्दर सिंहकुशल ईश्वरमुरि भट्टारक मुनयचन्द्र और देवकस्यारी रचनावर्गमें गुजरातीकी शानक है ।

वि० सं० १६०० १८०० के जैन हिन्दी कवियोंकी भाषा

यह युग हिन्दीके पूर्व विकासका युग है । इसमें अधिकांशतया उत्तम पाश्याका प्रयोग होने लगा । क्रियावाक्य भी विकास हुआ । उच्चार बहुधा प्रभूति हट गयी । विभक्तिबोले बिचकर स्वतन्त्र शब्दाका रूप धारण कर लिया । कर्ता की 'ने' और कर्मकी 'को' विभक्तिवर्ग स्पष्ट दिखाई देने लगी ।

भाषाकी दृष्टिसे इस युगकी रचनाओंको दो भागोंमें बाँटा जा सकता है — एक ताँबे की संस्कृतका अनुवाद मान है और दूसरी वे जो नितान्त मौखिक हैं । अनुरित कवियोंमें संस्कृतनिष्ठा अधिक है, जब कि मौखिकमें सरलता । कवि ज्ञानरामाचार्यने सोमप्रसादाचार्यकी मुनि मुक्तावलीके ५८वें पद्यका अनुवाद किया है

‘युग प्रताप रवि रोहित को चाराचर
मुकृति समुद्र सोखिये को कुम्भमय है ।

कोप एवं नायक अवन को बरबि दास
मोह विष मूक को महारद कंद है १

इसी कविकी अत्यन्तम पदपणित (मौखिक) के साथमें परकी कनिष्ठ पंक्तिवर्ग इस प्रकार है

‘युनें भी प्रभु पाइय सुख पंडित प्राणी ।
ज्या मधि आरत्य काहिये बुधि मैरि मयायी ॥

अधो रस कीज रसाधनी रसरोजि नराधे ।
रखो बट में परमारणी परमारय साधे ॥ २

कवि भूवरदायने बाहिराजमूरिके ‘एकीभाष स्तोत्र’के छठे पद्यकथा अनुवाद निम्न प्रकारसे किया है

‘मय जन में चिरकाक अम्भो कमु कदिय न जाई ।

तुम धुति कथा विभूय नायिका भागन पाई ॥

१ क्तारसी विनयचन्द्र भट्टारक, पृ ५९ ।

२ पृ ६ ५५९ ।

अग्नि तुषार बनसार द्वार शीतल नहिं जा सम ।

करत गहीन तामहिं क्यों न मचलाप बुझै मम ॥”

इसी कविके ‘भूवर विजात का एक भौतिक पद देखिए,

“गरव नहिं कीजै रे रे नर विपद गंचार ।

झड़ी कपडा झड़ी माया काया उभीं कलि कीजै रे ॥”^१

इसी पंक्ति पाण्डे हेमराजके ‘माया भक्तमर’ और ‘उपदेशबोधा छंदक’ उक्त मैत्रा भक्तमरीचासके ‘प्रथम संस्कृत’ और फुटकर रचनाओंकी भाषामें अन्तर है ।

इस युगके कवियोंने दि. सं. १४-१६ की ‘रे’ और अनुस्वारवाली प्रकृति विरासतके कारणें बांधी हैं । ‘रे’ के प्रयोगसे संपीठनमन्त्रावली बृद्धि हुई है, और अग्नि-सौन्दर्य भी बढ़ा है । यही कुण्डलमन्त्रका एक पद देखिए,

“आम्बी मास अयाङ्ग सन्धे कामिनी रे ।

सोमह सोमह मीचडा बाज सखीमक कामिनी रे ॥

चातक मयुरह सारिणि मीक मीक उचरह रे ।

बरसाह चम बरसाह सखक सरवर मरह रे ॥”^२

मैत्रा भक्तमरीचासके ‘री’ का प्रयोग छंदम उक्तसे किया है

“अचेतन की देहरी न कीजै राखी देहरी

औरुन की गेहरी परम हुक जरी है ।

बाही के सवेहरी न बाचें कर्म केहरी सु,

बाचें हुक केहरी के बाकी मीति करो है ॥”^३

छानंदराजके ‘पार्श्व-स्तोत्र’में अनुस्वारका एकमन्त्रापूर्वक प्रयोग हुआ है । यही यह तरह है कि अनुस्वारका प्रयोग अंतर्लीनक अक्षरा संस्कृतकी शीतके लिए नहीं अनितु अग्नि-सौन्दर्यके लिए हुआ है । ‘पार्श्व-स्तोत्र का एक पद देखिए,

“नरेन्द्रं चर्मन्द्रं सुरेन्द्रं ज्योत्स्नं ।

द्योतुं सु रश्मिं जग्निं बाध कीर्त्तं ॥

सुधीन्द्रं ज्योत्स्नं नगीं ज्योति हार्त्तं ।

नगीं देवदेवं सदा पार्श्वभाषं ॥”^४

१. हरिश्चन्द्राजी लंका लताह लम्बर, १६२५ ई. इ. २५० ।

२. भूवरविजात, कलकत्ता ११वीं स. ६ क ।

३. वैदिकविज्ञान के अन्तर्गत, इ. ११९ ।

४. मैत्रा भक्तमरीचा, अष्टविंशत ।

५. भूवरविज्ञान, पार्श्वभाष स्तोत्र, कलकत्ता १६२५ ई. इ. २५६ ।

कवि बनारसीदासक पहले ही आपरा हिन्दी-कवियोंका केन्द्र था। आपरा यदि एक ओर राजस्थानसे सम्बन्धित है तो दूसरी ओर ब्रजभूमिसे अतः वह कि कवियोंपर दोनों ही का प्रभाव है। इसके अतिरिक्त उनपर अरबी-फारसीका प्रभाव भी अनिवार्य था क्योंकि आपरा बाघसाहूँकी राजधानी थी। पाण्डे कथनके 'परमासी होराछासक'में ब्रजभाषाका छूट है तो 'नमिनामदासा'में राजस्थानीकी झलक और 'मंथनोत्त प्रवण' कुछ ऊँची बोलीका निरूपण है। उनकी रचनाओंमें अरबी-फारसीके शब्द नहीं हैं क्योंकि वे आपरेमें बहुत कम रहे, इसके अतिरिक्त वे संस्कृत-प्राकृतके प्रकाश पवित थे।

कवि बनारसीदासकी भाषा कुछ ऊँची बोलीपर आधारित है। उसपर राजस्थानीका प्रभाव नहीं है किन्तु वारक रचनामें ब्रजकी विशेषता पायी जाती है। उनकी भाषापर उर्दू-फारसीका प्रभाव है। डॉ. होराछासक केन्द्र का मत है कि बनारसीदासकीने ब्रजभाषाकी सुनिका कैकर उसपर मुद्रकाक्रमें बड़े हुए प्रभाववाले ऊँची बोलीका प्रयोग किया है। बनारसीदासके सम-कालीन और उनके एकचित्त मित्र कुँवरदासकी भाषापर राजस्थानीका स्पष्ट प्रभाव है। उनके 'चौबोस टापा का एक पद्य देखिए,

“बड़ी विचित्रप्रतिमा बुलहरणी।

आरंभ कहा हैन मति भूकी व विम सुख की चरणी ॥

बीररामाव हूँ बरसावह, सुनिय पंथ की करणी।

सम्पदादिही मितप्रति व्यावह, मिथ्यामत की करणी ॥

इस पद्यमें 'घ' और 'ग' दोनों ही प्रयोग देखे जाते हैं, किन्तु 'घ' की अधिकता है। पाण्डे कथनके 'सीमा 'दरसुनु' कुछ और मितसाधन का प्रयोग किया है। कवि बनारसीदासकी रचनाओंमें 'अविनासी कुछ 'सिक्कर' 'बरचन' और 'सरन-बीसे अलंक शब्द हैं जिनमें 'घ'के स्थानपर 'स' का प्रयोग हुआ है। कुँवरदासने भी 'सुख' 'सुखस' और 'बरसन'में स को ही बनाया है। दानजदासने भी 'बरसन' शिरीषाक और 'परमेनुर का ही प्रयोग किया है। किन्तु इन सबकी रचनाओंमें यव-उप स का प्रयोग या देखने-को मिलता है। कवि बनारसीदासके 'नाटक समयसार की 'उई ब्रज जोर यह

१ डॉ. होराछासक केन्द्र, अर्थकमानकी कथा अर्थकमानक, व नाम्नाय प्रेमी
अन्वयित सं-विन संस्करण, १९२० ई. शिवी अन्वयिताकर विमिरेड कर्मा,
१ ११।

२ अर्थकमानक, अर्थीविन संस्करण, कर्मा १ १२।

पिच नारहि नार की दिपछ
जिबरा तुमरा तरसावैनी ॥

भूपरदायका प्रत्येक पद प्रसादयुक्तता साधात् प्रतीक है। 'पार्वतुदाय' केन घटक और 'भूपरदित्तम' के अतिरिक्त उनके अनेक स्तुति-स्तोत्रों में भी उल्लेख भूष ही चार्पकताको प्राप्त हुआ है।

इस भूपदे केन हिन्दी कवियों ने कभी कोलीक प्रयोग किया है। उतर परसीका स्पष्ट प्रमाण है। कभी उन्की कविताओं में प्रारसीके घडोंरा प्रयोग हुआ है। किन्तु वे उन्की अपनी कोलीके हाककर अपनाये गये हैं। उनका उत्तम रूप कहीं-कहीं ही देखनेको मिलता है। नारसीदासके अलकदायक में हुनु, मुसलिस सीरा मुकफ कवरि छलीक हुसियार, कुसहाल बकर, नरारि, स्वादास समराज साहिबादे सुसुन पैजार और बौछरा-बैठे अनेक छंद परसीके छन्द हैं। उाँ होराकाक केनका कवन है कि इन घडोंरा प्रयोग वहाँ पर ही हुआ है। वहाँ मुकफ राय-नामसे सम्बन्धित प्रयोग आया है। किन्तु 'अलक समराज' में ऐसे उन्की आध्यात्मिक प्रयोगों में भी आये हैं। वहाँ अलक हुसरा बरपैक लेख नहुक उतरवार निसानी रस नुमानी और मनुपनि-बैठे उन्की सर्वत्र विखरे हुए हैं। 'आलकावनी' में ही कदापत और कहर नहुक, स्वाक उन्की अलक बरम्बाग नुमक अनाला स्वापी उरहर कहरा-बैठे अलक उन्की मौजूद है।

जैसा नारसीदास परसीके अलक आनकार ने किन्तु उन्कीने भी परसीके घडोंको उन्की कलकर ही अपनाया है। उनकी रचनाओं में स्वाक अलक मुकाम उन्की फीमदार परवाह, नमकीक, फलीम शिकाफ, रोमक किरला और उन्की आदि उन्की देखे जाते हैं। उनके किसी-किसी कविता में तो परसीके घडोंकी श्रुति है, अतः उन्की 'टीन' परसीकन ही परा है। एक कविता देखिए,

“माक नार मेरा कहरा दिख की कलम बीक
साहिब नमकीक है दिखको पदनामिने।
नाहक किरहु नाहि नाहि अलक बीक
हुकम गीक जिबका अली अति आदिप ॥
नामक उन्की नसरा है उन्की रक्षा आदि
तोस रीस किरावै इन्की ही में आदिने।

पक्ष से गनीम तेरी खमर साथ करो है
खिडाक तिसें जानि तूं जाय सच्छा जानिये^१ ॥

‘शैया’ की भाषा बाटकीय रसके अनुकूल है। यह रस उनके द्वारा रचित संवाचिक मध्य विकसित हुआ है। ‘पंचमित्रय संवाद’ में काकिर्य है। सरक छोटे-छोटे वाक्य हैं। उनमें स्वामाधिकता है, रसकी विचकारियो-से भाजूम होते हैं। शेषरासके संवाद प्रसिद्ध हैं किन्तु उनका प्रयोग केवल राधचम्रिका में हुआ है, ‘रसिकप्रिया’ या कविप्रिया’ में नहीं। राधचम्रिका प्रबन्ध काव्य है। मुक्तक काव्यमें संवादका प्रयोग ‘शैया’ की है। भीम बीकन कष्टी है।

‘भीम कहे रे जोसि तुम काहे गर्व करताहि ।
कमलक करि जो रंगित छोड़ु बार्हि कजोहि ॥
कायर नहीं करपी रहै धीरज नहीं कपार ।
बाज बाज मैं रोय रे चोके गर्व अपार ॥
अहाँ वहाँ कागत छिरे देख सकौनो क्य ।
तेरे ही परसाज तैं हुन पावै निरुक्ष ॥’^२

छन्द-विधान

वि सं १४ -१८ के तीन कवियोंने बलिक और माणिक दोनों ही प्रकारके छन्दोंका प्रयोग किया है। बलिक छन्दोंका प्रयोग बलिकोसतया संस्कृत की अनुरित वृत्तियोंमें बिबा गया है और माणिकका मीकरिये। माणिक छन्दोकी प्रचालन है। उनमें भी दोहा चौपाई कवित्त सबैसा और विविध पद्य मुख्य हैं।

दोहा

बैते ससुठका ‘बडोक’ और प्राकृतका ‘याया’ मुख्य छन्द माना जाता है। बैते ही अपभ्रंशका दोहा। अपभ्रंशको ब्रह्म-विद्या कहते हैं। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीने दोहाका उत्पत्ति-स्थल जानीर जातिके ‘विरहामागो’ में जोया है। किन्तु

१. शैव कवलीदास राधचम्रिकरी, १४वीं कविप, गद्यविज्ञान प्रिण्टिग, लन् १९२९ ई. शैव प्रबन्धलाकर काशीनय, पन्नी ५ २१।
२. शैव कवलीदास पंचमित्रय संवाद गद्यविज्ञान, दोहा २६-२८, ५ २४४।
३. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्यका आरिख्यत अन्वय व्याख्यान, ५ २१।

लिखित रूप में दोहाका सर्वाधिक प्राचीन रूप 'विक्रमोर्वशीय' के चतुर्थ अंक में देखा जा सकता है। मोदीशु (छापी छयासी विक्रम) के 'परमारप्रकाश' और यादव र'में भी अक्षरशः दोहोंका ही प्रयोग हुआ है।

जैन कवियोंने दोहोंका प्रयोग अम्याल्य जयदेव और कविके अर्थमें ही करि किया। जयदेवी परम्परा हिन्दीके कवि-काव्यमें मिली। भट्टारक पुष्कर (१९वीं छायासी) ने 'तत्त्वसार' दूहा में पाण्डे कपल (१७वीं छायासी) ने 'परमार्थ दोहासुक्त' में कनराम (१७वीं छायासी) ने मरदाव विराट में और पाण्डे हेमराज (१८वीं छायासी) ने 'उपदेश दोहासुक्त' में दण्डोपा ही एक मात्र प्रयोग किया है। अनेक कृतियाँ ऐसी हैं जिनके बीच बीचमें वही बिखरे हुए हैं। कनारको विराट का एक दोहा देखिए

“समुत्त सके ती समुत्त अथ है सुकर्म कर रह ।

किर यह संगति कर मिले तू पाठक ही मेह ॥

चौपाई

चौपाईका आविष्कार कप है अक्षरशःका पद्धति का अर्थ। इस समय दुर्ब और पुष्करके बीच पद्धति का कविके कार्य प्रयोग किया जाता था। कवि पुष्करने 'हरिवंश पुष्प' में लिखा है कि इसके आविष्कारकर्ता चतुर्मुख थे।^१ हिन्दी काव्य 'दुर्ब' का प्रयोग ही सम्पन्न हुआ ही गया और उसके स्थान 'दोह' ने ले लिया। पद्धति चौपाई ही गया। अक्षरशःका कविके कार्य ही हिन्दी चौपाई-काव्य ही गया। चौपाई-काव्य ही गया।^२

हो हीराजाल जैन का मत है कि कविके कार्य ही हीराजाल में प्रयुक्त होनी थी। हिन्दीके कविके कार्य ही हीराजाल में प्रयुक्त होना था। 'पद्याव' और रामचरित मानस चौपाई-दोहोंमें हैं मिले वही है। जैन हिन्दीमें ही चौपाई का प्रयोग करि काव्यकाव्यकाव्य 'चौपाई-काव्य' रामचरित हीराजाल और सुन्दरानन्द 'पार्ष्वपुष्प' चौपाई-दोहोंका ही प्रयोग है।

१ कनारकीराम अम्याल्यर वंश, आनन्दरीराम अम्याल्य, १९११।

२ डॉ. हीराजाल जैन, अक्षरशः काव्य, अक्षरशः काव्य और साहित्य, काव्य प्रकाशनी कलकत्ता १९११।

३ डॉ. रामचरित मानस जैन साहित्यकी हिन्दी साहित्यकी ही जैन साहित्यकाव्य, १९११।

४ डॉ. रामचरित मानस जैन साहित्यकाव्य १९११।

यों हजारीप्रसाद द्विवेदीका कथन है कि बीरार्द्रिका अगम कथानककी ओड़मके लिए हो हुआ था^१ किन्तु जैन-हिन्दीके अनेक कवियोंने अपने मुक्तक-नाट्योक्त किए भी बीरार्द्रिका ही चुना है। बनारसीदासकी 'वैशनिर्वर्णपंचासिका' 'मार्मपाविधान कमप्रकृतिविभाग कस्याचमणिर स्तोत्र साधुबन्धना 'ध्यानवत्सीसी और 'पिण्डवत्सीसी में प्रायः बीरार्द्रा और बीरार्द्रिका ही प्रयोग हुआ है। मैया भगवतीदासने 'वैशतर्कमर्चित्र' 'विनयुचमाळा' पंचारमेष्ठि नमस्कार मुचर्मवरो मधु विन्दु' बीरार्द्रा उरवेष्ट पञ्चोपिका' गन्धीश्वर दीपकी जपमाळा 'बाह्य भावना 'कमलान्वके वस मेध' और अष्टमि चैत्रालयकी जपमाळा में अधिकांशतया बीरार्द्रिका ही उपयोक्त हुआ है। प्रारम्भ अन्त अथवा मध्यमें कहीं-कहीं बीरार्द्रा भी है।

इन मुक्तक कृतियोंमें बीरार्द्रा-बीरार्द्रिका प्रयोग प्रकल्प काव्यकी भाँति नहीं हुआ है। प्रकल्प काव्यमें एक बीरार्द्रिके उपरान्त एक बीरार्द्रा आता है किन्तु इन मुक्तक रचनाओंमें कभी एक बीरार्द्रा और अनेक बीरार्द्राओं और कभी अनेक बीरार्द्राओं और फिर अनेक बीरार्द्रा का क्रम मिलता है। कवि बनारसीदासकी 'साधु बन्धना'की एक बीरार्द्रा देखिए,

'अर्धत मित्र सूरि उचछात । साधु पंच पद परम सहाय ॥
हृवक वरणन में मन काय । तिम सुनिबर के बन्नों पाव ॥'^२

मैया भगवतीदासकी 'गन्धीश्वर दीप जपमाळा'की एक बीरार्द्रा इस प्रकार है
जिन प्रतिमा जिनवशने कही । जिन साध्य में अंतर नहीं ॥
सब सुहृन्द् गन्धीश्वर बाव । पूजहि यहाँ विविध कर भाव ॥^३

मूपरदासके विविध स्तुति स्तोत्रोंमें भी बीरार्द्रिका प्रयोग हुआ है। इनका 'पार्ष्णनाथ स्तोत्र' प्रारम्भिक दोहेके उपरान्त बीरार्द्राओं ही लिखा गया है। एक बीरार्द्रा इस भाँति है

प्रभु हम कण समरथ या कोय । जासों तुम बड़ा बलव हाथ ॥
चार शानबाहा सुनि कैं । हम से भेद कहा कर सकैं ॥

१ डॉ हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्यका इतिहास पंचम आवृत्ति पृ १४।

२ बनारसीदास साधुबन्धना बीरार्द्रा २ बनावतीविद्यात जपपुर १ १३ ।

३ मैया भगवतीदास गन्धीश्वर दीपकी जपमाळा २३वीं बीरार्द्रा, प्रवृत्तिनाथ, पृ १२३।

४ मूपरदास पार्ष्णनाथ स्तोत्र, पशुली बीरार्द्रा इतिवृत्तनाथीभिपद, ११५९ ई, पृ ५१२।

कवित्त

कवित्त ब्रह्मापाका प्रिय छन्द है । मूलतः बन्धीजन इनका प्रयोग करते थे । भाष्यात्मिक और धार्मिक क्षेत्रमें जैन कवियोंने इस छन्दका सुष्ठु प्रयोग किया है । मैया भवनीदास 'कवित्तों' के राजा थे । इनका एक कवित्त देखिए,

“भूमन के घीरहर देण कहा गर्भ करे,
ब ली छिनमाहिं बाहिं पौन परमत ही ।
संख्या के समान रंग देखत ही होब रंग
बालक पतंग जैसें काक गरसत ही ॥
मुपन में बूष जैसें इंद्रबधु कप जैसें,
जीमवृक्ष बूष जैसें हुरी दरसत ही ।
ऐसोई मरम सब कर्म काक वर्मणा को
छामें सूख मरम होब मरी तरसत ही ॥”^१

‘मैया’ ने सांघिक कवित्तका भी प्रयोग किया है । विष्णु जीटी ताक और कम उपयुक्त कवित्तमें है, सांघिकमें नहीं आ पायो है । एक सांघिक कवित्त इस प्रकार है

‘चेतक जीव विचारहु ली तुम बिहचै दीर रहन की कीन ।
देवकोक सुरज्ज्वर कहावत तेह करहि अंत पुनि गीव ॥
लीव कोकमसि बाध विवेकवर, कछीचर पुनि भर है जीव ।
बह संतार सदा सुपने सम बिहचै पास हरी नहीं होल ॥”^२

मुरारदासने ‘जैनसुठक’ में ‘मनहर कवित्तों’का सांघिक प्रयोग किया है । इनमें भी ‘कपली न ओज रह्यो तब क्यो सुपार बह्यो ‘जाकों इन्द्र पाई बई मित्र से बमाई बासी’ और ‘तापी देव लोई जा में शेष की न केय कोई’ कतम है । कवि बनारसीदासने ‘नवदुर्गा विद्याल’ कवित्तोंमें भी किया है । उसका एक कवित्त इस प्रकार है,

बई सररवयो हंसबाहिनी प्रगट कम
बई मन्मथेदिनी जवापी धनुषारणी ।
बई जालकपञ्चल मो कपकमो बिकाकिवत
बई गुणरत्न भंडार गार मरनी ।

१ मैया भवनीदास, पुष्करनीसिद्धा, १७वीं कवित्त मण्डविद्यास ६ ५ ।

२ मैया भवनीदास राज कछेरी, ७७वीं कवित्त मण्डविद्यास १२१६ ई. मर्मा ६ २५ ।

३ मुरारदास कैवल्यक, कण्ठकण मरार कवित्त ३३ ५१ ५ २४ २५ ।

यहै गंगा विविध विचार में क्षिप्य गौरी
 यहै मोर साधन को वीर्य की बरनी ।
 यहै गोपी यहै राधा राधे भगवान भावै
 यहै देवी सुमति अनेक भांति बरनी ॥

सर्वेया

यह भी ब्रजभाषाका छन्द है । इसका मूल संस्कृतके वसिष्ठ-वृत्तोंमें समिहित है । वीन हिन्दीके कवियोंने सर्वेयाके विविध प्रयोगोंका सफल प्रयोग किया है । कन्नडने कविलादी अपेक्षा सर्वेयाको अधिक अपनाया । सर्वेयाकी बीसों छट्टा इन कवियोंकी रचनाओंमें देखनेको मिलती है । अग्यथ गहरी देखी जा सकती । पाण्डे कम्पनान्ने सर्वेयाका अधिकविध प्रयोग किया है । उनमेंसे एक इस प्रकार है

‘बोवत की भास करै काक देखै हाक डरै,
 छोटे प्याक पति पै न भावै मोह नग में ॥
 माया सौं मेरी कहै मोहनी सौं सीमा रहै
 पावै बीच जागे जैसा हाँक दिया नग में ॥
 बर की न भावै रीति पर छेती माँडे प्रीति
 बाट के पयोई जैसे साहू मिटै बच मै ॥
 पुम्पक सौं कहै मेरा बीच भावै यहै डेरा
 कम की कुकल हीसै फिर बीच जाग में ॥’

धुमरासने मत्तवयव और बुभुक्ष सर्वेयोका प्रयोग किया है । उन्होंने बुरे कवियोंकी निन्दा सर्वेयोमें ही की है । एक मत्तवयव सर्वेया देखिए,

‘कन्नड कुम्भन की अपमा कइ देत उरोजव को कवि वारे ।
 कयर स्वाम विहीनत के भवि भीकम को डकनी बकी वारे ॥
 बीं सुतकैन कहै न कुम्भनित न जग धामिचरित बवारे ।
 धावन्य हार यहै हुँह कार भवे इहि देव किर्ती कुच वारे ॥’^२

उन्होंने टीर्थङ्गरीकी स्तुतियाँ भी अधिकप्रत्यया मत्तवयव सर्वेयोमें ही लिखी हैं । मन्थान् पन्नप्रमकी स्तुति करते हुए उन्होंने लिखा है

१ कलासीरास, कन्नड विचार जों कवित बवारसीरितास कन्नड, १९२४ ई
 १ १०० ।

२ वारडे कन्नड अन्नाल सर्वेया जायेर शारव मरवारकी प्रति, पृष्ठ १ ।

३ धुमरास कैवलाक, कन्नडरा १२वीं संस्का १ ११ ।

पनासरी

पनासरी भी जीव हिन्दी व विज्ञान प्रिय छन्द है । बनारसी विकास में प्रसिद्ध 'मान बावनी' का निर्माण पनासरीमें ही हुआ है । उसका एक छन्द देखिए,

“कटिक पापाज ताहि मागोसर मार्ग कोऊ
 सुखची रक्त कहा रगत समाज है ।
 हंस बक सेत हुआ सर का ब देत कछु
 तो री पीरी मई कहा कंचन के बान है ॥
 भव भगवान के समाज काऊ ध्यान मची
 मुखा का भक्षण कहा मोक्ष का सुखान है ।
 बनारसीवास काठा ज्ञान में विचार दलो
 काव जीय कैसा दाह शुभ परवान है ॥”^१

फागु

फागु एक प्रकारका कोऊ-गीत है । यह प्रायः वसन्तमें गाया जाता था । इसे बकरर जनता प्रयोग किसीके भी जानबूझकर और धीमर-विष्णुमयमें होत छया । बिनपन्नूरिका 'मृत्तिमह फागु' ऐसा ही एक काव्य है । जीव हिन्दीके बरिपने भवमान् मिनेन्द्रजी महिमाके अर्थमें 'फागु' का प्रयोग किया है । रामदेवमूरिका 'मेमिनाकफागु' भी सोमसुन्दरमूरिका 'मेमिनाकनवरसफाय' जगदरक ज्ञानमुदधका 'बादीरवरकाय' और बनारसीवासका अभ्यस्तफागु प्रसिद्ध रचनाएँ हैं । रामदेवमूरिके 'मेमिनाकफागु' में किसी हुई राजीवतीके लीन-वर्दी कमिपव रीतिमें देखिए,

पद्

‘किरि ससिविच करोक कछहि सोक फुरता ।
 मासाबधा घर-अंशु दाहिमकक रंता ॥
 गहर पवाक विरह कहु राजक सर कटव ।
 कासुपीशु रचनई मासु कोहक दहकदकट ॥”

हिन्दीक मन्त्रि-नाम्नमें परोका महत्त्वपूर्ण स्थान है । सूरदासेने किरित परोको देखकर वं रामचन्द्र मुत्तने अनुमान किया था कि गुरदावर दीर्घकाव्ये

१ पनासरी १ बी कलावती, बनारसीविभास कलपुर, १९४४ ई १ पृ-३० ।

२ रामदेवमूरि, मेमिनाक फागु, राजुत साहज्यक, दिग्विजयनाथ स्थापना प्रेम मन्त्रि, १९४२ ई १ पृ-४८ ।

पनासरी

पनाशरी भी जैन द्वितीय कविमोला प्रिय अन्य है। 'बनारसी विद्याप' में मन्त्रि
काग बामनी का निमोन पनाशरीमें ही हुआ है। उसका एक अन्य देखिए

अदिक वाषाण वाहि मालीसर मागै ब्रेक

सुंयभी रकत कडा रतन समान ई ।

हंस एक ऐत इदां सत को न हंस कह,

ਜੋ ਰੀ ਪੀਰੀ ਮਝੈ ਕਧਾ ਕੰਧਲ ਫੇ ਰਸਮ ਹੈ ।

भक्त भगवान के समान कीड भक्त भक्त

सुभा की पहचान क्या मोल का सुभाव है ।

बनारसीदास ज्ञाना दाय में विष्णु देव

काय सोय कैसा होय गुण परभाव है ॥^{११}

काय

फ़ासु एक प्रकारका श्लोक गीत है। यह प्रायः वसन्तमे गाया जाता था। इसे पढ़कर जाया प्रबोध क्लृप्ति के भी आनन्दवर्धन और शौण्डम्यविवरण होने लगता। जितपवनसूरिका 'सुसिन्धु फ़ासु' ऐसा ही एक काव्य है। ईत क्लृप्ति के कल्पिते बनवान् शिरोधार की महिमा के अर्थमें 'फ़ासु' का प्रयोग दिया है। राजसेनसूरिका 'मैमिनाचफ़ासु' भी शोकसुन्दरसूरिका 'मैमिनाचनचरवफ़ासु' अद्वैतरत्नचलनसूरिका 'आशीस्वरफ़ासु' और बनारसीदासका 'अध्यात्मफ़ासु' प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। राजसेनसूरिका 'मैमिनाचफ़ासु' में शिरो धूर्त राजसीमरी के शौण्डम्य की कल्पित वस्तु है।

पुनः

द्वि सप्तविंश करोड कजहिं डोक कुर्वा ।

कासायसा गदह-यन्त्रु वाचिमन्त्रु इत्यादि ।

सहा बचाव निरीह कंडु सायक सा कडक ।

बालुर्षीषु रत्नरत्नर आमु श्रीरुक् व्यकरकड ॥”

द्वितीय अविनाशमाने यथावा महत्त्वपूर्ण स्थान है। गुरुदासके विभिन्न
परीसो देवता व साधक-गुरुजी अनुमान किया जा कि गुरुदास कीर्तनके

१. श्री कल्याणी, क्यारमन्दिनाथ कपूर, २४४४ ई. १ ८६-८७।

[illegible]

बली जाती हुई किसी पुरानी परम्परा का विकास है।^१ जो 'हजारीप्रसाद द्विवेदी' ने उनका मूल स्थान छोड़ पिछले मार्गों को माना है। उसका कुछ कम कुछ भी हो किन्तु मूल और अन्तर्गत के क्षेत्र में पर्वोत्सव विराम अधिक प्रयोग और अभियोगों से श्रद्धा व्यक्त न कर सके। राजस्थान के तीन मन्थारों के गरीब समुदायों में १० से अधिक तीन कवियों के रचे हुए २५० के लगभग हिन्दी पद्यों का पता चलता है। इस क्षेत्र में भी अनेक पद्य-विशारदों का सम्बन्ध हुआ है। उनमें बनारसीदास कुंजरवास, मधोबिहारी महात्मा आनन्दचरण मैथिली मण्डलवास आनन्ददास विनय विनय अथवा देवदास और मुरारदास अत्यधिक प्रसिद्ध हैं।

तीन पद्यों का आध्यात्मिकता के साथ-साथ संकीर्णत्वता भी विविध रूप में निरर्थकता के साथ-साथ पायी जाती है। उनके 'मुरारदास' में ही मुरार विकास में राम खोले, राम कपड़े राम कपड़े राम पंचम राम नट राम सारंग राम मङ्गल राम विद्यापति राम विमलदास राम गौरी राम मणिक राम प्रभाती रामनाथरी राम सारंग राम कल्याण राम बरवा राम विद्या और राम बनासारी का प्रयोग दिया है। बनारसीदास ने राम पदक राम रामकली राम विद्यापति राम बनासारी राम बरवा राम बनाधी राम सारंग राम गौरी और काफ़ी से अधिक किया है। महात्मा आनन्दचरण तो राम-रागिणियों के पक्ष में ही हैं। उनके घर पर प्रकाशित करने में अतिशय ध्यान रखा है। 'आनन्दविचार' के बहोते भी अनेक नये-नये पद्यों का प्रयोग हुआ है। उनमें राम वैद्यारी राम बरवा और राम मण्डल भी विद्वत् नये हैं। मुरारदास के राम बनासारी का एक पद है—

“सोच सुरेस नरेस रहे सोहि, बार न कोई पावै नू ॥
काहे नवन न्योम बिकसल सी का तारे गिर कावै नू ॥ सोच ॥
कीन सुखान पैस बुझन की संकषा समुत्ति सुनानै नू ॥ सोच ॥
मुरार लुगन गाल सपुन गनपति सी नहि पावै नू ॥ सोच ॥”

१. अतः मुरारदास किसी बली जाती हुई पौराणिक परम्परा का—चाहे वह मौखिक हो रही हो—पूरा विचार-ना प्रतीत होता है।
२. राजकमल हजारी हिन्दी साहित्य का इतिहास सत्यमेव और श्रीरामजी लालदास, काली बागरी अष्टादशवीं सता मध्य, १९२० वि. स. पृ. २०।
३. श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का आदर्श नवम आकाशम ३। १९२१।
४. अकाशम अन्तर्निधान, ३। १०५, पृ. ११।

चितवत बह्वन अमक अम्रौवम सवि चित्त चित होय भअमी ।
 त्रिमुबनचंद पापतपचंदन ममतभजन अम्रादिक बामी ॥
 त्रिहु बग कई अम्रिका कोरति चिह्न अम्र चित्त चित्तगामी ।
 कन्धो अतुर अकोर अम्रमा अम्रवरम अम्रप्रम एवागी ॥

कवि बनारसीबाह्य नारक समवहार में १४५ सबैया-इकठोसा और १७ ठेई-
 सासबोका निर्माण किया है। इनमें-से एक सबैया-ठेईसा इस प्रकार है

‘वा बट में अमका अमादि चित्तस महा अविवेक अमाती ।
 वामेहि और सकन न वीसत दुइगक गुण कर अविमारी ॥
 अरत भय दिव्यावत कीमुक सी अकिरै चरवाहि पसाती ।
 मोहसु निज धरो अह सी चित्तमूर्ति नारक वक्तव हाती ॥

येया बननीबास भी सबैबोके निर्माणमें अधिक कुशल है। उनके द्वारा रचा
 हुआ एक समान सबैया’ निम्न प्रकारसे है

‘अक अमादिकै चित्त चित्त निज वाच बह वरमव उचम पावो ।
 समुधि समुधि पंक्ति नर प्रमी ठेरे कर चित्तमनि आवो ॥
 बट की जौरीं जोकि जाहरी एवम जीव विभवेव वटावा ।
 तिक में ठेक पास कूकनि में बों बट में बटनाचक गावो ॥

छप्पद

अमरवराहके ‘पुष्पीपत्र रातो और उसके पूर्व अवध रामे छप्पदका प्रथम
 प्राय और-रसमें ही हुआ है। जैन हिन्दीके कवियोंने कवको अम्वारम और प्रकिते
 क्षेत्रमें भी प्रयुक्त किया। कवि बनारसीबाह्यने ‘नारक समवहार’में ९ छप्पदोंका
 निर्माण किया है। अमरवराहके जैनग्रन्थ में अतभवयन और मनहर सबैबो वच
 बोहोके साथ-साथ छप्पदोका भी प्रयोग हुआ है। अमवान् पार्वनाहकी प्रकितमें एक
 छप्पदकी प्रथम दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

“अवम-अककि-अकवान अम अमईस-आव सर ।
 सरव अम्र निजि आव अम जिस अरहिं श्रीम पर ।”

१ कवी, १वीं समवा ॥

बनारसीबाह्य, नारक समवहार, जैन ग्रन्थ एवाकर वाक्योक्त कर्ण प्रथम उपारण,
 नि स ११११, पृ १ ।

२ जैन अम्वनीबास रात अकोरती २३वीं सबैया अकितान, १११ ई, कर्ण
 १ १७ ।

३ अमरवराह जैनग्रन्थ, अम्वरता २३वीं अम्व, पृ १ ।

मैत्रा धनवतीदासने भी छप्पबोका प्रयोग मन्त्रिके क्षेत्रमें ही किया । इनका हाथ रही नयी 'चतुर्विंशति जिनस्तुति' का एक छप्पम है,

त्रिभवर चारार्च्यं चतुस्तारा नित्यं वंद्यं ।
 वंद्यं सुरनर कोटिकोटि सुरभुंदा धर्मदं ॥
 धर्मदं मंगलं तु भाग्यं भाग्यं हस्तिनपुरं भाग्यं ।
 भाग्यं संप्रतिजिह्वेयं देव सत्तु हीं सुखं पापे ॥
 पानं सुमासं पेरारणनं एतं कंचन बिम्बसेनं गिनं ।
 गिनं तु कोपं गुणं वां बन्धो बन्धो सुत्तारणं एतं जिनं ॥”

कुण्डलिया

बनारसीदास 'नाटक समयसार' में चार कुण्डलिया भी लिखी हैं । 'बनारसी-विलस' में भी यन्-नय अनेक कुण्डलियोंका प्रयोग हुआ है । वेद निचय 'पंचासिका' की एक कुण्डलिया निम्न प्रकार है,

“कपूर सत्तु सुरकाक के 'महाकाक' चमिराम ।
 सा सरचारणमिदि एतु पंचासुत्तर नाम ॥
 पंचासुत्तरनाम भाग्यं एका धनवती ।
 एतां पूर्वमयं वसु चपमजिन समकित्तारी ॥
 महाकोक सौं चप भय भया इदि भूपर ।
 एतां कोक कहान इव 'भया' सत्तु कर ॥

मैत्रा धनवतीदासने भी कुण्डलिया छप्पका प्रयोग किया है । इनकी रचना 'एत भद्रोत्तरी' की एक कुण्डलिया इस भाँति है

सुधा समानय सत्तु गई सेवा सेसर बुद्ध ।
 भाग्यं भीषी भाग्यं के भाग्यं पूर्य इच्छ ॥
 भाग्यं पूर्य इच्छ इच्छ की भद्र न भाग्यो ।
 इह निपय कपराय सुकमजि भयं सुकावो ॥
 चक्रमहि विक्रय एव एताद गुण वसु न हुआ ।
 वंद्यं भाग्यं का रीति इति सेसरमम सुधा ॥”^१

१ मैत्रा धनवतीदास चतुर्विंशतिजिनस्तुति २२वीं अध्याय अध्यायिका, पृ. २२ ।

२. यदि बनारसीदास वेदनिचयपंचासिका २२वीं पद्य, बनारसीदास चतुर्विंशतिजिनस्तुति २२वीं पृ. २२ ।

३ मैत्रा धनवतीदास एत भद्रोत्तरी अध्याय अध्यायिका पृ. २२ ।

पनासरी

पनासरी भी केन हिन्दी व विद्याका प्रिय छन्द है। बनारसी विद्यालये धनविद
‘ज्ञान दासजी का निर्माण पनासरीमें ही हुआ है। उसका एक छन्द देखिए,

अरि क पापाज पाहि भोगोसर भार्य कोऊ

हुबचो रकत कहा रगत समान है।

हंस बक सेत हवां छत को व सेत कछु

री री पीरी भई कहा कलम के बाज है ॥

भव मगवान क समान काऊ जान मचो

मुखा को महान कहा मोख को सुधान है।

बनारसीदास जात ज्ञान में विचार बुरी

काव ओष कैना हाउ गुण परवान है ॥”^१

फागु

फागु एक प्रहारका लोक-गीत है। यह प्रायः वसन्तमें गाया जाता था। भार्ये
बककर हमका प्रवेश किसीके भी आनन्दवर्धन और सौन्दर्यनिस्पन्दमें होने लगा।
विनयचमुरिका ‘बुकिमह फागु’ ऐसा ही एक काव्य है। केन हिन्दोके कविनाथ
मनवान् विनैयकी मद्रियाके कर्ममें ‘फागु’ का प्रयोग किया है। रामदेवचमुरिका
‘विमिताचमुरि’ की सोमकुन्दचमुरिका ‘विमिताचनवरसफाय’ अद्वारक जलानुपवन
‘बादीस्वरसफाय’ और बनारसीदासका जगन्नाथफागु प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। राम-
देवचमुरिके ‘विमिताचमुरि’ में लिखी हुई राजीसतीके सौन्दर्यकी अतिप्रथम वर्णना
देखिए,

पद

किरी ससिनिन कपाक कछहि बोक फुरता।

नासावधा मरह-बंशु दाहिमकक बटा ॥

घहर पचाक गिरेह कंदु राखक घर कटक।

बाधुपीसु रगरणह बाधु कोइक टहकटकट ॥”

हिन्दीक कविनाथमें पचाक महरानुष स्वान है। मुरदासके विरसिन
बरीको देखकर पं. रामचन्द्र मुक्तने अनुमान किया था कि मुरदासर दीर्घकाव्यी

१ जगन्नाथजी १ बी.नासरी बनारसीविद्यालये बनारस, १९२४ ई. पृ. ८२-८३।

२ रामदेवचमुरि, विमिताचमुरि, रामदेव जगन्नाथ हिन्दीकाव्यनाथ द्वारा
प्रथम मद्रिया १९२२ ई. पृ. ४८।

बली जाती हुई किसी पुरानी परम्पराका विकास है।^१ डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीने उक्त मूल स्तम्भ बीस छिन्नोके नामाको माना है।^२ उसका मूल रूप कुछ भी हो किन्तु भक्ति और अष्टात्मके क्षेत्रमें पर्योना जिनका अधिक प्रयोग शैल कवियोंने किया अन्य न कर सके। रामस्तम्भके शैल ग्रन्थकारोके लघीन अनुसन्धानमें ६ से अधिक शैल कवियोंके रचे हुए २५ के लगभग हिन्दी पद्याका पता चलता है। इस इन्धमें श्री अनेक पद्यरचयितामाका सम्मेलन हुआ है। उनमें बनारसीबास भूषरपाक, पद्मोदितक म्हात्मा आनन्दबन मैया मगनसीबास आनन्दराय विनय विनय मगराम देवाचन्द्र और भूषरबास अत्यधिक प्रसिद्ध हैं।

शैल पद्यमें भावामिष्यन्तिके साथ-साथ संकीर्णताका भी विविध रूप-रचनियोंके साथ-साथ पायी जाती है। अनेके 'भूषरबास'ने ही भूषर विनयमें राम छोट राम काफ़ी राग क्पाक राम पंचम राग नठ राग छारंग राग मकार राम बिहारी राम बिहारी राम बीरी राग यमाक राग प्रभाती रामबनासी राम छारंग राम कल्याण राम बरबा राग बिहारी और राम बनासीका प्रयोग किया है। बनारसीबासने राम भेरव राग रामकली राम बिहारी राम बनासी राम बरबा राग बनासी राग छारंग राग बीरी और काफ़ीमें अधिक किया है। म्हात्मा आनन्दबन तो राम रागिनियोंके पश्चित ही थे। उनके पद रच प्रकाशित करनेमें अद्वितीय माने जाते हैं। 'आनन्दविद्या'के पद्यमें भी अनेक नये-नये रागोका प्रयोग हुआ है, उनमें राम केसरी राग परब और राग बसन्त तो निकटतम नये हैं। भूषरबासके राम बनासीका एक पद देखिए

छोप छुरेस गोरु हई छोहि बार न कोई पावै ॥
 काटै अपठ खोम बिकसत सीं ओ तारे गिब कावै ॥
 कीन सुमान मेव बृंहन की संकषा समुद्रि सुभावे ॥
 भूषर सुमस गोठ मपूरव गजवति भी नहि पावै ॥

१ 'अत भूषरबास किसी बली जाती हुई नीतकाव्य परम्पराका—चाहे वह मौखिक ही रही हो—पूर्व विकास-मा प्रतीत होता है।

२ रामकन्द ग्रन्थ, हिन्दी साहित्यका इतिहास सत्येन्द्र और हरिदत्त उत्तराखण्डासी पाकरी प्रकाशित समा म्भाग १९३० मि छ पृ २ ।

३ डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्यका आदिकाल पंचम अध्याय पृ १०५ ।

४ भूषरबास भूषरविद्या ३२ वाँ पद पृ ५६ ।

अहिंस

दीन-हिन्दी के कवियों में अहिंसों का भी प्रयोग किया है। कवि बभारजीदास ने 'भाटक समयमार' में भाग अहिंस लिखे हैं। यही अहिंसावादी भी अहिंस लिखे हैं। किन्तु बहुत कम। हमारी रचना 'मन-बत्तीसी' का एक अहिंस इस प्रकार है

“बड़ा मुँहासा मूँह परे कहा मटुका ।
कहा कहाये गँग बही के लटुका ॥
कहा कया के मुँहे बचन के पटुका ।
जो कम बाहों छोड़ि पसेरो लटुका ॥”

यही दूसरा शतके पार्श्व पुराण में दश-रथ अहिंस भी लिखे हुए हैं। इसका एक अहिंस है

“अह गुणानाम् कथं कर्मफलं मुक्तं हि ।
विधि वतपति विचारं कम संशुभं हि ॥
चरम हैह ते ककुप हीन परदेय हि ।
कोक अग्रपुर वसे परम परमस हि ॥”

हरिगीतिका

सभारमक छन्दों में हरिगीतिका का प्रयोग स्थान है। इसमें सोलह और साठ मात्राओं पर विराम होता है। कथके संवरण के लिए प्रत्येक चरण में ५वीं १२वीं १९वीं और २६वीं मात्राएँ कम होती हैं। अन्तिम दो मात्राओं में उपान्त कम और अन्त्य दीर्घ होता है। कवि बभारजीदास का एक हरिगीतिका निम्नलिखित है

ये अन्त कम को छुपन भारीं कम विच्छिन्न तरंग सं ।
ये हरिं परम विवेक जीवन कथक दास्य तरंग से ॥
ये पुष्पवृक्षकुमार जीवन गुपति लठ मुद्रा करे ।
ये करम सुम्न प्रहार मविजय लव सुमारण लव करे ॥^१

सोरठा

सभी की कवियों में सोरठा का अनिवार्य प्रयोग किया है। सोरठ के छान दोहों के स्थान पर सोरठ भी बहुत लिखे गये हैं। पुनः कवि भी सोरठों में कविता

१ मिया फजलाबाद मल्लखी २ वीं कव, अहिंसा, ५ २५४ ।

२ दूसरा शत वास्तुपुराण, कल्याण मनोमहिला १९वीं कव, ५४ कव ।

३ अहिंसावादी २६वीं कव, बभारजी विराम अग्रपुर, १४४४ ई ५ ४२ ।

हूँ है । कवि भूवरदासके 'पार्श्वपुराण'का एक छोरठा है

'इयाम्बरन बह आनि भूप तुषी नम को बस्यो ।
किधी पुम्बर मालि भूषी मिस पातग मम्बो ॥'^१

नये छन्द

कवि बनारसीदासने अनेक नवीन छन्दोंका प्रयोग किया है । वस्तु सामान्य रोचक करिजा बेचरि और पद्मावती तो बिल्कुल नवीन है । पद्मावती छन्दमें कविने बल्लभातके द्वारा ललितपदा उत्पन्न की है । उनका बिन्हा हुआ एक पद्मावती छन्द इस प्रकार है

'उहाँ नीराम पुष्प के सनमुख पुरकामिनि कटाक्ष कर ली ।
उहाँ जल त्यागरहित प्रभुसेवक कसर में बरपा जिन लूरी ॥
उहाँ लिकमहि कमल की बीजन पवन पकर जिन लीकिये मूँदी ।
ये करतु होव जिन निरञ्जय लीं बिन माव बिन्हा सब लूँदी ॥'^२

कवि भूवरदास नये-नये छन्दोंको विषयके अनुकूल ढाकनेमें निपुण है । कविने नरेन्द्र और ज्योत्स्नवी छन्दका प्रयोग धनीतकी लयके साथ किया है । ज्योत्स्नवी छन्दका एक उदाहरण देखिए

'ये प्रणाम कहरि को पकरैं पद्मग पकर पाँव लीं चारै ।
जिनकी ललक देख लीं लीकी कोरक धूरदीनता चारै ॥
देने पुरप पद्मग कड़ावन प्रकल पवन ठिब बेद पधारै ।
छन्द जन्म से साहु साहसी मन सुमेव जिनको नहि चारै ।'^३

अलंकार याचना

जैन-हिन्दी कवियोंकी रचनाओंमें अलंकार स्वाभाविक आये हैं । अलंकारोंकी बलान् लालेन्द्र प्रभास नहीं किया गया । जैन कवियोंमें भावकी ही प्रधानता थी है । भाव-वश लौकिकको अनुकूल रखते हुए यदि अलंकार आते भी हैं तो उनसे कविता कोशिल नहीं हो पाती । जैन कवियोंकी कविताओंमें प्रभावित है कि लम्बे अलंकारोंका प्रयोग तो हुआ है किन्तु उनको प्रमुखता नहीं दी गयी । वे सबैव मुक्त भावकी अभिव्यक्तिमें ललित-नर प्रभावित हुए हैं । जैन

१ भूवरदास पार्श्वपुराण, अष्टमोऽध्यायः, ८६वाँ छोरठा पृष्ठ ६८ ।

२ ललितपदावली ८६ वाँ पद बनारसीदास कथपुर १९१४ ई । पृष्ठ ३१ ।

३ पार्श्वपुराण अष्टमोऽध्याय अष्टमोऽध्याय भाषितारोप पृष्ठ ३१ ।

कविबोका मनुषाओंपर एकानिपर बा। कवि बनारसीदासकी अनेक रचनाओंमें मनुषाओंका सुन्दर प्रयोग हुआ है। 'गद्यक समवसार'का एक पद्य देखिए,

रेत की-सी गड़ी किचों मड़ी है मसाव की-सी

मन्दर बंघेरी बैसी कन्दरा है रीक की।

कमर की कमक बमक पड़भूलाव की

बीजे काये मकी बैसी ककी है कबैक की।

सौज की सीड़ी महा सीड़ी मोह की कर्कोड़ी

मावा की मसूरवि है मूरवि है रीक की।

पेसी देह पादि के सवेह बाकी संगति थी

है रही हमारी सवि कोरु-क से की की ॥^१

मेधा बनारसीदासने अपना पुरुष परमात्म अर्थक' बमक बसंकारने किया है। उसके दो पद्य देखिए,

"पीरें होहु सुबाल पीरें करते हैं रहे।

पीरें तुम मिल जान पीरें सुखा सुखनि कई ॥^२

× × ×

मै न काम बीतो मकी मै न काम रसकीव।

मै न काम मरयो किचो, मै न काम बाकीव ॥^३

हिन्दीके केन-काव्योंमें अनेक अर्थार्थकायेका प्रयोग हुआ है। उनमें श्री हरदा कप्रेका हफक और स्त्रीयमें सीनार्थ अधिक है। केन कविबोके सादृश्यमुक्त कर्क कायेकी शोका केनक स्वयम भावका शोध करानेके लिए मड़ी की अपिपु हप्पेके के भावको सुन्दरताके साथ अभिव्यक्त करनेके लिए की है। कवि बनारसीदासने एक परमें बाँधोकी वाचक और निरर्थकवाचको मरकी और बसाया है

'कच कचि ली पीरें दग वाचक सुंदर मरकचपद मर की।

कच सुख मरकच करी समता गहि कई न मरता लव की' ॥^४

१ गद्यक समवसार, सुविज्ञात भाषाज्ञानी रीकासहित हिन्दी केन प्रवक्तृवाक्य काव्येक्य कर्क, १४ व १४५-१४६।

२. वरुदे अमर 'पीरें' का अर्थ प्यारे द्वितीयका 'पीरें' तुल्यका 'पीरिन' और मरुर्क का 'मिरो' है।

३. पहले 'काम' का अर्थ है 'वामदेवके पारी' दूसरे 'काम' का अर्थ है 'कर्म' तीसरेका 'कर्म' नहीं मिला और चौथेका 'कामदेवके मरान मरी है'। वरी, वरी बोधा १४ २५०।

४ बनारसीदास काव्यकचपदक, २५वीं पद बनारसीमिलता कन्दुर, १४४४ व १४४५।

कवि सागतरामने विलको बकोर और बिलेखको बल तथा अपने पार्षीको बरन और प्रभुके नामको मोर माना है,

“भवि ! पूषी मम बच श्री विनेभ्र विल बकोर सुल करन इन्द्र ।

कुमवि कुमुबिनी हरन सूर बिबन सवन वन वहन भूर ॥ भवि ॥

पाप बरन प्रभु नाम मोर मोह महातम बकन मोर ॥ भवि ॥”

भूवरदासको रचनामें छत्तेसाबोकी अधिकता है। एक स्वामिपर उन्होंने लिखा है कि भयवान् बादिनाथके चरबोपर देवपथ धाक मुका रहे है तो वह मानो अपने कुम्भोंकी रेखा भेटना चाहते हैं।

‘जसर ससुह धामि बबनी छौ बसि बसि सीस प्रबाम भै है ।

किरी माक कुकरम को रेखा दूर करन की बुद्धि बरे है ॥”

पुरापुर राजा भयवान् साविताथके चरबोपर अपना धाक मुकाकर प्रबाम कर रहे हैं। उनके माकपर नीक भविसे बड़े हुए मुकुट कये हैं। माकके साथ-साथ वे मुकुट भी मुकते हैं और उनके साथ नीक भवियाँ भी तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे मानो भयवान् के चरब-कमलोंकी सुपन्धिकी सुँबनेके लिए मोरोकी पंक्ति ही बड़ी भारी है,

‘सेवठ पाव पुरापुर राज बमै धिर नाथ महोवक ठाई ॥

मौकि कये भवि नीक विरै प्रभु के चरबों झलके बह साई ।

सूँबन पाव-सरोज-सुगन्धि किरी बकि ये बकि पड़ति धाई ॥”

पाण्डुक सिद्धापर भयवान् पार्श्वप्रभुका हीरोरधिके बल्ले स्नान किया था रहा है। स्नानका वह बाकासमें चक्कल छटा तो ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कि वह पापद्विष्ट होकर ऊर्ध्व दिशामें जा रहा है।^१ स्नानके उपरान्त मनबाम्के घटीर पर दशमि भुङ्कुमादिका रूप किया। वह मानो नीलविरिपर सोह फूली हो।^२

१ कानतराव वानतविलास कलकटा १८वीं पृष्ठ ५ २२ ।

२ भूवरदास कैनाउक, कलकटा बादिनाथ कृति सवैया १४५ पृष्ठ, ५ २ ।

३ श्री, अर्ध पृष्ठ, ५ २ ।

४ बड़ी लूँग के नीर की छटा नम माहि ।

स्वामी सय बच बिल भई बयो नाँव ऊरव माहि ॥

भूवरदास पार्श्वपुराण कलकटा पोटोप्रिन्टार ५ २२ ।

५ बच इन्द्राणी किनवर बच निर्बल किया बसन भुवि रथ ।

भुङ्कुमादिलेपन बगु किये प्रभु के रैड निरेपन क्रिये ॥

इहि सोमा दूध बीसर मास किरी नीकविरि पूषी सास ।

बरी, पोटोप्रिन्टार, ५ २२ ।

कवि बनारसीदासके नाटक समयसार^१ में भी सप्तम अङ्कमें प्रयोग हुआ है। निम्नस्वर धीरेरपर कल्पना करते हुए कविने लिखा है,

“धीरे धीरे एकनि के कुण्ड केसवि के कुण्ड,
हाडुवि सों मरी जिस मरी है तुरिख की।
बारे स चलका करो ऐसे फर जाय भागों
नागद की हरी कीयो चाहत है बिक की ॥”

जैन कवियोंकी रचनाओंमें ‘कल्प’ अङ्कमें प्रयोग भी प्रयोग हुआ है। कर्ममें उपमेयमें उपमानका आरोप कृप्यतासे बिना है। कवि बनारसीदासने प्रस्तुत और अप्रस्तुतका वैयक्त्यसाधन ही नहीं बिखाना, किन्तु प्रस्तुतक पात्रों की टीका किया है। कायावी निगद्योक्तार्थ कर्मका वर्णन बिना है। उसपर अचतनताकी नींवमें बैठन हो रहा है,

“कल्पा की निगवारी में कर्म परबक मारी
माया की संगरी संज चाहत कल्पना।
सैन करि योगन अवैतन धीरे किय
मोह करि मरोर नहि कोचन को दपना ॥
उई बक जोर नहि स्वास को दपद जोर
बिषे सुखकारी जाकी धीरे पही सपना।
ऐसी मूढ बुद्धा में मगन रहे तिहुँ काक
बाये भ्रम-काक में न बाये न्य दपना ॥”

जैसा बनारसीदासने टपलोंमें बोध है। कायावी नवरीमें विद्यनरकी राजा राज्य करता है। वह माया-सी राजीमें मग्न रहता है। उसके पाठ मोहना और धार कोचका कोचका और कोचका बनीर है।

‘कल्पा सी सु बगरी में बिहारिंद राज करि,
माया सी सु राखी है मगन बहु मया है।
मोह सा है कीजहार कोच सा है कोचका
काम सा बजीर जहां सुखि के रहो ई व
उई को सु काजी मारी मान की जदक जाने
काम सारा काम बील चाह बाकी नहो ई।

१. नाटक समयसार, भाषीन हिन्दी के कवि जैन साहित्य सम्मेलन दफ्तर, पृ. १०।

२. बनारसीदास ‘कल्पमयकला’ ब्रह्मसूत्र भाष्यकी व्याख्यान के मध्य अङ्क-पर अध्याय, पृ. १०२-१०५।

ऐसी राजधानी मैं अपने गुण भुक्ति गयो

सुखि जब आई तबै ज्ञान आई गायी है ॥

मूरदासने भी अनेक कर्मोंका निर्माण किया है। मम सुखा है और ममवान् बिनेश्वर पथ पित्रका। इस ममकपी सूरने सधारक अनेक वृत्तोंके कवने कर्मोंको ठोड़-ठोड़कर बसा है किन्तु उनसे कुछ हुआ नहीं। फिर भी वह निश्चित है। ममवान्के परमकपी पित्रकेमें नहीं बसता। कायकपी वन-बिजाव ससको ठाक रहा है, वह जबसर पावे ही बात केगा फिर कोई न बचा सकेगा।^१ मूरदासका एक अन्य पद सुनि ठपनी माया है सब बग ठव जामा' म प्रसिद्ध रूपक है।

शैव कवियोंने प्रतिपाद्य विषयों प्रभावशाली बनानेके लिए नवीन उपमाओंके उदाहरण दिये हैं। उन्होंने परम्परागत उपमाओंको भी स्वीकार दिया है किन्तु बहुत कम। उनकी निम्नी अनुभूतिवोंने नयी कल्पनाओंको जन्म देकर वर्ण्य विषयोंके सीमर्यको बढ़ाया है। शैव कवियोंके उदाहरण बर्णकारकी एक पुस्तक ही खोधा है। कवि बनारसीदासका एक उदाहरणबर्णकार इस प्रकार है।

जैसे नि सधासर रहे पंक ही में
पंकज कहावै ये न वाके रिंग पंक है।

जैसे मन्त्रवाही विषधर ही गहार्ने गाव
मंत्र की ललित वाके बिना विष रंक है।

जैसे जीम पादे भिन्नवाई रहे कवने अंग
पात्री में कनक जैसे काई से अरंक है।

तैसे शावबल माला मंसि कारुति इमी
किरिया तै सिद्ध जाने माते निरुत्तरक है ॥^२

१ मेवा मन्त्रवाही राजमन्त्रोत्तरी सनेवा २६वीं, मन्त्रवितास, पृ. १६२६ ई. शैव मन्त्र राजाकर काव्योत्तर, पृ. १४।

२ मेरे मम सुखा जिनपथ पीत्ररे बधि यार लाव न बार है ॥

सधार मे मन्त्रवृत्त सैवत नयो काव्य अपार है।

विषय फल तिर ठोड़ि बाबो बहा बैसयी सार है ॥

तु कपो निश्चितो सदा लोको लक्ष्य काव्य संसार है।

बाबै मन्त्रावक भाव तब तुसे कीम कैय सवार है ॥

मूरदास मूरदास काव्यका २३वीं पृ. ३-४।

३. वही पृ. १४।

४. बनारसीदास वाक्यमन्त्रार, जैन मन्त्र राजाकर काव्योत्तर, पृ. १४, १५-१६।

मुनि जयकाकके 'विमलनाथ स्तवन' में भी उदाहरणालंकारका प्रयोग हुआ है। एक स्थानपर उन्होंने लिखा है कि मन्त्रान्तके वर्णमय मग ऐसा प्रसन्न हुआ जैसे कि चन्द्रके देखनेसे चकोर इषित होता है।

“तुम द्रव्यम मग द्रव्या र्थशा जम चकोरा की ।

रात्रिदिशि मोगल नहीं भवि भवि द्रव्यम सोरा की ॥”

दानजयनेने अनेक उदाहरणोंके द्वारा वर्ण्य विषयकी सुन्दर बनाया है। एक स्थानपर उन्होंने लिखा है कि सम्यक्त्वके बिना हम जीवनकी निम्नार है। हम स्वयंके बिना जीवन वैसा है, वह बरानेके लिए, उन्होंने अनेक उदाहरण दिये हैं,

‘ज्यों विष्णु कंठ कामिनी सीमा

अंशुम विष्णु सरवर ज्यों सूया ।

जैसे विद्या एकद्व विन्धी

ज्यों समकिल विष सरव गुवा ॥

जैसे भूय विद्या सब सखा

नीच विद्या महिर सुधना ।

जैसा चन्द विहारी रमणी

इन्हीं ज्यदि जाना निधुना ॥”

पान्ते करवावकी रचनाबामें भी उपमेयको उदाहरणोंके द्वारा कुछ बन्धन बन्ध है। इनमें सीमर्य है। एक स्थानपर उन्होंने लिखा है कि विषयोंके सबनसे दुष्प्रता सुझती नहीं जैसे काटी बरसे व्यास उपधान नहीं होती

“विषयम अक्षर मग सुध्या तें न सुझाय ।

ज्यों लक लारा पीपल बाड़े सुवाचिबन्ध ॥

विशेषित अर्थकारमें एकके बिना दूसरेके सीमित धरवा अद्योक्त होनेका वर्णन किया जाता है। कवि मृगरवातने रायके बिना संसारक धीरोंकी धार हीनताका वर्णन किया है,

‘राग कई मोरा भाव कायल सुहाबने से

बिना राग जैसे कागो बीने नाय करे हैं ।

राग हीन सीं पाग रहै तन में अशेष कोच

राग गये आवत निकामि होत न्यारी हैं ॥

१. इसी मन्त्रका दूसरा अन्वय ।

२. दानजयने नाम कलकत्ता शस्त्री १८, ५ १२ ।

३. इसी मन्त्रका दूसरा अन्वय ।

राग सौं जगत रीति बूझी सब सौं च जाने
राग मिटे सुख असार खेळ धारे हैं ।
रागी बिन रागी के विचार मैं बड़ो हो मेव
वैन भरा पय्य काहु काहु को बहार हैं ॥^१

कवि बनारसीदासके 'अर्थ-व्यामक'में आधेपाछेकारका स्थान-स्थानपर समावेश हुआ है। एक आधेपाछेकार निम्न प्रकारसे है

“संख रूप विष देव महार्थक बनारसी ।
बोळ मिळ अनेक साहित्य सेवक एक से ॥”

बारमा और परमात्मके निकटत्वमें कवि बनारसीदासने विरोधाभास अर्थकारका भी अच्छा परिचय दिया है। निम्नलिखित पद्यमें विरोधाभास अर्थकार है,

“एक में अनेक है अनेक ही में एक है लो
एक व अनेक क्यु कह्यो न परत है ।”

प्रकृति चित्रण

वैन कवियोंका मुख्य सम्बन्ध मानवप्रकृतिसे ही रहा है, किन्तु उन्होंने बाह्य प्रकृति की निकटता किया है। वैन मुनि प्रायः नदी-सरोवरके किनारे, पर्वतोंके ऊपर या जगदीश्वर काष्ठारोमें उप करते थे। प्रकृति अपना रोप बिभाषी की किन्तु मुनि विचक्षित नहीं होते थे। सावनका माह है और नैमीषार विरगारपर उप करने चले गये हैं। इसपर टाभीमडी कहती है,

‘विषा सावन में प्रप कीये नहीं
बनबार बड़ा लुर आवैगी ।
बाहुं जोर सें जोर लु लोर करे
बन कोकिङ कुहक लुनावैगी ॥
विष रैन बैलेरी में सुमे नहीं
कहु दामिन दमक डरावैगी ।

१. पुररास वैमल्यक, कानकदा १७०१ व १५ ।

२. बनारसीदास अर्थव्यामक, बानुराम प्रेमी संपादित, नरोत्तिम संस्करण अक्टूबर १९१७, पन्ना १९७ वां सोपदा १ १७ ।

३. बनारसीदास आध्यात्मवार्ता, वैन सम्प्रदायाकर, पन्ना ६१२ व २७२ ।

पुरवाई की शोक सहोगे नहीं

जिन में तप तेज छद्मिणी ॥

मूरदासने श्रीमती की करुणाका सम्बोधन किया है। बैठना मुर्ब तप रहा है
छोकर मुख गये हैं परवर तपकर जान हो गये हैं। नम जैन साधु उत्तर बैठकर
तप करते हैं।

बैठ तपै तपि पाप्मो सुखे सरवर नीर ।

शोक विचार मुनि तप तपै हसैं नगन शरीर ॥

ते पुरु मेरे मन बसो ॥^१

मूरदासने इसी कृष्णकी एक भूमरै स्वागपर अधिक सचस्त भाषीमें व्यक्त
किया है। जब बैठ लखेरता है, शोक मण्डा छोड़नी है, पपु-पत्नी छोड़ दूँगी है।
परंतु बाह्य-मनसे हो जाये है। तब जैन साधु उत्तर तप करते हैं।

बैठ की लखौरे जहां मंडा शोक छोरे पपु,

पंछी छोड़ कोरे गिरि कीरे तप ते करे ॥^२

मानवकी जन्म-प्रकृतिमें अधिक करनेमें जैन कविमें बाह्य-प्रकृतिमें
छद्मिणी की है। छोरनहारते छोटकर नेमीसर विरिमारपर तप करते बने बने।
राजीमनीकी आँखोंमें आँसुओंकी बार बह निकली। यह इसी दृष्टीमें नेमीसरको
देखनेके लिए विरिमारकी ओर बह पड़ी। यह समय कवि हेमचन्द्रमनूरिने प्रकृति-
का भाग्यवरण देना अधिक किया है, जिससे राजीमनीके हृदयका बाह्य-भाषा
हो गया है। यह पद्य वैशिष्ट्य

‘बचदार बड़ा कमनी छु गई हसैं उतर्त कमकी निमकी ।

विपुले विपुले बहिहा निमकाति छु नीर कियार करति निमकी ॥

विष विन्दु बरे दय ज्योति हरे सुनि बार ज्यार इसी निमकी ।

सुनि हेम के भाव देखन कृं, कमसेन कहीं छु पकेको चमी ॥^३

बहुत प्राचीन कालमें जैन साधुके आचरणपर प्रकृति इतने प्रकट करती रही
है। जो कृष्णकामने अपने पुरुष की पूज्यबाह्यके स्वागममें पुनर्जित प्रकृतिमें
अधिक किया है।

१ किरीटिलाल बेदि-राहुनका बारमासा १५५५, बारमासा-संग्रह निमकी
पचारक कागज, कलकत्ता ५ २४।

२ मूरदास प्रकृति, ज्योति, १५५५, बारमासा-संग्रह १५५५ ई., ५ १२।

३ मूरदास नेमराज, कलकत्ता १५५५ ५ ४।

४ १५५५ मूरदास कागज।

‘मधन भवन विस्तार जल तरवर धया रे ।

कोकिक कामिनी गीत बाधइ श्री गुरु सया रे ॥

गोत्रइ गात्रइ गगन संशेर श्री पूजनी देधाना रे ।

भविष्य मीर बकेर बाधइ शुभ बासना रे ॥

सदा गुरु प्यान स्नान कहरि सीतक बहइ रे ।

कीर्ति सुखस विसास सकल जग महमहइ रे ॥^१

विमलप्रभ उपाध्यायने ‘सीमन्तर स्वामी स्तवन’में लिखा है कि मेरुगिरिके चतुर्ध्वज गहनके टिमटिमाते तारागण और समुद्रकी तरपमाजिका सीमन्तर स्वामीके गुणोंका स्तवन करते हैं । वह पद्य इस प्रकार है

‘मिरगिरि-सिंहवि जय-वर्णन को कुण्ड,

मधनि तारा पगइ, बेसुध-कल मिणइ ।

वरम सागर-जके कहरि-माया सुगइ

लोकि नहु, सामि तुह सम्बहा गुन सुगइ ॥^२

जब गगनान् महावीर संबलित विपुलाचक्षर धराटे, तो वहाँकी प्रकृति सब जलुबोके फल-फूलोंसे युक्त हो गयी । वनपालने उन सब फल-पुष्पोंको महापद्मोंके पत्रोंके समुच्चय करके रखा जिससे उन्हें भगवान् महावीरके वासनाका विरास हो सके

“रोमोचित जल पाकिक ताम । भाव राव प्रति किया प्रबाम ।

कह जल के फल फूल जलप । सार्ते चरे समूपन रूप ॥^३”

बैन कविजने कामेश्वरीपुत्र बनानेके लिए, जगमाबोको प्रायः प्रकृतिके विस्तृत चित्रके युक्त है । हेतुतोलाओंमें इन उपमाओंकी कृपा और भी अधिक विकसित हुई है । विमलप्रभ उपाध्यायने ‘सीमन्तरासा में सीतमके सीमन्तरका वर्णन करते हुए लिखा है कि सीतमके नेत्र कर और चरणसे परावित होकर ही कमल वनमें प्रवेश कर गये हैं । उनके तबले हारकर तारा चन्द्र और सूर्य जगमाबमें प्रमथ कर बैठे हैं । उनके रूपने महनको अलग बनाकर निवाक दिया है । उनके चरिते मेरु और गम्भीरतासे सिन्धु अजित होकर पृथ्वीमें बँध गये हैं

‘नवल भवन करचरणि त्रिण वि पंकज जल वाहिन

सजिहि तारा चर चर जगसासि ममादिन ।

१. इतिहास श्री पूजनाह्वनीपद, पृष्ठ २६-२७ ऐतिहासिक बैनप्रभप्रभ
कलकत्ता वि. सं. १९६४ ई. १९९।

२. इति प्रभरा इति जगमाब।

३. पूजनाह्वनीपद कलकत्ता जगमाबकीपुत्र, २२वीं पृष्ठ ई. २।

रुचिहि मन्त्रु अर्णव करवि भविहउ निहादिच
धीरिम मेरु न नीरि दिनु चणिम चव चाडिच ३^१

भूवरसावने कलेछाओंके डाय कर्ष विषयको मुग्ध बनाया है। उनमें
अविनाश प्रकृतिसे भी नहीं है। भयवान् पार्वनाथके शरीरपर एक छह और
बाठ लघुच इस भाँति सुधीन हो रहे हैं। जैसे मानो वस्तुपर्यन्त पुनः ही
दिखाये हो।^१ तीर्थकर पार्वनाथके समकक्षरूपके चारों ओर वक्रमावृत्ति काई रखी
है उसमें निर्मल जल लहरें के रहा है, वह यानी नवा प्रकृतिवा दे रही है,

“वक्रमावृत्ति छाई सभी निर्मल जल कहरेव।

किन्हीं विमल गंगा नदी मधु वरदछा देव ३^२

मधवान् विनेश्वरेव समकक्षरूपमें स्वर्ग सिंहासनपर विराजमान है। दोनों
ओरसे मलनामक चमर हुआ रहे हैं। वक्रपर वस्तुपर करते हुए कविने लिखा है,

“चन्द्रार्चि चव कवि चारु चंचक चमर हुम्द मुद्दामने।

होई विरन्तर अप्यन्तावक कहत सभी उपमा बने।

वह नीलगिरि के चिह्न मानो मेघ झर काली बनी।

सो जसो पाछ विनेश्व नाथक हरष जम बूझामनी ३^३”

श्री कवियोंका ‘अवाहरनालंकार’ भी प्रकृति विषयसे युक्त है। कवि
बनारसीरायके ‘नाटक समसारा’में अविनाश परावृत्त प्रकृतिसे लेखने ही पुने
मने है। एक दृश अन्तर है

“जैसे महीर्मलक से बहो की प्रवाह दृक

ताही में अनेक स्थिति नीर की पारि है।

बाबर के जोर तहाँ बास की मरीर हीन

कंकर की लानि तहाँ ज्ञान की सरणि है ३

नील की झील तहाँ चंचक लहरें बहै,

धूमि की विप्राति तहाँ नीर की पारि है।

१ देखिए इसी मन्त्रका दूसरा अन्वय।

२. यहूत कठोर कछन मे घोषित विनयर है।

विन्हीं वस्तुपर्यन्त के पुनः विराजत मेह ॥

मूलश्लोक परावृत्त, विनाशी प्रचारक व्यापक, कल्पना सुन्दरीप्रियार,
२ २७।

३. नदी, महीप्रविशाल २ २।

४. मूलश्लोक परावृत्त, कल्पना सुन्दरीप्रियार, प्रमादितप्रियार, २ ३१।

तैसो एक चारमा जगत रस प्रवृत्त

बोहू क संयोग में बिभाव की मरवि है ॥

जैसा मनबोहासके प्रवाहरजोमें भी प्रवृत्तिकी ही शक्त है । प्रत्येक व्यक्ति अपने पुण्य-पापके अनुसार फल पाता है । इसमें प्रवृत्तिका कोई दोष नहीं है । प्रीष्मन्नी रूपमें पृथ्वी बस छठी है, किन्तु 'आक' समीप होकर पूरता है । वर्षाभूतमें अनेक वृक्ष फल बाँटते हैं किन्तु बरसात बरक बाँटा है

“प्रीक्षम में भूप पर तामें मृमि भारी करे,
फुलत है आक पुनि जति ही उमदि छे ।
वर्षा भूतु मेव करे तामें वृक्ष केई करे
जगत जमासा सब जगुही छे कहिके ॥
भूतु का न दोष कोऊ पुण्य पाप कौ दोष
जैसे जैसे किये एवं तैसे रहे सजिके ।
केई जीव सुखी होहि केई जीव दुखी होहि
देखहु जमासो 'मैया' म्वारे नेह रहिके ॥”

शैव यन्त्रबोका कृष्ण बलकार भी प्रवृत्तिसे ही किया गया है । कवि जानन्दजन ने जालोख और प्रवालके शीव कृष्ण'का चित्र एक पदमें उपस्थित किया है,

‘मरे बट ज्ञान भाव भवो मीर ।
चेतन जकमा चेतन जकमी मागी बिरह को छोर ॥
कैकी बहूदिशि जतुर माव कवि मिच्छी मरम तम छोर ।
आपनी चोरी आपहि जानत औरे कहत न छोर ।
अमक कमक विकसित भवे भूतक मर्ग बिछद् कसि कर ।
जाल्बदन दूक कलकल जगत और न काल छिपेर ॥”

कवि चालचरणने एक पदमें 'ज्ञान-विभव' और 'वसन्त'में 'कपक' उपस्थित किया है । यह पद प्रवृत्ति-भूमक रहस्यवादका वृत्तान्त है ।

तुम ज्ञानविभव छुकी बर्षत यह मध मज्जकर सुख सों रमय्य ।
दिन बदे मये बैराग भाव मिथ्यामत रजनी ॥ बटाव ॥

१. कनारलीवाट माककसाम्भार, बम्बई, १९२६ ।

२. मैत्र जगन्नीवाट, पुस्तकालीसिद्ध २७वीं कवित्र, महाविभास १९१३ ई. बम्बई ५ ।

३. जालामा जानन्दजन जालन्दकनलनमद जगामज्ञानमसारक जगज्ज बम्बई १९३० पद ।

बहु सुखी पैकी सुखि बिनि छाता अब समया संय कैकि ।
 धामत बासी पिक मधुर कप सुर नर पशु चार्नइवन सुख ॥^१
 भूवरदासन द्वारदाकी यथा नवी बनाकर एक उत्तम रूपकरी रचना को है ।
 "बोर हिमाच्छ तें मिऊरी पुन गीतम के सुख-कुंड दरी है ।
 मोह-महाच्छ भव चको जग को जड़तातप बूर करी है ॥
 ज्ञान पनाविधि मोहि रही बहुत भंग तरंगनि नी उछरी है ।
 ता सुखि सारव गंगवरी प्रति, में अंतर्काकर सीत घरी है ॥^२

यैसा भगवतीदासने कारमाको पुन कहा है । घुबकी बाँठि ही वह जाल्य
 कर्मरपी नकिनर का बीटी है । विषमस्वाइन यम होनेके कारण घुब पर
 ऊपरको हो गय है । वह मोहके चपुकय फँस गया है । यह सब कुछ कर्मति
 कृपारा न मिलनके कारण हो हुआ है

'जातम-सुग भारममहि सुखो कर्म-नकिन तें बीटी जाल ।
 विषम स्वाइ विरम्भो हइ जालक करम्भो तरं ऊपर मल पाँव ॥
 पकरे मज मगल सुगल सों कई कर्म सों नाहि बसाव ।
 देखहु कि नहि सुखिचार मधिक अब जयल बीज यह घरं स्वभाव ॥^३

जैन नविधाने प्रकृतिरो बाह्यमन कर्में भी उपस्थित बिना है, किन्तु ऐस
 रूप व्यक्त हो है । ब्रह्मपुत्रनस्कर्में 'इगुपत कथा'में सम्प्रा समस्ता बिज बीजा
 है । यी पदमर्बैराव अपने विबीरहित प्राज्ञावके ऊपर बैठे हुए सम्प्राही घोवा
 देख रहे हैं । यह पद्य इस प्रकार है,

दिन मउ जवा जयको जाल पंथी काय कर जसमान ।
 मिच सहित बरनई राव मंदिर ऊपर बीटी जाल ॥
 देखै पथो सरोवर तार, करि सय्य जति गहर महीर ।
 इसी दिला मुन कको मनी जगदा चकिरी अंतर कको ॥^४

जैनशास्त्रोंमें प्रकृति आन्तरिकके अहीपनके कर्में भी अंकित की गयी है ।
 भूवरदासने पार्श्वपुत्रनमें कापीदेवके छोटपुर पट्टनवा बचन दिया है । उनके
 ज्ञान-यज्ञके प्राकृतिक कर्मांमें आन्त-भाषको उहीपत बरनकी पर्याप्त सामर्थ्य थी ।
 एक पद्य देखिए,

१ कालदास, धामनविधान, कालदास १७वीं पद ५ ५४ ।

२ बूरजाल, स्वरदासकम पद १-२, धामनीकृतमणि भारतीय धामनर, कापी,
 १ ५० ई ५ २५३ ।

३ मैत्र, कालदास, सुख-देविका १७वीं पदिक, कालिका १७ ५ ५१ ।

४ देविदास की सम्प्रा कथा जगदाव ।

‘बौर धमाय गही नित बहैं । जकचर खीन जहौं नित रहैं ॥
 मुनि जन मुपित बिबके तीर । का असग्य बरि आवे धीर ॥
 केहे परबत छत्वा छरैं । मारग जात पथिक मन हरैं ॥
 बिबमें सदा कम्हरा बाल । निहचक देह चरैं मुनि स्थान ॥’

श्री चान्दरावने लम्बीस्वर द्वीपकी प्राकृतिक खोद्याका भी ऐसा ही विवरण किया है, जिससे चान्दराव और जलिक पुष्ट होता है । वह पद्य इस प्रकार है

‘एक एक चार दिशि चार छुम बावरी ।
 एक एक काज खोजन समक सकमरी ॥
 चारु दिशि चार बव काज खोजन बर ।
 भीन बावत प्रदिमा बनों सुलकर् ॥’

१ भूचरान्न चरमपुराण बलकटा पंचमोऽधिकारः पृ. ४१ ।

२. चान्दराव, लम्बीरवरीय पूजा जयमाला पृ. २-३, चरुविजयपत्नी संग्रह १९२९ ई. पृ. ४१७ ।

तुलनात्मक विवेचन

१ निर्गुणोपासना और जैन भक्ति

प्रस्ता

आचार्य जीदीन्नुवे श्रुत आस्थाको बड़ा बड़ा है। आस्था और छिद्रका स्वस्म एक ही है, अतः छिद्रले छिद्र और ब्रह्मचर्ये जमेर स्वीकार किया है। जैन हिन्दी कवि भट्टारक धूमचन्द्र^१ बनारसीबास और जयवतीबास 'मीरा' ने भी छिद्र

१ मूढ विमल्लभु बंभु पद अप्पा छि-विद्रु हबैद ।

परमसमस्तान्, १।११ पृ. २२।

२ वेहूड निम्मल्लु बाणमड छिद्रिहि चिन्तइ देठ ।

देहूड चिन्तइ बंभु पद देहूई मं करि जेठ ॥

श्री १।२४, पृ. ३३।

३ विद्रुपचिता जेठल रे छाखी परम बड़ा ।

परमसत्ता वरमशुद्ध छिद्र गणि दीधियम्म ॥

छाख बास विज्ञान गुण रे छिद्र जकन समान ।

ज्ञानवान व्यापी विपुल वेहूमान जज्ञवान ॥३॥

पल्लवारहूहा इल्लिखिल मणि यन्त्रिअलेल्लान अन्तुर, पृ. ५।

४ वरमपुषप परमेश्वर परम ज्योति

परबड़ा पूरा परम वरमान है ।

×

×

सरम बरसी करमज छिद्र स्वापी छिद्र

जनी मान हैछ जमवीछ मगवान है ॥

मायवसम्पत्त, सली सम्पत्ताना वरिषाम, विल्ली, २२० पृ. ८ ।

जैई मुंन छिद्र माहि छैई मुंन बड़ा पाहि

मिद्र बड़ा केर माहि निरपय निरवार के ।

छिद्र के जमान है विराजमान विराज

छाखी को निहार मित्र रूप जाल लीखि ॥

मयविल्लाम छिद्र अन्तुरेरी पृ. २-३ पृ. १४१।

और ब्रह्मको एक माना है। आठ कर्मोंके आयेते कुछ आत्माकी उपलब्धिमेंको सिद्ध करते हैं, और ऐसी सिद्ध करनेवाले सिद्ध कहलाते हैं^१। वे अमूर्तिक अमर्यजन ज्ञानपुष्ट और साक्ष्यत सुखके धारणकर्ता होते हैं। उनमें सम्पत्त्व वसन ज्ञान भीय सुखमता बरणाह्वन अपुष्टकषु भीर अम्यावाय नामके आठ गुण माने गये हैं^२। नबीरका 'निर्गुण ब्रह्म' अमूर्तिक और अमर्यजकी वृद्धिमें ती 'सिद्ध' के समान ही है। किन्तु उसमें गुणोंका ऐसा समुचित विभाजन नहीं किया गया है। उसमें ऐसा माहीमेय भी उपलब्ध नहीं होता।

नबीरने जिस आत्मिका निकषण किया है वह विश्वव्यापी ब्रह्मका एक अंश-भर है जब कि तीन कवियों की आत्मा कर्ममलको धीकर स्वयं ब्रह्म बन जाती है। वह किसी अर्थका अंश नहीं है। इस यांति नबीरका ब्रह्म एक है, जब कि बीनाके अनेक किन्तु स्वकवमत समानता होनेके कारण उनमें भी एकत्वकी कल्पना की जा सकती है^३। नबीरने जिस ब्रह्मकी उपासना की है उसपर उपनिषदों सिद्धों योपिषों छद्मवाकियों और इस्लामिक ऐश्वर्यवाकियोंका प्रभाव पड़ा है। आचार्य सितिनोहून सेनकी वृद्धि नबीरवासने अपनी आध्यात्मिक धुवा और विश्ववासी आत्मताकी स्पष्ट करनेके लिए ही ऐसा किया है^४। बीनोंका ब्रह्म तो आध्यात्मिकताका साक्षात् प्रतीक ही है। उसपर किसी अन्यका प्रभाव नहीं है। वह अपनी ही पूर्ण वरम्पराका पोषण करता है।

धानुवतके दोषमें भी यह ही बात है। नबीरका आनी ब्रह्मसृष्टिके प्रभावसे प्रेम और मस्तिष्का विषय बन सका जब कि बीनेके सिद्ध सदिया पूर्वसे मस्तिष्क आत्मन और प्रेमके आकर्षण-बैन्ध बने बने जा रहे थे। आचार्य कुन्दकुन्द (वि सं पृष्ठी ७४) ने सबसे पहले प्राकृत भाषामें 'सिद्धचरित' किन्नी आचार्य पुनपान और सोमदेवने उसीको संस्कृतमें प्रचलित किया। 'सिद्धचरित' से

१. आचार्य कुन्दकुन्द 'सिद्धचरित' अथवा स्तोत्र, वरम्पति: शोलापुर, १९२१ ई. पृ. ५७।

२. संमत्त भाषा वरम्पति: शोलापुर, १९२१ ई. पृ. ५७।

अपुष्टकषु अम्यावाय अष्टगुणा ह्येति सिद्धार्थः ॥

आचार्य कुन्दकुन्द 'सिद्धचरित' वरम्पति: शोलापुर पृ. ५१।

३. वरम्पति: Introduction पृ. ५ पृ. ५१-५२।

४. नबीरकी आध्यात्मिक धुवा और आचार्य विरचयावी है, इसीलिए अनेकोंने द्विगु गुणमत्तान् भूमी वैष्णव योनी प्रभृति सब साधनाओंको जोरने पकड़ रखा है।

आचार्य विनिदेशन में नबीरका योग, अम्यावाय, वैष्णव, पृ. ५११।

सम्बन्धित अनेक प्राचीन स्मृति-स्तोत्र भी उपलब्ध हुए हैं। इनका विवेचन इसी ग्रन्थके दूसरे अध्यायमें किया गया है। आचार्य पूम्पायने ही प्रेमकी ही प्रतिष्ठा है। इसी कारण 'सिद्ध'में जो रसविभोरता है वह बीड़ोंकी गिराफटे-पातनमें उपलब्ध नहीं होती। कुछ प्रतिपक्ष पर धोर बैठे हैं। जब कि नलि 'मपति से अधिक आनन्दान्न ग्रहण करती है'। कुछ केवल आनन्द है। जब कि सिद्ध इनके साथ-साथ प्रेरणाजन्य वस्तुत्वके कारण बलके आराध्य भी। बीनेने केवल बिड़में ही नहीं किन्तु पंचपरमेष्ठीमें जो आसक्तिजो धूम मारा है और परम्परावादी जैसे मोक्षका कारण कहा है। बीड़ जबबालू कुछकी आसक्तिजो भी उचित नहीं मानते। कबीरकी निर्गुण धारमें आसक्ति प्रसिद्ध ही है। नव सिद्धार्थोंका यह कथन कि कबीरकी निर्गुणोपासना बीड़ साधनासे प्रभावित भी नपुण्ड है। बसका आसक्तिवादा कम ही साधनाके अधिक निकट है। यहाँ पंच धामनाम मुक्तका यह कथन कि भारतीय ब्रह्म केवल आनन्दोपना निपट वा टीक नहीं प्रतीत होता।

कुछ भी ही निम्न ब्रह्म और बिड़ बीड़ों में आसक्तिजो धूमना नहीं भी। यदि ऐसा होता तो कबीरके कथनों कथनों केकनेवाकी कथन जैसे ही जाती। इनके कथनों 'पीड़' का सीधमें है और रसवीरता भी तभी तो आत्मने स्वयं 'बहुरिवा' इनमेंमें भरम आनन्दका अनुभव किया है। यह 'पीड़' जब उसके घर आया तो भरका आनन्द मंथनीतति भर गया और चारों ओर प्रकाश छिटक उठा। आसक्तिजो ब्रह्मकी 'पिड़' के नहीं अपितु प्रियतमके घरमें बैठा है। इसीलिए इनमें कबीरके ब्रह्मसे अधिक आनन्दता है और आनन्द। कबीरके कथनों केकनेवाकी ही आकाश पानी है, किन्तु आनन्दीके प्रियतमकी केकनेवाकी स्वयं आकाश होती है और जैसे समया विषय की आकाश बिछाई देता

१. डॉ. मण्डलिक आचार्य, बीड़धर्म तथा अन्य भारतीय धर्म विद्वान मान, पंचम हिन्दी मण्डल, सि. सं. ११५ १०५६।

२. हरि धर्म बीड़ में हरि की बहुरिवा' सन्तुष्टासारा, कबीरदास सन १९१५ पृ. १६।

३. बुद्धिजीवा काव्य मंथनकार

इस घर आये ही राजा राम भरदार ॥

कबीर मन्थनकी 'पुर्ण' संस्कार, क-वदता पृ. ५०।

४. मंदिर मंदिर तथा कविपारा के धूनी कथना निव धारा ॥ नवी पुस्तक पृ. ५०।

है। 'कवन जो देखा कंचक या निरमल नीर सरीर'^१ में ऐसी ही बात है। जैन कवि ज्ञानतरासने भी ब्रह्मके वर्णनसे चारों ओर छाने हुए बसन्तको देखा है। तुम ज्ञान विमल फूली बसन्त यह मन मधुकर सुख सौ रम्य^२ उसीका निरूपक है। कवि कनारमीवासके ब्रह्मके सौम्यसे तो समूची प्रकृति ही विकसित हो उठी है।

विषम बिरल पुरो मघो हो आनी सहज बसंत ।

प्राग्यो सुखणि सुगंधिता हो मध मधुकर मयमल ॥^३

कबीरमें व्यष्टिमूर्धकता अधिक है, तो जायसीमें समष्टिकृता और जैन कवियोंमें दोनों ही समान रूपसे प्रतिष्ठित हैं। इनका आरम्भब्रह्म बटमें रहता है किन्तु उसका सौम्य समूचे कोकाकोरमें व्याप्त है।

सप्तगुरु

जैन सप्त नीर कबीरवास जाकि 'निपुनिप' साबुकोंने मुस्करी सहता समान रूपसे स्वीकार की है। दोनोंने ही मुस्के प्रसादको पानेकी आकांक्षा की किन्तु वहाँ कबीरवासने मुस्करी ईश्वरसे भी बढ़ा माना^४ वहाँ जैन सन्तोंने ईश्वरको ही सबसे बड़ा गुरु कहा है। जैन आचार्योंने पंच परमेश्वरीको 'पंचगुरु की संज्ञासे समिहित किया है। सोरठ्ही सत्तालीसके कवि शतसमकने 'मेमीश्वर पीठ'में लिखा है 'पंचगुरुओंको प्रणाम करनेसे मुक्ति मिलती है।'^५

वैसे मुस्के प्रसादसे मनवान् मिलनेकी बात दोनों ही को स्वीकार है। कबीर बात तो मुस्के ऊपर इसीकिम्ब बलिहार होते हैं कि उन्होंने बोधिन्यको बड़ा दिया है। मुन्बरवासके गुरु भी ब्रह्माण्ड है, क्योंकि उन्होंने आर्याको परमारमासे मिला

१. आकनी प्रभासनी व रामचन्द्र गुण्य सन्नाहित शिरीस लंकराय माकमरोरख खरद लो पीछरीया सोहा ॥ २३ ।

२. आनन्दरामप्रह, विमलाशी प्रचारक काशीनथ, कनकदा १८वीं वर्ष ॥ २४ ।

३. कनारमी निरूपस कवचुर जन्माग्रमाल कव इमरा ॥ १३४ ।

४. गुरु नीदिन्य सोठ कहै नाके कायु बाय ।

बलिहारी गुरु आने जिन नीदिन्य दयो बताय ॥

कबीरवास गुन्नेकी ज्ञा सन्नासामार, शिरोपी हरि सन्नाहित सन्ना सादित मरहत निन्नी, १७वीं सप्तमी, ॥ १२ ।

५. सहहि मुजनि दुति दुति छिरी, पंच परम गुरु निमुबन साह ॥

चतुस्रम मेमीश्वरणीय अयेरप्रान्ननचहार मन्नाचरय ।

प्रसन्न हुए हैं और अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए उन्होंने कहा सतगुरु की महिमा जनत ॥ उन्होंने अनन्त उपकार किया है, क्योंकि उन्होंने मेरे अमर्षित बान्धवबुर्जोंको लोककर असीम ब्रह्मका दर्शन कराया है^१। एक दूसरे स्वानुपर उन्होंने सिखा "मेरे तो अज्ञानसे भरी धौकिक मायताओं और पाखण्डसे भोज-प्रोत बेरके पीछे बचा था रहा था कि सामने सतगुरु भिन्न गये और उन्होंने ज्ञानका दीपक मेरे हाथमें दे दिया^२।" हृदयमें ज्ञानका प्रकाश करनेवाला गुरु भक्तबान्धु की कृपासे मिष्टता है। जैन सन्त बतकमलने बाबोराय भक्तबान्धु नेमीश्वरके पुत्र यानेसे ही गुरु बोधनके प्रसादको पाना स्वीकार किया है।^३

सतगुरुका भिन्नता ठीकी शारीरिक होगा जबकि शिष्यका हृदय भ्रम संशय और निष्प्राप्त्यसे भोज-भोज न हो। यदि ऐसा होगा तो सतगुरुका उपदेश उसके हृदयमें पैठेगा नहीं। यद्यपि आत्मन्का स्वभाव ज्ञान है किन्तु सांसारिक निष्प्राप्त्य से मुक्त होनेके कारण उसे सतगुरुका अमृतमय उपदेश भी चबता नहीं। इसीको पाम्ने कनकलन बड़े ही सरस ढंगसे उपस्थित किया ॥

‘बतल अचरन मारी यह मेरे शिष्य जानै
यसुत बचन हितकारी सद्गुरु तुमहि पढ़ावै
सद्गुरु तुमहि पढ़ावै चित है अब तुमहूँ हो जाली
तपहूँ तुमहि न क्यों हूँ ध्यावै चेतन तरल कहानी ॥’^४

सन्त कबीरदासके भी ऐसे ही विचार हैं ‘सतगुरु बपुरा क्या कर सकता है, यदि सिख’ ही में चूक हो। उसे बाहे जीसे समझाओ सब व्यर्थ जायेगा ठीक वैसे ही वैसे जूँक बंशीमें छहरती नहीं जपिदु बाहर निकल जाती है।’^५ कवि

१ सतगुरु की महिमा जनत जनत किया उपकार।

कोचन जनत उवाडिया जनत विद्यावन्धवार ॥

कबीरदास गुबरेन की जंग, सीसरी साखी, कबीर प्रणवदानी चौथा संस्करण, पृ. १।

२ पीछे जाने जाह था लोक बेह के साधि।

याने में सतगुरु भिन्ना दीपक दीया हाधि ॥

वैदिक गरी ११वीं साखी पृ. २।

३ गुरु गौतम मो देख पसीज ओ पुन मार्ग जाबुदाय।

बतकमल नेमीश्वर गीत संग्रहालय, प्रतिलिपि समग्र कण्ठ, पृ. २२१।

४ परमार्थ कबही छपह, जैन प्रणवदानीकर प्रणवदानी, वर्ष १९११ परता पत्र, पृ. १।

५ कबीरदास गुबरेन की जंग २१वीं साखी कबीर प्रणवदानी, पृ. १।

धरार उपज्य हो सकते हैं। बाबूका कथन है कि सगुरुके भिक्षुसे साहबका पोशार तो सहजसे ही भिन्न सकता है।^१

जीव साहित्यमें गुरु-भक्तिके अनेकानेक सरस उदाहरण उपलब्ध होते हैं। सत्तरहवीं शताब्दीके महाकवि समबतुन्दर गुरु चर्खातहसूरिकी भक्तिमें धार-विमोह होते हुए बह बड़े मेरा भावका विन बग्य है। है गुरु ! तेरे मुक्तकी देखते ही जैसे मेरी तो समूची पुण्यवशा ही प्रकट हो गयी है। है श्री चर्खातहसूरि ! मेरे हृदयमें सर्वत्र तू ही रहता है और स्वप्नमें भी तुझे छोड़कर जग दिखाई नहीं देता। मेरे लिए तो तुम ऐसे ही हो जैसे कुमुदिनीके लिए जल जिसको दूर होते हुए भी कुमुदिनी समीप ही समझती है। तुम्हारे दर्शनसे जगत्पद उत्पन्न होता है, और मेरे नेत्र प्रसन्न हो जाते हैं। जीव तो सबीको व्याप होता है किन्तु तुझे तुम सबसे भी अधिक प्रिय हो।^२ श्री कुम्हारकाव्यने आचार्य गुरुसाहबकी भक्तिमें जिस सरसताका परिचय दिया है वह कम ही स्वानोपर मिलती है। आपाड़के भाते ही बीमासेका प्रारम्भ हुआ और गुरुसाहब बम्हाकटीमें पवारे। उस समयका भक्तिसे सरा एक चित्र देखिए आपाड़के भाते ही शानिनी सबके काने लगी नोकक कागिलिनी जगने प्रीयकापी बाट बोझने कभी चातक मधुर ध्वनिमें 'पीठ पीठ' का उच्चारण करने लगा और धरीधर वरसावके विपुल बरसे बर पड़े। इस अवसरपर महान् श्री गुरुसाहबकी धारवलीको कुछ इनेके लिए बम्हाकटीमें बाधे। वे हीकारमभीके साथ रमन करते हैं और जनमें हर किसीका मन बँधकर रह जाता है। उनके प्रवचनमें कुछ ऐसा आकर्षण है कि उसे सुनकर गुरु भी लज्ज बड़े हैं, कर्मिनी कोटिक गुरुके ही पीठ जाने कभी ॥ वपन पूज बड़ा है,

१ सरगुरु मिले तो पाहने भक्ति मुक्ति बंधार ।

बाबू सहज देखिए साहित्य का बीजार ॥

बाबू गुरुरी को जग, भिक्षुकीभाषण हीरिग, सगुरुजन कागुरु, १ २१, बारगिण १ ।

२ भाव नुं धन विन बेरत ।

पुण्य दशा प्रकटी जब मेरी वेतनु गुरु मुक्त तेरत ॥

श्री चर्खातहसूरि तुझ मेरे पीठ में सुनइ भई नहीं धनेये ।

कुमुदिनी जल जिसत तुम सीतल दूर तुही तुम्ह बेरत ॥

तुम्हारे दरसन आर्ष उपजनी गजननी प्रीत नबेरत ।

समबतुन्दर गुरु सब नुं बग्य पीठ नुं भिन्नर अधिकेरत ॥

समबतुन्दर, चर्खातहसूरिजीव, श्री गुरु चर्खातहसूरि जीवकाव्य संग्रह, प्रकाशक भारता साहित्यिक संस्थान १ १२६ ।

धीर ध्युर तथा चकोर भी प्रसन्न होकर नाच पड़े हैं। गुरके ध्यानमें रत्नान्तरके ही चीजन झर झरने लगी हैं। गुरकी नीति और सुपराये ही नम्रुर्म संसार मूढ़ रहा है। बिरके लार्गे सेवामें परम उत्थान हो गया है। भी गुरके प्रसात्में सदा मुक्त उत्थान होता है।

“जावो जान जताइ शत्रुके कामिनी रे।

जावइ जोबइ प्रीयहा बादमकमल कामिनी रे ॥

बावक मपुरा साक्षिक प्राक प्रीक जवाइ रे।

बावइ यव बावात मजक सरवर मरइ रे ॥

इम अकमरि भीपुत्र महामीदा जपी रे।

आवकना मुख हित आवा प्रभावपी रे ॥

जोबइ जम गुह रीति प्रसीति बचइ बकी रे।

दिखा रमणी साथ रमइ मकनी रकी रे ॥

प्रवचन बचन रिस्तार अथ उचरर जणा रे।

कीकिक कामिनी गोड गावइ भी गुह लया रे ॥

मावइ मगन मनीत भी पूजयनी रचना रे।

अविचन मीर जकोर बावइ शुभ बाचना रे ॥

सदा गुह ध्याव रत्नान्तर कहि बालक बइइ रे।

कीसि मुजम बिमाक सकल जग महमहइ रे ॥

माते सेव सुखम सुपर्मइ जीवमइ रे।

भी गुह बाव प्रसाद सदा मुक्त संपमइ रे ॥ १

भी शत्रुनीतिने मुहमिनचन्द्रमुरिबी मलिनमें एक राव-वटहारवा निर्माभविवा बा। कनुमें एक पिप्प आनेवाले मुहको देखनेके लिए टीक दी देवन है जैसे कोई प्रोविरगिवा मानवाले पतिको देखनेके लिए बैसनही कठनी है। लहोने बहर, “है धनि। मेरे किए तो वह ही अत्यधिक सुगर है, जो यह बता दे कि हमारे गुह मित्र मारते होकर पधारेंगे। भीमुह सभीको मुद्रावन लगते हैं और वे जिस पुरमें जा पाते हैं वह तो जैसे ‘पीना’ ही हो जाता है। उनको देखकर हर कोई लप बपवार निमें बिना नहीं रहता। भी मुहकी आवाजको भी आगता है वह मेरा छावन है। मुहको देखकर ऐसी प्रसन्नता होती है जैसे जगको देखकर चकोरको और नुर्मनी देखकर लोकरों। मुहके दर्शनसे हृदय समुद्र पुष्प गुह और मन

१. देखि इतरनाम भीरुल्लहावनीनम् पृष्ठ २१ वच ऐतिहासिक कैम बाव्य रत्नान्तर जगदगद गदगद सगदरिष कणकटा पृ ११९ ११७।

मारी दलित की गलती है। व. बौद्ध-वचन लिखते हुए उस मोहकपी विष
 का कहना है कि वह बौद्ध-वचन बौद्ध-वचन से बहुत अलग है। अनामिका
 का कहना है कि वह बौद्ध-वचन से बहुत अलग है। अर्थात् बौद्ध विपण
 का ही बौद्ध-वचन लिखना है, किन्तु ऐसा करनेके लिए बौद्ध विपण
 की आवश्यकता है।

दक्ष अनामिका की ओर

मैं अपने दिने के बड़े अनामिका इन अधिक बड़े गये थे कि उन्हीं
 को मैंने ब. ब. की दली। मन्नापौरकी विपणानी ब. ब.। सम्भव
 निम्न ही दली। अनामिका ब. ब. समस्तनेमैं बौद्ध की पीछे नहीं रहे। ब. ब.
 पारुषी अनामिका बौद्ध अनामिका ब. ब. पापाके माध्यमसे इन बाह्य बाह्यमरोंका
 निर्माण विपण किया। उनमें मुनि अनामिका नाम सर्वोपरि है। उनके
 निम्न की विपण इरिका कम है, "ब. ब. नामपर का बनेक बाह्य बाह्यमर
 और अनामिका अनामिका ब. ब. उन सबका इस बौद्ध अनामिका प्रथम अनामिका किया।^१
 अनामिका अनामिका एक अनामिका है। हे मुनिअनामिका अनामिका। विर ती दूरी
 अनामिका मुनि अनामिका पर विपणकी नहीं मुनिअनामिका। अनामिका अनामिका अनामिका
 अनामिका ही कर अनामिका है।^२ तीर्थक्षेत्रोंके विपणमें अनामिका कम है। हे मुनि
 मुनि एक तीर्थक्षेत्र अनामिका तीर्थक्षेत्र अनामिका और अनामिका अनामिका अनामिका पर
 इस अनामिका अनामिका अनामिका अनामिका।^३ तीर्थक्षेत्र, अनामिका अनामिका तीर्थक्षेत्र ही

१ अनामिका ब. ब. मुनि अनामिका मुनि अनामिका मुनि

मुनि अनामिका तीर्थक्षेत्र तीर्थक्षेत्र अनामिका मुनि अनामिका का।

अनामिका अनामिका तीर्थक्षेत्र तीर्थक्षेत्र अनामिका मुनि अनामिका

कर अनामिका अनामिका तीर्थक्षेत्र तीर्थक्षेत्र अनामिका मुनि अनामिका

अनामिका अनामिका अनामिका अनामिका, अनामिका अनामिका अनामिका अनामिका

२ अनामिका अनामिका, अनामिका अनामिका अनामिका अनामिका अनामिका अनामिका, अनामिका अनामिका,
 १९२९ ई. ११।

३ अनामिका अनामिका अनामिका। अनामिका अनामिका अनामिका अनामिका

अनामिका अनामिका अनामिका। अनामिका अनामिका अनामिका अनामिका

अनामिका अनामिका अनामिका।

४ अनामिका अनामिका अनामिका अनामिका अनामिका अनामिका

अनामिका अनामिका अनामिका अनामिका अनामिका अनामिका

अनामिका अनामिका अनामिका

संझाएँ होनी हैं जैसे एक ही बक बापी तड़ाव और बूपके नामसे तथा एक ही पावक बीप चिराग और मसाक आदि नामोंसे पुकारा जाता है। सत्य बाबुरमाकने एक ही मूखतरबरी बकहू और 'राम' को संझाएँ भी है। कबूते बहोतक सिखा है कि जो इनके मुखमें भी भेदनी वस्त्वना करता है वह मूठ है।

जैन सन्तान निमल आत्मामें कैमिन्नत हुए मनको ही सर्वोत्तम कहा है। उनको बुद्धिमें यदि इन बीबको कुछ आत्माके वर्सन नहीं होते तो कबनाउ बर, ल, ब्रह्म और दिवम्बर बसा भी व्यर्थ हो है। कबूते उस ज्ञानको भी नि सार कहा है, जिसके द्वारा आत्मवर्सन नहीं हो पाता। आत्मज्ञान ही सच्चा ज्ञान है यदि वह नहीं तो अन्य सब ज्ञान निरवक है। इसी बातको कैकर बगारसीबाबने सिखा है

‘मेव मे न ज्ञान बहि ज्ञान गुह-वत्तव मे
जज्ञ मज्ञ रज्ञ मे न ज्ञान को कहाणी है।
प्रज्ञ मे न ज्ञान नहीं ज्ञान कवि थानुरी मे
वातनि मे ज्ञान नहीं ज्ञान कहाँ बना है ॥
ताते मध गुरसा कविज प्रम्व मज्ञ वात
ज्ञ ते अतीत ज्ञान कतना विद्यापी है।
ज्ञान हो मे ज्ञान नहीं ज्ञान और मीर नहीं
जाके बर ज्ञान को ही ज्ञान का निदावी है ॥^१’

बघोबिबबजी ज्ञाप्याबने भी सिखा है कि संयम लय ज्ञिया आदि सब कुछ कुछ चेतनके बकनेके ही किए किया जाता है यदि इनसे वरन नहीं होय तो वे सब विध्या है। वर्सन तो अन्तरचितके भीमे बिना नहीं होता। अन्तक अन्त की ‘जी’ कुछ चेतनम न होमी मे अमरी ज्ञिया-नाथ व्यर्थ हो है,

१. बापी तड़ावक कू नही धव है बक एक ही बेपी विहारी ॥
पावक एक प्रकाश बहू बिनि बीप चिराक मसाकहू बापी ।
गुम्बर बहू भिजात बकभित मेव नी बुडि गु टारी ॥
गुम्बर प्रम्वबकी ल व बरमारान्त समी सन्पाकिन भव २ ६४७४ ।
२. बकहू बहो नामी राम बहो डाक टारी लव मूक पाही ।
बकहू राम बहि कर्म बही गूठे प्यारव कहर बही ॥
सत्य बाबुरमाक गुम्बर प्रम्वी लव, सन्तुष्टमात, ६ ४७४.

३. बनि बगारसीबाग मज्जलसकलाए, लव व बकबकबी-दारा भाना-बीक
कूत लपटी प्रम्वमाता बरिषाकन केहली सन्मिमुदि डाट, २१२वीं लव
६ ११३ ।

“तुम अत्यंत संयम तप किरिया कहा कहाँ को काज ।

तुम रहस्य विनु सब वा कुंती अन्तर चित्त न सीजे ॥

अतः नव माहि इतल राज ॥

कवि भूषणदासने अन्तरबी सम्बन्धताको प्रमुख माना है । यदि ‘अन्त विषय
स्वतन्त्र कीचड़से क्लिष्ट है तो तीर्थाधिक कोई काम नहीं हो सकन । बाह्य
सेवकी सफला पवित्र हृदयपर निर्भर है । यदि मन कामादिक कामनाओंमें
बन्धित है, तो अन्तरिमें अधिक भजन करनेपर भी फल प्राप्त न होमा ।^१ कवि
शान्तदास भी अन्तकी मुक्ति के बिना प्रत्येक माममें विषये आनन्दको उपवास
और वाचाको मुखाभिरुक्त करके व्यर्थ माना है ।^२

यही कबीरदास आदि सन्त भी एकमत हैं । सन्त राजबन्धामन लिखा है कि
कवि हारम सुख नहीं है, तो भयवान्वा पुत्र-प्राप्त भी व्यर्थ है । सन्त भुवनेश्वरदासने
‘अन्तःकल्याणक में हृदयकी पवित्रताके बिना योग योग त्याग वैराग्य नाम
म्यान और ज्ञान आदिको निगार कहा है ।^३ कबीरदासका अभिप्राय है कि भिक्षुने
बचने मनको स्वयम्भूत रस किया है वह ही सच्चा योगी है कपड़ा रसवानेमें
कोई काम नहीं । मनकी शुद्धिके बिना वह काम फलदाकर और बड़ा धाड़ी बढ़ा

१. कवि कपोतबिहारी ‘चैतन अथ मोहि रहस्य हीन’ अन्तःकल्याणकी पृ. २२४

२. राजकुमार सन्तासित भारतीय आनन्दिका कृष्णी ।

३. वर तप हीन सब अन्तरिक कामम सब अन्तरगत २ ।
विषय कपाम कोच नहीं छोदी यों ही पवि पवि सरना रे ॥

अन्तर सम्बन्ध करना रे भाई ॥

कामादिक सब ही मन मिला भजन किये क्या निरला रे ?

भूषण नील बसुन वर वैसे विसर रस उछरना रे ?

अन्तर सम्बन्ध करना रे भाई ॥

भूषणदासने अन्तःकल्याण ३२वें पद पृ. २० ।

४. मास मास उपवास निमै ही काया बहुत मुन्दाई ।

जोब नाम छक जोब न भीरया कारण कीम उराई ?

तु ही समझ समझ रे भाई ॥

कपोतबिहारी अन्तःकल्याण ३२वें पद, पृ. २४ ।

५. संजी देना यह आचार

तप अनेक करै पूजा में हिरी नहीं विचार ॥

सन्तभुषणदास, सन्त राजबन्धी ३वां पद पृ. २२४ ।

६. सन्तभुषणदास, सन्तदास अन्तःकल्याण, दूसरा पद पृ. २४२ ।

वाते किन्ही है किन्तु धर्मका स्वर बीजा पैना नहीं है ।

जैन हिन्दीके मति-काव्यमें भी ऐसी ही प्रवृत्तिबोके दखन होते हैं । उनपर जैन अपभ्रंशका प्रभाव स्पष्ट ही है । जोछवीं शताब्दीकी प्रसिद्ध कृति 'बाबरा' में लिखा है, 'संवतारके मूळ बीज जनेकानेक तीर्थ-सेतोमें घुम-घुमकर मारते हैं किन्तु उन्हें यह विवित नहीं कि जागम सरीरको स्वच्छ करनेसे नहीं बरितु आत्माको सुद्ध करनेसे मिलता है । यह पद्य इस प्रकार है

जड सति वीरव परिममह मूढा मरहि मर्मतु ।

अप्या बिम्बु न जावही ध्यानहा कर महि देह धर्मतु १

विर्गुन काव्यकाव्यके कवि सुन्दरदासने भी ऐसी ही बात कही है । अठ्ठाठि शतक दोहोमें ही सम्मान करते प्रवृत्त हुआ है

सुन्दर मैकी देह यह निर्मल करी न जाह ।

बहुत जाति करि जोह दू जड सति वीरव न्हाह २

चतुर्थी शतकके विद्वत् जैन कवियोंका स्वर किन्तुिए सत्तोनी याति ही टीका है किन्तु हमने नबुवाहट नहीं है । उन्होंने शास्त्रियोंका विरोध करनेके लिए वातिप्रधाना सम्भव नहीं किया बरितु कनवा विरोध आत्यधिक्यन्तर आचारित वा । अष्टारक धुमकत्र (१९वीं शती) में 'उत्तरवारहूहा' में लिखा है,

उक्त बीज नहि अप्या हुनि

कर्म कर्मक लखी की तु सोह ।

बंयव धर्मिष वैश्य न ह्य

अप्या राजा नहि होह ह्य ३

अप्या जनि नहि नहि विचंच

नहि दुर्गक नहि अप्या जह ।

मूर्ख हर्ष होव नहि ते बीज

नहि सुखी नहि दुखी जरीव ४

इसकी तुलनामें नबीरदासना यह कल देखिए, जिसमें उन्होंने शास्त्रियोंको सम्बोधन करते हुए कहा है, "जब हम दोनों एक ही वनसे चलन हुए हैं, तो

१ अष्टारकी दशविंशति मति, मन्जिरकत्र, जैन वंशवती मन्जिर रिखी, टीकरा नव ।

२ उत्तरारंभ, विजयनगर, रत्नादास, १८२३ ई । पृ ५४ ।

३ अष्टारक धुमकत्र, उत्तरवारहूहा मन्जिर ओसिनाथ, चतुर्थी दशविंशति मति पृ ७०-७१ ।

संझाए होनी है। जैसे एक ही जग बायो लहाव और नूपके नामसे तथा एक ही पावक बीज चिराइ और मसाक जावि नामीसे पुकारा जाता है।^१ सप्त बाबूदपावने एक ही मूकतरबरी बजह और 'राम को संझाए की है। उन्होंने बड़ा ठक किया है कि जो इनके मूकमें भी मेदकी कल्पना करता है वह मूक है।

जैन सम्प्रदाय निमक्त आत्मामें केन्द्रित हुए मनको ही सर्वोत्तम कहा है। उनको बुद्धिमें यदि इस बीजको मूक आत्माने वर्धन नहीं होते तो उपवास जप लपन और दिवम्बर बटा भी व्यर्थ ही है। उन्होंने उस ज्ञानको भी नि सार कहा है जिसके द्वारा आत्मवचन नहीं [॥] पाता। आत्मज्ञान ही सच्चा ज्ञान है यदि वह नहीं तो अन्य सब ज्ञान निरर्थक है। इसी पावकी केकर दमरुहीबाधने किया है,

‘मय में न ज्ञान गहि ज्ञान गुह-बचन में
जंज मंज संज में न ज्ञान को कहावी है।
मय में न ज्ञान नहीं ज्ञान कवि जानुरी में
पाठनि में ज्ञान नहीं ज्ञान कहाँ जानो है ॥
पाठें मेव गुरदा कविच प्रमथ मंज पाठ
इन लें जतीठ ज्ञान जतना निछानी है।
ज्ञान ही में ज्ञान नहीं ज्ञान कीर खीर कहीं
जाके बर ज्ञान सो हो ज्ञान का निछानी है ॥^२’

मयोविजयजी उपाध्यायने भी किया है कि संयम लप किया जावि लप मूक गुह नेउनके दखनेमें ही किए निमा जाता है, यदि उनके दखन नहीं होता तो वे सब मिथ्या हैं। वर्धन तो अनुरचितने बीजे बिना नहीं होता। बरतक कवि की ‘की’ मूक जतनमें न होनी से ऊपरी किया-वाच्य व्यर्थ ही है

१ बायो लहाव नूर गरी खर है जक एक सी बेनी निछारी ॥
पावक एक प्रपास बहु विवि बीज चिराइ मसाकहु बायो।
मुन्दर बड़ा निछास जलजित मेव की बुद्धि नु खरी ॥
मुन्दर प्रभाकरी ल व दरबारलप रम्य लनादिन माल २ २४५४।

२ बजह बड़ी भावी राम बड़ी जाक लगी सब मूक पड़ी।
बजह राम कहि कर्म बड़ी लुटे मारन कहा बड़ी ॥

१ सप्त बाबूदपाव लप, ४४वीं लप समुदासाल, पृ. ४४५.

२ कवि कम्पसुनिष्ठ काव्यसम्प्रदाय ल व अवलम्बी-द्वारा माध-वीर्य
इस सप्त प्रपासका दरिवाच्य बीरवी उन्निष्ठि द्वारा, ११९वीं लप
१ ११९१।

तुम कारण सर्वत्र तप किरिया कइो कही की कीजे ।

तुम दर्शन बिनु सब पाईती अन्तर बिच न भीजे ॥

अतल अल मोहि दर्शन दोजे १

जबि मूबरदासग अन्तरकी सज्जसत्ताको प्रमुख माना है । यदि 'अन्त विषय कपान्धपी कीचड़से छिप्य है, तो तीर्थाधिक कोई काम नहीं के सकत । बाह्य वैयकी सज्जता पवित्र हृदयपर निर्भर है । यदि मन कामादिक वासनाओंसे मलिन है तो अधिकसे अधिक भजन करनेपर भी फल प्राप्त न होगा ।^१ जबि ज्ञानतत्त्वमें भी अन्त-की शुद्धि के बिना प्रत्येक माममें दिने कामवाडे उपवास और नामाको मुखानेवाडे उपको व्यव माना है ।^२

यहाँ कबीरदास आदि सन्त की एकमत है । सन्त रणब्रह्मदासने किता है कि यदि हृदय घुड़ नहीं है, तो भगवान्‌का पूजा-पाठ भी व्यर्थ है । सन्त तुम्बरदासने 'ज्ञानसूक्तमाहक' में हृदयकी पवित्रताके बिना बोध याग त्याग वैराग्य नाम ज्ञान और ज्ञान आदिको निःसार कहा है ।^३ कबीरदासका अभिमत है कि जिसने अपने मनको भगवान्‌में रैय किया है वह ही सच्चा योगी है । कपडा रैयवानस कोई काम नहीं । मनकी शुद्धिके बिना वह काम फड़काकर और जटा खड़ी बड़ा

१. जबि कसोबिब्रह्मी 'अतल अल मोहि दर्शन दोजे' अन्त्यात्मवाक्की पृ. १२४

२. रामकुमार सम्पादित भारतीय ज्ञानपीठ काशी ।

३. जब तप तीग्व अल ज्ञानादिक कामम अथ अचरना रे ।

विषय कपाव कीच नहि मोयी यों ही पवि पवि मरना रे ॥

अन्तर सज्जस करना रे भाई ॥

कामादिक मल ही मन मीका भजन किने क्या तिरना रे ?

मूबर नीक बसन पर वैसे केसर रन अचरना रे ?

अन्तर सज्जस करना रे भाई ॥

मूबरविनासे बसकटा ११वीं पृ. १० ।

४. मास मास उपवास दिने ही काया बहुत सुखाई ।

होय मान छक सीम न बीस्या कारण नीम सराई ?

तु तो समझ समझ रे भाई ॥

आत्मविलास बसकटा १२वीं पृ. १४ ।

५. सनो ऐसा धनु आचार

पाप जनेक नई पूजा में हिरई नहीं विचार ॥

सन्तसुभासा, सन्त रज्जबनी ४वा पृ. १४४ ।

६. सन्तसुभासा, सन्तरदास भूजनाहक, दूसरा पृ. १६६ ।

कर बरुण तो हो सजना है। सोयी नहा । जेपसमें आकर पुनो रमानेसे बरुणा कामदेव मदे ही जल जाये किन्तु वह सोयी न बहकाकर हिंसा ही रस जायेगा । यमजी मुखिके बिना यदि कोई सिर मुँहाकर बीर रंभे हुए कपडे पहनकर बीठा बीचना है, तो वह सगार हो कहुआयेगा

“मम न हैगाव हैगाव जोगी कपड़ा ।

कमरा बड़ाव जोगी बरुणा बड़ाके ।

बाड़ा बड़ाव जोगी होइ गहक बरुणा ॥

जंगल में जाय जोगी बुनिया रमीके ।

काम कराय जोगी ननि गहक हिंसा ॥

ममका मुँहाव जोगी कपड़ा रंगीके ।

गोता बीचि के होइ गहके कपरा ॥”

युद्ध मनकी बुझाके बिना माका किरानेकी कर्षता बीन और बर्जन दोनों ही समझे समझी थी । कवि धामतरायका कथन है कि जासन मारकर ममका के बीठ जानेसे बाहरी बुनियावाके पीछ लपटी है किन्तु इन बक-प्रधानसे आत्मना का पछा नहीं होता ।

“कर ममका के जासन मारबी बाहिन कीक रिछाई ।

कहा जसो बक बचान जो ठे जो मम मिर ब रहई ॥

ए तो समस समस रे भाई ॥”

कबीरदासने कोटी माका किरानेकी निष्प्राप्यतापर बहुत कुछ किया है । ‘मैप की जैन’ का ज्ञानसे अधिक मात्र माक्यजी निःसारणसे ही मुक्त है । बल की माका किरानेसे कुछ नहीं होता ममकी माका खेरनी चाहिए,

‘माका पहिरे ममजुकी जाली कहु न होइ ।

मम माका की खेरता हय बजिपारा सोइ ॥

कबीर माका काक की कहि समझावै लोहि ।

मम किरावै जावनी का किरावै मोहि ॥”

मध्यमुरके साधुकी रहजागमें दो बातें मुख्य हैं। बरा बराता ममका फिर मुँहाना । बीछ तक पहुँचनेसे सोपावमें यह भी एक छोड़ी मानी जाती थी । बीन सम्त बरुणार बतो (१७वीं शती बि सं) ने बरुणा कथन करते हुए

१. कबीर सप्त १३वीं कर संग्रहवासार, पृ. ३ ।

२. धामतरायमस, बालकदा १३वीं कर पृ. १५ ।

३. कबीरप्रवचनी, चतुर्थ संस्करण काशी, ‘मैप की जैन’ सप्त ३ पृ. ६ ५२ ।

सिखा है अथ की निर्मल बनागसे सकल मिलता है बाह्य भावम्बरसे नहीं ।
 चित्त-विचित्रा धन्यवारण करगसे क्या होता है यदि काम क्रोध और छलको नहीं
 बीटा । अटाओके बढानेसे क्या होती है यदि पावन न लोका । चिर मुँडानेसे
 क्या होता है यदि मन न मुखा । इनो प्रकार घर-बारके छोड़नेसे क्या होता है,
 यदि वैराग्यकी वास्तविकताको नहीं समझा^१ । मयवतीवास प्रिया^२ने भी अपने
 अनेक पदार्थ इस चिर मुँडानेकी भित्ति की है । उन्होंने एक स्वामपर लिखा है
 'निर्मल आत्माके गुह्य सन्तानके बिना केवल मुँड मुँडानेसे कुछ नहीं होता । उससे
 सिद्धि नहीं हो सकती^३ । उन्होंने यह भी कहा कि यदि सिद्धिके लिए मुँड मुँडाना
 ही पर्याप्त है, तो भेड़ोंको तो सबसे पहले चिर जाना चाहिए, क्योंकि इनका
 घाव घटीर प्रतिबर्ध मुँड जाता है^४ ।

मुँडका दुष्टान्त कबीरदासने भी दिया है । उनका कथन है, 'यदि मुँड
 मुँडानेसे सिद्धि हा जाती तो भेड़ तो कभीकी मुक्त हो गयी होती किन्तु उसे
 मोल नहीं मिला इसे समी जानते हैं । कबीरदा विचार है कि केद्योने क्या
 बिपाड़ा है, जो उसे छो-छी बार मुँड जाता है । मनको क्यों नहीं मुँडते जिसमें
 विषय-विकार भरा हुआ है^५ । बाबूका भी कथन है कि मनको ही मुँडना चाहिए
 चिरको नहीं काम-क्रोधको समाप्त करना चाहिए, केद्योको नहीं काटना चाहिए^६ ।

१. अद्वैतान कही गुह्यवाक्यी पहला पद कैव गुजर कबिको सीको मन
 पृ. १७१-७२ ।

२. नाम मान बीनी पै न सरवान गुह्य कर्ण
 मुँड के मुँडाने कहा सिद्धि नई बाबरे ।
 मयवतीवास प्रिया अकलिनास कम्बरे, कुम्हार निन्य ज्यों पद पृ. २७२ ।

३. सुद्धि पै मीन पिये पद बाकन
 रासम बीन विमृष्टि कपाने ।

राम कहे धुक ध्याल नई बक
 भेड तिरै पुनि मुण्ड मुडाये ॥

बरी, राग मछोचरी ११वीं पद पृ. १४ ।

४. मुँड मुँडाये को बिधि होई, स्वयं हो भेड न पहुँची कोई ॥
 कबीर मन्दावली अष्टम संस्करण कही १६२वीं पद पृ. ११ ।

५. कैसी कहा बिगाडिया जे मुँडे छो बार ।
 मन को काहे न मुँडिए, कामे विषय विकार ॥
 बरी मीन की पद १२वीं पदवी पृ. ४९ ।

६. बाबू 'मन की मय' ११वीं पदवी सप्त गुणाचार, पृ. ४७४ ।

इस धार्मिक जैन कवि और कबीर आदि सन्तोंमें समावृत्तपक्ष तीर्थभ्रमण अनुबन्धी व्यवस्था माया छिराया नीर धिर मूढ़ता आदिवा कष्टन दिया किन्तु जैनी अकम्पना और मस्ती कबीर आदि सन्तोंम भी जैन कवियोंमें नहीं। जैनोंने विद्यायक दृष्टिको मुख्य माया और कबीरने निवेद्यात्मकको। इसी कारण उनकी भावनामें बहवाहट अधिक है। इनके अतिरिक्त निर्गुनिष्ट साधु बाह्य पक्षकी दृष्टिमें नीर से किन्तु जैन सन्त कवियोंकी न तो शानी अटपटी भी और न माया निर्गुनत्व। उनका आधारत नवक का तो बाह्य पक्ष भी कुछ था।

रहस्यवाद

यदि आत्मा और परमात्माके मिलनकी आवश्यक अदिश्यालि ही रहस्यवाद है तो यह अनिवार्यता से पूर्व जैन-परम्परामें उपलब्ध होगी है। अनुबन्धमें आपन जैन और अविनायकको सूझाये कहा गया है। श्री आर ही एनाडेने अपनी पुस्तक 'मिस्टीसिम इन महापठ' में लिखा है कि जैनोंने आदि तीर्थंकर जैन-देवने अपनी मूढ़ आत्माका साक्षात्कार कर लिया था और वे एक भिन्न ही प्रकारके गूढ़ाधी पुरुष थे।¹ डॉ ए एन उपपन्नेने भी परमात्मकाय की भूमिनामें उपपन्नेने निमित्तान पारमनाथ आदि तीर्थंकरोंको सूझाया कहा है।²

अपने छ साहित्यकी 'परमात्मप्रकाश' 'पाहुबोहा और तावपम्मा बोहा' नामकी प्रसिद्ध कृतियों रहस्यवादी नहीं जाती है। डॉ हीराकास जैनने ऊपर आचार्य कुम्भकुम्भके 'मावपाहु' का प्रभाव स्वीकार दिया है।³ अर्थात् उन्होंने लिखित रूपमें जैन रहस्यवादका प्रारम्भ पि ल की पहली सदीमें माना है। मावपाहुके प्रभावित होकर भी अर्थात्सकी कृतियोंमें बोवात्मक रहस्यवाद का स्वर प्रबल है जब कि 'मावपाहु' में आचार्यक अविश्वस्तिनी प्रमुखता है। यन्त्रवादीय जैन हिन्दी काव्य दोनों ही के प्रभावित है, किन्तु हममें आचार्यका अधिक है और तन्वात्मकता कम। यद्यपि जैनमें तन्त्रवादितामें धार और प्रवेश मिलने है किन्तु अर्थात्सकी अपेक्षा बहुत कम। यही अर्थात्स हो या हिन्दो जैन

1 R D Ranade Myrticism in Maharashtra, Aryabhiram Pressoffice shamsar Peth, Poona 2 Page—9

2 Parmatma Prakasa and yogasara, dr A. N upobhys edited, Parama-aruta-Prabhavaka Mandala, Bombay 1837 introduction, P 39

३ पाहुबोहा डॉ हीराकास जैन सम्पादित कारण १९२२ ई मूल्य डॉ हीराकास लिखित पृ २६।

इतिमाके तुलनात्मक रहस्यवाचमें पुनः समाजको विवृति नहीं आ पायी है।

जैन हिन्दी कवि और कबीर आदि सन्तोंके रहस्यवाचमें अन्तर यह है कि जैन रहस्यवाचियोंको आत्मा अनुभूतिके द्वारा ब्रह्म कीज नहीं होती, क्योंकि वह ब्रह्मना एक कण्ठ बँध नहीं है। वह स्वयं ब्रह्म हो जाती है जब कि कबीरजी आत्माको एक बँध होनेके कारण ब्रह्मका बँधीमें भिन्न जाना होता है। यद्यपि दोनोंका ब्रह्म बटमें विराजमान है किन्तु एकका ब्रह्म जीवात्माका ही घुड़ का है जब कि दूसरेका जीवात्मासे विभक्त रहता है।

यहाँ प्रश्न यह है कि आत्मा ही 'अनुभूत' रहता और अनुभूति कर्ता' दोनों कैसे हो सकती है। इसका उत्तर जैन आचार्योंके द्वारा निम्नलिखित आत्मार्थे कीजनेमें उपलब्ध होता है।^१ 'बहिरात्म' वह है, जो ब्रह्मके स्वरूपको नहीं देख सकता परन्तु अन्तर्मात्र ही रहता है और निष्काम है। अन्तरात्म में ब्रह्मको देखनेकी शक्ति तो उपलब्ध हो जाती है किन्तु वह स्वयं पूरा घुड़ नहीं होता। 'परमात्म' आत्माका वह रूप है, जिसमें घुड़ स्वभाव प्रकट हो गया है और जिसमें सब छोटाछोटा झकझक उठे है।^२ रहस्यवाचमें आत्माके दो ही रूप काम करते हैं। एक तो वह, जो अभी परमात्मपक्षकी प्राप्ति नहीं कर सका है और दूसरा वह जो परमात्मा कहलाता है। पहलेमें 'बहिरात्म' और 'अन्तरात्म' नामित है और दूसरेमें केवल 'परमात्म'। पहला अनुभूतिवर्ती है और दूसरा अनुभूति रहता है।

कबीरने ब्रह्मके सौन्दर्यको केवल बटके भीतर ही सीमित रखा है जब कि जैन कवियोंके ब्रह्मके सौन्दर्यसे प्रकृतिका कण-कण प्रभावित हो रहा है। आध्यात्म-

१ विनायक, "जैनधर्ममें आध्यात्मिक-अनुभवसे मनुष्य एक विभक्त आत्माका एतद्वत् भिन्न भिन्न जाना नहीं है, किन्तु उसका सीमित व्यक्तित्व उनके सम्मानित परमात्मका अनुभव करता है।"

परमात्मज्ञान Introduction, हिन्दी अनुवाद व. के. चरणचन्द्र शास्त्री पृष्ठ १ १ ५५।

२ बहिरात्म परवर्ति विचारना सदैव हिन्दी।

जोमात्मन वरम मधोपायाद् बहिरात्मजेत् ॥

आचार्य तुलनात्मक समाधिस्थ और सेवा अन्तर दिग्गो ५५५ श्लोक।

३ बहिरात्म परवर्ती जानात्मभान्तिरान्तरः।

वित्तवत्तात्मविभान्ति परमात्मार्जितमिदम् ॥

पृष्ठ ५५५ श्लोक।

न बड़ा भी ऐसा ही है। जायसी और जीवन कवियोंके बड़ाके आराधनेले प्रेमके शब्दों बूझ पिये हैं। कवि भूवरदासने सच्चा 'जयसी' सहीचो मामा है, जिसने मित्रा प्याका पिया है।

“गरीबाह प्रीत अन्धिम है दाक धराबा चोखना ।

प्याका न पीबा प्रेम का असकी बुझा सो क्या हुआ ॥”

महात्मा जानन्यनने लिखा है कि प्रेमके प्याकेको पीकर मठवाला हुआ भेदन हो परमात्माकी सुखित के पाता है, और फिर ऐसा लोक लेखता है कि साध ईश्वर हमारा देवता है। वह प्याका बड़ाकपी जलपर, ईश्वर जिहा जाता है, जो उनकी मूर्तीमें प्रकटित हुई है और जिसमेंसे अनुभवकी काकिया सर्व कृती रहती है,

‘मनसा प्याका प्रेम मसाका बड़ा अरिष पड़ जाकी ।

तब माटी सबटाई पिये कस आगे अनुभव काकी ॥

असम प्याका पीको मठवाला किन्ही अन्धतम बासा ।

जानन्यन नेतव है लेके लेके कोक समासा ॥”

जायसीके प्याकेमें बेहोशी अधिक है। एक प्याका पीकर ही इतना ममा जाता है कि होश नहीं रहता। जीवनके प्याकेमें मसी अधिक है बेहोशी कम इसी कारण वे सामने बड़े प्रेमास्पदको देख सकनेमें भी समर्थ हो पाते हैं। रत्नचन को प्रेमकी बेहोशीमें पद्यावतीको पढ़वाना तो दूर रहा हैच भी, न सका किन्तु उसने शुभ्य बुद्धिके मार्गसे ही प्रायोको समर्पित कर दिया।

“भोगी छवि छवि सी कीबा

बैव रोवि बैवहि मिड झिन्हा ।”

बाहि मव चढ़ा बरावेहि पाके ।

सुवि न रही लोहि एक प्याके ॥”

प्रेमका तीर’ को ऐसा पैना है कि वह जिसके कथा—बाहि बड़ जीवन हो वा अन्य अन्य चढ़ाईक पड़ा रह गया। महात्मा जानन्यनकी वृद्धिने “नहा सिबा नु और कृ कहा समसाई मोर। तीर अनुक है प्रेम का काने सो रहे और ।” नवीरने भी लिखा है “साध बहुत पुकारिया पीत्र पुकारे और। जायी थेट

१ भूवरदास भूवरदास काकिया १०वीं बरुन ५ १५५।

२ जानन्यनकरसम, जानन्यनदान प्रसारक मकरस कर्मी, संजीव नर ।

३ जायसी जानन्यनकी न जानन्यन हुआ सच्चाचित नापरी मचारिबी समा कसी नृतीन संकरक १०० १ २ ३, कान्यन कान्यन रत्नचन कीकरी, ५ ५५ ।

४, जानन्यनकरसम, १५५ ५५, ५ ७ ।

सब की रक्षा करीब ठौर ॥^१ बायसीमे प्रेम-बाणके पावको अत्यधिक दुःखरामी माना है। जिसके बगता है वह न तो मर ही पाता है और न भीषित ही रहता है। बड़ी बेचैनी सहता है।^२

परमात्माके चिरहमें 'चिरबाहु नहीं था सखी' किन्तु फिर भी निर्गुनिए सन्तोंकी अपेक्षा जैन कविबोमें समेवनारमक अनुभूति अधिक है। कबीरके 'चिरह मुर्खगन पेति कर किया कछेजे बाब साधु अंग न मोड़ही, क्यों धारी क्यों काम।'^३ से बानन्दजनका शीषा बीन सुख कुछ खूबी हो चिरह मुर्खग निवासमे मेरी से बड़ी खूबी हो।^४ अधिक हृदयके समीप है। इसी भाँति कबीरके 'बैसे बरु बिन मीन ठकई, ऐसे हरि बिन मेरा बिबा कल्पै।'^५ से बनारसीदासके 'मे चिरहिन पिय के बाधोन या ठकई क्यों जल बिन मीन।' में अधिक सम्बन्ध है।

जैन और अजैन सन्त

अधिकांशतया जैन सन्त निम्नवर्गमें उत्पन्न हुए थे जब कि जैन सन्तोंका जन्म और पावन-प्रेमण सन्त कुलमें हुआ था। जैन जैन सन्तोंके द्वारा जाति पाँतिके अग्रजमें अधिक स्वाभाविकता थी। उन्होंने जन्म-उत्पन्नबोध पाकर भी समताका उपदेश दिया यह उस समयके सन्तकुलीन बहूँके प्रति एक प्रबल चुनौती थी। जैन सन्त पढ़े-लिखे थे उन्होंने जैन साहित्यका विविध अध्ययन किया था किन्तु निर्जीवता बोधमें समान थी।

जैन सन्त आजीविकाके लिए कुछ-न-कुछ उद्योग अवश्य करते थे किन्तु अपभ्रंशके जैन सन्त मुनि या साधु थे। जैन हिन्दीका सन्त-साहित्य रचनेवालोंमें बनारसीदास चानठदास मूबरदास अथवासीदास प्रभृति व्यापारविराज कर्म करते थे किन्तु कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने मुनिपद धारण किया था। इनमें 'सुरि' 'सपाध्याय और भट्टारक अधिक थे। मुनि विनयबन्ध भट्टारक धूमबन्ध, पञ्चोद्विजय जपाध्याय भट्टारक आनन्दजन और मुनि ब्रह्मनुकाज प्रमुख थे।

१ कबीर प्रभावानी 'जुर्ब सखरस सब की जल, क्यों रोया' पृ. २४।

२ प्रेमबाण कुछ जान न कोई। बेहि कामी जानै तैं कोई ॥

बटिन मरव तैं प्रेम बेबरपा। ना मिठ बिपै न बरतैं अवस्था ॥

बाबनी प्रभावानी प्रमदबह पानी बीपाई, पृ. ५६।

३ कबीर प्रभावानी, 'जुर्ब सखरस चिर की जल, २६वीं पंक्ति पृ. ६।

४ आनन्दजनसंग्रह, १९वीं पद प्रथम दो पंक्ति।

५ सन्तसुभासार, कबीरदास 'मरव' २८वीं पद पृ. ७९।

६ बनारसीदास जन्मप्रवर्णन जीवनचर्य, पृ. १२६।

धरणी मण्डित हैहु भगवान् ।

कोटि काकच भी विरघबहु, बाहि में रहि आन ॥ १

मच्छिसे मुक्ति

जैनधर्मका मुनाचार है मुक्ति । धर्मोंके आराध्य न परमात्मा है जिसने 'धर्ममञ्जीमठ' को दूर कर मुक्ति प्राप्त कर ली है । क्योंकि पूर्वतया छुटकाप प देना ही मुक्ति है^१ । जैन त्रिआत्ममें यह मुक्ति आत्मके द्वारा प्राप्तका मानी गयी है । हिन्दूके जैन भक्त-वर्धियोंने अपने भगवान्से मुक्तिकी भी याचना की है । क्योंकि उन्हें भक्तिस मुक्ति सिद्धिके पूर्व विवशता है । इसे केन-देनका प्राप्त नहीं कह सकते^२ क्योंकि विशेष मुक्तिकर ही है । क्योंकि मुक्त हुई आत्मा जिनैक है और वह ही मुक्ति है । जब मुक्तिकी याचनामें भक्तके जिनैकपक्ष होनेका आन है । भक्त सर्वत्र अपने आराध्यकी इस मछियासे अनुप्राणित होता रहा है । जब आत्मनरामने यह कहा कि जो तुम मोक्ष देत नहीं इसको वहाँ कार्य निहि देत^३ तो उसमें भी अपने भगवान्की मछियाकी ही बात है । तुम्हारी भी "रघुरति-वर्धित सप्त-सेवक विनु, जो भव बाध नहानि" । ये रामकी मछियाका ही भजन किया है ।

जब बनारसीबासने तो यज्ञिक विद्या कि भगवान् जिनैकसे मुक्तिकी याचनाकी आवश्यकता नहीं है, उनके चरकोंका स्वयं करनेसे वह ही स्वयः ही प्राप्त हो जाती है । अथ मैं तो देख को देख । आनु चरन परतें ह्यारिक होम मुक्ति स्वयमेव^४ ॥ इसीसे विद्वान्-मुक्ता सुरदासका वचन है, जिसमें उन्होंने कृष्णके भजनसे ही यह-वक्तव्यिकी पार कटरना किया है, "सुरदास बात बई हृदय भवि भक्तवक्तविकी कटरत^५ ।"

१. बरदास नरदास, भक्त कवच आचार्य मन्त्रमुनारे बासनेकी छन्दविद्वत् काटी कासी प्रचारिणी सभा बनारस विधीय सल्लक्षण वि. स. ६०६ प्रथम खण्ड १२३ पृ. १४ ।

२. 'धर्मदेवमात्र जिनैकपक्ष हृदय-वर्धनप्रसोक्तो योगः'
उत्पायेन्द्र, १०१ ।

३. व. रामचन्द्र हृदयने इसको केन-देनका मान करा है । हेतुन किशोरधर, भक्त भाष, ५ पृ. ११ ।

४. आत्मनरामायण वक्तव्यका १३० पृ. १४ ।

५. किशोरधर विवर्धनरि लम्बादिन वह छन्दरस कथारत, पूर्वा १२१ पृ. १२१ ।

६. कथारसभाष आचार्यभक्त १३० पृ. कथारसीकितान्, कथार, ५ पृ. १२१ ।

७. नृप्रसाद, प्रथम खण्ड, १३० पृ. १०१ ।

मछिसे ज्ञान

बैंग और वैष्णव दोनों ही भक्त कवियों ने ज्ञानकी अनिवार्यता स्वीकार की है। तुलसीने लिखा है कि ज्ञानके बिना इस संसारकी समुद्रको कोई पार नहीं कर सकता

बिनु बिनेक संसार और बिधि

पार न पावै कोई ।^१

कवि बनारसीदासने भी ज्ञानके बख्तर ही संसारसे छरनेकी बात कही है,

बनारसीदास जिन उक्ति अमृत रस

सोई ज्ञान सुने ए जगत सब छरिई ।^२

तुलसीदासने “रघुपति यक्षि-बारि छाछित पित बिनु प्रपास ही सुनै”^३ के द्वारा रघुपतिके यक्षिनी बलसे पवित्र हुए चित्तमें ज्ञान प्रयासके ही ज्ञानके उत्पन्न होनेकी बात लिखी है। सुरदासने भी “सुर स्वाम-पद नख प्रकास बिनु क्यों कहि विमिर नछावै”^४ में बलबल्लभासे ही अज्ञानान्धकारका दूर होना स्वीकार किया है। बैंग कविप्रोफा यक्षिसे ज्ञानकी उत्पत्तिमें छल्ल विश्वास रखा है। कवि बनारसीदासने ‘नाटक सम्यसार’^५ में लिखा है कि भगवान् विनेकके अक्षय वर्णन करनेसे ज्ञानका प्रकाश छिटक जाता है और यक्षि बुद्धि निर्मल हो जाती है

“जाको अस जपत प्रकास जरी हिरये में

सोइ सुखमति होइ हुती सु मखिन सो ।”^६

दानदासने भी ‘सर्व भिन्ता गई बुद्धि निर्मल गई बरहि चित्त बुद्ध बननि कयायो ।’^७ के द्वारा भगवान्के चरणोंमें चित्त कपावेसे बुद्धिका निर्मल होना लिखा है।

इस विषयकी केकर बैंग और वैष्णव कवियोंमें एक अन्तर यी है। यहाँ तुलसी और सुरदासके यक्षिसे ही ज्ञानका प्राप्ति होना लिखा है, वहीं बैंग

१. कल्पविष्णु पूर्णार्च, बनारस, १९२५वीं पृष्ठ ५ २२५।

२. रामदासजी २०वीं पृष्ठ बनारसीविताथ, बनारस, ५ ७५।

३. कल्पविष्णु पूर्णार्च १९२५वीं पृष्ठ ५ २२।

४. गुरुदास, प्रथम पद्यक प्रथम कण्ठ ४०वीं पृष्ठ ५ १७।

५. नाटक सम्यसार, बैंग प्रथम पद्याकर आर्षोत्तर, १९२५वीं पृष्ठ ५ ४५।

६. दानदाससंग्रह कल्पविष्णु १९वीं पृष्ठ ५ २।

कविबाने धर्मिके साथ-साथ स्थानुप्रमाणही भी महत्ता प्रदान की है। कवि बनारसी-बाघका कथन है कि यह जीव अरुण मित्रो प्रयानसे हो शानको प्राप्त करता है और कोता है,

घायु समारि करै जपभी पद्
 घायु बिसारि कै धायुहि मोहै ।
 ब्यापक रूप यहै कद अंतर
 स्वान में जीव अज्ञान में का है १

माया अज्ञानकी प्रतीक है। उससे विपक्षमें भी यही शान है। तुम्हीदासने 'मायव जनि तुम्हारि यह माया करि कयाय पवि मरिय तरिय नहि जब कवि करहु न दया ।'^१ में रघुपतिजी दयासे बिना मायाका दूर होता असम्भव मान्य है। जीव कवि भूवरचामने भी भयवस्तु अज्ञानसे ही माह-विद्याचक्र नाथ होता स्वीकार किया है,

"मोह विद्याच दृक्को मति मरि, निज कर कंच बसुका रे ।
 मत्र ओ राजमपीधर भूवर, दो दुरमति सिर चूका रे ॥
 मगअंत मज्जन कपी भूका रे ॥"^२

हिन्दु अनेक स्थानोंपर जीव कविबोले यह भी स्वीकार किया है कि माया न तो अवधानकी मेखी हुई है और न अवधानकी दृष्टसे दूर ही हो सकी है। इसे तो समुप्य मोहनीयवयवा नाथ करके ही भीत पला है। बनारसीबाघकी दृष्टिमें मायाकयी बेकिरी अन्धाकारमें कैवल्य ज्ञानी आत्मा ही समर्थ है। उन्होंने आर्याका बोझा नष्टे हुए लिखा है,

'माया बेकी बेकी सेती रेंसे में चारेपी सेपी
 कदा ही को कदा खोई ज्ञानी को सो माया है ।'^३

जीव कवि यमवतीबाघ 'मीमा' का कथन है कि ज्ञानाक्षी नयनीमें विश्रान्त कयी राजा राज्य करता है। वह मायाकयी राजीमें भग्न रहता है। जब कठका सरवाचकी और ध्यान नवा तो ज्ञान अज्ञान हो गया और मायाकी विमोछा दूर हो गयी

१ आर्य नमस्तार, २०१३ पृ. १५१ ।

२ भिन्ननिष्ठ कृति, १९४० का २१३ ।

३ भूवलिखान, अमरपुर, २ वीं कद पृ. १९१ ।

आर्यनमस्तार शिखा, योक्तार गीताका, पृ. १ ।

‘काया सी तु नगरी में बिदावन्द राज करे
माया सी तु रानी ये मगन बहु मयो है ।
एसी राजधानी में अपने गुण भूक्ति रखो
भुवि राग भाई तबै ज्ञान आप गछो है ॥’

आराध्यकी अन्ध देखोंसे महत्ता

अस्य देशमें अपने आराध्यको बड़ा बतानेका भाव एकेवरबादकी भावनासे अनुप्राणित है । बहीरकी दृष्टिमें बहुदेववादो उस व्यक्तिचारित्र्या दृष्टिको समान है, जो अपने पतिको छोड़कर आराध्य आराधन रहती है ।^१ बरनदासका कथन है कि बाहे छिर दूटकर पृथ्वीपर कोटने लगे किन्तु रामक सिद्धा किमी अस्य देशनाके समस्त न लुके ।^२

वैष्णव और जैन दोनों ही कवियोंमें अपने आत्मजनके अतिरिक्त किसी और को भक्ति नहीं की । उनकी दृष्टिमें अस्य देश स्वर्ग भिक्षापी है फिर वे दूसरोंकी याचना कैसे पूरी कर सकते हैं । भुरदासन अस्य देशोंसे भिक्षा माँगनेकी रचनाका अर्थ प्रयास कहा है ।^३ जैन कवि भुवरदासने भी ‘भुवर पद दानिद यों दकिहैं जो हैं आप भिक्षापी’^४ कहकर समीका समचन किया है । तुलसीदासने भिक्षा है कि अग्रदेश मागामे विवश हैं उनकी धारण्य वाला अर्थ है ।^५ जयकवीदास ‘मैवा’ का भी कथन है कि और सब देश राखी देवी हैं, उनकी सेवा करनेसे पाप

१. अलङ्कारसहित ‘मैवा’ अग्रविषयक जैनग्रन्थ रत्नाकर अर्चनाकर वर्ण्य सन् १६२६ ई. एड अन्वेषणी २५वीं पृष्ठा ५ १४ ।

२. नारि कह्यो नीब की रहै और सन लोच ।
आर गुहा मन ये बने असन लुखी क्या होय ॥
सन्त बानी संग्रह भाग १ पृ १० ।

३. यह छिर नभे त राम भूँ नाहीं गिरयो दूट ।
आन देश नहि परमिए यह तन आयो धूँ ॥
पृ. ५ १५० ।

४. माँचक ये माँचक नह जाँचै ? जो जाँचै तो रमना हारी ॥^६
गुलामार मयन लब्ध २५वीं पृ. ५ १५ ।

५. भूवर विषयक अलङ्कार २६वीं पृ. ५ १ ।

६. देश वसुध भूमि नाथ वसुध नभ माया-विषय विचारे ।
निनके हाथ दाल तुलसी प्रभु कहा वसुधो हारे ॥
स्व-विषयक पृष्ठा १ १६वीं पृ. ५ १६ ।

है, “तुम सम दीनबन्धु न दीन बाढ मो मम सुनहु भुषति रघुछाई।” नही किया है, ‘दीनबन्धु दूसरी कहें पावों’ और नहीं उन्हें ‘बिनु बारन पर उन्माटी अति कोमल कहना निवान दीन द्वित्वारी’ रामके अनिर्दिष्ट अर्थ कोई उपलब्ध नहीं हुआ।^१ मूरदासके विलम्बके पद्योंमें दीनता बिलंबी पड़ी है। उन्माते श्री किया है

“अब भी कहा कीन दर भाई ?

तुम जगपाक अनुर चिताममि दीनबन्धु सुनि भाई ॥”

दीन कविबाके भाव भी इनसे मिलत जुलते हैं। कवि छानछावने बल्ले मन्की दीनबन्धु जगवान् विनेश्वरका भजन करनेके लिए निरन्तर प्रेरित किया है। मूरदासकी भी भक्तबन्धुके दीनबन्धु रूपमें परम विश्वास है। उन्होंने संसारी बन्धोंसे दुःखित हाथ दीनबन्धु भक्तबन्धुकी पुकारा है

अरे जगन गुह एक सुनिचो अरज हमारी।

तुम ॥ दीनबन्धु, मैं दुस्तिमा संसारी ॥^२

दीनताके साथ ही भक्ताने अपने बोधोका भी लुकाकर अत्यन्त किया है। उन्मा भक्तबन्धुकी उदारताम पूज विस्वास है। भक्तान् बंधा है वह अपने भक्तको बोधोके होंते हुए भी भक्तसमूहसे दूर बना देता है। लुकावारी ‘विनयविधा’ में किया है,

“मावज मो समान जग बाही।

अब बिधि हीन मकीन दीन अति कीन बिपन कोड भाई ॥

तुम सम हैतु-बहिष कृपाहु आरत द्वि ईस न त्यागी।

मैं बुझ-सोक-बिचक कृपाहु केहि कारण बंधा न कापी ॥^३

दीन कवि भक्ततीराह ‘बैदा ने जेन’ के बोधो को प्रकट करते हुए, उन्मा भक्तबन्धुका भजन करनेकी बात कही है। उन्हें विश्वास है कि भक्तबन्धुकी कृपासे दीन पकम्पन कर जायेंगे

१. विनयविधा कठार्य १८५० ई. पृ. ४७२।

२. १८५० ई. पृ. ४२२।

३. पृ. १८५० ई. पृ. ४२२।

४. ललितमय, मन्त्र लक्षण १८५० ई. पृ. ३४।

५. मूरदास विनयुनि शास्त्रीय भूषावलि चारणिक धानवीर, कपटी, अम कपट, पृ. ३२२।

६. विनयविधा पृ. १८५० ई. पृ. २२२।

“मगधंत मज्जो ॥ तज्जो परमाद्
समाधि क संग में रंग रहा ।

अही अतन खाग पराह् सुबुद्धि
गहा निज बुद्धि क्यो सुख छोडो ॥

विपचा रस के हित बहुत हा
अब सागर में कछ बुद्धि गहा ।

तुम शायक हो पर दुग्ध के
तिन सी हित जालि के आप क्यो ॥^१

श्री विनयप्रम अष्टाध्याय (१५वीं शती शिष्टम्) ने ‘सीमन्तरस्वामी स्तवम’ में लिखा है कि शोषों के कारण यह भीष भव-समुद्रमें डूब रहा है उसे छारनेमें स्वामी सीमन्तर ही समर्थ है

‘मोह भर बहुक-बहु पूर संपूरिण्,
विपय घन-कम्म-ववराजि सराजिण् ।

अब जकहि मज्झि निवहंत जल-कम्प
सामि सीमन्तरो पोष जिम सोहण् ॥

धीन और दीप्ज्य होना ही कबियोने भगवान्को उनक बिरह का स्मरण दिलाया है । भगवान्का ‘बिरह’ भक्तियों से छारने छारनेका है चाहे वे शोषोंमें डूबे हों अथवा जगमुक्त । गुरुवासने एक वरम किया है कि-हे भगवन् ! मैं तो शोषोंमें भरा हुआ हूँ यदि आप अपने ‘बिरह’ का स्मरण करने लगी मेरा काम बनेगा बन्धन नहीं ।

‘सूरदास जिनटी कह बिनई शोपनि बैह मरी ।

अरनो बिरह सम्हारहुँगी ती पामि सब निचरी ॥^२

छातनछापने श्री भगवान् नेमीश्वरके छारन-छारनके ‘बिरह’ को स्वीकार दिया है । व संसारके पाप जलानमें बिकवान है

“अकक भनि अन्न-दूहन बारिद् बिरह छारन-छारन ।

इण्ड अण्ड अनिण्ड प्यार्य पाय मुक्त दुग्ध हरन ॥^३

१ मण्डीदास ‘मैत्रा शत पद्योपरी १ ११वीं शतका मण्डिकास ॥ ११ ।

२. विनयप्रम अष्टाध्याय, सीमन्तरस्वामीस्तवम् तीसरा पद्य
Ancient Jain Hymns Charlotte Krause edited Sindhia
Oriental Institute Ujjain, 1952, P 121

३. सूरदास, प्रथम स्कन्ध ११०वीं पद ॥ ४३ ।

४. भक्तभक्तवत्सल वरदा पद ॥ १ ।

विष्णु और विनेश दोनों ही ने चरण नई की 'काज' का निर्वाह किया है। सूरदासेने किया है। तो हम यहाँ कौन सी तरफ़ ? तुम्हें हमारी काज बताई बिगरी घुनि प्रभु मेरे ॥^१ कवि ज्ञानदासदा भी कबल है कि हम तुम्हारे यहाँ है, हमारी चरण नई की काज निवाहो

जाके केवलज्ञान विराजत कोकिलीक प्रकाशन द्वारा ।

चलन गद्दे की काज निवाहो प्रभु की काजत भगत तुम्हारा ॥^२

उपाख्यान

बनेक यन्त्र कवियोंने भवबान्धको उपाख्यान भी किया है। रित और रात स्वामीके पास रहते-रहते बिज प्रकार सेकड़ी बड़क कुछ जाती है उसी भाँति प्रभुके सन्त ध्यानेसे जो साक्षिध्वनी अनुमति यन्त्रके हृदयमें उत्पन्न होती है, उसके कारण वह कभी-कभी भीठा उपाख्यान या होता है। तुम्हारी एक पदमे लिखा है कि—हे भगवान् ! मुझे क्या विस्मय कर दिया है। ज्ञान अपनी महिमा और मेरे पापको काटते हैं फिर भी मेरे हाथोंके कर्म नहीं करते। पढ़ते तो मुझे ज्ञान बलिका और व्यापकी पल्लवों बैठा बिना फिर परसी हुई कृपाकी पल्लव फल क्या बाँटी ? मुझे मरकमें जानेका ज्ञान नहीं है, तुम जो इसका है कि ज्ञानका नाम भी वाप न जाता क्या

“कहते थे हरि ! मोहि बिभाये ।

जायत निज महिमा मेरे ज्ञान लक्ष्मि व बाध संभाये ॥

जग-नालिक-गज-व्यास-पति कहैं तहैं हीं हूँ कैसरो ।

जब केहि काज कृपा निवाण परसत पदबानो भाये ॥

माहिन बरक बरन साकहैं कर ज्ञानि हीं जति हारी ।

बह बड़ ज्ञान दास तुकसी प्रभु बाधहु वाप न भाये ॥^३

कवि ज्ञानदासदा स्वर भी तुम्हारीसे मिलता-जुलता ही है। उन्होंने लिखा है कि — हे भगवान् ! मेरे समय कील क्यों कर रही है। तुम्हें बैठ सुरसंगकी विपत्तिका अपहरण किया सती सीतायें किए जलिके स्वागदर बल कर दिया। इसी भाँति तुम्हें बारिषेय भीषाक और सोमापर भी क्या की। फिर मुझे ठारते समय हो देर क्यों कर रहे हैं

१ गुरुदास, प्रथम स्कन्ध ॥३॥ शी पद ५ ४५ ।

२ ज्ञानदासदास १६ शी पद, पृ. २३ ।

३ किलकलिका पूर्ण, ६ शी पद पृ. १ ।

मेरी बेर कहा बीक करी भी !

सूखी सो सिंहासन कीनो संत सुनसान बिपति हरी जी ॥
सीता सखी अगिनि में पैछी पावक नीर करा सगरी जी ।
बारिषेण पै सङ्ग चलायो फूल माख कीनो सुवरी खा ॥
बन्ना बापी परयो निवाण्यो ता पर रिख बबक भरी जी ।
सिरीपाक सागर तैं तारयो राज मोग कें मुकन गरी जी ॥
साँर दुखो फूलन की माया सोमा पर तुम दूबा बरी जी ।
पावत मैं कहु जोखत, नाही कर बैराग्य दया हमरी जी ॥^१

धर्मदासके समय बहुत बानेश्वर जन्म यह नहीं है कि उनसे जो चाहे सो कह दिया जाये । वहाँ भी शाकीनताका ग्यान हो रहना ही पड़ेगा । वहीं-वही सुरदासको फेरकार शाकीन मनको बबती नहीं । एक स्थानपर उन्होंने लिखा है

“पवित पावन हरि बिरख तुम्हारा कौनै नाम बरयो ।
हो तो हीन बुझिअ अति दुरबक हारैं रख परयो ॥”^२

इसके समय शान्तरावका एक अपाकम्प देखिए । सममें गरिमा तो है किन्तु मर्यादाका सम्बन्ध नहीं । उनका यह पत्र अपाकम्प साहित्यका एक अनूठा रत्न है । मरुते कहा

‘तुम प्रभु कहिअत हीन दूबाक ।
आपन आप मुकत में बँडे हम तु दूकत कर आक स
तुमरो नाम अपि हम बीक मन बच पीची कक ।
तुम ता हमको कहु दैत नहि हमरो कीन दूबाक ॥’^३

नाम-अप

सभी जगत् के जगति धर्मदासके नाम का जो महिमा स्वीकार की है । तुलसीने लिखा है कि धर्मदासका नाम-अप दृष्टान्तिक विभूति तो देता ही है पारकीकि धारका मुख भी प्रकाश करता है

१ बालीसरसमह कवचपा १७वीं पद पृ ७८ ।

२ गुरदास, प्रथम स्कन्ध १३३वीं पद पृ ४४ ।

३ बालीसरसमह १७वीं पद पृ ९८ ।

“नाम को मधेमी बक चाहिई बक को बक

सुमिरिय छांड़ि छक मनो कृतु है ।

बहारस साधक परमारस धावक नाम

राम नाम सारिणी न और पूजो हितु है ॥^१

कैत कवि जी सुखकलावन भी यंत्र परमेश्वरके नामकी महिमा बखाने हुए बहा है कि — जो निरर्थ प्रति मन्त्रधारको अपना है उसको सामाजिक मुक्त हो निक ही जाना है। धर्मजन सिद्धि की प्राप्ति ही जाती है।

“नित्य जपे ई मन्त्रकार संसार संरक्षि सुखदायक

मिष्ट मंत्र, धारणतो हम जप की पञ्चबाधक^२ ।

मन्त्रनीरास ‘मैवा’ का विवक्षा है कि नीतरानी मन्त्रानुवा नाम केनेवाके नाम धर्मसे ही भर ही जाने है। वह मन्त्रानुवा भी पार हो जाता है,

‘नीतराग नाम सेरी काम ख होहि नीके

नीतराग नाम छरी धाम बन जरिये ।

नीतराग नाम मनी विषम विद्याय कार्य

नीतराग नाम मनी मन्त्र-सिन्धु छरि ॥^३

मुक्त चाहे इहलौकिक हो चाहे पारलौकिक पाप नष्ट हुए बिना प्राप्त नहीं होगा । मन्त्रानुवा नाम केने माधसे ही पाप दूर हो जाते हैं । सुखमोने किया है

“राम नाम सौ रहनि राम नाम की कहुनि

हुयिक ककि मक शोक संकर हरनि ॥^४

‘मैवा’ मन्त्रनीरासने तीर्थहार मुनिमुनिरागके नामसे पापको नष्टमान होते हुए विधाना है।

‘मुनिमुनिराग विष नां नान विमुक्त बन धरै ।

अपे सुर नर आप जान अपि राग मु कहे ॥^५

मन्त्रानुवाग किया है कि मन्त्रानुवा नाम केनेसे एक लक्षमें ही बरोही मन्त्र नाम कट जाते हैं।

१. दिव्यलिका कठारम्भ, १९००वीं पद ५ २ ३ ।

२. सुखनाम मन्त्रकार बन्ध, मन्त्रिप्रकाश, कैतगुर्जर कविजी बरना नाम, सन् १९९६ ई ५ २१९ ।

३. मन्त्रनीरास ‘मैवा’ अतिशयि धारणाव मुनि, १९वीं कवि, मन्त्रिप्रकाश ५ १६९ (१६९) ।

मन्त्रलिका कठारम्भ १९००वीं पद ५ ३०५ ।

५. मन्त्रनीरास ‘मैवा’ मन्त्रिप्रकाश कविजी १९वीं कवि, मन्त्रिप्रकाश ५ १७० ।

ऐ मग मग मग हीनहनास ।

आके नाम छेठ इक छिन में कई कोट भव बाळ ॥

भूषणायना कथन है कि सीमम्बरस्वामीके नामका उच्चारण करनेसे पाप सभी मीति नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदयसे अंधेरा

“सीमम्बर स्वामी में चरनन का चेरा ।

नाम किए भव ना रहें उरी ऊगे मान भंघेरा ॥”

भगवान्के नाममें धाडा करना प्रत्येक व्यक्तिना कर्तव्य है । बेर पुण्य और पुण्यरि आदि सभी भगवान्के नामकी महिमा स्वीकार की है । कुछ ऐसे भी हैं जो इस महिमाको स्वीकार नहीं करते किन्तु भगवान्के भक्त उनमें प्रति यो बहार रहें, यह ही वचित है । मुक्त्यीने उनको यथा कहा है

‘वेद ह पुराण ह, पुरारि ह पुकारि कछी

नाम प्रेम चारि कछ ह का कद है ।

ऐम राम-नाम सौ न प्रीति न प्रयोति मग

मेरे जान जानिबो सोई तर लख है ॥”

दानवदामने भी एक ऐसे ही पदका निर्माण किया है, जिसमें उन्होंने भगवान्का नाम न कैनेवालेको बिकाराय ती है, किन्तु यथा-जैसे दण्डका प्रयोग नहीं किया । उनका कथन इस प्रकार है

इन्द्र कमिन्द आकषर गारें जाको नाम रमाक ।

जाको नाम जान परकसै बाघै मिथ्या जाक ॥

पद्म से चन्द चम्प से बछी सफक करे अचकार ।

नाम बिना बिक मानव को मग अक बक होई छार ॥”

भगवान्की उदारता उसके नाममें भी समिहित है । भगवान्का नाम कैनेसे वेदक पुष्पारामा ही नहीं अपितु पापी भी तर बाधा है । मूरछसने लिखा है

‘का को न तरथी हरि नाम किबें ।

मुखा बड़ावत गमिका लारी व्यास तरया मर-बाग किबें ॥

अंगरदाह लु मिथी व्यास की इक छिन द्वे पागवन किबें ॥

१. बानजरासम कलकत्ता १९३० वर ५ पृ. १८ ।

२. भूषणायना कलकत्ता दूसरा वर ५ पृ. १-२ ।

३. विनयविद्या कलकत्ता, १९३३ वर ५ पृ. ३२ ।

४. दानवदामन १९३० वर ५ पृ. १८ ।

५. भूषणायना कलकत्ता १९३० वर ५ पृ. १ ।

भगवान् के नाम में पापियों को छारने की शक्तिका प्रमाण भूवरक्षाने भी किया है। उनका कथन है कि भगवान् का नाम देने से अंगन से चोर और कीचड़ से अमिमानी भी छर पड़े हैं।

‘मैं तो बाकी आज महिमा जानी सब को नहिं छर जानी ॥
काह को सब बन में अमर देखों होते पुष्प दानी ॥
नाम प्रदाय तिर अंगन से कीचड़ से अमिमानी ॥’

मुन्सीदासने रामके नामकी बच-बेगारसे छूटनेका उत्तम साधन माना है
“राम कहत चहु, राम कहत चहु राम कहत चहु माई रे ।
बाहिं तौ बच-बेगारि मई परिही छूटत अति कसिनाई रे ॥”

एक दूसरे स्थान पर उन्होंने कहा कि भगवान् के नामसे कोई बिग्या नहीं पड़ी और मोक्षलोक प्राप्त हो जाता है।

“सुकसो जग जानिबत नाम ते
लोच न बूच सुखम को ।”

धर्म कवि मनरामन मनरामबिहारा^१ में लिखा है कि ‘अहिंस का नाम
बाठ कर्म कपी दुरमनोको नष्ट कर देता है और दुर्मोक्ष प्रदान करता है,

करमात्रिक अतिव की हरी अहिंस नाम
सिद्ध करि काज सब सिद्ध की मखन है ॥”^२

भूवरक्षाने का कथन है कि यदि मनुष्य जीवनसे छूटकरा पाया है, तो भगवान्
मेनोस्वरका नाम पढ़ो

‘है अजी पृथ प्रदाय भूवर
करी जो नर चार रे ।
रहि नाम शत्रुक मन को
बहु बंध छोड़न दार रे ॥’^३

भगवान् का नाम देवक भक्ति ही नहीं अपितु ज्ञान भी प्रदान करता है ।
सूरदासने लिखा है

१ भूवरक्षितास कलकत्ता १९१० पर ५ पृ० ।

२ किल्लरबिहारा कलकत्ता, १९१० पर ५ पृ० ।

३ वही १९१० पर, ५ पृ० ।

४ मनराम मनरामबिहारा अहिंस देविकान्त कलकत्ता १९१० पर ५ पृ० ।

५ भूवरक्षितास कलकत्ता १९१० पर ५ पृ० ।

‘अद्भुत राम नाम के अंक ।

यसि ज्ञान के पंच सूर य प्रेम निरन्तर भाषि ॥”

ज्ञानराशिका भी कथन है कि भगवान्‌का नाम भिष्या-बासफो काटकर ज्ञानका प्रकाश करता है

‘आफो नाम ज्ञान परफसी
नासे भिष्या जाऊ ॥’

भगवतीरास ‘दीवा’ ने जो पंच परमेष्ठीके नामकी महिमा बताते हुए किया है,

“छिहु ओक तारन को आध्या सुधारन को ।
ज्ञान बिस्तारन को बही नमस्कार है ॥”

जैन और वैष्णव कवियोंमें अन्तर भी है । जैनोके मध्य भगवान्‌का नाम कीर्तनक रूपमें कभी प्रतिष्ठित नहीं रहा । वैष्णवोंमें कीर्तन भक्तिका प्रमुख अंग माना जाता है । इसके अतिरिक्त सूर और तुलसीने अपने नामको साधन और साध्य दोनों ही रूपों स्वीकार किया है । तुलसीको रामसे भी पूर्व रामका नाम प्रिय है मगर वह साध्य तो है ही । जैन भक्त कवियोंने भगवान्‌के नामको केवल साधन माना है ।

भगवान्‌का छोकरंजनकारी रूप

भगवान्‌का रूप छोकरंजनकारी सभी हो सकता है जब उसमें शीतलके साफ-साफ धक्ति और सीधना भी सम्मिलित हो । भगवान्‌के इसी सम्मिश्र रूपसे मन-मन आकर्षित होता है । तुलसीने ‘रामचरितमानस’ में ऐसे ही रामको अंकित किया है । जिनमें रामके समान ही शीतल और सीधकी स्थापना हुई है । किन्तु धक्ति-सम्पन्नतामें अन्तर है । रामका धक्ति-शीतल असुर तथा राक्षसोंके संहारमें परिचरित हुआ है जब कि जिनकेका अहङ्गमोंके निरस्तर्पण । दुष्टोंको भीता दोनों-ने है, एकने मातृवन्धे और दूसरेने अम्भारपराधितये । एकने असत्के प्रतीक मानव को समाप्त किया है, और दूसरेने उसे सत्में बदला है । तुलसीके राम राक्षसोंको

१. छारदीनर प्रथम स्कन्ध १ श्लोक ५ ५६ ।

२. ध्यानपरतपस १६श्लोक ५ ५ ।

३. मम्मडीरास मेधा सुप्रति नीनीसी, १श्लोक मधुविनास ५ १२५ ।

४. प्रिय राम नाम हैं आदि न रामों

विनयविद्या कण्ठार्य, १५श्लोक ५ ४०० ।

मारकर बैठे हैं। वेह कुलुमी बजाते हुए पुण्योकी बर्षा कर रहे हैं। रामके घरीरसे चीन्चर्ष फूट रहा है।

‘सिर जरा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजाहीं ।
बनु नीलगिरि पर तड़ित पटक समेत बहुगन आवाहीं ॥
मुनबंद सर कोबंद घेरत खिर कम तब अति मने ।
बनु राधमुनी तमाक पर बैठीं निपुन मुख आवने ॥

ममबान् पार्श्व प्रभुने कमठ नामके बसुरके बोर उपसर्बोंको ग्रहण कर उसके हृदयको मोत किया। और बृन्कध्यागसे जहकर्मोंको बलाकर वैभक्त्याग प्राप्त किया। समबसरबकी रचना हुई। सिंहासनपर बिराजे ममबान्का चीन्चर्ष बेधिए,

अति बचक कम अक्षुप कछत सोम विम्ब प्रया हवीं ।
सो कपो पास जियेन्द्र पातक हरन जग ब्रह्मसमी ॥
हुति देखि जागी मोह कर में तेज लीं रवि कायव ।
अब प्रमा मलय सोम जग मों कीन उपमा काजवे ॥
इत्यादि बहुत विमृति भक्ति सीहिप विभुबन बनी ।
सो कपो पास जियेन्द्र पातक हरन जग ब्रह्मसमी ॥

समबसरबमें सिंहासनपर बिराजे तीर्थंकरके चीन्चर्षको बरम ब्रह्ममणि बनारसीवातके मुक्तक पत्रमें हुई है। उनके तेजके आये सब तेजर्षत रुन्के प्रबल महारूपर्षत और उनकी घरीर सुबन्धिके सामने सब सुबन्धियाँ पटावित हो गयी हैं। उनकी विम्ब जगि कानीयो मुख प्रयाग करी है।

“जाक देह-मुक्ति लीं वसीं विसा पवित्र जई,
जाके तेज जागे सब तेजर्षत एके हैं ।
जाकी कम निरखि भक्ति महा कर्षत
जाकी बसु-बास लीं सुबाध और लुके हैं ।

१ दोहावी तुलसीदास जी रामचरितमाव्य भिद्यार्थे भेरपुत्र, संज्ञाकार, १ भाग, ५ पृष्ठ ११ ।

२ मूलपत्र दासपुराण, मिनाबी बजारक काशीस्थ, कलकत्ता प्रथम संस्करण, प्रामोदविद्यालय, काशीविद्यालय, १९२१ पृष्ठ, ५ ७१ ।

आकी दिव्य बुनि सुनि अवन की मुख होत
 आके तन कण्ठन जनेक आह दुके हैं ।
 तेई बिनराज आके कहे बिबहार गुन
 बिहने निरखि मुख चेतन सी सुक हैं ॥^१

विनयप्रम उपाध्यायने श्री सीमन्तर-स्वामि-स्तवनम्^२में श्री सीमन्तर स्वामीका
 ओकरदनकारी चित्र सीधा है,

“सुख्य मन मय्य अर्पण संपूर्ण
 हरित हरतार तारक मुखी बाधक ।
 सचक जग कतु मय-पाप तापापह
 नमई सीमन्तर जई सोदायह ॥



१. नाटक उद्यमभार, अष्टमस्कन्धकावर आर्वातप, बम्बई वि. सं. ११८९ ११९,
 पृ. ११११६।

२. विनयप्रम उपाध्याय, सीमन्तर-स्वामि-स्तवनम् पृ. ११, Ancient Jain
 Hymns, P 1-1

जो बिज सासण भासियह सो महु कहियह सार ।

जो पाकेसह माह करि सो छरि पावह पाव ॥

कुछ विद्वानोंने अपभ्रंश और वैद्यभाषाको एक मान लिया बरिचामतः उन्होंने अपभ्रंश कृतियोंको भी हिन्दीमें ही परिगणित किया है। महाप्रखित राजक सांस्कृत्यायनकी हिन्दी काव्यशारा इसका निदर्शन है। वह तब है कि 'अष्टछरि' रत्नाकरके आचारपर अपभ्रंश और 'वैद्यी समानार्थक दण्ड वे' किन्तु यह वैसा ही या वैसा कि पञ्चमूर्तिके महाभाष्यमें प्राप्त और अपभ्रंशकी समानार्थक माना गया है।^१ भाषाविज्ञानके मध्येता बाकरी है कि भाषाओंका स्वभाव विकसनाधीन है। मुहूर्तीकर्मके लिए भाषाएँ निरन्तर सघातप्रधानतासे व्याप्त परकताकी ओर जाती रही है। प्राकृतसे अपभ्रंश और अपभ्रंशसे वैद्यभाषा अधिकाधिक व्याप्तप्रधान होती गयी है। यह ही बीनमें अन्तर है। अन्त बीनोंको एक नहीं माना जा सकता। स्वयम्भू (१वीं सताब्दी वि. सं.) का 'पदबचरित' निराला अपभ्रंशका ग्रन्थ है। उसमें वही वैद्य भाषाका एक भी शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ है। कवि पुनरन्त (वि. सं. १२९) ने 'बाबकुमारचरित' में अपनी छरस्वरीको निःशेष वैद्य भाषाओंका बीकनेवाका बके ही रहस्य हो^२ किन्तु यह वैद्य विविध अपभ्रंश भाषाओंके बीकनेमें ही निपुण है। पुनरन्त अपभ्रंशकी ही वैद्यभाषा कहते थे।

पुनरन्तके वालीस शर्ष सगरान्त हुए श्रीचन्द्रका कलाकोष वैद्यभाषामें किया गया है। इन ग्रन्थमें ५३ शब्दों हैं। प्रत्येक शब्दमें एक कवा नहीं गयी है। कवाएँ बलितसे सम्बन्धित हैं। शब्दकी प्रशस्तिसे स्पष्ट है कि श्रीचन्द्रके गुह बीरचन्द्र ने जो मुम्बकुमारचरितकी परम्परामें हुए हैं। एक सदाहरण इस प्रकार है,

‘जहेवि सिद्धि न समाधिकसत्वं
समत्वं संसार झड़ोह वारण ।
पहु अपु न सरसं निरंतरं ॥
सुहं सघातण्डकजं जलुधरं
सेन्यन मरह बद्धि पचाह ।
सम्मत बाल तर चरण बाल ॥

१ कदासरीत्नाकर, १७४ पृ. १४५ ।

२ शब्दकोश महाभाष्य, १११ पृ. १ ।

३ दासकुमारचरित की शिरासात जैन उन्मूलित चरित्रा २४२१३ परती छवि ११३ ।

विष्णुकी चेतनको ब्रह्माकी कर्मों की निरुद्धमूर्ति (वि. सं. १२४) के रूपमें एक सामान्यवान् व्यक्तित्वका जन्म हुआ । वे विष्णु के और कवि थे । उन्होंने 'बन्धी' काटस्वच्छपुष्पम् और उपदेशरसायनरस' का निर्माण किया । 'उपदेश रसायनरस' में सत्सुखी स्वरूपका विचार वर्णन हुआ है । वे तीनों ही बार बार प्रार्थना माया में लिखे गये हैं । उनके सम्बन्धमें एक वचन इस प्रकार है,

सुगुण सुसुखह मन्त्रकट मासह
पर पराजि-विषद जमु मासह ।
मणि जोष विष धन्यह स्वकाह
सुख-भाग्य पुष्पिपठ छु भस्मह ॥”

विष्णुस्मृति (वि. सं. १२५७) ने 'पुष्पिपठ' की रचना की थी । आपात स्थिति में ब्रह्माह स्वामी के समवाचीन थे । उनका निर्वासन वा वि. सं. १२९ में हुआ । उसका समाधिस्थान पुष्पहार नाम स्थान स्टीमर के सामने कमल-हृदय में बना हुआ है । इस आपसी गणना सत्सुखी के नामों की जाती है । इसमें आपात स्थिति की शक्ति सन्तानिधन जैसे छंद सत्सुखी की रचना हुई है । बापक वचनकी प्रतिपत्ति पवित्रा देखिए

“मीनक कोमल सुरभि बाव जिम जिम बावते ।

माज मन्त्रकट मावलिम दिम दिम बावते ॥

जिम जिम मन्त्रकट मन्त्र मेह मन्त्रगणि मन्त्रिका ।

दिम दिम कामीतराज मन्त्र वीरदि मन्त्र हकिषा ॥

मेदिनगर प्रहारी चरतरमन्त्रीय निरुद्धमूर्ति के विषय में । उन्होंने वि. सं. १२५९ के अन्त में विष्णुस्मृति सुखवर्णन के नामसे एक स्तुति लिखी थी जो शैव ऐतिहासिक काम्य संघ में प्रकाशित हो चुकी है । यह स्तुति आपात स्थिति का निर्माण है । इसमें ३५ वचन हैं । एक वचन इस बाँट है

‘वचनवि मासि वीर दिनु, मन्त्रकट वीरम मासि ।

सुखराम मासिक सुखमि मन्त्र, सुख प्रमाण विवरासि ॥”

महेन्द्रमूर्ति के विषय की वर्षमूर्ति (वि. सं. १२६६) ने ‘अम्बुधारी वरिष’ ‘रन्ध्रमन्त्रकट और सुखराम की सुखमि का निर्माण किया था’ । तीनों में क्रमशः ५२, ४२ और ४२ वचन हैं । मन्त्रान् ब्रह्माकी निर्माण के कारण केवल तीन

१. सत्यवन्त अनामिका नाम के समकालीन वर, स्त्रीय संस्कृत प्रमाणों में लिखित G ३३ ११११११ में प्रकाशित किया है ।

२. श्री श्री रामजी का अतिशय शक्ति के द्वारा एक मन्त्रावली भी है ।

कैबली हुए जिनमें जम्बूत्सामी अन्तिम थे। सुमस्रासतो जिनेश्वरी मन्त्र दी। सोनो ही रचनाएँ पुरानी हिन्दीमें लिखी गयी हैं। यद्यपि कुछ छेकाछे इन कृतियों-के मापानो मुकरासो कहते हैं किन्तु यह हिन्दीके अधिक निकट है। तीनोंका एक-एक पद्य निम्न प्रकारसे है

त्रिष्य चड बीसह पद्य नमेवि शुद्ध अण्य नमेवि ।
बंहु सामिहि तण्ड अरिय भविह भिसुयेवि ॥

—जम्बूत्सामी अरिभ

‘पण्मवि सासणइवी अणई चापुमरी ।
धूकिमय गुण गहन सुणि सुणिब रहण्टु केसरी ॥
—स्वाम्भर रास

“बं चहु हाह गया गिरणारे अ उहु दोम्हह बोना मारे ।
बं चहु कविह नवकारिहि गुणिहि तं चहु सुम्मा-
अरिणिहि सुणिहि ॥”
—सुमस्रासो अनुपदिका

घाहरयण अरहरगण्डीय जिनपतिमूरिके छिप्य थे। उन्होने वि सं १२७८ में जिनपतिमूरि अवकाशीत^१ का निर्माण किया था। यह कृति गुह-वक्तिकन दृष्टान्त है। इसमें बीस पद्य हैं। रचना सरस है। पद्यका पद्य बेलिए,

‘बीर त्रियेछर नमह सुरेसर लसपह पणसिय पय छमके ।
पुगवर जिनपति मूरि मुण्य गाह सो मणि भर हरसि द्विम निरमके ॥

विजयसेनमूरि, नागेश्वरगण्डीय हरिममूरिके छिप्य बीर मन्त्रिपरक वस्तु पाछके वर्माचार्य थे। उन्होने वि सं १२८८ के अवसण ‘रिदन्तमिर रासो की रचना की थी। इसमें ७२ पद्य हैं। इसमें गिरिनारके जैन मन्त्रियोंका वचन है। इसकी भाषा प्राचीन गुजरातीकी अपेक्षा हिन्दीके अधिक निकट है। प्रारम्भके दो पद्य इस भाँति हैं

१ लाफेटी मिसेलेवी बमासिक पत्रिका बीरदा मसाराबडी लेखन लाफेटीका मसाराब, अर्थात् १६१२के अन्तमें, बी टी बी बलासका पाठ्यके उपस्थित जैन पुस्तकालयकी ओरसे प्राप्त उत्कल, पाठ्य अन्तर्गत और प्राचीन गुजरातीके अन्तर्गत निरूप्य ।

२ ‘विग्राहिक ऐनकान्य समह’में प्रकाशित हो चुका है ।

३ ‘प्राचीन गुजरातीय कथन’ में प्रकाशित हुआ है ।

परमेश्वर तिलोत्तरह पय एकत्र वचमेवि
मन्त्रिणु रामु रेवंच मिने धनिक देधी सुमरेवी ।
रामागार-गुर-वच-गहन सति-सरसति-सुपपत्तु,
देवधूमि विमि पन्थिमह मन्त्रहक सीरड वैसु ॥

विष्णु संवत्की १४वीं अठ्ठाव्वीमें जनेक धीन कवि हुए । उनही भाषा हिन्दी की । उनही कवित्तोका धुन्धस्वर मण्डितपूर्ण था । अरुतराजकीय जितपठिसुरिके सिध्य जितेस्वरसुरिके वि सं १३३१ के समय जनेक धनिकपूर्ण स्तुतिबोली रचना की जिनमें-से एकका नाम है 'बाबरो' ।^१ उसमें तीस पद्य हैं । बाबिका एक पद्य देखिए

'मगति कवि बहु रिमह जिम वीरह चकल वमेवि ।
हउ बाकिड मणि भाव वरि हुहवि विधमणि समरेवि ॥

इन्हीं जितेस्वरसुरिके सिध्य जन्मसिक्कने वि सं १३७ बैसाख पूस्ता १ की 'नङ्गावीररास' लिखा था । उसमें २१ पद्य हैं । इसे भमवान् महवीरकी स्तुति ही समझा चाहिए । जन्मसिक्कका 'शान्तिनाथदेवरास' बीर सोममूर्तिज्य जितेस्वरसुरि संयमवी विद्याहवर्धनरास'^२ धनिकसे सम्बन्धित प्रसिद्ध काव्य है ।

जन्मदेवसुरि जालेजवण्णके जाचार्य पाण्डुरसुरिके सिध्य थे । उन्होंने वि सं १३७१ के लगभग संवत्ति 'समरा रास'^३ का निर्माण किया था । सोमनाथ रास समरा संवत्तिन वि सं १३७१ में सप्तम्य तीर्थक्षेत्रका फलार करवामा था । इस रचनाने सबीका वर्णन है । इसकी भाषामें राजस्थानीके ध्वन्य अधिक है । इससे जन्मदेवका जन्म राजस्थानमें कही हुआ था ऐसा अनुमान होता है । इस रासकी भाषाका सम्पूर्ण गुजरातीकी अपेक्षा हिन्दीसे अधिक है । यह समरा बाहने प्दुनसे छन निवाककर सप्तम्यकी ओर प्रभाव निवा उस समयका एक पद्य देखिए,

१ श्री जगन्नाथ नाथनाके मित्री संग्रहमें मौजूद है ।

२ 'शान्तिनाथ बीर शान्तिनाथ देवरास श्री जगन्नाथ नाथनाके मित्री संग्रहमें मौजूद है ।

३ कैव वैदिकसिक्क काव्य संग्रहमें जय पुका है ।

४ शान्तिन कैव गुर्जरकाव्य संग्रहमें लक्षित है ।

‘बाबिय सख असेल नादि काहळु हुहु हुडिया
योड़े चढ़हु सस्कारसार राखत सींगडिया ।
तख देखाऊअ बाबि बेगि बाबरि खु समकहु
सम बिसम नबि गणहु कोई नबि बारिअ धनकहु ॥

जिनप्रसमूरि (१४वीं शताब्दी वि० सं) अरतरंगजीय जिनसिद्धमूरिके
दिय्ये थे । उन्होंने ‘पद्यावतीदेवी चौरी’की रचना की थी । यह कृति लहमशा
बादसे प्रकाशित ‘भैरव पद्यावती कव्य’में छप चुकी है । यह देवी पद्यावतीकी
भक्तिसे सम्बन्धित है । एक पद्य इस प्रकार है

“भीमिन सासजु अजबाकरि सायकु सिरि पदमावहु देवि ।
भविष्य कोय आनंद परि दुखद सावयजम्म सहेवि ॥

चौदवीं शताब्दीके प्रसिद्ध नबि रसुनै जिनदत्त चौरीकी रचना वि सं
११५४ में की थी । इसकी एक हस्तलिखित प्रति अजपुरके पाटीरीके मन्दिरमें
भीमूर है । इसमें पाँच-छो पद्यएक पद्य हैं । इसमें जिनदत्तसे सम्बन्धित भक्तिपरक
भाव प्रकट किये गये हैं । काव्यत्वकी दृष्टिसे भी कृति अत्यल्प है । इसी
शताब्दीके नबि येसुन अजवीरी यीश की रचना वि सं ११७१ में की ।
यह एक छन्द रचना है । इसमें चौबीस शीर्षकरात्री स्तुति की गयी है ।

इसी शताब्दीमें आनन्दतिलकन ‘महार्णवदेउ नाथकी रचनाका निर्माण
किया । इसकी एक हस्तलिखित प्रति आमेर-आराध अम्बार अजपुरमें भीमूर है ।
अब तो उसका प्रकाशन आगरी प्रकाशितो परिचामे हो चुरा है । इसमें अथम
४४ पद्य हैं । यह काव्य आध्यात्मिक भक्तिका निदर्शन है । गुरु महिमाके दो
पद्य देखिए,

गुरु जिनवद गुरु सिद्ध मित्र गुरु रचनलख साद ।
सा हरिमावहु अथ पद आनंद अजजक बावहु पाद ॥२१॥
मित्रल सुखहु सहगुरु अथ हरिमावहु महाद ।
परम कोनि समु बहामई आनंद कीवहु मित्रमनु भाद ॥२२॥

परिमिश्र २

दूसरे अध्यायके कवि अनुक्रमणिका

अवधनीति	२१९	देवकण्ठ	१२
अवधराज पदवी	३५७	देवादिह	२९५
आत्मन्यन	२४	दोमतराज पण्डित	३५२
ईश्वरसूरि	१९	गन्धर्वा	१५८
उदयराज कवी	१५	निहालचन्द	३४९
कनकनीति	१७६	पद्मलाल	५८
कितन सिंह	३२७	परिमल कवि	१३५
कुमुदचन्द	१३	भगवतीराज	१७८
कुसुमकान्त	११५	ब्रह्मगुण	१४६
कुंभराज	१९७	ब्रह्मविनय	५९
कुशाकचन्द काका	३३३	ब्रह्मचर्यमन्त्र	११
कुनक	३	बिहारीराज	३२२
कुशदास	९६	कुशाजीराज	२९
कवस्मन	७१	कुशराज	९७
करिषेन मुनि	६४	भगवतीराज पण्डित	१४४
ऊँहल	११	भगवतीराज 'मैय्या'	२९८
अपनीचन	२११	भगवतीराज	३५६
अपतराज	२५१	नाक	३३
अपनीति भट्टारक	९४	भूवरराज	३३५
अपताक मुनि	९३	भगराज	१९३
अपतापर अपाध्याय	५२	मनोहरराज पण्डित	२१९
अनराज पाण्डे	१२५	महानन्द कवि	१४
अनरंज सूरि	२६४	मेनराज	१४२
अनरूप	२३३	मैय्याचन्द अपाध्याय	४९
आचराज बोधीरा	२७७	अष्टोपनिषद्वादी अपाध्याय	१९९
ठपूरही कवि	८३	रत्ननीति भट्टारक	१७
आनन्दराज	२७३		

राजरोखर मूरि	३२	सभाब	३४
रामचन्द्र	२४२	सहृदकीर्ति	१४४
रामचन्द्र	२३	संजयमुखर उपाध्याय	९८
रामचन्द्र पाण्डे	१६८	साधुकीर्ति	१२१
रामदीनसूक्त	३०७	सुन्दरदास	१६१
रामचन्द्र कन्नोदय	२२४	सुरेन्द्रकीर्ति मुनीश्वर	२९८
रामचन्द्रसम	१५	सोममुखर मूरि	५
राधिकाचन्द्र	१३७	हृदकीर्ति	१७४
विद्यासागर	२८७	हरिचन्द्र कवि	९
विद्वान्	४७	हरिकृष्ण	१२२
विजयचन्द्र मुनि	८	हीरानन्द पण्डित	२२८
विजयचन्द्र उपाध्याय	२७	हीरानन्द मुकीम	१५४
विजयविजय	२९३	हीरानन्द मूरि	५४
विजयसमुद्र	८८	हेमचन्द्र पाण्डे	२१४
विजोद्दीनदास	३११	हेमचन्द्र	१५६
विश्वमूपन	२५८	काविराय कवि	९५
विरोधमय दास	२७६	विश्वमूपन	१२८
पुनचन्द्र महारक	७७	कान्तमूपन महारक	७३
सहृदकीर्ति	५६		

